राजस्थान के इतिहास के स्रोत

पुरातत्व भाग 1

लेखक

डा० गोपीनाथ शर्मा

एम. ए., पीएच. डी., डी. लिट्.

प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम संस्करण : १९[illegible]३

मूल्य : १५.००

प्रकाशक :

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

ए २६/२ विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर–४

मुद्रक :

मनोज प्रिन्टर्स

गोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर–३०२००३

प्रवेशक

इस क्षण की घटना आगे आने वाले क्षण का इतिहास बन जाता है। इसी तरह अतीत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिवर्तन वर्तमान-कालीन इतिहास के प्रेरणा-स्रोत हो जाते हैं। इस अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली कड़ी ऐतिहासिक साधन हैं। इन साधनों में काव्य, कथा, ख्यात, वंशावली आदि हैं जिनमें कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है। इनमें कई राजवंशों के राजाओं की नामावलियां, उनके राजत्व काल के वर्षों की संख्या, उनकी उपलब्धियाँ तथा अनेक ऐतिहासिक पुरुषों के नाम एवं उनका कुछ वृत्तान्त रहता है। राजस्थान के इतिहास के लिए इन साधनों से भी अधिक सहायक साधन शिलालेख और दानपत्र हैं जो यहाँ की कई ऐतिहासिक घटनाओं तथा ऐतिहासिक पुरुषों तथा वंशक्रम का विवेचन देते हैं। इनके अतिरिक्त समय-समय पर यहाँ आने वाले कई यात्री भी रहे हैं जिन्होंने कई घटनाओं के सम्बन्ध में अपनी आँखों देखा वर्णन दिया है। मुसलमानों की लिखी हुई फारसी पुस्तकों में भी कुछ बातें ऐसी मिल जाती हैं जो अन्य साधनों में नहीं मिलतीं। इस दृष्टि से उनका भी एक स्वतन्त्र महत्त्व है। इसी प्रकार कई अवसरों पर दिये गये पट्टे, परवाने, दस्तावेज आदि भी उपलब्ध हैं जिनमें अनेकानेक घटनाओं तथा व्यक्तियों की विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। राजाओं, महाराजाओं, राजकुमारों, महारानियों आदि की जन्म कुण्डलियां भी तिथि, वार, नक्षत्र की सूचना व्यक्तिविशेष के जन्म सम्बन्धीत देकर समय निर्धारण में सहायक सिद्ध होती हैं। यहाँ के इतिहास के लिए खाते, बहियाँ, हकीकतें आदि भी बड़े काम के हैं जिनसे कई नए ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है। इन साधनों के अतिरिक्त प्राचीन खण्डरों, मूर्तियों के अवशेषों, मुद्राओं, चित्रों आदि से भी जन-जीवन तथा सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

परन्तु आज तक लिखे गए इतिहास में इन सभी साधनों का समुचित उपयोग किया गया हो, ऐसा नहीं है। इसका कारण यह रहा है कि विदेशी आक्रमणों के कारण इन साधनों की उपलब्धि आसानी से नहीं होने पाई और उनका समुचित उपयोग भी नहीं हो सका। दूसरा कारण यह भी रहा है कि इतिहास लिखने का दृष्टिकोण भी समय-समय पर विभिन्न रूप से रहा है। एक समय, व्यक्तिगत जीवन तथा दरबारी ठाठ के वर्णनों को ही प्राधान्यता दी जाती थी

जिससे लेखकों का ध्यान उन्हीं साधनों पर केन्द्रित रहता था, जिनमें इनका वर्णन हो। काव्य कृतियों में, जिनमें प्रसंगवश राजाओं के वर्णन मिलते हैं, प्राधान्यता व्यक्तिविशेष को दी गई है और उन विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए काव्य लिखने की शैली को प्रधान माध्यम चुना गया है, न कि इतिहास लिखने की शैली को। पृथ्वीराजरासो इसका बहुत बड़ा प्रमाण है। जितना बृहद् कलेवर इस काव्य का है उतनी ऐतिहासिक सामग्री उसमें नहीं मिलती और न उससे इतने ऐतिहासिक तथ्य ही प्राप्त किये जा सकते हैं। शिलालेखों के लिखने में भी आश्रित कवियों ने इतिहास को गौण बना कर काव्य को प्रधान विषय चुना। जब यहां ख्यातों के द्वारा ऐतिहासिक वर्णन लिखने का प्रचलन रहा तब लोक-वार्ताओं को प्राधान्यता दी गई और काल-क्रम की उपेक्षा की गई। इसीलिए इन ख्यातों में तिथि-क्रम और संख्या के सम्बन्ध में अनेक अशुद्धियां मिलती हैं। जहां तक फारसी तवारीखों का प्रश्न है वे बहुधा एकपक्षीय दिखाई देती हैं जिनमें स्थानीय शासकों की पराजय और मुस्लिम सुलतानों और सम्राटों की पराजयों को भी विजय अंकित किया गया है।

जब हमारे यहाँ की ऐतिहासिक सामग्री की यह स्थिति थी तो मुहणोत नैणसी ने इधर-उधर के बिखरे हुए साधनों को जुटाया और अपनी एक ख्यात तैयार की जो राजस्थान की लोकवार्ताओं तथा तिथिक्रमों के उल्लेखों को ऐतिहासिक क्रम में सम्बद्ध करती है। परन्तु कर्नल टॉड का प्रयास विशेष श्लाघनीय है जिसने प्राचीन ग्रन्थों, शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, ख्यातों और वंशावलियों के संग्रह और अध्ययन के आधार पर 'एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान' नामी अपने सुप्रसिद्ध और विद्वत्तापूर्ण इतिहास की रचना की। अपना स्थानीय भाषा सम्बन्धी ज्ञान अधूरा होने से तथा सभी प्रकार की सामग्री का उपयोग न किये जाने से उसके इतिहास में कुछ अशुद्धियां रह गईं। भावुकता से उसने कई राजाओं की उपलब्धियों के वर्णनों को, जिन्हें भाटों की पोथियों ने अतिशयोक्तिपूर्ण दिया गया था, वैसे ही मान लिया। अनेक अनिश्चित दन्तकथाओं को अपने इतिहास में स्थान देकर वह अपने इतिहास को दोष रहित न बना सका। फिर भी टॉड का यह प्रथम प्रयास महत्त्वपूर्ण था। उसने राजस्थान के इतिहास को एक गति प्रदान की। उसके पदचिह्नों पर चल कर तथा उसमें नई शोध को स्थान देकर कविराज श्यामलदास तथा डॉ० ओझा ने यहां का सम्मार्जित इतिहास लिखा जो क्रमशः वीर विनोद तथा राजपूताने के इतिहास के नाम से विख्यात हैं।

परन्तु इन सभी गतिविधियों में राजस्थान का इतिहास विविध रियासतों तथा उनके शासकों को केन्द्रित कर प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं सभी ऐतिहासिक सामग्रियों का संतुलित उपयोग का अभाव भी दिखाई देता है। इनमें लोक-जीवन, भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरुत्थान की विवेचना का अभाव है। इस कमी की पूर्ति तभी हो सकती है जब अथक परिश्रम तथा अध्यवसाय

से उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री को जुटाया जाय और उनके सामूहिक अध्ययन तथा विश्लेषण के द्वारा अतीत की संस्कृति, कला, सभ्यता आदि की प्रवृत्तियों पर नया प्रकाश डाला जाय। उस लुप्तप्राय साधन को, जो निजी सम्पत्ति के रूप में उपेक्षावृत्ति से पड़ा हुआ है, पुनर्जीवित किया जाय, और उसके आधार से राजस्थान के इतिहास के कलेवर को संवारा जाय। ऐसी स्थिति में हम यहाँ के विशुद्ध इतिहास का निर्माण करने पाएँगे।

सामग्री का वर्गीकरण :—

जिन साधनों का हमने ऊपर की पंक्तियों में संकेत किया है उन्हें मोटे तौर पर चार भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) पुरातात्विक
(ब) पुरालेख
(स) ऐतिहासिक साहित्य।
(द) स्थापत्य, चित्रकला, नक्षत्रकला के प्रतीक आदि।
(य) वर्तमान कालीन प्रकाशित ग्रन्थ, पत्र, पत्रिकाएँ, रिपोर्ट आदि।

पुरातात्विक सामग्री को भी सुविधा के लिए अभिलेख, दान-पत्र, मूर्तिलेख, मुद्राएँ आदि में विभाजित किया जाता है।

पुरालेख के अन्तर्गत हिन्दी, राजस्थानी और अंग्रेजी में लिखित वह सामग्री मिलती है जो पत्रों, वहियों, पट्टों, फाइलों, फरमानों आदि के रूप में उपलब्ध है।

ऐतिहासिक साहित्य में कई भाषाओं में काव्य साहित्य, ऐतिहासिक ग्रन्थ, तवारीखों तथा यात्रियों के वर्णन सम्मिलित हैं।

कला में हम भित्तिचित्र, पट, तसवीरें तथा चित्रित ग्रन्थों को समावेशित करते हैं। स्थापत्य में नगर, भवन, किले आदि हैं तो तक्षण-कला में मन्दिरों से या स्तम्भों आदि से प्राप्त मूर्तियाँ सम्मिलित हैं।

वर्तमान कालीन प्रकाशित ग्रन्थ लगभग ऊपर दी गई सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं जिनमें पत्र, पत्रिकाएँ भी सम्मिलित हैं। इस साधन का अंग गजेटियर्स, रिपोर्टें आदि भी हैं जो इतिहास के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

प्रस्तुत खण्ड में हम पुरातात्विक साधनों की ही विवेचना करेंगे और देखेंगे कि इनका ऐतिहासिक महत्त्व कितना है। सामग्री के चयन में, विशेपरूप से शिलालेखों में, मुख्य रूप से उन शिलालेखों को लिया गया है जो उपलब्ध हो सके हैं और महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कुछ ही पंक्तियाँ दी गई हैं, क्योंकि बड़े शिलालेखों के सभी अवतरण स्थानाभाव से देना संभव नहीं था। प्रस्तुत ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इन साधनों के आधार ग्रन्थों को भी यथास्थान दे दिया गया है जिससे पाठक मूल ग्रन्थों को भी देख सकें। लेखक सूचना केन्द्र, जयपुर के निदेशक

एवं उपनिदेशक का आभारी है जिन्होंने इस ग्रन्थ को लिखने का अवसर दिया। आशा है पाठक इसमें होने वाली भूलों को सुधार कर पढ़ेंगे।

जयपुर-१-१२-७२

डॉ० गोपीनाथ शर्मा

पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री

प्राक्कथन—पुरातत्त्व-सम्बन्धी सामग्री का राजस्थान के इतिहास के निर्माण में एक बड़ा स्थान है। इसके अन्तर्गत खोजों और खनन से मिलने वाली ऐतिहासिक सामग्री है। यह ठीक है कि ऐसी सामग्री का राजनैतिक इतिहास से सहज और सीधा सम्बन्ध नहीं है परन्तु इमारतें, भवन, किले, राजप्रासाद, घर, बस्तियां भग्नावशेष, मुद्राएं, उत्कीर्ण लेख, मूर्तियाँ, स्मारक आदि से हम ऐतिहासिक काल-क्रम का निर्धारण तथा वास्तु और शिल्प शैलियों का वर्गीकरण कर सकते हैं। जन-जीवन की पूरी झाँकी पुरानी बस्तियों तथा अन्य प्रतीकों से प्रस्तुत की जा सकती है। स्मारकों के अध्ययन से न केवल स्थापत्य और मूर्तिकला ही जानी जाती है, अपितु उनसे उस समय के धार्मिक विश्वास, पूजा-पद्धति और सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल के अनेक भग्नावशेष तत्कालीन अवस्था का चित्र हमारे सन्मुख उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार सिक्के, शिलालेख एवं दान-पत्र भी अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं एवं स्थिति के साक्षी हैं। इस प्रकार की सामग्री का हम अध्ययन निम्नलिखित भागों में करते हैं:—(१) भग्नावशेष खनन और उससे निकलने वाली सामग्री (२) सिक्के और (३) शिलालेख तथा ताम्र-पत्र।

(१) भग्नावशेष

राजस्थान में मिलने वाले भग्नावशेष यहाँ के इतिहास के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं। प्राचीन काल के तिथि-क्रम तथा जन-जीवन के विविध पक्ष भग्नावशेषों के स्तरों के अध्ययन से निर्धारित होते हैं। इनमें कालीबंगा, आहड़, नागौर, गिलूंड, सांभर, रेड, बैराट् आदि के खण्डहर बड़े महत्त्व के हैं। इनके उत्खनन से प्राप्त सामग्री हमें विविध और विभिन्न निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है।

कालीबंगा के उत्खनन से प्राप्त सामग्री :[1]

राजस्थान की सबसे अधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण सभ्यता दृषद्वती और

---

१. इण्डियन आर्कियोलोजी, १९६०–६१, पृ० ३१–३२, १९६२–६३, पृ० २०–३१; आर्कियोलोजिकल रिमेन्स, मोनुमेन्ट्स एण्ड म्यूजियम, भा० २, पृ० १८–१९; वीलर, इण्डियन सिविलिजेशन, पृ० ९६; रिसर्चर, भा० १, समर अङ्क, पृ० ३७; रिसर्चर, भाग० २, पृ० ३६; प्रोसीडिंग्ज ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,

सरस्वती घाटी में पाई गई है जो हड़प्पा की सभ्यता से भी पुरानी बतलाई जाती है। इन नदियों के कांठे पर कई ऐसे स्थान हैं जो उस युग के प्रतीक हैं, जिनमें कालीबंगा बड़ा प्रसिद्ध है। आज से चार-पांच हजार वर्ष पूर्व यहाँ उदीयमान सभ्यता विकसित हुई जिसके प्रमाण यहाँ से खुदाई से प्राप्त अनेक वस्तुयें हैं। अभाग्यवश कालान्तर में ऐसे समृद्ध सभ्यता के केन्द्र का ह्रास हो गया। सम्भवतः भू-चाल से या कच्छ के रन के रेत से भर जाने से ऐसा हुआ हो। जो समुद्री हवाएँ पहले इस ओर से नमी लाती थीं और वर्षा का कारण बनती थी वे ही हवाएँ सूखी चलने लगीं और कालान्तर में यह भू-भाग रेत का समुद्र बन गया। सरस्वती नदी के अन्तर्ध्यान होने के उल्लेख पुराणों में मिलते हैं जो इस अवस्था के द्योतक हैं।

इस सभ्यता की जानकारी के लिए यहाँ कई सोपानों में खुदाई का काम पुरातत्व विभाग, भारत सरकार द्वारा किया गया जिसको श्री बी. बी. लाल के निर्देशन में बी. के. थापड़, श्री एम. डी. खरे, के. एम. श्रीवास्तव तथा एस. पी. जैन आदि के सहयोग से सम्पादित किया गया। घग्घर नदी के जिसका प्राचीन नाम सरस्वती था, दो टीलों को चुना गया जो आसपास की भूमि में लगभग १२ मीटर की ऊँचाई पर थे और जिनका क्षेत्र ½ किलोमीटर के लगभग था। इनमें गहरी एवं चौड़ाई में खुदाई की गई जिससे कई पक्षों पर अच्छा प्रकाश पड़ा।

नगर निर्माण—यहाँ के एक टीले की खुदाई से कालीबंगा में प्राचीन नगर होने के प्रमाण मिलते हैं जिसको पांच स्थरों में देखा जाता है। इनमें से तीन ऐसे स्थर दिखाई देते हैं जिन्हें पुनः निर्मित किया गया हो। प्रथम एवं द्वितीय काल के स्थरों को हड़प्पा पूर्व का आँका गया है। मकानों के बनाने की दिशा इस प्रकार दिखाई देती है जिसमें मार्ग एवं गलियां उत्तर—दक्षिण एवं पूर्व—पश्चिम को जाती हैं। मकानों को मिट्टी की ईंटों (३० × १५ × ७½ से. मी.) से बनाया जाता था और उन पर मिट्टी का थर लगाया जाता था। साधारणतः मकानों में दालान, ४–५ बड़े कमरे एवं कुछ छोटे कमरे भी रहते थे। मकानों के आगे चबूतरे रहते थे और कमरों की फर्श को चिकनी मिट्टी से लीप दिया जाता था। कहीं-कहीं पकाई गई ईंटों के फर्श भी दिखाई देते हैं। गंदे पानी को निकालने के विशेष प्रकार के गोलाकार भाण्ड होते थे जिन्हें एक दूसरे पर लगाकर रखा जाता था जिससे चारों ओर पानी न फैल कर जमीन में सोख जाए। मकानों की छतें भी मिट्टी की बनती थीं जिनको लकड़ी की वल्लियों से बनाया जाता था। छतों को कवेलू से नहीं ढका जाता था। मकानों में चूल्हों के भी अवशेष मिले हैं जिन्हें सतह के ऊपर और नीचे बनाया जाता था। नीचे वाले चूल्हे के लिये ईंधन देने और धुँआँ निकालने के विशेष प्रकार के छिद्र रखे जाते थे। मार्ग की चौड़ाई ५ एवं ५½ मी. दिखाई देती है। सड़कों को पक्का

१९५४, पृ० १९; राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० ३९–४०; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, भा० १, पृ० १६–१७।

बनाने की भी पद्धति का प्रचार भी यहाँ होना दिखाई देता है। छत पर जाने की सीढ़ियां भी यहाँ देखी गई हैं। पक्की ईंटों का प्रयोग कुओं एवं नालियों में किया जाता था ऐसा कई अवशेषों से प्रमाणित होता है।

दूसरा टीला कुछ छोटा है जिसमें एक निर्माण करने के लिए मिट्टी की चोरस ऊँचाई दिखाई देती है जिसके चारों ओर चौड़ी दीवारें एवं खाइयाँ बनाई गई थीं। इसमें बड़े-बड़े कमरे, एक कुआ तथा दालान है जिससे अनुमानित होता है कि बस्ती के ठीक निकट एक दुर्ग की व्यवस्था थी जो नगर व्यवस्था का केन्द्रीय स्थान था या सुरक्षा का साधन था। संभवतः सरस्वती नदी के क्षेत्र की सत्ता का यह प्रमुख केन्द्र हो।

बर्तन—कालीबंगा के उत्खनन से मिट्टी के कई बर्तन और उनके अवशेष मिले हैं जिनकी पाँच संज्ञा की जाती है। यहाँ के बर्तनों की विशेषता में उनका पतला एवं हल्का होना पाया जाता है। उन्हें चाक से बनाया जाता था फिर भी उनको भोंडे ढंग से बनाया जाना स्पष्ट है। इन का रंग लाल है परन्तु ऊपर और मध्य भाग में काली एवं सफेद रंग की रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन पर अलंकरण चौकोर, गोल, जालीदार, वृत्ताकार, घुमावदार, त्रिकोण एवं समानान्तर रेखाओं से किया जाता था। फूल, पत्ती, चौपड़, पक्षी, खजूर आदि का अलंकरण भी इन पर रहता था। बर्तनों में घड़े, प्याले, लोटे, हांडियाँ, रकाबियाँ, सरावलें, पेंदेवाले ढक्कन व लोटे भी होते थे। मछली, कछुए, बतख, हिरन आदि की आकृतियाँ भी इन पर बनाई जाती थीं।

अन्य वस्तुएं :

मकानों के अवशेषों व बर्तनों के अतिरिक्त यहाँ कई अन्य प्रकार की वस्तुएँ भी उपलब्ध हुई हैं जिनमें खिलौने, पशुओं के एवं पक्षियों के स्वरूप, मिट्टी की मुहरें, चूड़ियाँ, तोल, तांबे की चूड़ियाँ, चाकू, तांबे के औजार, काच के मणिये आदि हैं। मिट्टी के भान्डों पर एवं मुहरों पर अंकित लिपि सैन्धव लिपि के तुल्य है जिसे पढ़ा नहीं जा सका है।

आहड़ का उत्खनन और सामग्री[२]

आहड़ उदयपुर के निकट एक कस्बा है जिसकी संस्कृति लगभग चार हजार वर्ष प्राचीन है। यहाँ प्राचीन प्रस्थर युगीय मानव रहता था। इस स्थिति का पता आहड़ के दो टीलों से लगने पाया जिनकी खुदाई राजस्थान सरकार द्वारा तथा डॉ० संकालिया, पूना विश्वविद्यालय के द्वारा करवाई गई। आहड़ का दूसरा नाम ताम्रवती नगरी भी मिलता है जिससे यहाँ तांबे के औजारों के बनने का केन्द्र प्रमाणित होता है। १०–११ शताब्दी में इसे आघाटपुर या आघाट दुर्ग के नाम से जाना गया था। बोलचाल की भाषा में इसे धूलकोट भी कहते हैं। ये धूलकोट प्राचीन

२ एक्सकेवेशन ऐट आहड़, संकालिया, पूना १९६९ के आधार पर।

नगरी के अवशेष को आच्छादित किये हुऐ हैं जिनमें से बड़ा धूलकोट १५०० फीट लंबा और लगभग ४५ फुट ऊँचा है इसके बारे में जानकारी के लिए कई खाइयाँ खोदी गईं जिनसे कई उपकरण उपलब्ध हुए हैं। उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ की बस्तियों के कई स्तर भी मिले हैं। पहले स्तर में कुछ मिट्टी की दीवारें, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े तथा पत्थर के ढेर प्राप्त हुए हैं। दूसरे स्तर की बस्ती से जो प्रथम स्थर ही पर बसी थी, कुछ कूट कर तैयार की गई दीवारें और मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले है। तीसरी बस्ती में कुछ चित्रित बर्तन और उनका घरों में प्रयोग होना प्रमाणित होता है। चौथी बस्ती के स्तर में एक बर्तन से दो तांबे की कुल्हाड़ियां मिली हैं जो बड़े महत्त्व की हैं। इस प्रकार इन स्तरों पर उत्तरोत्तर चार और बस्तियों के स्तर मिलते हैं जिनमें मकान बनाने की पद्धति, बर्तन बनाने की विधि आदि में परिवर्तन दिखाई देता है। ये सभी आठ स्तर एक दूसरे-स्तर पर बनते और बिगड़ते गये जो हमें आहड़ की ऐतिहासिकता समझने में बड़े सहायक हैं। ये समूची बस्तियां आहड़ नदी की सभ्यता कही जा सकती हैं। इस सभ्यता को हम कई पहलुओं से जान सकते हैं जो इसकी साधन सामग्री है।

निवास स्थान :

आहड़ की खुदाई में कई घरों की स्थिति का पता चलता है। सबसे प्रथम बस्ती नदी के ऊपर के भाग की भूमि पर बसी थी जिस पर उत्तरोत्तर बस्तियाँ बनती चली गईं। यहाँ मुलायम काले पत्थरों से मकान बनाये गये थे। ये मकान छोटे व बड़े बने थे। नदी के तट से लाई गई मिट्टी से मकानों को बनाया जाता था। यहां बड़े कमरों की लम्बाई चौड़ाई ३३ × २० फीट तक देखी गई है। इनकी छतें वांसों से ढकी जाती थीं। मकानों के फर्श को काली मिट्टी के साथ नदी की बालू को मिला कर बनाया जाता था। कुछ मकानों में २ या ३ चूल्हे और एक मकान में तो ६ तक चूल्हों की संख्या देखी गई। इससे अनुमानित है कि आहड़ में बड़े परिवारों के भोजन की व्यवस्था थी या संभवत: सार्वजनिक भोजन बनाने की भी व्यवस्था यहां की जाती थी। यहाँ कुछ नाज रखने के बड़े भाण्ड भी गड़े हुए मिले हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में 'गोरे' व 'कोठे' कहा जाता है। इस व्यवस्था से प्राचीन आहड़ की समृद्धि प्रमाणित होती है।

मुद्राएं व मुहरें :

आहड़ के द्वितीय काल वाली खुदाई से ६ तांबे की मुद्राएँ और तीन मुहरें प्राप्त हुई हैं। इनमें कुछ मुद्राएँ अस्पष्ट है। एक मुद्रा में त्रिशूल खुदा हुआ दिखाई देता है और दूसरी में खड़ा हुआ अपोलो है जिसके हाथों में तीर व पीछे तरकस है। इस मुद्रा के किनारे यूनानी भाषा में कुछ लिखा हुआ है जिससे इसका काल दूसरी सदी ईसा पूर्व आंका जाता है। यहाँ से मिलने वाली तीन मुहरों पर 'विहितभ विस', 'पलितसा' तथा 'तातीय तोम सन' अंकित हैं, जिनका अर्थ स्पष्ट तो नहीं है परन्तु

लिपि से यह अनुमानित किया जाता है कि ये सामग्री आहड़ की तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम सदी ईसा की स्थिति पर प्रकाश डालने में सहायक है।

मध्यपाषाण-युग के उपकरण :

आहड़ के आसपास पत्थरों की बहुतायत से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां पत्थरों के शस्त्रों के बनाने का बहुत बड़ा केन्द्र रहा होगा। परन्तु उत्खनन की सामग्री से यहाँ मध्यपाषाणयुगीय उपकरणों के तुल्य मुख्य रूप से रामसँकाश्म (Chert) एवं स्फटिक (Quartz) के थोड़े ही उपकरण प्राप्त हुए हैं। यहां के कई मकानों की दीवारों की रक्षा के लिए स्फटिक पत्थरों के बड़े २ टुकड़े काम में लाये जाते थे और इन्हीं से पत्थर के औजार भी बनाये जाते थे। यहाँ की सभ्यता के प्रथम चरण से सम्बन्ध रखने वाले छीलने, छेद करने तथा काटने के विविध आकार के पत्थर के उपकरण देखे गये हैं। कुछ ऐसे औजार चतुष्कोण गोल तथा बेडौल आकृति के मिले जो आकार में छोटे हैं परन्तु जिनके एक या दो किनारे बड़े तेज दिखाई देते हैं। चारों ओर उभरे तथा पैने किनारों के उपकरण भी यहाँ मिले हैं जो चमड़े या हड्डी छीलने के प्रयोग में लाये जाते हों। इसके अतिरिक्त यहां से प्राप्त सामग्री में पत्थर के गोले, शिलाएँ, गदाएँ, ओखलियाँ आदि हैं।

आहड़ से तांबे की छ: कुल्हाड़ियाँ, अंगूठियाँ, चूड़ियाँ आदि भी मिली हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि तांबे की खानों के निकट होने से यहाँ इस धातु के उपकरण लकड़ी काटने, छीलने, शिकार करने आदि कामों के लिए विशेपरूप से काम में लाए जाते थे। बड़े पैमाने पर यदि इस स्थल का उत्खनन किया जाए तो इस धातु के अन्य उपकरण भी उपलब्ध हो सकते हैं। ये स्थिति तभी इस बात पर पूरा प्रकाश डाल सकती है कि आखिर आहड़ से अधिक संख्या में पत्थर के औजार क्यों उपलब्ध नहीं हो सके। तांबे की खानों के बीच में आहड़ का होना इस बात की पुष्टि करता है कि यह स्थान तांबे के औजार बनाने का अवश्य ही एक बहुत बड़ा केन्द्र रहा हो। यहां से मिलने वाले ७९ लोहे के उपकरण भी मिले हैं जिनका उपयोग कुल्हाड़ी, चाकू, कील, अंगूठियों की तरह होता था।

मृदभाण्ड—ऐतिहासिक युग की सामग्री में मृद्भाण्डों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आहड़ में जितनी आभूपणों, तथा औजारों से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है उतनी मृद्भाण्ड से सम्बन्धित सामग्री मिली है। यह सामग्री अपनी विविधता तथा प्रचुरता के विचार से बड़े महत्व की है। आहड़ का कुम्भकार इस बात में निपुण दिखाई देता है कि बिना चित्रांकन के भी मिट्टी के बर्तन सुन्दर बनाये जा सकते हैं। काट कर, छील कर तथा उभार कर इन बर्तनों को आकर्षक बनाया जाता था और ऊपरी भागों पर पतली भीतर गढ़ी हुई रेखा बना दी जाती थी जिससे भाण्ड में एक स्वाभाविक अलंकरण उत्पन्न हो जाता था।

यहाँ से मिलने वाले बर्तनों की संज्ञा लाल व भूरे भाण्डों की है। इन बर्तनों

में दैनिक कामों में आने वाले बर्तन सभी आकार के मिलते हैं जिनमें घड़े, कटोरियाँ, रकाबियाँ, प्याले, मटके, कुण्डे, भण्डार के कलश आदि हैं। यहाँ से मिलने वाले काले व लाल संज्ञा के बर्तनों पर सफेदा लगा लिया जाता था और जब बर्तन पक जाता था तो उस रंग की हलकी रेखा अपने आप में बड़ी पुख्ता बन जाती थी। गोलाकार तथा तंग मुँह वाले घड़े, बिना स्टेण्ड तथा स्टेण्ड वाली रकाबियाँ, ढक्कन तथा बिना ढक्कन के कटोरे, लोटे के आकार के भाण्ड, बर्तनों के रखने की इन्डोनियां, उभरे अलंकरण के घड़े आदि भाण्डों के अनेक आकार व रूप यहाँ उपलब्ध होते हैं जिससे आहड़ निवासियों की रुचि-वैचित्र्य का पता चलता है। साधारणतया ये मिट्टी के बर्तन हाथ से बनते थे, परन्तु चाक का भी प्रयोग इनके बनाने में किया जाता था। कई बर्तनों का ऊपरी भाग चाक से बनाया जाता था और पैंदे के भाग को हाथ से बनाकर उसके साथ जोड़ दिया जाता था। अलंकरण में छेद करना, रंगना, उभार या गड़ाव देना सम्मिलित था। लड़ी वाली रेखाएं, गोलाकार आकृतियां तथा चक्कर वाली रेखाएं अलंकरण में प्रयुक्त होती थीं और ऐसा अलंकरण भाण्डों के ऊपर के भाग तक सीमित था।

मणियाँ

मूल्यवान पत्थरों जैसे गोमेद, स्फटिक आदि से आहड़ निवासी गोल मणियाँ बनाते थे। ऐसे मणियों के साथ काँच, पक्की मिट्टी, सीप और हड्डी के गोलाकार छेद वाले अंड भी लगाये जाते थे। इनको सुरक्षित करने के लिए मिट्टी के बर्तनों या टोकरियों का प्रयोग किया जाता था। इनका उपयोग आभूषण बनाने तथा ताबीज की तरह गले में लटकाने के लिए किया जाता था। इनके ऊपर सजावट का काम भी रहता था। आकार में ये गोल, चपटे, चतुष्कोण तथा षट्कोण होते थे। ये सामग्री आहड़ सभ्यता के दूसरे चरण की मालूम होती है।

अन्य उपकरण—

आहड़ के ऐतिहासिक काल के अन्य उपकरणों में चमड़े के टुकड़े, मिट्टी के पूजा के पात्र, चूड़ियाँ तथा खिलौनों का भी अपना स्थान है। पूजा के पात्र भी विविध आकार के देखे गये हैं जिनके किनारे ऊँचे या नीचे हुआ करते थे और किसी-किसी में दीपक की व्यवस्था भी रहती थी। खिलौनों में बैल, घोड़े, हाथी, चक्र आदि मुख्य हैं।

इन सभी उपकरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि आहड़ की एक सभ्यता थी जिसका समृद्ध काल १९०० ई. पू. से १२०० ई. पू. आँका जा सकता है। इस युग का मानव यहाँ कच्चे मिट्टी के ढलवां छत के मकान बनाकर रहता था। वह विशेषरूप से मांसाहारी था। परन्तु ऐसा भी दिखाई देता है कि वह गेहूँ का आगे चलकर प्रयोग करने लगा। यहां पत्थर, तांबा और लोहे एवं हड्डी औजारों तथा आभूषणों के बनाने में काम में लिये जाते थे। मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनते थे।

तर-धातु युग का यह स्थान तांबे के औजार बनाने का एक बड़ा केन्द्र रहा हो, जैसाकि उसकी तांबे की खानों के बीच में होने से तथा यहां से प्राप्त अनेक उपकरणों से प्रमाणित होता है।

बागोर का उत्खनन और सामग्री[3]

बागोर मेवाड़ के अन्तर्गत भीलवाड़ा जिले में एक कस्बा है जो भीलवाड़ा से लगभग पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर है। यह कस्बा बनास की एक सहायक नदी कोठारी के किनारे पर बसा हुआ है। इस नदी के तट पर यत्र-तत्र छोटे-मोटे रेतीले टीले मिलते हैं जो प्रागैतिहासिक स्थल के प्रतीक हैं। इन टीलों में कस्बे के पूर्व की ओर स्थित टीले का उत्खनन कार्य १९६७-६८, १९६८-६९ में डा० वीरेन्द्रनाथ मिश्र, डा० एल. एस. लेशनि एवं पूना विश्वविद्यालय और राजस्थान पुरातत्व विभाग के सहयोग से सम्पादित किया गया। यह टीला कई वर्ग एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है तथा नदी की सतह से लगभग दस मीटर ऊँचा है। इसमें कई खाइयां २०×८ मीटर, ६×४ मीटर, २०×६ आदि लम्बाई चौड़ाई के क्षेत्र में इस अवधि में खोदी गईं। फलस्वरूप इनसे प्रस्तर उपकरण ताम्र उपकरण, लौह उपकरण, मृद भाण्डों के टुकड़े, आभूषण, पशुओं की हड्डियां, फर्श, दीवारें गृहों के अवशेष आदि उपलब्ध हुए हैं। ये उपकरण तथा सामग्री विभिन्न काल की स्थानीय संस्कृति तथा जीवन के स्तर को नापने के अच्छे आधार हैं।

प्रस्तरीय उपकरण—ये उपकरण काल-विभाजन के क्रम से तीन चरण में विभाजित किये गये हैं। प्रथम काल ३००० वर्ष पूर्व से लेकर २००० वर्ष, द्वितीय ईसा से पूर्व २००० वर्ष से लेकर ईसा से पूर्व ५०० वर्ष तथा तृतीय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसवी सन् के प्रारम्भ तक है। इन उपकरणों को स्फटिक (Quartz) तथा रामसैकाश्म (Chert) पत्थरों से बनाया जाता था और इनसे मुख्यत: आंतरक, पृथुक (Flake) फलक (Blade) और अपखण्ड (Chip) बनाये जाते थे। ये सामग्री पुरातत्व की शब्दावली में 'लघुपाषाणोपकरण' (Microlith) कहलाती है और पाषाणकालीन उपकरणों की अपेक्षा आकार-प्राकार में छोटी है। इनकी लम्बाई एक सेन्टीमीटर से लेकर चार सेन्टीमीटर तक पाई गई है। इनका स्वरूप या तो रम्भाकार है या ज्यामिति आकृति वाला है। इसमें नोकदार तीक्ष्ण धार वाले फलक (Blade) कुंठित फलक, तिरछे फलक, कंटक फलक, त्रिभुज फलक आदि बनाये जाते थे। इन्हें सम्भवत: किसी लकड़ी या हड्डी के बड़े टुकड़ों पर लगा दिया जाता था। इनको मछली मारने, जंगली जानवरों की शिकार करने, छीलने, छेद करने आदि कार्यों के लिए उपयोग में लाया जाता था। यहाँ से मिलने वाले हथौड़े, गोफनों की गोलियां, चपटी व गोल शिलाएँ, छेद वाले पत्थर आदि यहाँ के निवासियों के

---

३. डॉ० मिश्रा : बागोर में उत्खनन का तृतीय वर्ष, प्रताप-शोध-प्रतिष्ठान पत्रिका, उदयपुर के आधार पर।

आखेटी जीवन, युद्ध-प्रियता तथा खेती की प्रवृत्ति के द्योतक हैं।

इन उपकरणों से यहाँ के निवासियों का मुख्य उद्योग—आखेट करना एवं कन्द-मूल एकत्रित करने की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इनसे स्थानीय आखेट-जीवी उपकरण-निर्माता समूहों का हमें ज्ञान होता था। सम्भवतः ये लोग अपने तौर से ही इन उपकरणों को बनाते थे और वे ही इनका उपयोग करते थे। इन स्थलों में मिलने वाली अनावश्यक सामग्री से अनुमान लगाया जाता है कि बागोर अपने प्रथम चरण में एक प्रकार से पाषाण उपकरणों का औद्योगिक स्थल था। छेद वाले चपटे पत्थरों से या तो वे गदा का प्रयोग करते थे या उनमें लकड़ी लगाकर उनका हल की तरह प्रयोग करते थे। इन उपकरणों के अध्ययन से बागोर का आदि निवासी या तो घुमक्कड़ हो सकता है अथवा आखेट या कन्द-मूल के तलाश में पर्यटक माना जा सकता है। उत्खनन में कहीं घर या फर्श की उपलब्धि यहाँ के प्रागैतिहासिक काल में न होना भी इस स्थिति का पोषक है।

ताम्र उपकरण

बागोर उत्खनन के द्वितीय चरण, अर्थात् ईसा से पूर्व २००० वर्ष से लेकर ईसा से पूर्व ५०० वर्ष तक के काल के अत्र तक केवल पाँच ताम्र उपकरण उपलब्ध हुए हैं। इनमें से एक १०.५ सेन्टीमीटर लम्बी छेद वाली सुई है, दूसरा कुन्ताग्र (spearhead) है और तीसरा उपकरण त्रिभुजाकार शस्त्र-सा है जिसमें दो-दो छेद हैं। ये उपकरण बागोर निवासियों की पहले काल की अपेक्षा अच्छी स्थिति के द्योतक हैं। ऐसा भी अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल में बागोर की बस्ति में स्थायित्व आ गया था। इसकी पुष्टि इस काल के मकानों के अवशेष करते हैं।

अस्थियाँ

बागोर उत्खनन में अनेक अस्थियों के टुकड़े भी मिले हैं इनमें कुछ तो इतने छोटे हैं कि उनसे यह अनुमान लगाना कठिन है कि वे किन-किन पशुओं के हैं। परन्तु द्वितीय काल की कुछ हड्डियों के विषय में श्रीमती डी० आर० शाह का मत है कि वे अस्थियाँ गाय, बैल, मृग, चीतल, बारासिंघा, सुअर, गीदड़, कछुआ आदि की हैं। यदि यह अनुमान ठीक है तो यह मानना उपयुक्त होगा कि उस समय का मानव मांसाहारी भी था और कृषि भी करना सीख चुका था। कुछ जली हुई हड्डियां माँस के भुने जाने का प्रमाण हैं तथा हड्डियों का तृतीय चरण में कम होना कृषि की प्राधान्यता बढ़ाना प्रमाणित करता है।

बागोर उत्खनन में कुल ५ कंकाल मिले हैं जो यहाँ की संस्कृति के तीनों चरणों पर शव-निवर्तन पद्धति पर प्रकाश डालते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शवों के दक्षिण पूर्व, उत्तर-पश्चिम दिशा में लिटाया जाता था और टाँगे मोड़ दी जाती थी। तृतीय चरण में शव की टाँगे सीधी रखी जाती थीं और शव को उत्तर-दक्षिण में लिटाया जाता था। प्रायः सभी कंकालों के देखने से प्रतीत होता है कि शव को घर में या

उसके निकट ही गाड़ दिया जाता था और उसको मोती के हार, ताम्बे का लटकन, मृद्‌माण्ड, मांस आदि उपकरणों सहित दफनाया जाता था। ये स्थिति मृत निवर्तन के सम्वन्ध में हमें अन्य देशों में भी प्रागैतिहासिक काल में मिलती है। खाद्य पदार्थ और पानी हाथ के पास होते थे और अन्य मृत्‌-भाण्ड आगे पीछे रखे जाते थे। तृतीय काल के एक कंकाल पर ईंटों की दीवार भी यहाँ मिली है जो समाधि वनाने की द्योतक है।

मिट्टी के वर्तन

ये उपकरण द्वितीय व तृतीय चरण की वागोर की सभ्यता के प्रतीक हैं। द्वितीय चरण के मिट्टी के वर्तनों के अवशेषों का रंग मटमैला है और वे कुछ मोटे और जल्दी टूटने वाले हैं। इनकी प्रचुरता इस वात का प्रमाण है कि वागोर निवासी कृषि का प्रयोग जान् गया था। ये वर्तन शरावले, तश्तरियों, कटोरों, लोटों, थालियों तथा तंग मुँह के घड़ों और वोतलों के रूप में मिलते हैं। अब मानव के खाद्य पदार्थों व संग्रह के उपकरणों में विविधता आ गई थी और सभ्यता का विकास हो गया था। ये भाण्ड रेखा वाले तो होते थे परन्तु इनमें अलंकरण का अभाव था। ऊपर से लाल रंग इन पर शोभा के लिए लगा दिया जाता था परन्तु भीतर का भाग काला व कच्चा रहता था। ये भाण्ड हाथ से वनाये जाते थे।

तृतीय चरण के भाण्ड पतले व टिकाऊ होते थे तथा इनको चाक से वनाया जाता था। इनमें रंग व रेखाएं तो होती थी परन्तु अलङ्करण की प्रचुरता अव तक इनमें नहीं आने पाई थी।

आभूषण

वागोर सभ्यता में आभूषणों का प्रयोग प्रथम सभ्यता के चरण से ही दिखाई देता है। ये आभूषण मोतियों के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। हार तथा कान के लटकनों में मोतियों का प्रचुर प्रयोग होता था जो पाल्पश्म (agate), इन्द्रगोप (Carnelian), तथा काँच के वनते थे। इनको धागे में पिरोकर पहिना जाता था। ताम्रपट भी हार के लटकन के काम करते थे जैसाकि कुछ यहाँ से प्राप्त उपकरणों से सिद्ध है। लाल व पीले गेरू के जो अनेक टुकड़े मिले हैं वे भी इस वात के साक्षी हैं कि वागोर निवासी अलंकरण के लिए इन रंगों को काम में लाते हों।

गृह के अवशेष

वागोर संस्कृति के द्योतक कुछ घरों के अवशेष भी हैं जो द्वितीय तथा तृतीय चरण के काल के हैं। घरों को नदी के चट्टानों के पत्थरों को तोड़ कर वनाया जाता था। इन्हें चपटे और चौड़े दीवारों में लगाया जाता था। इनके साथ नदी के गोल पत्थर भी लगाये जाते थे। घरों के फर्श को पत्थरों को जमाकर समतल वना दिया जाता था। इन फर्शों पर छोटी-मोटी अनेक हड्डियों के टुकड़े मिलते हैं जिनके साथ पत्थर के हथौड़े भी देखे गये हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यहाँ के निवासी इन

दोनों कालों में अधिकांश माँसाहारी थे। ऐसे घरों के साथ वृत्ताकार पत्थरों के ढेर भी उपलब्ध हुए हैं जो लकड़ी या घास-फूस के कुटीरों के अवशेष के बचे हुए भाग हैं। इन्हीं घरों में मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े, लोह तथा ताम्बे के उपकरण मिलते हैं, जिनका प्रयोग यहाँ के निवासी करते रहे थे।

रंगमहल का उत्खनन और सामग्री[४]

सरस्वती नदी के मैदान का केन्द्रीय भाग जिसे आजकल घग्घर का मैदान कहते हैं प्राचीनता की दृष्टि से बड़ा सम्पन्न है। ४००० से ३००० ई० पू० से छठी सदी ईसा काल तक ये भाग आजकल की भाँति सूखा और रेतीला न था। इस क्षेत्र में हमेशा बहने वाली नदियाँ तथा इनके तटीय भागों पर घनी बस्तियाँ थीं। वर्षा के प्राचुर्य से इस क्षेत्र में हरियाली भी अधिक थी। ये स्थिति धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। पुरातत्वीय आधार पर ऐसा अनुमानित है कि छठी शताब्दी ई० के मध्य से जो घग्घर क्षेत्र क्रमश: सूख गया और तब से यहां की रहीसही बस्तियाँ भी उजड़ गईं। हनुमानगढ़ के निकट वाली बस्तियाँ जिनमें बडोपोल. मुंडा, डोबेरी, रंगमहल, आदि हैं और जिनके निकट कई टीले हैं, अपनी प्राचीनता के लिए बडे प्रसिद्ध हैं। इस अवस्था को ध्यान में रखते हुए १९५२-५४ ई० में एक स्वीडिश दल ने रंगमहल के टीलों की जो सूरतगढ़ से दो मील उत्तर-पूर्व स्थित हैं, खुदाई की और जिसके फलस्वरूप कई तथ्य हमारे सामने आये जो ऐतिहासिक सामग्री के रूप में बड़े महत्त्व के हैं।

मृद्भाण्ड—रंगमहल की खुदाई में अलग-अलग बिन्दुओं पर खुदाई की गई तथा साँपों, कीड़ों और चूहों के रन्ध्रों द्वारा पहुँचाए गए, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों का परीक्षण भी किया गया। रेत के टीलों की सतहों का भी वर्गीकरण किया गया। इन प्रयोगों के फलस्वरूप रंगमहल में बसने वाली बस्तियों को तीन बार बसने और उजड़ने के संकेत मिले। परन्तु इन तीनों बस्तियों के मृद्भाण्डों में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता सिवाय इसके कि बड़े प्राचीन समय के मृद्भाण्ड मोटे और खुरदरे रहे और इनमें क्रमश: दृढ़ता व चिकनापन एवं अलंकरण बढ़ता गया। यहाँ के मृद्भाण्ड विशेषत: लाल या गुलाबी रंग को लिए हुए दिखाई देते हैं। ये अधिकाँश में चाक से बने होते थे। इनके मध्य वाले व नीचे वाले भाग पर भी बनाने वाला थप्पियाँ मार कर ठीक किया करता था जैसाकि उन पर चाट्ट के चिह्न से प्रमाणित होता है। भीतर के भाग को एक प्रकार के ब्रश अथवा कपड़े से चिकना किया जाता था ऐसा उन पर लगे हुए रेशों के चिह्नों से स्पष्ट है। इन बर्तनों को आग में तपाया जाता था। भोजन बनाने के काम में आने वाले मिट्टी के बर्तन, जिनमें हंडियां, परात, थालियाँ आदि मुख्य हैं, सादे होते थे या उनमें मिट्टी से

४. हन्नारेढ : रंगमहल—दि स्वीडिश आर्कियालोजिकल एक्स्पीडीशन टू इंडिया, १९५२-१९५४ (लूंड, १९५९) के आधार पर।

उभारे हुए अलंकरण होते थे। पानी के काम में आने वाले या दूसरे काम के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले मृद्भाण्ड, विविध आकृति के होते थे। इनके संकड़े मुंह, सुराहीनुमा ऊपरी भाग रेखाओं तथा जाली व विविध आकारों के अलंकरण फूल, पत्ती आदि से लदे रहते थे। इनका पतला होना व चिकना होना एक विशेषता लिए हुए रहता था। कभी-कभी इनमें मिट्टी के उभार द्वारा वनाई गई रेखाएं नख अथवा तीष्ण पदार्थ से काट-काट कर बनाई जाती थीं जो प्राचीन काल की अभि-कल्पों की विविधता के प्रमाण हैं। रंगीन चित्रकारी व उभार वाले वर्तनों में चपटे पैंदे वाले प्याले, संकरे मुंह वाले गोल घड़े तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के शरावक, दीवट, ढक्कन, धूपदानियां, पूजा की थालियां आदि हैं। इस प्रकार के मृद्भाण्डों का सम्वन्ध ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ५वीं छठी शताब्दी ईसा काल तक के अन्य स्थानों के भाण्डों से जोड़ा जा सकता है।

मिट्टी की मूर्तियां

रंगमहल की शिल्पकला के प्रतीकों में मिट्टी की पकी हुई मूर्तियाँ बड़े महत्त्व की हैं। ये मूर्तियाँ मिट्टी के वर्तनों के टुकड़ों के साथ पाई गई हैं जिससे इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि वे उसी युग की प्रतीक हैं जिस युग के मिट्टी के वर्तन हैं। ऐसी मूर्तियों में एक शिष्य और शिक्षक की हैं। भिक्षुणी और भिक्षु की मूर्तियां भी अपने ढंग की अनूठी हैं। इनके वस्त्रों की वनावट में बड़ी स्वाभाविकता दिखाई देती है। यहां से मिलने वाली अन्य पकी हुई मिट्टी की स्त्री, पुरुष, पक्षी तथा जानवरों की मूर्तियाँ बड़े उत्कृष्ट कला के उदाहरण हैं और वे गाँधार शैली की जान पड़ती हैं। इन मूर्तियों के कुछ नमूने जिनमें शिव पार्वती, कृष्ण गोवर्धन लीला आदि मुख्य हैं, बीकानेर के संग्रहालय में सुरक्षित की गई हैं।

धातु के उपकरण

इन वस्तुओं के अतिरिक्त रंगमहल से कई धातु के उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें काँसे की वस्तुओं में बाजूबंध, अंगूठियां, तावीज, हथ्थे आदि हैं। लोहे के उपकरणों में हथ्थे, कब्जे, अंगूठियां, दांतलियां, भाले, घंटियां, हुक, दीपक आदि हैं। कहीं-कहीं खोदी गई खाइयों में हड्डी, पत्थर और कांच के आभूषण तथा चूड़ियां भी मिले हैं जो कला की दृष्टि से अपनी विशेषता लिए हुए हैं।

मुद्राएं—यहां से कुशाणकालीन तथा उसके पिछले काल की कुल १०५ तांवे की मुद्राएं मिली हैं जिनमें कुछ पंच-मार्क हैं और कुछ कनिष्क प्रथम तथा कनिष्क तृतीय के काल की हैं। दो कांसे की सीलें भी जिन पर ब्राह्मी लिपि में नाम पंकित किये हुए हैं, मिली हैं जो ३०० ई० के लगभग की आंकी गई हैं।

ईंटें—यहां के मकानों का निर्माण ईंटों द्वारा होता था ऐसा कई दीवारों के अवशेषों से स्पष्ट है। सूरतगढ़, हनुमानगढ़ तथा आसपास के कस्बों के मकानों के लिए हजारों की संख्या में यहां से ईंटें ले जाई गईं प्रतीत होती हैं। ईंटें, जिनकी औसत चौड़ाई २॥ फुट तक देखी गई है, कुछ तो सादी हैं और कुछ खुदाई के काम

से भरी हैं। ये ईंटे यहाँ के कई बौद्ध स्थानों, निवास स्थानों एवं बावली आदि के निर्माण में काम में ली गई थीं।

इन पर वर्णित उत्खनन द्वारा प्राप्त उपकरणों से प्रथम शताब्दी से छठी शताब्दी के रंगमहल के जनजीवन की झांकी स्पष्ट होती है। यहाँ के निवासियों के लिए जल, जंगल तथा पशु जीवन की सभी सुविधाएं उपलब्ध थीं। वे चांवल की विशेष रूप से खेती करते थे और वह उनका मुख्य भोजन था। फिर भी वे भैंसे, सूअर, पक्षी तथा मछली का माँस खाते थे। उनके सुन्दर मृद्भाण्डों से तथा मृन्मय मूर्तियों से स्पष्ट है कि वहां के कुम्हार बर्तन बनाने व मूर्ति बनाने के काम में निपुण थे। आभूषणों की सुन्दरता भी रंगमहल के शिल्पियों की कलाकृति की दुहाई देती है। यहां के साधारण स्तर के निवासियों के घर छोटे तथा सादे होते थे, फिर भी उन्हें घरों को चित्रों द्वारा सजाने का चाव था।

रंगमहल में मन्दिर थे जहां मूर्तियां ताकों में रखी जाती थीं। वहां धूप, दीप, नैवेद्य आदि की व्यवस्था रहती थी। घंटानाद तथा प्रार्थना आराधना के साधन थे। मातृदेवी, शिव तथा कृष्ण की भक्ति यहां प्रधान रूप से पाई जाती है। नाचना तथा जुआ खेलना उनके जीवन का एक अंग था।

खनन के विविध स्तरों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहां की बस्तियाँ अनेक बार बसीं और उजड़ीं। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि अग्नि, महामारी तथा अति वर्षा इनके दुर्भाग्य के कारण रहे हों और अन्त में इन्हीं कारणों के प्रकोप से रंगमहल का वैभव अन्ततोगत्वा समाप्त हो गया हो।

बैराट् का उत्खनन और सामग्री[५]

बैराट् जयपुर से लगभग ५२ मील की दूरी पर है। इसका प्राचीन नाम विराट्पुर मिलता है जो मत्स्य देश की राजधानी था। इसकी स्थिति एक पांच मील लम्बी और ३–४ मील चौड़ी घाटी में है। इस कस्बे के चारों ओर टीले है जिनमें से बीजक-की-पहाड़ी, भीमजी की डूंगरी, महादेवजी की डूंगरी बड़े महत्त्व के हैं। वैसे तो यह स्थल मौर्यकालीन तथा उसके पीछे के काल के अवशेषों का प्रतीक है परन्तु कुछ कोड़ियों तथा फलकों को देखने से, जो यहां के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं, अनुमान लगाया जाता है कि ये क्षेत्र सिन्धु घाटी के प्रागैतिहासिक काल का समकालीन है। मध्यकालीन अवशेष भी यहां मिलते हैं जिनमें ईदगाह, टकसाल की ईमारत, जैन मंदिर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मौर्यकालीन अवशेषों में बीजक-की पहाड़ी से मिलने वाले अवशेष उस काल के इतिहास के बड़े उपयोगी साधन हैं।

ईंटें

यहाँ से मिलने वाली ईंटें, जो बड़ी मात्रा में अब नए मकानों को बनाने के काम में लेली गई हैं, अलग-अलग आकार की देखी गई हैं जिनका उपयोग चबूतरों

---

५. बैराट् आर्कियालोजिकल रिपोर्ट के आधार पर।

मठों, स्तूप और मन्दिरों के बनाने के लिए किया गया था। ये ईंटे २ फीट सात इंच लम्बी, १ फूट चार इंच चौड़ी और लगभग तीन इंच मोटी अथवा २०"×१०½"× २¾" या १३" या २१ इंच लम्बी पाई गई हैं। फर्श के लिए काम में ली गई टाइलें २'२"×२'२" देखी गई हैं। ये ईंटें मोहेन्जोदड़ो में मिलने वाली ईंटों के सदृश हैं। विशेषता यह है कि वैराट् के आसपास पत्थर की बहुतायत होने पर भी ईंटों का प्रयोग यहां प्रचुर मात्रा में किया गया था।

मठ

इन ईंटों का प्रयोग बौद्ध मठ के लिए किया गया था जो इनका चारों ओर बिखरे रहने तथा ६–७ छोटे कमरों के अवशेषों से स्पष्ट है। इस मठ की दीवारें लगभग २० ईंच चौड़ी थीं। कमरों में जाने के लिए तंग मार्ग, गोदाम, चबूतरे आदि इस मठ के अन्य भाग थे।

चांदी की मुद्राएं

कमरों से प्राप्त होने वाली अन्य वस्तुओं में मुद्राएं, जो चौथे कमरे से मिली हैं, बड़े महत्त्व की हैं। वे ३६ मुद्राएं हैं जिनमें से ८ पंच-मार्क हैं जो कपड़े में बँधी हुई मिली। बाकी २८ मुद्राएं यूनानी एवं भारतीय-यूनानी राजाओं की हैं जो एक घड़े में मिली थीं। इन मुद्राओं से यह प्रमाणित होता है कि वैराट् यूनानी शासकों के अधिकार में था, क्योंकि २८ मुद्राओं में से १६ मुद्राएं मिनेन्डर की हैं। इनसे यह भी सिद्ध होता है कि बीजक की पहाड़ी बौद्धों का निवास स्थान था और वह ५० ई० तक बना रहा।

अन्य वस्तुएं

इन मुद्राओं के अतिरिक्त मठ की इमारत से अन्य कई वस्तुएं भी उपलब्ध हुई है। जिस कपड़े में मुद्राएं बंधी हुई थी वह कपड़ा रुई का था जिसे हाथ से बुना गया था। मृद्भाण्डो में अलंकृत घड़े, जिन पर स्वस्तिक तथा त्रिरत्नचक्र के चिह्न बने हुए थे, बड़े रोचक दिखाई देते हैं। मिट्टी की वस्तुओं में दीपक, नाचती हुई पक्षी, खप्पर, थालियाँ, कूंडियां, मटके, लोटे, कटोरे, घड़े आदि यहां उपलब्ध हुए हैं। कुछ पत्थर की थालियां तथा छोटी सन्दूकें भी यहां मिली हैं। लोह व ताम्बे की वस्तुओं के बनाने के औजार भी यहां की उपलब्धियों में सम्मिलित हैं। ये वस्तुएं २५० ई० पू० से ५० ईसवी तक के काल की निर्धारित की जाती हैं।

अशोक स्तम्भ

इस स्थल के दक्षिण की ओर चुनार पत्थर के पालिशदार टुकड़े और कई सादे पत्थर के टुकड़े मिले हैं जो निश्चित रूप से अशोक के स्तम्भों के भाग हो सकते हैं। स्तम्भ के कई भागों के अवशेषों में सिंह की आकृति का खण्ड भी सम्मिलिन है। इन टुकड़ों को देखकर एक प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि इन स्तम्भों को किसने नष्ट किया। नालन्दा के मठ की भाँति मुस्लिम आक्रमणकारियों का यह कार्य नहीं हो

सकता क्योंकि इसका समय बहुत पीछे है। संभवतः महिरकुल के आक्रमण के फलस्वरूप, लगभग ५१०–५४० ईसवी में, इन्हें तोड़ा गया हो।

गोल मन्दिर

बैराट् में स्तम्भों के अवशेषों की भांति एक गोल मन्दिर के अवशेष भी मिले हैं जिसे अशोक ने बनवाया था। इसके उत्खनन से मन्दिर के विविध भागों का अनुमान लगाया जा सकता है। इसकी फर्श ईंटों की दिखाई देती है तथा द्वार लकड़ी के किवाड़ों के। लकड़ी के किवाड़ों को लोह की कीलियों और कब्जों से टिकाया जाता था। मन्दिरों से मृन्मय पक्षी की मूर्तियां, खप्पर, धूपदानी, थालियां, पूजा के पात्र आदि प्राप्त हुए हैं। यह मन्दिर का भाग नीचे के चबूतरे पर बनाया गया था जैसाकि स्थानीय स्थिति से स्पष्ट होता है।

रेड के उत्खनन से प्राप्त सामग्री[६]

रेढ जयपुर के भरतला ठिकाने का एक छोटा-सा गांव था। इस गांव के पूर्वी भाग में कई टीले हैं जिन पर खेती होती है और उनके बीच से ढील नदी, जो बनास में गिरती है, निकलती है। ये टीले नवाई स्टेशन से १५ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित हैं। नदी से इनकी ऊंचाई १५ से २५ फीट है और वे २५०० × १८०० फीट के क्षेत्र में फैले हुए हैं। १९३८–३९ ई० में उत्खनन का परीक्षण रायबहादुर दयाराम सहानी ने तथा १९३८–१९४० ई० में कुछ विस्तार में उत्खनन डा० के० एन० पुरी ने किया था। इसके फलस्वरूप मुद्रा, आभूषण, लोह, ताम्र आदि के उपकरण, मकानों के अवशेष ईंट, पत्थर आदि प्राप्त हुए जो तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा काल के जन-जीवन पर प्रकाश डालते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है :

मृद्भाण्ड

मृद्भाण्डों का प्रयोग, लगभग एक ही शैली का, तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा काल तक यहां देखने को मिलता है। इनमें कुछ तस्तरियों को छोड़ कर सभी भाण्ड चाक से बनाये गये थे और उन पर जंजीर या रस्से एवं स्वस्तिक का अलंकरण दिखाई देता है। किसी-किसी पर उभरा हुआ भी अलंकरण है। लाल या सफेद रंग ऊपर के भागों में प्रचुर मात्रा में प्रयोग में लाया जाता था। कुछ भाण्ड इतने चिकने और सुदृढ़ दिखाई देते हैं जिससे अनुमान लगाया जाता है कि उन पर विदेशी प्रभाव हो। शरावक, मिट्टी के दीपक, हांडियां, सुराहियां, कटोरे, संकरे मुंह व फैले पेट वाले घड़े, बंदर की आकृति के बर्तन, लोटे, नालीदार कटोरे आदि यहां के मृद्भाण्ड हैं।

रेढ के भाण्डों में गोल 'रिंग-वेल्स', जो एक-दूसरे पर लगा दिये जाते थे,

---

६–रेढ का उत्खनन, के० एन० पुरी, पुरातत्व व शोध विभाग, जयपुर पर आधारित।

अपनी विशेषता लिए हुए हैं। इनको घरों के पानी को निकालने और गंदगी से वचने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। इनकी मोटाई आधा इन्च तथा इनकी गोलाई २'२" तथा ऊंचाई ७" है। लगभग ११५ ऐसे गोल 'रिंग-वेल्स' यहां मिले हैं। भूमि में १' ५" से १६' ४½" तक की गहराई तक इन्हें देखा गया है।

मृद्भाण्डों के अतिरिक्त रेड के निवासी पत्थर के वर्तन भी वनाना जानते थे जिनमें थालियां खाने के प्रयोग में आती थीं और टोकरियाँ आभूषणों के रखने के लिए होती थीं। इनके अतिरिक्त रेड की खुदाई में लोह के तसले व कढ़ाइयां भी मिली हैं जिन्हें धातु पिघलाने के लिए काम में लाया जाता हो। कांसे के भी वर्तन यहां मिले हैं जिनका प्रयोग पूजा आदि कार्यों के लिए होता था।

मृन्मयी मूर्तियां

रेड में हाथ की वनी तथा ढाली गई पकाई गई और कई मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें मातृ-देवी तथा शक्ति के विविध रूप की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनको नंगे रूप में देखने को मिलता है सिवाय इसके कि उनके कमर व सर पर कपड़ा वंधा रहता है और उन्हें आभूषणों से अलंकृत किया जाता है। मूर्तियाँ वाहर से उभरी हुई रहती हैं जिनको कभी-कभी भोडल व गेरू के रंग से रंगा जाता था। आभूषणों में कान के कर्णफूल, गले का नाभि तक का हार, मोतियों के जेवर, चूडियां, कर्धनी व पाजेब मुख्य हैं। इन देवियों की विभिन्न मुद्राएं मनमोहक हैं। शिव-पार्वती, यक्ष गंधर्व, हाथी, घुड़सवार, शेर, गाय, वैल, कुत्ता, ऊंट, रथ, खिलौने, मच्छी, वन्दर, मेड़ा तथा अनेक पक्षियों के मृन्मय प्रतीक वड़े रोचक दिखाई देते हैं। इन प्रतीकों से जन-जीवन की अच्छी झांकी उपलब्ध होती है।

लोह के उपकरण

उत्खनन में लोह के गालने के वाद के अतिरिक्त भाग के जगह-जगह यहाँ ढेर मिले हैं जो इस वात के साक्षी हैं कि रेड एक लोहे से वनाये जाने वाले उपकरणों का वड़ा केन्द्र रहा हो। यहां जस्ते को भी साफ किया जाता था जिसको यह प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इसी तरह से चाँदी के सिक्के और कांसे तथा सोने के आभूपण, जो यहां से प्राप्त हुए हैं, रेड के उन्नत जन-जीवन के साक्षी हैं। लोह के औजारों में तलवार, खंजर, भाले, वर्छी, चाकू, कुन्ताग्र, तीर, दाँतली, कुल्हाड़े, कीलें, दरवाजों के हत्थे, जंजीरें आदि हैं। तलवार की लम्वाई १२.५" तथा उसकी चौड़ाई ३.५" के लगभग पाई जाती है। भाले व नुकीले औजार तथा वर्छे आदि ढाले जाते थे और कई शस्त्रों के हत्थे के लिए लकड़ी, सीप या हाथी दांत काम में लाये जाते थे। इन विविध औजारों को पैने करने की सिल्लियां उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। धातु को गलाने के लिए कांसे की नलियां भी यहां देखी गई हैं जो इस उद्योग के विकसित रूप को प्रमाणित करती हैं।

अन्य उपकरण

ऊपर वर्णित वस्तुओं के अतिरिक्त हाथी दांत, सीप, कांसे के अनेक उपकरण

बनाए जाते थे जो रेड निवासी अपनी सजावट आदि कार्यों के लिए काम में लाते थे। इनका प्रयोग विविध प्रकार के उपटन तथा सुगंधित द्रव्यों को रखने के लिए भी किया जाता था। मंदिर में प्रयोग करने का घंटा भी यहां के उपकरणों में सम्मिलित है। इसी प्रकार मोटे व बारीक कपड़ों के बनाने में भी यहां के निवासी सिद्धहस्त थे, जैसाकि 'टेकनोलोजिकल लेबोरेटरी, भारतीय केन्द्रीय रुई कमेटी, बम्बई' की रिपोर्ट से सिद्ध है।

सांभर का उत्खनन[७]

सांभर जयपुर से ४१ मील की दूरी पर स्थित है और उत्तरी रेलवे का एक स्टेशन है। यहां से प्राप्त उपकरणों से अनुमानित है कि यह क्षेत्र ईसा की तीसरी शताब्दी पूर्व से दस सदी ईस्वी तक बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व का रहा है। यहां के एक बड़े टीले का उत्खनन किया गया जो २००० फीट × १८०० फीट के लगभग का था। यहां का उत्खनन कार्य १९३६ से १९३८ तक चलता रहा जिसके फलस्वरूप कई मिट्टी, लोहे, सोने, चांदी, तांबा, सीप आदि के उपकरण प्राप्त हुए हैं जो यहां की स्थिति पर नया प्रकाश डालते हैं।

निवास-स्थान

उत्खनन के अन्तर्गत कई खाइयां खोदी गईं जिसमें ४५ घरों के ढांचे प्रकाश में आए। इन मकानों का स्वरूप खुले आंगन तथा तीन चार कमरों को लिये हुए देखा गया। मकानो, दरवाजों, खिड़कियों और रोशनदानों के निर्माण में पकी हुई ईंटें तथा मिट्टी काम में ली गई थी। नीवों में झझरे पत्थर का प्रयोग किया गया था। दीवारों और फर्शों को मोरंडी मिट्टी से पोता जाता था। छतों को भट्टे में पकाए गए कवेलुओं से ढका जाता था।

मृन्मय भाण्ड

मृन्मय भाण्डों में घड़े, कटोरे, सुराहियाँ, थालियां आदि हैं जिनमें कुछ ऐसे हैं जिन पर पौराणिक गाथाओं का अलंकरण है। कुछ ऐसे बर्तन हैं जिनपर बेल-बूटे हैं और उनकी सतह काफी चिकनी है। यहाँ से कुछ आभूषणों के रखने की डिब्बियां भी मिली हैं जो पकाकर मजबूत बनादी गई थीं। सीप और शंखों का प्रयोग भी आभूषणों व अलंकरणों में यहां किया जाता था जैसाकि कई अवशेषों से प्रमाणित होता है।

मृन्मय मूर्तियां

यहां पकी हुई पट्टियों के अवशेष भी मिले हैं जिन पर यक्ष-यक्षिनियों, दुर्गा, महेश, भैरव, अर्ध पुरुष-गन्धर्व, पुरुष, स्त्रियाँ, जानवर तथा पक्षियों की मूर्तियां बनी

---

७ आर्कियोलोजी एण्ड हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर स्टेट (सांभर) के आधार पर।

हुई हैं जो कला की दृष्टि से बड़ी रोचक हैं। इनसे उस युग की धार्मिक तथा कलात्मक स्थिति का पता चलता है।

धातु के उपकरण

यहां धातु से बनी हुई कई वस्तुएं मिली हैं जिनमें लोहे व तांबे की वस्तुएं प्रमुख हैं। चाकू, छुरे, कीलियां, दरवाजों के अटकन, कुन्दे, चूलियां आदि भी लोह के उपकरणों में मुख्य हैं। तांबे की थालियां, चम्मच और आभूषण भी यहां के उत्खनन के उपकरण हैं। कुछ सोने के कुण्डल, लटकन, हार भी यहां के घरों से उपलब्ध हुए हैं। पीतल व सीप का प्रयोग भी आभूषणों के लिए यहां किया जाता था, जैसाकि यहां से प्राप्त वस्तुओं से स्पष्ट है। सोने, चाँदी तथा तांबे के सिक्के भी यहां से मिले हैं जिनका वर्णन यथा प्रसंग किया जायगा।

नोह का उत्खनन और उससे प्राप्त सामग्री[८]

कुछ ही वर्षो से भरतपुर जिले में नोह में राजस्थान पुरातत्व विभाग ने उत्खनन कार्य आरम्भ किया है। इस कार्य से कई ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस खुदाई से यहां की प्राचीन बस्ती का पता चला है। इसके द्वारा सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारी हमें यह मिली है कि भारतवर्ष में ईसा पूर्व १२वीं शताब्दी में लोहे का प्रयोग ज्ञात था। यहाँ से प्राप्त भाण्डों की विशेषता 'ब्लेक एवं लाल वेयर' है जिसमें तश्तरियां, ढकने, सरावले, घड़े आदि हैं। इन पर सजावट का काम अपनी विशेषता लिए हुए है। भाण्डों पर कपड़ों के अवशेषों का चिपकन इस बात को प्रमाणित करता है कि राजस्थान के इस भाग में कपड़ों की बुनाई ईसा पूर्व १,१०० से ६०० ईसा पूर्व तक ज्ञात थी। प्राचीन ऐतिहासिक काल में यहां सफाई के लिए गंदे पानी को समावेशित करने के साधन थे जो गोलाकार मिट्टी के 'रिंगवेल्स' से स्पष्ट है। यहां की खुदाई से एक स्थान से १६ 'रिंगवेल' मिले हैं जो अध्ययन के अच्छे साधन हैं। इसी प्रकार यहां से प्राप्त मूर्तियों से मौर्यकालीन, शुंग एवं कुशानकालीन सभ्यता एवं कला का हमें अच्छा परिज्ञान होता है।

---

८. टाइम्स ऑफ इण्डिया, १४-१०-७२ के आधार पर।

२

सिक्के ऐतिहासिक सामग्री के रूप में

उत्खनन के बाद मुद्रा का स्थान आता है। सिक्कों के वैज्ञानिक अध्ययन से अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश पड़ता है। इनसे न केवल राजनैतिक व आर्थिक स्थिति का ही पता चलता है वरन् इनसे धार्मिक तथा कलात्मक स्थिति का भी बोध होता है। इन सिक्कों पर कई प्रकार के चिह्न होते हैं जिनसे सिक्के चलाने वाले समुदाय या व्यक्ति की कई अज्ञात बातें सामने आती हैं। इसी तरह इनसे अनेकानेक जातियों की राजनैतिक शक्ति और प्रभाव क्षेत्र का भी पता चलता है। वैसे तो राज्य-विस्तार को हमेशा सिक्कों की स्थान विशेष से उपलब्धि से नापना ठीक नहीं है, परन्तु कभी-कभी सिक्कों की प्रचुरता और अधिक मात्रा में किसी एक भू-भाग की सीमा तक मिलना कम से कम राज्य-विस्तार की जानकारी की आंशिक रूप में पूर्ति करता है। सिक्कों के अध्ययन से वंशक्रम का बोध तो होता ही है वरन् उनसे शासकों की सम्पन्न अवस्था को भी आँका जा सकता है। कम तौल वाले, मिलावट वाले तथा छोटे आकार के सिक्कों से एक राजा से दूसरे राजा की या एक राज्य से दूसरे राज्य की तुलना में आर्थिक स्थिति अवश्य अनुमानित की जा सकती है। कभी-कभी सिक्कों में दो शासकों के नाम मिलते हैं जिनसे उनके संयुक्त शासन या मैत्री संगठन की व्यवस्था दिखाई देती है। सिक्कों के अंकित चिह्नों, मूर्तियों अथवा नामोल्लेखन से उस समय के प्रचलित धर्म का ज्ञान होता है। मुद्राओं से शासकों की रुचि और जीवन की उपलब्धियों का भी परिचय मिलता है। किसी एक समय में शुद्ध धातु के साथ कम दाम के धातुओं का प्रयोग करना असली धातु की कमी या राज्य-दौर्बल्य की ओर संकेत करता है। जहाँ तक कला के स्थर के ज्ञान का प्रश्न है सिक्के युग के मापदण्ड बन जाते हैं। इनके आकार, ऊपरीय दिखावा, सफाई, भद्दापन, समानता तथा स्पष्टता या अस्पष्टता दस्तकारी की स्थिति के द्योतक हैं। सिक्कों पर अंकित मूर्तियों की सजावट उस समय की वेश-भूषा तथा विदेशी प्रभाव का प्रदर्शन करते हैं। इसी आधार को लेकर हम कतिपय सिक्कों का उल्लेख करेंगे जो समय-समय पर राजस्थान में प्रचलित रहे। ऐसे सिक्के हमारे इतिहास की एक साधन-सामग्री के अन्तर्गत हैं।

राजस्थान सिक्कों के विचार से बड़ा समृद्ध है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग के अबतक कई लाखों की संख्या में सोने, चांदी, तांबे और सीसे के सिक्के मिल चुके हैं। इन पर अंकित लेख, संख्या, आकृति, चिह्न आदि ऐतिहासिक

तथ्यों के समझने में बड़े उपयोगी हैं। इन सिक्कों के वैज्ञानिक अध्ययन से राजाओं की नामावली, वंश परिचय, स्थान विशेष जहां से सिक्कों का प्रचलन किया गया हो या किसी विशेष घटना को लेकर उन्हें बनावाया गया हो आदि का समुचित बोध होता है। विभिन्न राज्यों की सीमाओं को निर्धारित करने में इन सिक्कों का बड़ा महत्त्व है। इनके द्वारा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि स्थिति का परिज्ञान होता है। इसी प्रकार तत्कालीन कला के अध्ययन में भी सिक्के बड़े काम के प्रमाणित हुए हैं। अलग-अलग समय में इन सिक्कों के नाम, तोल, आकार आदि अलग-अलग रूप से जाने गए हैं। प्राचीन सिक्के विशेष रूप से उत्खनन द्वारा मिले हैं। मध्यकालीन सिक्के प्रचलन में देखे गये हैं। वर्तमान कालीन सिक्कों का लेन-देन हमारे समय तक चलता रहा है। इन सभी प्रकार के सिक्कों का अध्ययन हम विभिन्न शीर्षकों में करेंगे।

आहड़ के उत्खनन से प्राप्त सिक्के और सीलें[1]

आहड़ के उत्खनन के द्वितीय युग से कुछ ६ तांबे के सिक्के तथा इन्डोग्रीक मुद्राएं तथा कुछ सीलों के नमूने प्राप्त हुए हैं जिनका समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से प्रथम-द्वितीय ईसा आंका जाता है। बहुत समय में जमीन में दबे रहने से तांबे के सिक्कों के अंकन स्पष्ट नहीं पढ़े जाते; अलबत्ता एक सिक्के पर त्रिशूल का अंकन दिखाई देता है। इन सिक्कों में एक चौकोर है और अन्य गोल हैं। एक अन्य मुद्रा नं० २३५३ [अ] है जो इन्डो-ग्रीक मुद्रा है। इसके एक तरफ दोनों हाथ में तीर लिए हुए अपोलो दिखाया गया है और दूसरी तरफ 'महाराजन त्रतर्स' अंकित है। इसी तरह से १८३४ नम्बर की सील पर 'विहरम विस' अंकित है जिसका समय प्रथम-द्वितीय शती ईसा अनुमानित किया जाता है। इसी प्रकार १६३२ नम्बर की सील पर 'पलितस' अंकित है जिसका समय द्वितीय-तृतीय शती ईसा पूर्व आंका गया है। एक १९३२ नम्बर की सील पर त, ती, यू, तू, म, ज्ञ एवं न के अक्षर पढ़े जाते हैं जिससे कोई अर्थ तो स्पष्ट नहीं होता परन्तु लिपि की दृष्टि से इसका समय प्रथम-द्वितीय शती ई. पू. उतरता है। इन सिक्कों व सीलों से इस भाग के प्रारंभिक इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

रेड के उत्खनन के प्राप्त सिक्के और मुहरें[2]

रेड के उत्खनन से कोई ३०७५ चांदी के पंच-मार्क सिक्के उपलब्ध हुए जो देश के उत्खनन में एक स्थान से प्राप्त सबसे बड़ी राशि मानी जाती है। इन मुद्राओं में कई तो ऐसी नई दिखाई देती हैं कि वे हाल ही सीधी टकसाल से लाई गई हों और कई इतनी घिसी हुई हैं कि उनका खूब लेन-देन हो चुका हो। इन मुद्राओं के देखने से

---

१. संकालिया-एक्सकेवेशन एट आहड़, अध्याय ४, पृ. १३।

२. एक्सकेवेशन्स एट रेड, अध्याय ७, पृ. ४६-५०, वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के, पृ. ८०-८७।

कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इन सिक्कों को धरण, पुराना या पण कहा गया है जिन पर अलग-अलग ठप्पे से चिह्न लगाये गये हैं। कभी-कभी ये चिह्न एक-दूसरे पर भी आ गये हैं। इनके आकार में भी एकरूपता नहीं दिखाई देती, अलबत्ता इनके तोल में ३२ रत्ती या ५७ ग्रेन या ३¾ ग्राम की समता है। जो मुद्राएं चौकोर हैं उन्हें टुकड़ों में पहिले काट लिया जाता था और फिर उनको बराबर तोल के टुकड़ों में विभाजित कर दिया जाता था। तोल में एकरूपता के लिए इनके किनारों को भी घिस दिया जाता था। इनको देखने से प्रतीत होता है कि इन मुद्राओं के एक तरफ पांच चिह्न जिनमें सूर्य, तीर, मछली, घण्टा, कोई पौधा या पशु आदि अंकित किये जाते थे। दूसरी तरफ या तो खाली रहता था या एक दो चिह्न लगा दिये जाते थे। कभी-कभी इन पर गण का नाम, शासक का नाम या किसी के इष्टदेव के नाम का भी उल्लेख रहता था। चिह्नों के भी कई रूप होते थे जिनका वर्गीकरण ४० के लगभग हो सकता है। इन चिह्नों की कभी सार्थकता रहती थी और कभी इनका कोई विशेष अभिप्राय नहीं होता था। ऐसा भी अनुमानित किया जाता है कि पांच चिह्न किन्हीं पांच मुखियाओं की संस्था के चिह्न के द्योतक होते थे। पृष्ठ भाग के चिह्नों से कभी-कभी टकसाल के चिह्न का बोध होता था। इन सिक्कों का समय छठवीं शताब्दी ई. पू. से द्वितीय शताब्दी ई. पू. आंका गया है।

रेड में चांदी के पंच-मार्क सिक्कों के अतिरिक्त तांबे के भी सिक्के मिले हैं जो मालव, मित्र, सेनापति, इण्डो-सेसेनियम आदि वर्ग के हैं। इन सिक्कों को गण-मुद्राएं कहा गया है।

मालवगण के सिक्के

ये सिक्के उस जाति के हैं जो मौर्य, कुशान, गुप्ता आदि की अधीनता में थे। इनका समय ईसा पूर्व दूसरी सदी से ईसा की दूसरी सदी तक का है। ये सिक्के रेड तथा पूर्वी राजस्थान में हजारों की संख्या में पाये गये हैं। इनका आकार छोटा है और इनमें कई एकों का व्यास आध इंच के लगभग है। इनका तोल डेढ ग्रेन से दस ग्रेन तक का देखा गया है। इन पर कहीं 'मालवाना जय' अथवा मालव सेनापतियों के नाम जैसे माप्य, मजुप, मापेजय, मगजश अंकित रहता है। अग्रभाग में कई सिक्कों पर बोधिवृक्ष और पृष्ठ भाग में सूर्य, सिंह, नन्दि, राजा का मस्तक, नन्दि अथवा सूर्य का चिह्न भी अंकित रहता है।

सेनापति मुद्राएं

ये मुद्राएं छः के समुदाय में रेड से प्राप्त हुई हैं, जिनमें पांच चौकोर और एक गोल है। इन पर ब्राह्मी लिपि में 'वच्छघोष' अंकित है। यह लिपि ईसा पूर्व ३-२ सदी की है। इन पर भी नन्दी का आकार देखा गया है।

मित्र मुद्राएं

ये मुद्राएं ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के हैं जिन पर सूर्यमित्र, ब्रह्ममित्र ध्रुव-

मित्र आदि नाम अंकित हैं। ये कन्नौज, पान्चाल के मित्रों के सदृश दिखाई देते हैं। इन मुद्राओं पर त्रिशूल, ताल में तीन मछलियां, बैल आदि भी रहते हैं। ब्रह्ममित्र मुद्रा में लक्ष्मी की मूर्ति दिखाई गई है।

राजन्य सिक्के[3]

पूर्वी राजस्थान में 'राजन्य' अंकित किये गये सिक्के मिले हैं जिन्हें ईसा पूर्व पहली सदी में तैयार किया गया था। ये गण [एक विशेष जाति] द्वारा तैयार किये गये थे। सिक्कों के अग्रभाग पर मनुष्य की मूर्ति अंकित रहती थी और उन पर खरोष्ठी में 'राजन्य जनपदस' लिखा रहता था। पृष्ट भाग पर नन्दि की आकृति दिखाई जाती थी।

योधेय सिक्के[4]

ये सिक्के राजस्थान के उत्तरी भाग तथा पश्चिमी भाग में बहुधा मिलते हैं जिनका अस्तित्व ईसा पूर्व ४०० वर्ष से गुप्त साम्राज्य के पतन तक देखा गया है। ईस्वी पूर्व दूसरी सदी के सिक्कों पर नन्दि तथा स्तम्भ की आकृति मिलती है और उन पर ब्राह्मी लिपि में 'योधेयाना बहुधान के' अंकित रहता है। ईसा की दूसरी सदी के सिक्कों के अग्रभाग में षडानन की मूर्ति कमल पर खड़ी दिखलाई देती है और उसी ओर ब्राह्मी अक्षरों में योधेयों के ब्रह्मण्य देव का नाम अथवा 'भागवतः यधेयेन' अंकित रहता है। ईसवी सन् की चौथी सदी में योद्धा ढंग के सिक्के मिलते हैं जिसमें कार्तिकेय की मूर्ति तथा देवमूर्ति या सूर्यमूर्ति का होना पाया गया है।

नगर मुद्राएं[5]

नगर या कर्कोट नगर जो उणियारा ठिकाने के क्षेत्र में जयपुर के निकट है अपनी प्राचीनता के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। कार्लाइल ने चार वर्ग मील के घेराव में इस क्षेत्र का परिवेक्षण किया। उन्हें यहां से छः हजार तांवे के सिक्के उपलब्ध हुए।

इन सिक्कों के अध्ययन से वे इस नतीजे पर पहुँचे कि नगर में मालवगण की टकसाल रही होगी। ये सिक्के संसार में प्राप्त सिक्कों में सबसे हल्के व छोटे आकार के है जिनपर दूसरी सदी ईसा पूर्व से चौथी सदी ईसा की ब्राह्मी लिपि में कोई ४० मालव सरदारों के नाम अंकित है। कुछ नाम उल्टे ढंग से लिखे गये है जो दाहिने से बांये की ओर पढ़े जाते हैं। इनमें अंकित कुछ मालव सरदारों का विदेशी होना भी पाया जाता है।

रंगमहल के उत्खनन के सिक्के[6]

रंगमहल के उत्खनन से कुल १०५ तांबे के सिक्के उपलब्ध हुए थे जिनमें

---

३ वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के, पृ. ८७।

४ वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के, पृ० ८०–८२।

५ एक्सकवेशन एट बैराट् पृ० ३–४।

६ स्वीडिश आर्कियोलोजिकल एक्सपिडीशन टू इन्डिया, १९५२–१९५४, पृ. १७१।

अधिकांश के चिह्न नष्ट हो गये हैं। कुछ सिक्कों को जिन्हें श्री वीवर ने अध्ययन किया था, कुशाणोत्तर काल के माने गये हैं और उन्हें 'मुरण्डा' नाम दिया गया है। कुछ एक ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के हैं और 'पंच-मार्क' एवं 'गण-मुद्राए" हैं। इनमें से एक सिक्का कनिष्क प्रथम का है जिसे भाले पर झुकता हुआ मय लंबे कोट व वेदी सहित अंकित किया गया है। पृष्ट भाग में इसी मुद्रा पर वायुदेव बाएँ ओर भागता हुआ बतलाया गया है। इस पर यूनानी में ओडो-वायु अंकित है। दूसरी एक मुद्रा पर एक ओर कनिष्क इसी मुद्रा में है और पृष्ट पर देवी की मूर्ति है। इस पर 'नानाइया' अंकित है। इसी तरह हविश्क, वाजिष्क, कनिष्क तृतीय एवं मुरण्डा की मुद्राएँ अपने-अपने विविध चिह्नों सहित पाई गई हैं।

रंगमहल से प्राप्त इन मुद्राओं का एक बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। इनके अध्ययन से प्रतीत होता है कि रंगमहल का क्षेत्र कनिष्क तृतीय के काल में अधिवासित हो गया था। इनका मुद्रण भी कनिष्क तृतीय या मुरण्डाओं के समय का था। इसके द्वारा यह भी अनुमानित किया जाता है कि यह क्षेत्र ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर छटी शताब्दी तक बसा रहा।

बैराट् के उत्खनन से प्राप्त मुद्राएँ[७]

बैराट् के उत्खनन में विहार के अवशेष मिले जिसके चौथे कमरे से एक मिट्टी का भाण्ड मिला। इसमें एक कपड़े में बँधी हुई ८ 'पंच-मार्क' चाँदी की मुद्राएँ तथा २८ 'इन्डो-ग्रीक' तथा यूनानी शासकों की मुद्राएँ उपलब्ध हुई। इन मुद्राओं का भिक्षुकों के रहने के स्थान से मिलना आश्चर्यजनक है जबकि इन साधुओं के लिए मुद्राओं का रखना वर्जित था। सम्भवतः इनको किसी साधु ने छिपाकर यहाँ रख लिया हो। इन मुद्राओं से यह प्रमाणित होता है कि बैराट् यूनानी शासकों के अधिकार में था। २८ मुद्राओं में से १६ मुद्राओं का मिनेन्डर का होना इस बात का प्रमाण है। इन मुद्राओं से यह भी स्पष्ट है कि बीजक की पहाड़ी पर बौद्धों के निवास-स्थान थे और वे ५० ई० तक बने रहे।

साँभर के उत्खनन से प्राप्त मुद्राएँ[८]

साँभर के उत्खनन से लगभग २०० मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें ६ चाँदी की पंच-मार्क मुद्राएँ हैं। इन मुद्राओं से यहाँ के मकानों के खण्डहर तथा अन्य वस्तुओं के समय के निर्धारण में बड़ी सहायता मिलती है। इसी तरह पिछली ६ ताँबे की 'इण्डो-सेसेनिय' मुद्राएँ भी अन्य वस्तुओं के समय को बताने में उपयोगी हैं। यहाँ गुप्ताओं की कोई मुद्राएँ नहीं मिली हैं, परन्तु एक हविष्क की मुद्रा प्रमुख खाई से प्राप्त उपकरणों के काल को निर्णीत करने के काम की है। इसी प्रकार एक चाँदी की 'इण्डो-ग्रीक' मुद्रा जो एन्टिमकोजनिकेफोरस की है प्रारम्भिक स्थर का काल

---

७. एक्सकेवेशन्स एट बैराट्, पृ०२१–२२।

८. आर्कियोलॉजी एण्ड हिस्टॉरिकल रिसर्च–साम्भर, पृ० ४८

बतलाती है। यहाँ से कुछ यौधेय मुद्राएं भी मिली हैं जो रोहतक से यहाँ आई हों। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः वहाँ कोई इन मुद्राओं की टकसाल रही हो। इन मुद्राओं में से एक यौधेय मुद्रा जो बहुत छोटी है बड़े महत्त्व की है। इस पर दो पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में 'बबुधना' तथा 'गण' अंकित है।

गुप्तकालीन सिक्के[९]

इस युग के सिक्कों में भरतपुर के बयाना जिले में नगलाछैल नामक ग्राम से गुप्तकालीन सोने के सिक्कों का ढेर मिला जिनमें लगभग १८०० सिक्के उपलब्ध हो सके। इस ढेर में सबसे अधिक सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय के हैं। अन्य सिक्कों में कुमारगुप्त प्रथम तथा समुद्रगुप्त के सिक्के भी उल्लेखनीय हैं। इन सिक्कों में कई नये प्रकार के सिक्के हैं जो गुप्त सिक्कों की विविधता प्रमाणित करते हैं। इनसे गुप्तवंशीय काचगुप्त तथा कुमारगुप्त के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि सन् ५४० ई० के बाद हूणों के आक्रमण के कारण इस खजाने को जमीन में गाढ़ दिया गया हो। इन सिक्कों में चन्द्रगुप्त प्रथम के १०, समुद्रगुप्त के १७३, काचगुप्त के १५, चन्द्रगुप्त द्वितीय के ९६१, कुमारगुप्त प्रथम के ६२३ तथा स्कन्दगुप्त का १ सिक्का एवं ५ खंडित सिक्के मिले हैं। ये सिक्के शिल्पकला युक्त हैं और इनसे भारतीय सिक्कों की मौलिकता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

राजस्थान पुरातत्व विभाग ने १९६२ में भेड से, जो टोंक जिले के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान रेड के निकट है, गुप्तकालीन ६ सुवर्ण मुद्राएं प्राप्त कीं। इस स्थान पर ये मुद्राएं कैसे पहुंची इसके सम्बन्ध में यही अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो इस भाग पर गुप्ताओं का अधिकार रहा हो या व्यापारिक प्रक्रिया के द्वारा ये मुद्राएं किसी तरह यहाँ पहुँच गई हों। इन मुद्राओं में एक समुद्रगुप्त शैली की मुद्रा है और ४ चन्द्रगुप्त द्वितीय शैली की हैं। इन चारों में तीन धनुर्धारी और एक छत्र-धारी ढंग की है। छठी मुद्रा किदार की है जो पिछला कुशाण शासक हो सकता है। इसके सुवर्ण में मिलावट अधिक है। समुद्रगुप्त की मुद्रा का तोल ७.४५० ग्रेन तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्रा का तोल ७.७२५ ग्रेन है। इसी संज्ञा के दूसरे सिक्कों के तोल में थोड़ा-सा अन्तर है। इनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है।

गुर्जर प्रतिहारों के सिक्के[१०]

राजस्थान में मारवाड़ के भाग में गुर्जर प्रतिहारों का राज्य बड़ा शक्तिशाली था। अपनी शक्ति के सूचक सिक्कों पर उन्होंने यज्ञवेदि तथा रक्षक आदि चिह्नों को प्राधान्यता दी। इन सिक्कों पर शसैनियन शैली का प्रभाव दिखाई देता है। ये सिक्के

---

९. वासुदेव उपाध्याय—भारतीय सिक्के, पृ०१५२–१५३। जर्नल ऑफ न्युमिसमिटिक सोसाइटी ऑफ इन्डिया, जि०२२, भाग २, पृ०२०३–२०५

१०. वासुदेव उपाध्याय भारतीय सिक्के, पृ० १८१–१८२; एपिग्राफिया इण्डिका, भा० २४, पृ० ३३१–३२

तोल, आकार तथा शैली में शसैनियन सिक्कों के निकट दिखाई देते हैं। ऐसे सिक्के अधिकांश में ताम्बा, मिश्रित चांदी के बनते थे। इनके अग्रभाग में शसैनियन यज्ञकुण्ड तथा 'श्री मदादि वराह' नागरी में अंकित रहता है। पृष्ठ भाग में सूर्यचक्र तथा वराह की मूर्ति बनी रहती है। ऐसे सिक्कों को 'आदि वराह' शैली का नाम दिया गया है।

मारवाड़ में अनेक ताम्बे के सिक्के भी मिलते हैं जिनका प्रचलन गुर्जर प्रतिहारों के द्वारा किया गया था। इन पर राजा के अर्ध शरीर का चिह्न तथा यज्ञकुण्ड बना रहता है। परन्तु ये चिह्न इतने अस्पष्ट रहते हैं कि उन्हें गधिया सिक्के कहा जाता है, क्योंकि ये अस्पष्ट चिह्न गधे के मुँह सा दिखाई देता है। ये सिक्के ११वीं तथा १२वीं सदी तक प्रचलित रहे परन्तु पीछे से इनको तोल के रूप में काम में लिया जाने लगा।

एक अन्य संज्ञा के सिक्के जिन्हें 'आदि वराह द्रम्म' भी कहा गया है राजस्थान में पाये गये हैं। इनके प्रचलन का श्रेय मिहिरभोज व विनायकपाल देव को है, जो कन्नौज के सम्राट् थे। अल्लाउद्दीन खिलजी की दिल्ली टकसाल के अधिकारी ठक्कुर फेरू ने अपनी 'द्रव्य परीक्षा' नामक पुस्तक में इन शासकों के सिक्कों को 'वराही द्रम्म' और 'विनायक द्रम्म' कहा है। कुछ सिक्के विनायकपाल के समय के मिले हैं जिन पर 'श्री मदादिवराह' का लेख तथा नरवराह की मूर्ति अंकित है।

चौहानों के सिक्के[११]

राजस्थान में निखात् निधि के रूप में साँभर-अजमेर तथा जालोर-नाडोल के चौहान नरेशों के कई चाँदी व ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनका समय ११वीं से १३वीं सदी तक का आंका गया है। चौहानों के शिलालेखों में इन सिक्कों के लिए द्रम्म, विंशोपक, रूपक, दीनार आदि नामों का प्रयोग किया गया है। हर्षनाथ का लेख (सं. १०३०), मेनाल अभिलेख (सं. १२२५), धोड़ अभिलेख (सं. १२२८) तथा जालोर का लेख (सं. १३३१) इन लेखों में प्रमुख हैं। 'पृथ्वीराज विजय' में भी वर्णित है कि अजयराज ने भी सम्पूर्ण पृथ्वी को रूपकों तथा चाँदी के सिक्कों से परिपूर्ण कर दिया। इन सिक्कों पर वीसलप्रिय द्रम्म, अजयदेव द्रम्म, अजयप्रिय रूपक आदि नागरीलिपि में अंकित मिलता है। चौहान नरेशों में अजयराज, सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय, तथा जालोर शाखा के कीर्तिपाल और नाडोल के केल्हण के सिक्के विशेष प्रसिद्ध हैं। इन सिक्कों में विशेष रूप से अग्रभाग में वृषभ और अश्वारोही के चित्र अंकित मिलते हैं और पृष्ट भाग पर राजाओं के नाम नागरीलिपि में लिखे प्राप्त होते हैं। ऐसे सिक्के अजमेर म्यूजियम एवं कलकत्ता म्यूजियम में सुरक्षित देखे गये हैं। अजयदेव की रानी सोमलेखा द्वारा चांदी की

---

११. थाः पठान्स, पृ. ६३: कनिंघम, पृ. ८३; राजकुमार रायः भारतीय इतिहास के स्रोत सिक्के, पृ. ७३, एपिग्राफिया इन्डिका, जि. ३३, पृ. ४६–४६; इण्डियन एण्टीक्वेरी, वर्ष १६१३, पृ. ५७–६७।

मुद्रा का तथा सोमेश्वर द्वारा वृषभशैली तथा अश्वारोहीशैली के सिक्कों का प्रचलन प्रमाणित है।

पृथ्वीराज की पराजय के बाद चौहान सिक्कों के अनुरूप मुहम्मद गोरी ने देवनागरी में अपना नाम 'मुहम्मद बिन साम' अंकित कराकर सिक्के तैयार करवाये जिससे विदेशी शासक प्रजा के प्रिय बन सके। इस्लाम मतानुयायी होते हुए भी उसने नन्दि को सिक्कों पर अंकित करवाया।[११] इन अंकनों के अतिरिक्त पृष्ट भाग पर देवनागरी में हम्मीर शब्द को भी अंकित करवाया गया। इन सिक्कों के पट की ओर अरबी में 'अस्सुलतान-अल-आजम-मुईनुद्दीन-वा-दीन-अबूमुजफ्फर' अंकित रहता था। राजस्थान के विभिन्न राज्यों के भी अपने सिक्के रहे हैं जिनका अध्ययन भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। ऐसे राज्यों में मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, जयपुर, भरतपुर, अलवर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, बूंदी, कोटा, किशनगढ़, जैसलमेर, करौली, धौलपुर, सिरोही आदि प्रमुख हैं।

मेवाड़ में चलने वाले सिक्के[१२]

इस राज्य में प्राचीन काल से ही सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के चलते थे। इनमें कुछ सिक्के मिलावट वाले धातुओं के भी होते थे। वेब के अनुसार ये सिक्के 'इंडोसेसेनियन' शैली के थे। चाँदी के सिक्के, द्रम्म, रूपक और ताँबे के कर्षापण कहलाते थे। पुराने सिक्कों पर कोई लेख नहीं रहता था, परन्तु इन पर मनुष्य, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, धनुष, वृक्ष आदि का चिह्न रहता था। वर्तमानकाल तक चलने वाला 'ढीगला' इसी परम्परा का द्योतक माना गया है। इनका आकार भद्दे ढंग का चौखूंटा होता था और उन्हें किनारों पर कुछ गोल कर दिया जाता था। ऐसे चांदी और ताँबे के सिक्के 'नगरी' (मध्यमिका) में अब भी मिलते हैं। इन पर 'शिवि जनपद' भी अंकित रहता है। इन अक्षरों की आकृति से नगरी के सिक्कों का समय विक्रम संवत् पूर्व की तीसरी शताब्दी आँका जाता है। वहीं से यूनानी राजा मिन्नेंडर के 'द्रम्म' भी प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार पश्चिमी क्षत्रपों के कई चाँदी के सिक्के तथा गुप्तों की सोने की मुद्राएं कई परिवारों के निजी संग्रह में देखने को मिलते हैं जिससे प्रमाणित होता है कि इन सिक्कों का प्रचलन मेवाड़ में रहा हो।

हूणों द्वारा प्रचलित चाँदी और ताँबे के सिक्के जिन्हें 'गधिया मुद्रा' कहा जाता है मेवाड़ के कई कस्बों के बाजारों से उपलब्ध होते हैं। वेब के विचार से ये मुद्रा फारस के बादशाह बहराम द्वारा प्रचलित की गई थी और धीरे-धीरे इसका स्वरूप 'गधिया' मुद्रा में परिणित हो गया। वैसे तो इस मुद्रा को 'गधिया मुद्रा' इसलिए कहा जाता है कि उस पर अंकित मूर्ति गधे के मुंह की भाँति दिखाई देती

---

१२. वेब : करेन्सीज ऑफ दी हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ. ४–५;
ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ. २३;

है। परन्तु वास्तविकता यह है कि न तो यह फारस की मुद्रा का रूपान्तर है और न यह गधे के मुंह वाली है, यह तो वह मुद्रा है जिस पर क्षत्रप, प्रतिहार आदि शासकों की मुद्रा के चिह्नों को पतला कर दिया गया और ऐसी स्थिति में वृषभ, वराह, देवी आदि का अंकन स्पष्ट नहीं आ सका है। आगे चलकर इन अस्पष्ट चिह्नों को गधिया कहा जाने लगा। ये मुद्राएं मेवाड़ में ही नहीं वरन् नरहद, रैणी, सिरोही, त्रिभुवनगिरी आदि कई स्थानों में चलती रही जिनका उल्लेख फेरू ने भी किया है। ये मुद्राएं 'गधिया' शैली की हैं। जब इनका चलना बन्द हो गया तो व्यापारी आजतक इसका प्रयोग तोल के रूप में करते रहे।[13] गधिया मुद्रा का उद्भव आहड के गर्धभ्सेन से भी कुछ लोग मानते हैं जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

मेवाड़ राज्य के प्रथम संस्थापक राजा गुहिल ने अपने नाम के सिक्कों का प्रचलन किया जो गुहिल के २००० चाँदी के सिक्कों से, जो आगरा के बड़े संग्रह से प्राप्त हुए हैं, प्रमाणित है। 'गुहिलपति' लेख वाले सिक्कों से भी गुहिल द्वारा सिक्के चलाना माना जाता है। शील का ताँबे का सिक्का तथा बापा की सुवर्ण मुद्रा भी इस वंश के राजाओं की प्राचीन मुद्रा में स्थान रखती हैं। पारूथ द्रम्मों को, जिनका प्रचलन मालवा के परमारों द्वारा किया गया था, मेवाड़ में लेन-देन के काम में लाए जाते थे। यह मुद्रा चाँदी की होती थी और उसे आठ द्रम्मों की कीमत के बराबर मानी जाती थी। नरवर्मन ने इस प्रकार के दो पारूथ चित्तौड़ के करके नाके से दैनिक रूप से अनुदान के रूप में देने का आदेश दिया था। तेजसिंह (१२६१–१२७० ई.) के काल में ताँबे के द्रम्मों का मेवाड़ में चलना स्पष्ट है।[14]

मुस्लिम विजय से १२वीं सदी से 'मुहम्मद बिन साम' व सुरतिन समरुदीन' नाम वाले तथा अश्वारोही व नन्दी शैली के मिलेजुले सिक्के राजस्थान में पाए जाते हैं जिनका प्रचलन मेवाड़ में भी था। इन सिक्कों को 'टका' और 'दिरहम' नाम से पुकारा जाता था। चाँदी के सिक्कों का वजन १७० ग्रेन से १४५ ग्रेन तक एवं ताँबे के सिक्के का वजन ५७० ग्रेन के लगभग था।

महाराणा कुम्भा के चाँदी और ताँबे के सिक्के मिले हैं जो गोल एवं चौकोर थे और जिनका वजन विभिन्न था। इन पर १५१० एवं १५२३ वि. तथा कुम्भकर्ण,

---

१३. जरनल ऑफ न्युमिसमेटिक, भा. ८. पृ. ६६, १५७ आदि; बिबलियोग्राफी ऑफ इण्डियन कोयन्स, भा. १, पृ. ८८–८६; गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृ १३३–१३४।

१४. खरतरगच्छ पट्टावली, पृ. ८, १०, ३०; जरनल ऑफ न्युमिस भा. २०, पृ. १५, २६, ३०, ३१, ओझा, उदयपुर, भा. १ पृ. ४०८, राजस्थान थ्रू दि एजेज, द. ५००–०१.

गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भा. १, पृ. १३२–१३३।

कुम्भलमेरु अंकित मिलता है। उसके द्वारा मालवा के सुल्तान को चाँदी के अपने नाम के टंका देने का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार महाराणा संग्रामसिंह के ताँबे के सिक्के मिले हैं जिनपर एक ओर 'संग्रामसिंह' एवं १५८० तथा १५७५ अंकित हैं और दूसरी ओर भद्दे फारसी के अक्षर तथा स्वस्तिक या त्रिशूल बने हुए हैं। इन सिक्कों का उल्लेख पिन्सेप व कनिंघम ने किया है। इनका वजन १२६ ग्रेन से १४४ ग्रेन एवं ५० ताँबे की मुद्रा का मोल एक रुपया के बराबर आंका जाता था। महाराणा रत्नसिंह, विक्रमादित्य, बनवीर तथा उदयसिंह के भी सिक्के लगभग इसी शैली के मिले हैं[१५]

उदयसिंह के राज्य काल में ही अकबर ने चित्तौड़ विजय के उपलक्ष में मुगल मुद्रा का प्रचलन चित्तौड़ से प्रारम्भ किया। इस पर 'गा' अक्षर का चिह्न लगाया गया जो चित्तौड़ विजय के फलस्वरूप हत्या का द्योतक था। संभवतः अकबर द्वितीय ने इसी आशय का एक सिक्का चलाया हो जिस पर एक ओर फारसी में अंकित था 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजी अकबरशाह'। इसके दूसरी ओर 'जरब सन् १४ जूलूस मैमनत मानूस गा' अंकित था। इस सिक्के का वजन १७६ ग्रेन था और उस पर एक झाड़ का चिह्न भी था। चित्तौड़ की टकसाल के अकबर के ही सिक्के निकलने लगे। जहाँगीर तथा पिछले सम्राटों के भी सिक्के यहाँ बनने लगे जिन्हें 'सिक्का एलची' कहते थे। मुहम्मदशाह के समय से मेवाड़ में चित्तौड़, भीलवाड़ा और उदयपुर की टकसाल से स्थानीय सिक्का बनने लगा जिसको 'चित्तौड़ी' 'भीलाड़ी' और 'उदयपुरी' रुपैया कहते थे। इस पर शाहआलम का लेख फारसी में रहता था। महाराणा स्वरूपसिंह ने अंग्रेजों से संधि कर 'स्वरूपशाही' रुपया चलाया। इसके एक तरफ 'चित्रकूट-उदयपुर' और दूसरी ओर 'दोस्ति लंधन' रहता था। इसी रुपये की अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी तथा एक अन्नी भी चलती थी। स्वरूपशाही सुवर्ण मुहर का भी प्रचलन था जिसका वजन १०० ग्रेन होता था। 'चाँदोड़ी' सुवर्ण मुहर भी स्वरूपसिंह के समय की थी जिसका वजन ११६ ग्रेन होता था, परन्तु इसमें मिलावट अधिक होती थी। 'शाहआलमी' चित्तौड़ी रुपया भी होता था जो चाँदी का रहता था। इसी तरह एक किस्म 'उदयपुरी' रुपये की भी होती थी जिसकी कीमत कभी १२½ आने कल्दार के बराबर आती थी। महाराणा भीमसिंह की बहिन चन्द्रकुंवर बाई के स्मरण में उक्त महाराणा ने 'चाँदोड़ी' रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दो अन्नी, और एक अन्नी चलाई जिन पर फारसी अक्षर रहते थे। महाराणा स्वरूपसिंह ने फारसी के बदले इन पर बेल-पत्ती के चिह्न लगवाये। इस मुद्रा की कीमत चाँदी के भाव से बदलती रहती थी और कभी-कभी एक चाँदोड़ी रुपये का दाम ५-६ आना ही रह जाता था। दान-पुण्य, विवाह, न्योछावर, इनाम आदि कामों

१५ वेब–दि करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ. ६-७, ओझा. उदयपुर, भा १, पृ. २३।

में 'चांदोड़ी' रुपया खूब चलता था।

मेवाड़ में तांबे के भी कई सिक्के चलते थे। इनको 'ढींगला', 'भिलाड़ी, 'त्रिशूलिया', 'भींडरिया', 'नाथद्वारिया' आदि नामों से जाना जाता था। ये विभिन्न आकार तथा तोल एवं मोटाई के होते थे। साधारणत: एक रुपये के १६२ ढींगले होते थे और भीलाडी आदि ४८ पैसे का एक रुपया होता था।

मेवाड़ के जागीरदारों में सलुम्बर, भींडर और शाहपुरा की भी मुद्राएं देखी गई हैं। सलुम्बर की तांबे की मुद्रा को 'पदमशाही' कहते थे जिसका प्रचलन १८७० तक रहा। भींडर की मुद्रा को 'भींडरिया पैसा' कहते थे जिसकी कीमत चार पाई के बराबर थी। शाहपुरा में भी सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्के बनते थे जिन पर शाहआलम तथा अन्य चिह्न अंकित रहते थे। यहां के सोने और चाँदी के सिक्के को 'ग्यार सनह' और ताँबे के सिक्के को 'माधोशाही' कहते थे।[१६]

डूंगरपुर राज्य के सिक्के[१७]

डूंगरपुर के शासकों का यह कहना है कि राज्य को पुराने समय से सिक्के बनाने का अधिकार था। कर्नल निक्सन का कहना है कि इस राज्य में टकसाल थी और चाँदी का 'त्रिशूलिया' 'पत्रिसीरिया' सिक्का यहां बनता था। इसी कथन के आधार पर वेब ने इसकी जाँच-पड़ताल की परन्तु उसे ऐसी शैली के कोई सिक्के नहीं मिले। वहां के महारावल ने भी इसके समर्थन में कोई सिक्का नहीं बतलाया। वैसे अबतक डूंगरपुर राज्य का कोई चाँदी का सिक्का नहीं मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां मेवाड़ के पुराने 'चित्तौड़ी' और प्रतापगढ़ के 'सालिमशाही' रुपयों का प्रचलन था। इस आधार पर वेब की मान्यता है कि डूंगरपुर में पुराना 'चित्तौड़ी' रुपया कभी बनता हो।

जो सिक्के यहां चलते थे उनके भाव में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते थे जिससे व्यापार में बड़ी हानि होती थी। राज्य ने १६०४ ई० में इस असुविधा को समाप्त करने के लिये अंग्रेजी सरकार से समझौता किया जिसके द्वारा १२५ रु० 'चित्तौड़ी' और २०० रु० 'सालिमशाही' के बजाय १०० रु० कलदार देना निश्चित किया। तभी से राज्य में कलदार का प्रचलन आरंभ हो गया। अलबत्ता यहां की टकसाल में ताँबे के पैसे बनते रहे जिनपर एक तरफ नागरी में 'सरकर गरपर' और दूसरी ओर संवत् का अंक १६१७, उसके नीचे तलवार का चिह्न और नीचे झाड़ का चिन्ह बना रहता था। इसका तोल १६० ग्रेन था।

---

१६. वेब-दि करेन्सी ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ० ७-१६। ओझा, उदयपुर, भा. १, पृ. २३–२४।

१७. वेब : करेन्सीज ऑफ हिन्दू स्टेट्स ऑफ़ राजस्थान, पृ० २८–३०; ओझा : डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १३; गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भा. १, पृ० १३६।

प्रतापगढ़ राज्य के सिक्के[१८]

प्रतापगढ़ राज्य में पहले स्वतन्त्र ढंग का सिक्का नहीं चलता था। माण्डू और गुजरात के सिक्के यहां चला करते थे। जब माण्डू और गुजरात अकबर बादशाह के राज्य के अंग बन गए तो यहां भी मुगलकालीन सिक्के चलने लगे। अन्य राज्यों की भाँति शाहआलम ने उसके नाम के सिक्के चलाने की आज्ञा महारावल सालिमसिंह को दी और ई. स. १७८४ से प्रतापगढ़ की टकसाल में चाँदी के सिक्के बनने लगे। इस सिक्के को 'सालिमशाही' कहते थे जिसके एक तरफ 'सिक्कह मुबारक बादशाहा गाजी शाहआलम, ११९९' और दूसरी ओर जर्ब २५ जुलूस मैमनत मानूस' फारसी में अंकित होने लगा। आमतौर पर यह माना जाता था कि सालिमसिंह के समय से इस सिक्के का प्रचलन होने से इसे 'सालिमशाही' कहते हैं, परन्तु इस पर सालिमसिंह का नाम न होकर शाहआलम का नाम है। बतलाया जाता है कि यह सिक्का बाँसवाड़ा में भी कुछ समय बनाया गया था। कुछ भी हो इस सिक्के का प्रचलन डूंगरपुर, बाँसवाडा, उदयपुर, झालावाड़, नींवहेड़ा, रतलाम, जावरा, सीतामजू, ग्वालियर, मन्दसोर आदि में था। ई. स. १८१८ की संधि से शाहआलम का नाम निकालकर उसके स्थान पर 'सिक्का मुबारिकशाह लन्दन, १२३६' अंकित किया गया। इस सिक्के को नया सालिमशाही' कहते थे। फिर इसके अठन्नी, चवन्नी तथा दुअन्नी भी बनने लगीं। जब आस-पास कल्दार का प्रचलन हो गया तो नये 'सालिमशाही' की कीमत घटकर अठन्नी तक रह गई। १९०४ ई. से ऐसे सिक्कों के बजाय यहाँ कल्दार का प्रचलन आरम्भ हो गया। प्रतापगढ़ में पहले ताँबे के सिक्के भी चलते थे जिसके एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर कुछ बिंदियां तथा कोई अस्पष्ट चिह्न होता था। पीछे से चलाये गये ताँबे के सिक्के पर एक तरफ नागरी में प्रतापगढ़ एवं संवत् १९४३ तथा दूसरी तरफ दो तलवारों के बीच सूर्य का चिह्न अंकित रहता था। इसका तोल १२० ग्रेन था।

बाँसवाड़ा राज्य के सिक्के[१९]

बाँसवाड़ा राज्य भी सिक्के बनाने का अपना अधिकार मानता था, परन्तु प्रचलन के विचार से यहाँ बादशाह शाहआलम (दूसरा) फारसी लेखवाला 'सालमशाही' रुपया चलता था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि बाँसवाड़े में टकसाल थी, जैसाकि कई सिक्कों पर 'जर्ब बाँस (वाड़ा)' लेख अंकित पाया गया है। इतना तो स्पष्ट है

---

१८. वेब : करेन्सीज ऑफ दी हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना पृ. २३-२६; ओझा : प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. १३-१५; गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भा. १, पृ. १३५।

१९. वेब : करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना पृ० ३३-३४ ओझा : बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११-१२; गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भा० २, पृ० १३६

कि यहाँ ताम्बे के सिक्के अवश्य बनते थे जिनमें एक तरफ 'श्री' के नीचे 'रयासत वांसवाला' संवत् और दूसरी तरफ रेखाएं एवं बिंदियों से बनी हुई हुंडी के चित्र दिखाई देते हैं। कुछ पूछताछ के बाद अंग्रेजी सरकार ने राज्य में अन्य राज्यों के सिक्कों के प्रवेश को बन्द कर दिया, परन्तु १८७० ई० में महारावल लक्ष्मणसिंह ने सोने, चाँदी और ताम्बे के सिक्के बनवाना आरम्भ किया। इन सिक्कों पर दोनों ओर कुछ सांकेतिक अक्षर अंकित करवाये गये जो शिव के नाम के सूचक माने जाते हैं। इन सिक्कों को 'लक्ष्मणशाही' सिक्के कहते हैं। उक्त महारावल ने विशुद्ध चाँदी के रुपये. अठन्नियाँ और चवन्नियाँ भी बनवाई थी। उनका विश्वास था कि पुण्यादि कार्यों के लिए विशुद्ध चांदी का ही प्रयोग होना चाहिये। १९०४ ई० में सालिमशाही एवं लछमणशाही सिक्के बन्द करवा दिये गये और उनके स्थान में कलदार का प्रचलन हो गया। १८९९ के एक खरीते से मालूम होता है कि 'लक्ष्मणशाही' ताम्बे के पैसे का वजन ७ माशा था और ८० ऐसे पैसों का दाम एक सालिमशाही या एक उदयपुरी रुपया था। ऐसे जो सिक्के उपलब्ध हो सके हैं उनका वजन १२० ग्रेन पाया गया है।

जोधपुर राज्य के सिक्के[२०]

मारवाड़ के क्षेत्र में प्राचीन काल से चौकोर और फिर से कुछ गोलाकार सिक्कों का प्रचलन था। इन सिक्कों को चिह्नांकित अर्थात 'पंच मार्कड्' सिक्के कहते थे जिन पर कुछ लिखा हुआ नहीं होता था वरन् उन पर वृक्ष, पशु, धनुष, सूर्य, पुरुष आदि के चिह्न बने होते थे। जब यहाँ क्षत्रिपों का प्रभाव था 'द्रम्म' इस भाग में चलते थे। गुप्तों के शासन काल में गुप्तों के सिक्के यहाँ चलते थे। हूणों के प्रभाव से यहाँ ईरान के ससानियन सिक्के यहां चलने लगे। ये सिक्के पतले परन्तु आकृति में बड़े होते थे। इनके एक तरफ राजा का चेहरा व पहलवी लिपि में लेख रहता था और दूसरी तरफ अग्निकुण्ड एवं दोनों ओर रक्षकों की मूर्तियाँ बनी रहती थीं। जब समय बीतता गया इस शैली के सिक्के पतले व आकार में छोटे होते गये और उन पर राजा की आकृति भद्दे रूप में बनने लगी जो ठीक तरह से पहचानी नहीं जाती थी। ये आकृति गधे के खुर की भाँति दिखाई देती थी अतएव उसे 'गधिया' मुद्रा कहा जाने लगा। प्रतिहारों के काल में राजा भोजदेव ने जिसे आदिवराह भी कहते हैं अपने सिक्के चलाए जिसके एक ओर 'श्री मदादिवराहदेव' लेख और दूसरी ओर आदिवराह की मूर्ति बनी रहती थी। जब चौहानों का प्राबल्य बढ़ा तो मारवाड़ में अजयदेव, उसकी राणी सोमलदेवी, सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज के सिक्के चलने लगे। चौहानों के पतन के फलस्वरूप दिल्ली के सुल्तानों और उनके पतन के पश्चात् मुगलों के सिक्के यहां चलते थे। परन्तु ऐसी भी मान्यता है कि जब राठौड़ कन्नोज से मारवाड़ में आये

---

२०. वेब : दि करन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ दि राजपूताना, पृ. ३७–५२
ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भा. १, पृ. १८–२२;
गोपीनाथ शर्मा ; राजस्थान का इतिहास, भा, १, पृ. १३४–१३५।

तो उन्होंने गढ़वालों की शैली के सिक्कों का प्रचलन यहाँ किया। ऐसे सिक्कों के एक तरफ भद्दे आकार में बैठी हुई राणी की मूर्ति और दूसरी ओर नागरी में श्रीमद् गोविन्दचन्द्रदेव, श्री अजयदेव, श्रीजद जयदेव अंकित रहता था। मैंने भी गजशाही सिक्कों का उल्लेख हकीकत बही में देखा है। टॉडके अनुसार अजीतसिंह ने भी औरंगजेब की आज्ञा से १७२० ई० में अपने नाम का सिक्का चलाया था।

मुगली सल्तनत के निर्बल होने पर राजस्थान के नरेशों ने बादशाह के नाम के सिक्के चलाने के हेतु अपने राज्य में टकसालें खोलने का आदेश प्राप्त किया। महाराजा विजयसिंह ने भी इसी समय अपने राज्य में टकसाल खोली जिसमें सोने, चाँदी और ताम्बे के सिक्के बनने लगे। ये सिक्के १७६१ से १८५८ तक चलते रहे जिन पर फारसी लिपि में 'सिक्कह मुबारक बादशाह आलम' और दूसरी ओर 'मैमनत मानूस जर्ब अल् जोधपुर' लेख अंकित रहते थे। १८५८ ई० से विक्टोरिया का नाम शाहआलम के स्थान में अंकित होने लगा। परन्तु सोजत की टकसाल से निकलने वाले 'लल्लू-लिया रुपये' पर १८५६ में भी शाहआलम का नाम चलता रहा। विजयशाही सिक्के सोने, चाँदी और ताम्बे के बनते थे। ताम्बे के सिक्कों पर हिजरी सन् एवं 'दारुल मंसूर जोधपुर' तथा 'जुलूस मैमनत मानूस जर्ब' अंकित रहते थे। इन पर भाड़ और तल-वार के चिह्न भी बनते थे।

इन सिक्कों के लिए जोधपुर, नागौर, पाली और सोजत में टकसालें थी। सोजत की टकसाल १८८८ ई० तथा नागौर की टकसाल १८७२ में बंद करदी गई और जोधपुर एवं पाली की टकसालें चलती रहीं। प्रत्येक टकसाल के विशेष चिह्न होते थे तथा प्रत्येक टकसाल का दरोगा अपना विशेष चिह्न उन पर अंकित करवाता था जिससे उसके सम्बन्ध की जिम्मेदारी उसकी मानी जाती थी। उदाहर-णार्थ जोधपुर के दरोगा कनीराम ने वहां की टकसाल की मुद्रा पर 'ग' अंकित करवाया था जो ग से आरम्भ होने वाले 'गनश्याम' का द्योतक था। व्यास किशन-दास ने जो सोजत की टकसाल का दरोगा था मुद्रा पर 'क' का चिह्न लगवाता था। पाली का दरोगा मंगलचन्द बालाजी की स्मृति में 'बा' का चिह्न मुद्राओं पर लगवाता था। इन मुद्राओं पर भाड़ और तलवार के चिह्न भी होते थे जिन्हें तुर्रा एवं खांडा कहते थे। विभिन्न टकसालों के तुर्रा और खांडे में भेद रखा जाता था जिससे स्थान विशेष का पता लग सके। कभी-कभी अधिकारी सिक्कों पर फूल, कटारी, तीर, भाला तथा २२ का अंक भी अपने विशेष चिह्न के रूप में मुद्राओं पर बनवा देते थे।

सोने के सिक्कों को मोहर कहते थे जो जोधपुर के टकसाल में बनती थीं और जिनका प्रचलन १७८१ ई० से माना जाता है। इनमें भी 'आधी' एवं 'पाव' मोहर भी होती थी। विजयसिंह की मोहर पर 'शाहआलम' तथा तख्तसिंह की मोहर पर विक्टोरिया का नाम व तख्तसिंह का नाम अंकित रहता था। भाड़ और तलवार का अंकन चाँदी के सिक्के की तरह मोहर पर भी रहता था। इनका तोल

१६६.६ ग्रेन रहता था और उनमें विशुद्ध सोने का प्रयोग होता था।

चाँदी के सिक्कों में 'विजयशाही' की शैली के सिक्के महाराजा भीमसिंह और मानसिंह के समय में बनते रहे। ताँबे के सिक्कों पर मुहम्मद अकबरशाह का नाम अंकित होने लगा। सिपाही विद्रोह के बाद महाराजा तख्तसिंह और जसवंतसिंह के समय के सोजत टकसाल में बनाये गये सिक्कों पर 'श्री माताजी' एवं 'श्रीमहादेव' अंकित होता था और दरोगाओं के निश्चित अक्षर या सांकेतिक चिह्न भी बनाये जाते थे। सिक्कों के लिए 'सन्दा' शब्द का भी प्रयोग किया जाता था।

कुचामन के ठिकाने की टकसाल में बनने वाले रुपये, अठन्नी और चवन्नी की कीमत कम होती थी जिसे औपचारिक रूप में लेने-देने के काम में लाया जाता था। इसे अजमेर में भी बनाया जाता था। नाजिर हरकराम की दरोगाई में बनने वाले सोजत के सिक्के को 'लिल्लूलिया' या 'लल्लूशाही' सिक्का कहते थे जिसमें मिलावट होने से कम दामों में लिया जाता था। इसका प्रचलन १८५६ में हुआ था। १८६६ ई० में अनारसिंह की दरोगाई में बनने वाला सिक्का 'रुरिया रुपया' कहलाता था। इसके दाम कम आते थे। इसकी पहचान 'रा' अक्षर से होती थी जो राधा नामक दासी का भी सूचक माना जाता है। ताँबे के सिक्के को 'ढब्बूशाही' एवं 'भीमशाही' कहते थे। इसमें भी शाहआलम और विक्टोरिया के नाम अंकित रहते थे। ऐसे एक सिक्के की कीमत लगभग ६ पाई के बराबर होती थी।

धीरे-धीरे जब इन सिक्कों के अक्षर घिसने लगे और अंग्रेजों की नीति इन सिक्कों को बन्द करने की हो गई तो मारवाड़ में १६०० से पुराने सिक्के चलने बन्द कर दिये गये और इनके बजाय कलदार का प्रचलन हो गया।

बीकानेर राज्य के सिक्के[२१]

मारवाड़ की भाँति यहां भी प्राचीन काल में चिह्नांकित (Punch marked) और फिर योधेय और तत्पश्चात् गुप्ताओं, प्रतिहारों, चौहानों आदि के सिक्के चलते रहे। मुसलमानों के राज्य की स्थापना के साथ यहां भी पूर्व मध्यकालीन सिक्कों का प्रचलन हुआ। मुगलों के राज्य काल में मुगल सम्राटों के सिक्के यहां चलते थे। अन्य देशी राज्यों की भाँति सर्वप्रथम महाराजा गजसिंह को बादशाह आलमगीर दूसरे से सिक्के बनाने की सनद प्राप्त हुई। संभवतः १७५६ के लगभग बीकानेर टकसाल से शाहआलम के सिक्के बनने आरम्भ हुए और उस सम्राट् का नाम सिक्कों पर १८५६ ई० तक चलता रहा। बीकानेर के कुछ शासकों ने इस शैली के सिक्कों पर अपने विशेष चिह्न भी अंकित करवाये जिससे उनके पहिचान में सुविधा होगई। गजसिंह का चिह्न 'ध्वज', सूरतसिंह का 'त्रिशूल', रतनसिंह का 'नक्षत्र', सरदारसिंह

---

२१. वेब : दि करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना पृ० ५५–६३; ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, भा. १, पृ० ३८–४१। गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भा० १, पृ० १३५।

का 'छत्र', डूंगरसिंह का 'चँवर' और गजसिंह का चिह्न 'मोरछल' था।

कप्तान वेव का तो कहना है कि बीकानेर राज्य में सोने का सिक्का नहीं बना। परन्तु ओझाजी का कहना है कि राज्य में सोने के सिक्के बनते थे। महाराजा रतनसिंह, सरदारसिंह तथा डूंगरसिंह के सिक्के ओझाजी को देखने को मिले जिन पर अंकन आदि चाँदी के सिक्कों की शैली के अनुसार था। महाराजा डूंगरसिंह के सोने के सिक्के के दूसरी तरफ 'जर्ब श्री बीकानेर' एवं पताका, त्रिशूल, छत्र, चँवर और किरणीया अंकित हैं। इसके एक तरफ के छोटे दायरे के अन्दर 'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया' सुन्दर अक्षरों में खुदा हुआ होता था।

गजसिंह के समय के चाँदी के सिक्कों पर एक ओर 'सिक्कह मुबारक साहब किरांसानी आलम बादशाह गाजी', और दूसरी ओर 'सन् ११२१ जुलूस मैमनत मानूस' लेख फारसी में होता था। गदर के बाद वाले सिक्कों पर एक तरफ 'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया १८५९' तथा दूसरी तरफ "जर्ब श्री बीकानेर १९१६' लेख फारसी लिपि में होता था। महाराजा गंगासिंह के पहले के सिक्कों पर भी वही लेख है, जो महाराजा डूंगरसिंह के सिक्कों पर था, परन्तु उन पर मोरछल का चिह्न विशेष रूप में रहता था। महाराजा सरदारसिंह और डूंगरसिंह के समय में चाँदी की अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी बनने लगी थीं। चाँदी के सिक्कों के वजन १७५ से १७७ ग्रेन के बीच में देखे गये थे। गजसिंह, सूरतसिंह, रतनसिंह, सरदारसिंह एवं गंगासिंह के समय के ताँबे के सिक्के भी देखने को मिलते हैं। इनका वजन १४ एवं ७ माशा था और क्रमशः इनका दाम ४ पाई और दो पाई के बराबर था। नजर के सिक्कों का भी यहां प्रचलन था।

ई० सं० १८९३ में राज्य का अंग्रेजी राज्य से सिक्कों के सम्बन्ध में समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार अंग्रेजी राज्य के प्रचलित रुपये जैसे चांदी के रुपये कुछ हेर-फेर के साथ बीकानेर की टकसाल में बनाये जाने लगे। इन रुपयों के एक तरफ साम्राज्ञी विक्टोरिया का चेहरा और अंग्रेजी अक्षरों में 'विक्टोरिया एम्प्रेस' तथा दूसरी तरफ मध्य में ऊपर नीचे क्रमशः नागरी और उर्दू लिपि में 'महाराजा गंगासिंह बहादुर' लिखा रहता था। उर्दू लिपि में सन् विशेष रूप से दिया जाता था। इनके किनारे पर अंग्रेजी में 'वन रुपी' और नीचे 'बीकानेर स्टेट' तथा किनारों पर मोरछल अंकित रहता था। १८९५ ई० में यहां ताँबे के सिक्के—पाव आना और अधेला बनाये गये जिनके किनारों पर अंग्रेजी में 'बीकानेर स्टेट' और मोरछल बनाया गया था। इन सिक्कों का प्रचलन अंग्रेजी सिक्कों के साथ बना रहा। परन्तु धीरे-धीरे यहां भी कलदार का प्रचलन आरम्भ हो गया।

जयपुर राज्य के सिक्के[२२]

जयपुर के आस-पास होने वाले उत्खनन से पता चलता है कि इस क्षेत्र में

---

२२. वेब : करन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ० ७१–८२।

चिह्नाङ्कित, योधेय, गुप्त, सेसेनियन, गधिया, प्रतिहार, चौहान आदि सिक्के चलते थे। जबसे कछवाहों का शासन आमेर में स्थापित हुआ तो उनके प्रारम्भिक सिक्कों का होना नहीं दिखाई पड़ता। अलबत्ता मुसलमानों के राज्य की स्थापना से यहाँ सुलतानों के सिक्कों का प्रचलन हुआ। मुगलों के सम्बन्ध से मुगली सिक्के भी यहाँ चलते थे। मुगल शासक अकबर के काल से निकट सम्बन्ध होने से सम्भवतः कछवाहों को अपने यहाँ टकसाल स्थापित करने की आज्ञा अन्य राजस्थानी राज्यों की तुलना में पहले मिली हो। इस राज्य की टकसालें आमेर, जयपुर, माधोपुर रूपास, सूरजगढ़ और चरन (खेतड़ी) में होना प्रतीत होता है। १८०२-३ ई० में सिक्के से होनी वाली राज्य की आमदनी साठ हजार रुपये मानी जाती है। यहाँ की मुद्रा को 'झाड़शाही' कहते हैं क्योंकि उसके उपर ६ टहनियों के झाड़ का चिन्ह बना रहता है।

वैसे तो यहां सुवर्ण मुद्रा का बनना अधिक नहीं दिखाई देता, परन्तु रामसिंह और माधोसिंह तथा पिछले वर्तमान कालीन शासकों के सुवर्ण के सिक्के देखे गये हैं। रामसिंह की मुहर के एक ओर 'जर्ब सवाई जयपुर सन् १८६८ बाहदी मलिका मौजमा सल्तनत इंगलिस्तान विक्टोरिया' और दूसरी ओर 'सन् ३१ जुलूस मैमनत मानुस महारावराज सवाई रामसिंहजी' अंकित था। इस पर भी छः टहनियों का झाड़ रहता था और इसका तोल १६७½ ग्रेन होता था। माधोसिंह की सुवर्ण मुद्रा भी इसी प्रकार की रहती थी सिवाय इसके कि उस पर रामसिंह के बजाय माधोसिंह का नाम रहता था।

राज्य में चाँदी की मुद्रा में रुपया, अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी होती थी। ईश्वरीसिंह की मुद्रा (१७४३ ई०) पर एक ओर 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजी मुहम्मदशाह, ११५६' और दूसरी ओर 'जर्ब सवाई जयपुर सन् २९ जुलूस मैमनत मानूस' अंकित रहता था। इसका तोल १७५ ग्रेन होता था। इसी शैली के अहमदशाह के नाम के सिक्के भी होते थे जो जयपुर में बने थे। इसी प्रकार माधोशाही रुपया भी होता था जिसमें इसी शैली से शाहआलम बहादुर का नाम खुदा होता था। जगतसिंह के लिए टॉड का कहना है कि उसने अपनी प्रेयसी रसकपूर के नाम के सिक्के भी बनवाये थे। रामसिंह ने इसी तरह के मुहम्मदशाह के नाम के सिक्कों का प्रचलन किया जिसमें झाड़ और बिन्दियों का गोलवृत्त होता था। माधोसिंह के रुपये को 'हाली' सिक्का कहते थे जिसके १०० रुपये के दाम १०१.९३९ कल्दार होते थे।

ताम्बे के सिक्के का प्रचलन १७६० ई० से होना माना जाता है। इसे पुराना झाड़शाही पैसा कहते थे। इसके एक ओर 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजीशाह आलम' और दूसरी ओर 'जरब सवाई जयपुर' अंकित रहता था। इस पर लगाया गया चिह्न झाड़ का होता था। तोल में यह सिक्का २६२ ग्रेन का होता था। ऐसा ही सिक्का जो १७८६ और १८०६ ई० में बना था उसका तोल २८० ग्रेन होता था। इसके एक ओर 'सिक्का मुबारक बादशाह मुहम्मदशाह बहादुर' और दूसरी ओर 'जर्ब सन् १२ सवाई जयपुर' अंकित रहता था। इसमें झाड़ के साथ एक मछली भी बनी रहती

थी। ३५ ऐसे ताम्बे के सिक्के का एक रुपया होता था। १८७४ से ताँबे सिक्के का वजन घटा कर ९६ ग्रेन कर दिया गया।

खेतड़ी की टकसाल में चाँदी और ताम्बे के सिक्के बनते थे। यहाँ की टकसाल को १८६९ में बन्द कर दिया गया। स्थानीय इस मुद्रा पर शाहआलम नाम बना रहता था जिसका प्रारम्भ १७५९ और १७८६ के बीच किया गया।

बूँदी की मुद्राएँ[२३]

बूँदी में सुवर्ण मुद्रा का अभाव दिखाई देता है। जो मुद्राएं बूँदी में चलती थीं उन पर शाहआलम का लेख दिखाई देता है। १९०१ तक ये सिक्के विभिन्न नाम व रूप से चलते थे। 'पुराना रुपया' १७५९ से सन् १८५९ तक प्रचलित रहा। 'ग्यारह-सना' रुपया सम्राट् अकबर द्वितीय के ११वें वर्ष से यहां चालू हुआ। यह रुपया विवाह आदि अवसरों पर लेने-देने में काम में लाया जाता था क्योंकि 'हाली' रुपये से इसकी कम कीमत थी। 'हाली' रुपये में ½ माशा मिलावट होती थी और 'ग्यारह-सना' में एक माशा मिलावट अन्य धातुओं की रहती थी। 'हाली' रुपये पर एक ओर 'सिक्का मुबारक साहिब किरन शान शाहआलम' और दूसरी तरफ 'जर्ब सन् १६ जुलूस मैमनत मानूस' अंकित रहता था। उस पर तीन बड़ा धनुष और फूल का चिह्न रहता था। तोल में वह १७१ ग्रेन का था। अकबर शाह द्वितीय के नाम का बूँदी का सिक्का भी 'हाली' की भाँति होता था, सिर्फ उसमें अकबर शाह द्वितीय का नाम रहता था और सन् १० अंकित होता था। इसमें एक छोटा झाड़ भी रहता था। 'ग्यारह-सना' में लेख वैसा ही रहता था परन्तु उसमें झाड़ के चिह्न का अभाव होता था। इसका तोल १६८ ग्रेन होता था और बूँदी सिक्के की तुलना में इसकी कीमत १४½ आना होती थी। इसी तरह १८५९ ई० से १८८६ ई० के बीच में 'रामशाही रुपया' का प्रचलन हुआ। इसमें एक ओर अंग्रेजी में 'क्वीन विक्टोरिया' का नाम और सन् का अंक लगा रहता था। कभी-कभी भूल से सनों को उलट कर बनाया जाता था (८५८१)। दूसरी तरफ इस सिक्के में नागरीलिपि में 'रंगेश भक्त बूंदीश रामसिंह १८४३' अंकित रहता था। इसका वजन १७०½ ग्रेन होता था। १८८६ में 'कटारशाही' रुपया बनाया गया जिसमें एक तरफ विक्टोरिया रानी का नाम और कटार का चिह्न और दूसरी ओर नागरी में 'बूंदीश रामसिंह १८४३' अंकित रहता था। इसका वजन १६५ ग्रेन होता था। बूंदी के कृत्रिम सिक्के अजमेर व मालवा में चलते थे, ऐसी मान्यता थी।

सन् १८९९-१९०० में बूँदी के सिक्कों की कीमत घटने लगी। यहांतक कि १६२ बूँदी के सिक्के १०० कलदार के बराबर हो गये। १९०१ ई० में बूंदी दरबार ने कलदार के प्रचलन के साथ 'चेहरे शाही' रुपये के प्रचलन की घोषणा

---

२३. वेब : करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ० ८५-८८ गहलोत : राजपूताने का इतिहास, भा-२, पृ. १८-१९।

करदी। यह रुपया पूर्ण चाँदी का था और उसकी कीमत १३$\frac{१}{८}$ कलदार की समता का था। १९२५ ई मे अंतिम बार 'चेहरे शाही' रुपया बना तदनन्तर कलदार का प्रचलन रह गया।

ताँबे के सिक्के में पुराना बूँदी का पैसा चलता था जिस पर चाँदी के सिक्के का ठप्पा होता था। ये पैसे चौकोर और कुछ ठीक गोलाकार होते थे जिनका वजन क्रमशः १३५ और २७०-४ ग्रेन रहता था। ३२ बड़े पैसे का एक रुपया होता था। १८५९ से नया बूँदी का पैसा चला। इस पर भी चाँदी के सिक्के जैसे अंकन रहते थे। १८६५ में चलने वाले ऐसे पैसों का वजन २७० ग्रेन और १८७७ में चलने वाले का १७० ग्रेन था।

कोटा राज्य के सिक्के[२४]

कोटा क्षेत्र में भी पहिले गुप्तकालीन और हूणों के सिक्कों का प्रचलन था। मध्यकालीन युग में यहाँ माण्डू और दिल्ली के सुल्तानों के सिक्के चलते रहे। अकबर के राज्य-विस्तार के साथ यहाँ मुगलकालीन सिक्कों का प्रवेश हुआ। प्रिन्सेप के अनुसार राज्य में सुवर्ण मुद्रा बनती थी जिन पर सन् का अंकन और झाड़ एवं फूल बने रहते थे। चाँदी के सिक्के के एक तरफ 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजी शाहआलम बहादुर' और दूसरी तरफ 'जर्ब सन् जुलूस मैमनत मानूस' एवं फूल, नक्षत्र और तिवड़ा धनुष बना रहता था। इसका वजन १७१ ग्रेन होता था। सन् १७८८ में मुहम्मद बीदारबक्ष के नाम का सिक्का १७५ ग्रेन का बना। रानी के नाम के सिक्के भी साधारण व नजर के बनाए गए थे और उनकी अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नियाँ होती थीं। ऊपर की भाँति उन पर लेख होता था। यहाँ पहिले 'हाली' और 'मदनशाही' सिक्कों का भी प्रचलन था। सौ कलदार की कीमत ११४ 'हाली' या ११८ 'मदनशाही' रुपये के बराबर थी। १९०१ से यहाँ अंग्रेजी सिक्का जारी कर दिया गया। यहाँ ताँबे के भी सिक्के बनते थे जो चौकोर आकार के होते थे। जिनका वजन २७८ ग्रेन और २८२ ग्रेन होता था। ऐसे ३४ ताँबे के सिक्के एक रुपये के बराबर होते थे। चाँदी के सिक्कों का प्रचलन अजमेर में भी था। यहाँ का रुपया कोटा, गागरोन एवं झालरापाटन में बनता था।

किशनगढ़ राज्य के सिक्के[२५]

इस राज्य का अपना सिक्का, अन्य राज्यों की भाँति, शाहआलम के नाम का था। सोने के सिक्के का तोल ११ माशा और २$\frac{१}{४}$ रत्ती था। चाँदी के सिक्के का भी यही वजन था, अलबत्ता उसमें दो माशा मिलावट होती थी। इन सिक्कों

---

२४. वेब : दि करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ. ६१-६४; डा. एम. एल. शर्मा :कोटा राज्य का इतिहास, भा. १, पृ. ५; गहलोत, कोटा राज्य का इतिहास, पृ. २०; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. १३५-१३६।

२५. वेब : दि करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ, ६७-६८।

के एक तरफ 'सिक्का मुवारक वादशाह ग़ाजी' और दूसरी ओर 'जर्व सने जलूस मैमनत मानूस' एवं झाड़ का चिन्ह अङ्कित रहता था। यहाँ १६६ ग्रेन का चाँदोडी रुपया भी मेवाड़ की चाँदकुंवरी के नाम पर वनाया गया था। इसका प्रयोग दान-पुण्यादि कार्यो में होता था। वैसे तो यह सिक्का मेवाड़ के 'चांदोड़ी' सिक्के के समान ही होता था, केवल उन पर भद्दा ठप्पा होता था और रेखाएं मेवाड़ी सिक्के की अपेक्षा कुछ चौड़ी दिखाई देती थीं। पृथ्वीसिंह के नाम का, जिसके एक ओर विक्टोरिया का नाम था, यहाँ सिक्का वनाया गया था। इसका वजन भी ११ माशा २$\frac{3}{4}$ रत्ती था जिसमें २ माशा मिलावट सम्मिलित थी।

झालावाड़ राज्य के सिक्के[२६]

वैसे तो झालावाड़ में कोटा के सिक्के प्रचलित थे परन्तु फिर यहां १८३७ से १८५७ ई. तक 'पुराने मदनशाही' सिक्के चलने लगे। इसके एक तरफ 'सिक्का मुवारक वादशाह ग़ाजी मुहम्मद शाह वहादुर' और दूसरी ओर 'सन् जलूस मैमनत मानूस जर्व झालावाड़' रहता था। इसका वजन ११ माशा चाँदी और दो रत्ती मिलावट रहती थी। एक समय इसकी कीमत १ रु. १० आना कलदार में होती थी। ऐसा भी समय आया जब कलदार की तुलना में इसके पन्द्रह आने हो गये। 'नए मदनशाही' का प्रचलन १८५७ से १८९१ ई. तक रहा। इसमें मुहम्मद शाह के वजाय 'मलिका मोएज्जमा विक्टोरिया वादशाह इंगलिस्तान' रहता था। इस पर 'पंच पखड़ी' और 'फूली' का चिन्ह रहता था। इसके वाद 'हाली रुपये' हाली अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी का प्रचलन हुआ। ताँवे के सिक्कों में 'मदनशाही' पैसा एवं 'मदन शाही' टक्का चलते थे। ऐसे २३ से ३४ टक्के एक 'मदनशाही' के वरा-वर होते थे।

जैसलमेर के सिक्के[२७]

स्थानीय सिक्के के वनने के पहिले जैसलमेर में चाँदी का 'मुहम्मर शाही' सिक्का चलता था। इसके एक तरफ 'सिक्का मुवारक साहिव किरैन सानी मुहम्मद शाह वाद-शाह ११५२' और दूसरी ओर 'सन् २२ जुलूम मैमनत मानूस' अंकित रहता था। इसमें कुछ विन्दियाँ एवं किसी किसी पर नागरी के अंक भी रहते थे। १७५६ से महारावल अखयसिंह ने अपनी टकसाल में 'अखयशाही' मुद्रा को वनवाया। पहिले यह सिक्का विशुद्ध चाँदी का और थोड़ी मिलावट का होता था। आगे चलकर इसमें मिलावट वढ़ गई जिसमें लेन-देन में कठिनता का अनुभव होने लगा। ठाकुर केसरीसिंह ने इसको फिर से विशुद्ध वनाने का प्रयत्न किया परन्तु पूरी सफलता न मिल सकी। १८६० में रानी विक्टोरिया के नाम के रुपये, अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी वने। इन्हें भी 'अखय-

---

२६. वही, पृ. ९७–१००।

२७. वेव : दि करेन्सीस, पृ० १०३–१०६; गहलोत : राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ६४४।

शाही' कहते थे । इन पर रानी का नाम अंकित करवाया गया । एक समय पुराना 'अखयशाही' सिंध, भावलपुर, मलानी, जालोर और जैसलमेर में खूब प्रचलित था। १८६० ई० में यहाँ सोने की मोहर, आधी, पाव व दो आनी मोहर भी चलाई गई। मोहर का तोल १६७ ग्रेन था ।

जैसलमेर में ताम्बे का सिक्का 'डोडिया' कहलाता था जिसे १६६० ई० में प्रथम बार बनाया गया था । इसके उपर मेवाड़ी 'ढींगल' जैसे चिह्न रहते थे । ये इतने छोटे होते थे कि इनका प्रचलन कौड़ियों की भांति होता था । एक आने के ४० डोडिया आते थे । इसका वजन १८ से २० ग्रेन के लगभग होता था । धीरे-धीरे चाँदी का 'अखयशाही' विलुप्त होता चला गया और उसका स्थान कलदार ने ले लिया ।

अलवर राज्य के सिक्के [२८]

अलवर राज्य का टकसाल राजगढ़ में था जहाँ से १७७२ से १८७६ तक स्थानीय सिक्के बनते रहे । इनको 'रावशाही' रुपया कहते थे । १८७७ से राज्य और अंग्रेजी सत्ता के समझौते के अनुसार कलकत्ता टकसाल से यहां के लिए सिक्के बनते रहे और साथ ही साथ नमूने के तौर 'रावशाही' सिक्के राजगढ़ में भी बनते थे। १८७७ ई० के पहिले यहाँ रुपया, अठन्नी और चवन्नी बनती थी, परन्तु इसके बाद रुपया ही बनने लगा न कि उसके छोटे भाग । प्रतापसिंह के समय में १७३ ग्रेन का रुपया बनता था, जिसके एक ओर 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजी शाह आलम' और दूसरी ओर 'जर्ब राजगढ़ सन जुलूस मैमनत मानूस' अंकित रहता था । इस शैली के १०० रुपये १०१.३५३ कलदार के बराबर होते थे । बनेसिंह के सिक्के पर 'मुहम्मद बहादुर शाह, १२६१' अंकित रहता था । शिवदानसिंह के सिक्के १८५९ से १८७४ तक चलते रहे । इस पर विक्टोरिया का नाम अंकित था तथा कई चिन्ह जैसे भाड़, छत्र, बिन्दियाँ आदि भी होते थे । इसी तरह मंगलसिंह के सिक्के में एक तरफ रानी विक्टोरिया का नाम और दूसरी ओर 'महाराज श्री सवाई मंगलसिंह बहादुर, १८९१' अंकित रहता था । इसका तोल १८० ग्रेन था ।

यहाँ के ताँबे के सिक्कों को 'रावशाही टक्का' कहते थे जिन पर 'आलम शाह' 'मुहम्मद बहादुर शाह' 'मलका विक्टोरिया' 'शिवदानसिंह' आदि का नाम अंकित रहते थे। ताँबे के सिक्के और 'हाली' अलवर मुद्रा के भाव से बड़ा उतार चढ़ाव रहता था इससे यहाँ ताँबे के सिक्के के बजाय अंग्रेजी पाव आना का सिक्का प्रचलित हो गया और 'हाली' मुद्रा के बजाय कलदार चलने लगा । यहाँ के सिक्कों पर तलवार, भाला, फूल आदि चिन्ह भी पाये जाते हैं ।

करौली राज्य के सिक्के [२९]

यहाँ सबसे प्रथम महाराजा मानकपाल ने १७८० ई० में चाँदी और ताँबे के

---

२८. वेब : करैन्सीज, पृ०१०९–११५

२९. वेब : दि करैन्सीज, पृ० ११६–१२२ ।

सिक्के अपनी टकसाल में बनवाये। इन सिक्कों पर कटार और झाड़ के चिह्न तथा साल संवत् मय बिन्दुओं के लगे हुए रहते थे। इसके एक ओर 'सिक्का मुबारक शाह आलम गाजी साहिब किरन सानी सन् हिजरी', दूसरी ओर 'जर्ब करौली सने जुलूस मैमनत मानूस' लिखा रहता था। मानकपाल के उत्तराधिकारियों ने इसी शैली के सिक्के बनवाए परन्तु उनमें अपने नाम का अंकन नाम के प्रथम अक्षर 'म' (मदनपाल), (ज) जयसिंह, अ (अर्जनपाल), भ (भँवरपाल) से करवाया। सन् १८५८ के बाद मुगल बादशाहों के नाम के स्थान पर 'मलका मुअज्जमह फरमान रवाई इंगलिस्तान' रखा गया था। ताँबे सिक्कों पर भी चाँदी के सिक्के के ठप्पे लगते रहे। इनमें से मानकपाल का ताँबे का सिक्का २८१ ग्रेन का होता था और ३६ ऐसे सिक्के एक रुपये के बराबर होते थे। यहाँ के बने ६८ पैसे या ३४ टक्का का दाम एक रुपये के बराबर होता था। १९०६ से यहाँ अंग्रेजी सिक्के का चलन हो गया और स्थानीय सिक्कों का प्रचलन बन्द हो गया।

भरतपुर राज्य के सिक्के[३०]

भरतपुर राज्य में दो टकसाल थे डीग और भरतपुर। १७६३ ई० में सूरजमल ने शाह आलम के नाम के चाँदी के सिक्कों का प्रचलन किया। इस पर एक तरफ 'सिक्क मुबारक बादशाह गाजी शाह आलम' और दूसरी ओर 'जर्ब बुर्जी अनवरपुर सन् जुलूस' मय कटार और फूल के अंकित रहता था। इसका तोल १७१.८६ ग्रेन होता था। डीग की टकसाल से महाराजा रणधीरसिंह ने चांदी का रुपया, अठन्नी, चवन्नी चलाई। इसके एक ओर 'सिक्का मुबारक साहिब किरन सानी मुहम्मद अकबर शाह' और दूसरी ओर 'जर्ब महेन्द्रपुर सन् जुलूस मैमनत मानूस, सन् ४२ या ४९' लगा रहता था। इसका वजन १७० के लगभग होता था। ऐसे १०० सिक्कों के ९१ कलदार होते थे। १८५८ के सिक्के के एक तरफ 'जर्ब भरतपुर बुर्जी-अनवर सवाई जसवन्तसिंह बहादुर जंग' और दूसरी तरफ 'जनाब मलिका मुअज्जमह क्वीन विक्टोरिया फरमान रवाई इंगलैण्ड सन् १८५८' लिखा रहता था और रानी की आकृति बनी रहती थी। इसका वजन १७१ ग्रेन था। इसके अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी के भाग भी थे।

ताँबे का सिक्का भी १७६३ से आरम्भ हुआ और १८९१ तक प्रचलित रहा। इस पर भी समय-समय पर चाँदी के साँचे के अनुकूल अंकन होता रहा। इसका वजन २७५ से २८० ग्रेन तक देखा गया है।

धौलपुर के सिक्के[३१]

धौलपुर में १८०४ ई. से टकसाल आरंभ हुई जिससे रुपये और अठन्नियाँ बनाई गईं। यहाँ से प्रचलित सिक्के को 'तमंचा शाही' कहते हैं क्योंकि उस पर

---

३०. वही, पृ० १२५–१२६।

३१. वेब : दि करैन्सीज, पृ. १३३–१३५।

तमंचे का चिन्ह लगाया जाता था। ऐसे रुपये का वजन ११।। माशा होता था और उसकी कीमत कलदार के बराबर होती थी। इसका प्रचलन धौलपुर, ग्वालियर और पटियाले में था। इसके एक ओर 'सिक्का जद बर हफ्त दिखार साया फज्ल अल्लाह हामी दीन मुहम्मद शाह आलम बादशाह सन् १२१८' और दूसरी ओर 'जर्ब गोहाड़ सन् जलूस ४६ मैमनत मानूस' अंकित रहता था। कीर्तिसिंह ने १८०६ ई. में अकबर द्वितीय के सिक्के इस शैली के चलाये। १८१० ई. के सिक्के के एक तरफ 'जुलूस मैमनत जर्ब धौलपुर तमंचा राज गोहाड़' और दूसरी ओर 'सिक्का मुबारक साहिब किरन सानी मुहम्मद अकबर शाह बादशाह गाजी, १२२५' मय छत्र के एवं तमंचे के अंकित रहता था। इसका वजन १७२ ग्रेन था। १८५७ ई. में महाराजा राणा भगवतसिंह ने पुराने साँचे के सिक्के चलाये जिसपर छत्र का चिन्ह था और उस पर सन् १२५२ लगा था।

सिरोही की मुद्राएँ[३२]

सिरोही का स्वतन्त्र रूप का कोई सिक्का नहीं रहा और न यहां कोई टकसाल थी। यहां मेवाड़ का चांदी का 'भीलाड़ी' रुपया और मारवाड़ का तांबे का 'ढब्बूशाही' चलता था। भीलाड़ी १२० रु. १०० रु० कलदार के बराबर होते थे। यहां की मुद्रा की स्थिति ठीक करने के लिए १९०३-०४ ई. में अंग्रेजी सरकार ने सिरोही राज्य को १५ लाख कलदार रुपयों तक 'भीलाड़ी' से परिवर्तन करने की स्वीकृति दी थी। इस विनिमय से क्रमशः यहां कलदार का प्रचलन बढ़ता गया। १९४७ में यहां का सिक्का कलदार ही था।

शाहपुरा के सिक्के[३३]

शाहपुरा का स्थानीय सिक्का यहां के शासकों द्वारा १७६० में चलाना आरंभ किया जिसे 'ग्यारसंदिया' कहते थे। इसके अतिरिक्त यहां 'चित्तौड़ी' व 'भीलाड़ी' सिक्कों व पैसों का भी प्रचलन था। क्रमशः यहां ऐसे सिक्कों का प्रचलन घटता गया और अंग्रेजी भारत का सिक्का चलने लगा।

---

३२. गहलोत : राजपूताने का इतिहास, भा. २, पृ. १३ (सिरोही)।

३३. गहलोत : राजपूताने का इतिहास, भा १ पृ. ५५२।

३

शिलालेख

प्राचीन खण्डहर एवं मुद्राओं की भाँति राजस्थान के इतिहास की जानकारी के लिए सबसे अधिक विश्वस्त इतिहास बतलाने वाला एक साधन शिलालेख है। जहां कई अन्य साधन मूक अथवा अस्पष्ट हैं वहां इतिहास के निर्माण में हमें इनसे बड़ी सहायता मिलती है। इनकी संख्या सहस्रों में है जिनके बारे में हमें जानकारी है। परन्तु अब भी सहस्रों की संख्या में ऐसे अभिलेख भी है जो भूगर्भ या खण्ड़हरों में दबे पड़े हैं। ये शिलालेख शिलाओं, प्रस्तर-पट्टों, भवनों या गुहाओं की दीवारों, मन्दिरों के भागों, स्तूपों, स्तंभों, मठों, तालाबों, बावलियों तथा खेतों के बीच गढ़ी हुई शिलाओं पर बहुधा मिलते हैं। आने जाने वालों के मार्ग में होने से या खुली हुई अवस्था में रहने से इन अभिलेखों के कई अंश नष्ट हो गये हैं। इनकी भाषा संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी और फारसी तथा उर्दू में समय के अनुकूल प्रयुक्त हुई है। इनमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश दिखाई देता है। दक्षिण-पश्चिमी तथा पूर्व-दक्षिणी राजस्थान में ये अधिक संख्या में मिलते हैं, जिसका कारण यह दिखाई देता है कि मुसलमानों के प्रभाव बढ़ जाने से उत्तर में इनका प्रयोग कम हो चला था। इन अभिलेखों के विषय विभिन्न और विविध हैं जिनमें राजवर्णन, वंशवर्णन प्रमुख हैं। इनमें अधिकांश राजाओं की उपलब्धियों का प्रशंसायुक्त वर्णन रहता है और इसीलिए इनको प्रशस्ति भी कहते हैं। उनमें से कई एक में राजाओं के आश्रित या उनसे सम्बन्धित पुरुष तथा राजवंश के क्रम का विस्तृत वर्णन मिलता है। राजाओं सामन्तों, राणियों, मंत्रियों तथा अनेक धर्म-परायण व्यक्तियों द्वारा बनवाए गये मन्दिरों, मठों, बावलियों आदि में लगे हुए लेखों में निर्माण कर्त्ता के वंश-क्रम तथा राजवंश का वर्णन विस्तार से होता है। कुछ ऐसे भी शिलालेख होते हैं जिनमें राजाज्ञा, विजय, यज्ञ, खेतों की सीमा, वीर पुरुष का चरित्र, सती का होना, झगड़ों के समाधन, पंचायत के फैसले आदि घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। कई लेख तो एक प्रकार से स्वतः काव्य हैं जिनके द्वारा हमें न केवल ऐतिहासिक घटनाओं का ही बोध होता है वरन् कई अज्ञात किन्तु प्रतिभा सम्पन्न कवियों की काव्यशैली का बोध होता है। उनके द्वारा हम उस युग के बौद्धिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे शिलालेख व्यक्ति विशेष की साहित्यिक रुचि के स्मृति चिन्ह हो जाते हैं। "अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज का रचा हुआ—'हरकेलि नाटक', उक्त राजा के राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक और विग्रहराज या किसी दूसरे राजा के समय के

बने हुए चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की शिलाओं में से पहली शिला—ये सब अजमेर (ढाई दिन का झोंपड़ा) से प्राप्त हुई हैं। सेठ लोलाक ने 'उत्तम शिखर पुराण' नामक जैन पुस्तक बीजोल्यां के पास एक चट्टान पर वि० सं. १२२६ में खुदवाई थी, जो अब तक सुरक्षित है। महाराणा कुंभा ने कीर्तिस्तम्भों के विषय की एक पुस्तक शिलाओं पर खुदवाई थी, जिसकी पहली शिला के प्रारंभ का अंश चित्तौड़ में मिला है। महाराणा राजसिंह ने तैलंग भट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ से 'राजप्रशस्ति' नामक २४ सर्ग का महाकाव्य, जिसमें महाराणा राजसिंह तक का मेवाड़ का इतिहास है, तैयार करवाकर अपने बनवाये हुए राजसमुद्र नामक तालाब की पाल पर २५ बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर लगवाया था, जो अबतक वहां विद्यमान है।"[1] लगभग सभी शाखाओं के राजपूत राजाओं के या उनके समय के अनेक शिलालेख मिले हैं जो तिथि-क्रम निर्धारित करने तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालने के लिए बड़े उपयोगी हैं। इसी प्रकार साहित्यिकों तथा अन्य सामग्रियों को शुद्ध करने अथवा पूर्ण करने में इनकी सहायता असामान्य सिद्ध होती है। कई वीरों तथा सतियों के स्मारक घटनाचक्र को समझने और युद्धों की तिथियों को निर्धारित करने में लाभप्रद प्रमाणित हुए हैं। इसी प्रकार इन अभिलेखों से राजस्थान तथा सुलतान और मुगल सम्राटों के राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है। कुछ छोटे अभिलेख भी ऐतिहासिक शृङ्खला को स्थापित करने में बहुत सहायक हुए हैं। वैसे तो इनमें संस्कृत या बोलचाल की भाषा का विशेष प्रयोग है और लिपि भी नागरी है, तथापि इनका पढ़ा जाना गभीर अध्ययन और अध्यवसाय का ही परिणाम हो सकता है। इन सभी अभिलेखों का वर्णन करना कठिन और अनावश्यक है। परन्तु यहां हम कतिपय लेखों का उल्लेख करना उपयोगी समझते हैं, जिससे पाठक उनकी उपयोगिता का स्वयं मूल्यांकन कर सके और समझ सके कि उनका ऐतिहासिक सृजन में कितना योग है।

(अ) शिलालेख (संस्कृत एवं भाषा)

नगरी का लेख[1] (२००-१५० ई० पू० ?)

यह एक खंड लेख है जो मूल लेख का दाहिना भाग है। यह नगरी से उपलब्ध हुआ था, जहां से उठवाकर डा० ओझा ने उसे उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित किया। इसकी लिपि घोसुंडी के लेख की लिपि से मिलती-जुलती है, जिससे इसे लगभग उसी कालक्रम के आसपास का माना जा सकता है। यदि घोसुंडी के लेख और इस लेख में कोई भिन्नता है तो इस लेख में प्रयुक्त किये गये पत्थर का रंग गहरा सलेटी है। इसमें दो पंक्तियाँ हैं जिसके भी बहुत कम अक्षर बच रहे हैं। इस स्थिति में

१. : ओझा राजपूताने का इतिहास, जि० १, पृ० १४

१. वरदा, १ वर्ष ४ अङ्क ४, पृ० २

पूरे विषय पर, जो इसमें अंकित था, प्रकाश डालना कठिन है। फिर भी यत्र-तत्र कुछ शब्दों से उस समय की स्थिति पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा सकता है। इसमें प्रयुक्त कुछ वाक्य और शब्द बड़े महत्त्व के हैं। 'स (र्वे) भूतानां दयार्थं' और 'ता' (कारिता) से अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां सब जीवों की दया के निमित्त या तो कोई नियम बनाया गया हो अथवा यहां कोई स्थान बनाया गया हो जहां जीवों की रक्षा की सुविधा हो सके। संभवतः यह लेख बौद्धों या जैनों से सम्बन्ध रखता हो।

घोसुन्डी-शिलालेख[२] (द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व)

यह लेख कई शिलाखण्डों में टूटा हुआ है जिनके कुछ टुकड़े उपलब्ध हो सके हैं। इनमें से एक बड़ा खण्ड उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। प्रारम्भ में ये लेख घोसुन्डी गाँव से, नगरी के निकट, जो चित्तौड़ से लगभग सात मील दूर है, प्राप्त हुआ था। लेख में प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत और लिपि ब्राह्मी है। प्रत्येक अक्षर जो इसमें उत्कीर्ण है लगभग $१\frac{३}{४}$" आकार में है।

प्रस्तुत लेख की तीन पंक्तियों में संकर्षण और वासुदेव के पूजाग्रह के चारों ओर पत्थर की चारदिवारी बनाने और गजवंश के सर्वतात द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख है। ये सर्वतात पाराशरी का पुत्र था यह भी इसमें अंकित है। इस लेख का महत्त्व द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में भागवत् धर्म का प्रचार, सकर्षण तथा वासुदेव की मान्यता और अश्वमेध यज्ञ का प्रचलन आदि से है। इसमें उस समय प्रयुक्त की जाने वाली राजस्थान में संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि भी ध्यान देने योग्य है।

श्री जोगेन्द्रनाथ घोष के विचार मे इस लेख में वर्णित नाम कण्ववंशीय ब्राह्मण मालूम होता है, जिसमें गाजायन गोत्र का सूचक और सर्वतात व्यक्ति का, परन्तु जोहन्सन के विचार से यह लेख किसी ग्रीक, शुंग या आन्ध्रवंशीय राजा का होना चाहिये। आन्ध्रों में 'गाजायन' 'सर्वतात' आदि नाम उस वंश के शासकों में पाये जाते हैं। जिससे यहाँ के शासक का आन्ध्रवंशीय होना अनुमानित होता है। एक विचार से यह व्यक्ति यूनानी भी हो सकते हैं, क्योंकि पाणिनी के अनुसार यूनानी आक्रमण नगरी तक हुआ था। यूनानी वासुदेव के उपासक भी हुए हैं जिससे इस विचार की पुष्टि होती है। परन्तु अश्वमेध से निकट सम्बन्ध यूनानियों का न होकर आन्ध्रों का अवश्य रहा है। फिर भी किस शासक के सम्बन्ध का यह लेख है और क्या वे कण्ववंशीय या शुंग या आन्ध्रवंशी थे, इस विषय पर अभी कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता जब तक कि अन्य साधन उपलब्ध नही होते है। इन शिलाखण्डों की पत्तियाँ इस प्रकार है :

पंक्ति १ न गाजामनेन पाराशरीपुत्रेण स ...ण सर्वतातेन अश्वमेध

---

२. ए० रि० रा० म्यू० अजमेर, १९२६–२७, पृ० २; ए० इं० जि० १४, पृ० २५

पंक्ति २. [जि] ना (याजिना) भगवभ्यां (भगवद्भ्यां) संकर्पण वासुदेवाभ्यां सर्वेश्वरा [भ्यां]

पंक्ति ३. भ्यां पूजाशिलाप्राकारो नारायणवाटेका (कारित:)

नांदसा यूप-स्तम्भ लेख[3] (२२५ ई०)

नांदसा भीलवाड़ा से ३६ मील की दूरी पर एक गांव है जहां एक तड़ाग में एक गोल स्तम्भ है जो लगभग १२ फीट ऊँचा और ५½ फीट गोलाई में है। इस पर एक ६ पंक्तियों का लेख ऊपर से नीचे तक और दूसरा ११ पंक्तियों का उसके चारों ओर उत्कीर्ण है। यह वर्ष के अधिकांश भाग में पानी में डूबा रहता है, केवल गर्मियों में तड़ाग के पानी सूखने पर इसे पढ़ा जाता है। फिर भी दोनों लेखों के अंतिम भाग पढ़ने में नहीं आते। अक्षरों का औसतन आकार एक इंच के लगभग है।

इन दोनों लेखों में प्रतिपादित विषय मूलत: एक ही है, गोया उसको अलग-अलग शब्दों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसका आशय यह है कि शक्ति गुणगुरु नामक व्यक्ति द्वारा यहाँ षष्ठिरात्र यज्ञ सम्पादन किया गया था और इस घटना को पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य-काल में उत्कीर्ण किया गया था। उस समय के क्षत्रपों के राज्य विस्तार तथा उत्तरी भारत में प्रचलित पौराणिक यज्ञों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए यह लेख बड़े महत्त्व का है। इस लेख का समय चैत्र की पूर्णिमा, कृत संवत् २८२ है। स्तम्भ की स्थापना सोम द्वारा की गई थी। इसमें प्रयुक्त शब्द–सप्त सोम संस्था का अभिप्राय सात-स्तम्भों की यज्ञ के निमित्त स्थापना है। समय सम्बन्धी पंक्ति का कुछ भाग इस प्रकार हैं—

"कृतयोईर्योपर्पशतयोर्द्व यशीतयो: चैत्यपूर्णमास्याम्'

बर्नाला यूप-स्तम्भ लेख[4] (२२७ई०)

जयपुर राज्य के अन्तर्गत बर्नाला नामक स्थान पर एक यूप-स्तंभ प्राप्त हुआ था जिसे आमेर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा २८४ कृत सवत् है। इसके अनुसार कृत संवत् २८४ में सोहर्न-गोत्रोत्पन्न वर्धन नामक व्यक्ति ने सात यूप-स्तंभों की प्रतिष्ठा का पुण्यार्जन किया। लेख का अंश इस प्रकार है—

'सिद्ध कृतेहि चैत्र शुक्लपक्षस्य पंचदशी सोहर्त्त सगोत्तस्य (राज्ञो) पुत्रस्य (राज्ञो) वर्धनस्य यूपसत्त को प्रण्ण व (द्ध कं भवतु)'

बड़वा स्तंभ-लेख[5] (२३८–३९ ई०)

बड़वा एक छोटा गाँव है जो कोटा-बीना सेक्शन से पाँच मील की दूरी पर है। यहाँ से तीन यूप-स्तम्भ लेख उपलब्ध हुए हैं जिनकी लिपि तीसरी शताब्दी ईसा की है। इनमें त्रिरात्र यज्ञों का उल्लेख है जिनको बलवर्धन, सोमदेव तथा बलसिंह

---

३. ए. इं. भा. ८ पृ. ३६

४. ए० ई० २६, पृ० १२०

५. रा० इ० भा० २३, पृ०४६, भा०२६, पृ०११८।

नामी तीन भाइयों ने सम्पादन किया था। इनका समय २९५ कृत संवत् है। एक दूसरे स्तम्भ लेख में 'अप्तोयाम' यज्ञ का उल्लेख है जिसे मौखरी धनत्रात ने सम्पादित किया था। इस यज्ञ का समय अतिरात्र था, अर्थात् पूरे एक दिन के उपरान्त दूसरे दिन तक इसे चलाया गया था। ये लेख वैष्णव धर्म तथा यज्ञ महिमा के द्योतक हैं। इसका पाठ इस प्रकार है—

"मौखरे हस्तीपुत्रस्य धीमतः अप्तोम्यम्णिः क्तो यूपः सहस्रोग व दक्षिणा"

विचपुरिया यूप-स्तंभ लेख[६] (२२४ ई०)

यह लेख उणियारा ठिकाने (जयपुर राज्य) के 'विचपुरिया' मंदिर के आँगन में उपलब्ध हुआ था। यह १०फुट ६ इंच ऊंचा है। यह नगर प्राचीन मालव प्रान्त के क्षेत्र में गिना जाता था। इससे यज्ञानुष्ठान का तो बोध होता है, परन्तु यज्ञ विशेष के नाम की हमें जानकारी नहीं होती। इसका लेख इस प्रकार है—

"सं० ३२१ फगुन शुक्लपक्षस्य पञ्चदश अहिशर्म अ (ग्नि) होतुस्य धरकपुत्रस्य यूप (श्चपुण्य) मेधतु"

इसमें धरक का परिचय अग्नि होतृ के रूप में दिया गया है।

वर्नाला लेख[७] (२७८ई०)

यह लेख कृत संवत् ३३५ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा का है जिसमें गर्गत्रिरात्र यज्ञ का उल्लेख है। इसका सम्पादन एक भट्ट द्वारा किया गया था और उस अवसर पर सम्वत्स ९० गौओं का दान किया गया था। लेख दो पंक्तियों में ऊपर से नीचे की ओर है। इसमें धर्म और विष्णु की दुहाई दी गई है। ये यूप स्तम्भ बरनाला (जयपुर) से हवामहल जयपुर लेजा कर सुरक्षित किया गया था। अब यह वहाँ से हटाकर आमेर संग्रहालय में रख दिया गया है।

इसके अन्त में विष्णु भगवान की वन्दना की गई है। इस लेख से यह भी प्रतीत होता है कि यज्ञ कर्ता विष्णु को प्रसन्न करने के लिए इस कार्य को करता है और वह बड़वा यूप स्तम्भ के यज्ञ कर्ता की भाँति अधिक समृद्ध भी नहीं है। उसने १००० गौओं के स्थान पर ९० गोदान द्वारा ही अपने-आपको संतुष्ट किया। इसका अंश इस प्रकार है —

"कृतेहि जय (ज्येष्ठ) शुधस्य पंचदशी त्रिरात्रं ५ यता इष्टा सव्यस्त (सवत्सा) एव वागा (गवो) दक्षिण्यः (दक्षिण्याः) (णा) दता (दत्ता) ९० । वष्टः (विष्णु) प्रियता धर्मो वर्द्ध (ताम्)"

विजयगढ़ यूप-स्तम्भ लेख[८] (३७१–७२ई०)

यह लेख विजयगढ़ के दक्षिणी दीवार के निकट है जिसमें राजा विष्णुवर्धन,

---

६. मरुभारती, फरवरी १९५३, भा० १, संख्या २, पृ०३८–९।

७. भारतीय पुरातत्त्व, पृ०१३; कोर्प्स० इन्स० इन्डि० भा० ३, पृ०२५२।

८. ए आर०,ए एस आई, १९१०-११, पृ० ४०, प्लेट १३ (भारतीय पुरातत्त्व १३)

पुत्र यशोवर्धन द्वारा पुंडरीक नामक यज्ञ किये जाने का उल्लेख है। यह गढ़ भरतपुर जिले में है और इसका कृत मालव-विक्रम संवत् ४२८ है।

'कृतेपु चतुर्षु वर्पशतेष्वष्ट विशेपु फाल्गुणवहुलस्य पंचदस्स्यामेतस्या पुर्व्वार्य्याम्.......पुण्डरीके यूपोऽयं प्रतिष्ठापितस्सुप्रतिष्ठित राज्य नामधेयेन श्री विष्णुवर्धनेन वारिकेण यशोवर्द्धन सत्पुत्रेण"

गंगधार का लेख[९] (४२३ई०)

झालावाड़ के अन्तर्गत गंगधार के वि० सं० ४८० के लेख से प्रमाणित होता हैं कि वर्मान्त नाम वाले शासकों का विश्ववर्मा का पुत्र कुमारगुप्त का सामंत रहा होगा। इस लेख से पाया जाता है कि विश्ववर्मा के मन्त्री मयूराक्ष ने एक विष्णु-मन्दिर का निर्माण करवाया। उसने तान्त्रिक शैली का मातृगृह और एक वावली भी वनवाई। इस लेख में पांचवी शताब्दी की सामन्त व्यवस्था पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

नगरी का शिलालेख[१०] (४२४ ई०)

इस लेख को डी०आर० भंडारकार ने नगरी से उत्खनन के समय प्राप्त किया था। उसे अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया। इसका आकार ११"×११" है और उसमें ८ पंक्तियाँ हैं। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है। प्रथम और द्वितीय पंक्तियां विल्कुल खंडित हैं और अन्य पंक्तियों में कुछएक शब्द बाकी बचे हैं जो इसमें प्रस्तुत विपय पर पर्याप्त प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। फिर भी 'जयति भगवान विष्णु' 'कृत' 'मालव पूर्वायां' तथा 'भगवान्महापुरुपपादाभ्यां प्रासाद' आदि शव्दों के व्यवहरित होने से इसका सम्वन्ध विष्णु की पूजा के स्थान विशेष से रहा हो। नगरी में विष्णु अर्चना के सम्बन्ध के कुछ प्रतीक भी उपलव्ध हैं जो लेख या चरण चिह्न के रूप में चित्तौड़ तथा उदयपुर संग्रहालय में देखे गये हैं। लेख में सत्यशूर, श्रीगंध और दास नामक तीन भाइयों के नाम उस युग के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बोधक हैं। लेख के अन्तिम भाग में पुण्य वृद्धि की कामना उस समय की धार्मिक भावनाओं का द्योतक है।

भ्रमरमाता का लेख[११] (४९० ई०)

छोटी सादड़ी में, जिला चित्तौड़, भ्रमरमाता का मन्दिर है। यहां से एक १७ पंक्तियों का संस्कृत पद्य में लेख उपलव्ध हुआ है जो पांचवी शताब्दी की राजनीतिक स्थिति को समझने में वड़ा सहायक है। इसमें गौरवंश तथा औलिकार वंश के शासकों का वर्णन मिलता है। गौरवंश के पुण्यशोभ, राज्यवर्द्धन, यशोगुप्त

---

९. फ्लीट, गुप्ताइन्स; पृ०७४–७६

१०. आ०स०रि०वें०इ०वर्प १९१५–१६, पृ०५६;
वरदा, वर्ष ५, अंक ३, पृ०२–३।

११–ए. इ. भा. ३०, अक्ट्व १९५३, पृ–१२२।

आदि शासकों तथा औलिकार वंश के आदित्यवर्द्धन के नाम उपलब्ध होते हैं। इन शासकों का राज्य चित्तौड़ क्षेत्र तक तथा निकटवर्ती भागों में होने की संभावना इस लेख से प्रमाणित होती है। गौरवंशीय शासकों द्वारा ही यहां माता का मंदिर बनवाया गया जिससे इनकी शाक्त धर्म के प्रति भक्ति होना दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत लेख में 'अपराजित राजपुत्र गोभट्टपादानुध्यात्' पंक्ति बड़े महत्त्व की है। 'राजपुत्र' शब्दों से किसी भी सामन्त का किसी शासक के प्रति सेवाभावी होना प्रमाणित होता है। इस अर्थ में प्रारंभिक कालीन सामन्त प्रथा के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए ये लेख बड़े काम का हैं। इसमें मृत्यु के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। ७वीं तथा ८वीं पंक्ति में इसका उल्लेख इस प्रकार है:

"दत्वादानं द्विजेभ्यः दिवंगतः'

प्रशस्ति का रचयिता मित्रसोम का पुत्र ब्रह्मसोम और लेखक पूर्वा था।

चित्तौड़ के दो खण्ड लेख[१२] (५३२?)

चित्तौड़ से दो खण्ड लेख, जिनका समय ६टी शताब्दी का प्रथम चरण हो सकता है, इस क्षेत्र की व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डालता है। एक खण्ड में ३ और दूसरे में ८ पंक्तियां हैं। पहले वाले में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र के सम्बन्ध में उल्लेखित है कि वह चित्तौड़ और दशपुर का राजस्थानीय था। इसमें विष्णुदत्त के सम्बन्ध में भी वर्णित है कि वह वणिकश्रेष्ठ था।

दूसरे लेख में मनोहरस्वामी अर्थात् विष्णु मन्दिर का उल्लेख मिलता है तथा अभयदत्त नामी प्रान्तीय शासक के वंशीय राजस्थानीय का बोध होता है।

इन दोनों लेखों में उल्लेखित नामों और उनके विशेष गुणों के संकेतों से यह तो प्रमाणित होता है कि छठी शताब्दी के प्रारंभ में मन्दसोर के शासकों का चित्तौड़ क्षेत्र पर भी अधिकार था। वे अपने प्रान्तीय अधिकारियों को इस भाग के शासन के लिए नियुक्त करते थे, जो 'राजस्थानीय' कहलाते थे।

बसंतगढ़ का लेख[१३] (६२५ ई०)

सिरोही जिले के बसंतगढ़ के वि०सं०६८२ के लेख राजा वर्मलात के समय का है। इस लेख से पाया जाता है कि उक्त संवत् में वर्मलात का स्तम्भ राज्जिल जो वज्रभट (सत्याश्रम) का पुत्र था अर्बुद देश का स्वामी था। सामन्त प्रथा पर इस लेख से कुछ प्रकाश पड़ता है।

---

१२. ए. इ., भा. ३४, पृ. ५५–५७

१३. ए० इ० जि०९, पृ०१९१–९२।

अभिलेख

सांभौली शिलालेख[१४] (६४६ ई०)

इस प्रकाशित शिलालेख को सांभोली गाँव से, जो मेवाड़ के दक्षिण में भोमट तहसील में है, डा० ओझा ने हटाकर अजमेर के पुरातत्त्व-संग्रहालय में सुरक्षित किया था। यह लेख मेवाड़ के गुहिल राजा शीलादित्य के समय का वि० सं० ७०३ (ई० सं० ६४६) का है जो आकार में केवल ९½"×१०½" है। इसमें केवल १२ पंक्तियाँ हैं जिसमें दाहिनी ओर के नीचे वाले कोने के टूट जाने से १०वीं तथा ११वीं पंक्ति के कुछ अक्षर नष्ट हो गये हैं। पंक्ति ८ और ९ के अन्त के दो अक्षर घिस जाने से पढ़ने में नहीं आते। शेष शिलालेख का भाग अच्छी दशा में है। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत तथा लिपि कुटिल है। भाषा में यत्र-तत्र अशुद्धियाँ हैं और कहीं-कहीं पाठ अस्पष्ट है।

मेवाड़ के गुहिल-वंश के समय को निश्चित करने तथा उस समय की आर्थिक तथा साहित्यिक स्थिति के जानने के लिए यह लेख बड़े काम का है। इसमें लिखा है कि 'शत्रुओं को जीतने वाला; देव, ब्राह्मण और गुरुजनों को आनन्द देने वाला, और अपने कुलरूपी आकाश का चन्द्रमा राजा शीलादित्य पृथ्वी पर विजयी हो रहा है। उसके समय वटनगर से आये हुए महाजनों के समुदाय ने, जिसका मुखिया जेंतक था, आरण्यक गिरि में लोगों का जीवन रूपी आगर उत्पन्न किया, और महाज (महाजनों के समुदाय) की आज्ञा से जेंतक महत्तर ने अरण्यवासिनी देवी का मन्दिर बनवाया, जो अनेक देशों से आये हुए अठारह वैतालिकों (स्तुति गायकों) से विख्यात, और नित्य आने वाले धन-धान्य सम्पन्न मनुष्यों की भीड़ से भरा हुआ था। उसकी प्रतिष्ठा कर जेंतक महत्तर ने यमदूतों को आते हुए देख 'देववुक' नामक सिद्धस्थान में अग्नि में प्रवेश किया।"[१५] इस शिलालेख में प्रयुक्त शब्द 'विजयी' 'वटनगर', 'आगर', 'आरण्यकगिरि' तथा 'अरण्यवासिनी', 'महत्तर' आदि बड़े महत्त्व के हैं। यदि इनका सांभोली गाँव के संदर्भ में अध्ययन किया जाय तो कई ऐतिहासिक बिन्दुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे स्थानीय भीलों पर शीलादित्य का प्रभाव स्थापित होना, इसके द्वारा जन-समुदाय को सामान्य जीवन व्यतीत करने की सुविधा प्रदान करना, देश-विदेश से व्यापारियों का इस क्षेत्र में बसना, मन्दिरों का निर्माण होना, जीवन के साधनों की वृद्धि होना आदि संकेत मिलते हैं। इससे यह भी संकेत मिलता है कि जावर के निकट के अरण्यगिरि में ताँबे और जस्ते की खानों का काम भी इसी युग से आरम्भ हुआ हो। आज का जावर माता का मन्दिर जो उस समय अरण्यवासिनी के

---

१४. रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, रिपोर्ट, १९०८-९ पृ० ४८; इंडियन एंटिक्विटी, भा० २९ पृ० १८९; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १, पृ० ३११-२४; एपिग्राफियाइंडिका, भा० २०, नं० ९, पृ० ९७-९९।

१५. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १. पृ० ९८-९९।

मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था गायकों और दर्शकों की भीड़ से भरा रहता था, इस बात का प्रमाण है कि शीलादित्य के समय में यह देश का भाग खनन उद्योग के कारण समृद्ध था। 'महाजन' शब्द के प्रयोग से महाजन समुदाय या संघ का बोध होता है वह सातवीं शताब्दी के जनोपयोगी संस्था की व्यवस्था का बोधक है। इस लेख में जेंतक का अग्नि में प्रवेश कर मरना या तो उस युग की विशेष परिस्थिति पर अथवा किसी धार्मिक परम्परा पर प्रकाश डालता है। इसके मूल पाठ से प्रथम तथा दो अंतिम पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

१. ओं नमः। पुनातु दिनकृम (न्म) रोचिर्विच्छुरितपाद पद्मपत्रच्छविदुरित-माशुश्र (च) डिकापादद्वयं

११–१२ (वैवस्वत) समवेक्ष (क्ष्य) देवुवुके सिधा (द्वा) यत (ने).... लनं प्रविष्ट (:) "७००३" कति (क) (कार्तिक) ....

अपराजित का शिलालेख[१६] (६६१ई०)

इसका समय वि० सं० ७१८ (२ नवम्बर' ई० सं० ६६१) मार्ग शीर्ष सुदि ५ है। यह लेख नागदे गाँव के निकटवर्ती कुंडेश्वर के मन्दिर में पड़ा हुआ डा० ओझा को मिला, जिसे वहाँ से हटाकर उन्होंने उदयपुर विक्टोरिया हॉल के संग्रहालय में सुरक्षित किया। इस लेख में श्लोकवद्ध १२ पंक्तियाँ हैं जो १'६½"×१०½" आकार के पत्थर पर उत्कीर्ण हैं। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत तथा लिपि कुटिल है।

इस लेख का सारांश इस प्रकार है:—

"गुहिल वंश के तेजस्वी राजा अपराजित ने सव दुष्टों को नष्ट किया और अनेक राजा उसके आगे सिर झुकाते थे। उसने शिव (शिवसिंह) के पुत्र महाराज वराहसिंह को—जिसकी शक्ति को कोई तोड़ न सका, जिसने भयंकर शत्रुओं को परास्त किया और जिसका उज्ज्वल यश दसों दिशा में फैला हुआ था—अपना सेनापति बनाया। अरुंधती के समान विनयवाली उस (वराहसिंह) की यशोमति ने लक्ष्मी, यौवन और वित्त को क्षणिक मानकर संसार रूपी विषय समुद्र को तैरने के लिए नावरूपी कैटभरिपु (विष्णु) का मन्दिर बनवाया। दामोदर के पौत्र और ब्रह्मचारी के पुत्र दामोदर ने उक्त प्रशस्ति की रचना की, और अजित के पौत्र तथा वत्स के पुत्र यशोभट ने उसे खोदा।"[१७] इस लेख से गुहिल शासकों की उत्तरोत्तर विजय का बोध होता हे। इससे यह स्पष्ट है कि अपराजित ने वराहसिंह जैसे शक्तिशाली व्यक्ति को परास्त कर अपने अधीन रखा और फिर उसे अपना सेनापति नियुक्त किया। इस युग में, जैसाकि शिलालेख में अंकित है, विष्णु मन्दिर के निर्माण का प्रभून प्रचलन था। इस लेख की

---

१६. ए०इं; जि०४, पृ०३१;
ज०ए०सो०ब०, १६३५ पृ०१२२; ए०इ०भा०४, पृ०२१–२२; ए०रि०ए० म्यू०, अजमेर, १६२०–२१; जी०एन०शर्मा, ए विवलियोग्राफी, पृ०३।

१७. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा०१, पृ०६६–१००।

कविता से तथा कवि की वंश परम्परा से प्रतीत होता है कि मेवाड़ में अच्छे विद्वानों को प्रारम्भ से ही राज्याश्रय प्राप्त था। इसकी लिपि इतनी सुन्दर है कि हमें यह मानना होगा कि सातवीं शताब्दी में मेवाड़ में उत्कीर्ण कला बड़ी विकसित थी और यहाँ अच्छे शिल्पी उपलब्ध थे।

इसका एक पद्य इस प्रकार है :

"राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति
ध्वस्तध्वान्त समूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत्।
श्रीमानित्यपराजित: क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्जातो जगत्भूषणं॥"

नगर का शिलालेख[१७] (६८४ ई०)

यह लेख भी गुहिलवंशीय एक शाखा का है जिसमें चाटसू शिलालेख में दिये गये प्रारम्भिक शासकों के नाम दिये गये हैं. जो ईशानभट्ट, उपेन्द्रभट्ट, गुहिल तथा धनिक तक के हैं।। इसकी भाषा संस्कृत है और इसका समय वि० सं० ७४१ है। इसमें इनकी वीरता, शत्रुनाश की क्षमता, दानशीलता, गुणसम्पन्नता, कला प्रेम आदि की प्रशंसा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ईशानभट्ट से धनिक के काल तक ये शासक शक्तिशाली और प्रभावशाली रहे। इनके पीछे के वंशज, जैसाकि चाटसू लेख से स्पष्ट है, प्रतिहारों के सामन्तरूप रहे। ईशानभट्ट से धनिक तक के शासकों के लिए 'क्षितीन्द्र' 'अग्रेसर प्रभु', 'राजमण्डलगुरु' आदि शब्दों के प्रयोग से इनकी स्वतन्त्र स्थिति का बोध होता है। इसकी एक पंक्ति इस प्रकार है :

"गुणरत्ननिधे: स्वच्छात्क्षीरोदादिव चन्द्रमा:
विहलान्तसन्तापात्तत: श्री धनिको भवत्"

मंडोर का शिलालेख[१८] (६८५ ई०)

जोधपुर नगर के निकट मंडोर नामक स्थान के पहाड़ी ढाल में एक बावड़ी है जिसमें आयताकार शिला भाग पर वि० सं० ७४२ का एक शिलालेख उत्कीर्ण है। इस लेख से उक्त बावड़ी का निर्माण काल वि० सं० ७४२ तथा उसके बनवाने वाले चणक के पुत्र माधू ब्राह्मण की सूचना प्राप्त होती है। इस लेख से सातवीं शताब्दी ई० में शिव तथा विष्णु की पूजा पर प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत लेख की ६ पंक्तियां हैं जिसकी प्रारंभ और अन्त की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'ॐ नम: शिवाय....सर्वाम्भसामधिपति........श्रीमत्सुवावबल हेमत्रिभान वर्ती देव: सदा जयति पाशधर:...रेयं वापी निपानमिव स यशसां चखा न संवत्सर शतेपु सप्तसु द्वाचत्वारिंशाधिकेषु यातेषु"

---

१७. भारतकौमुदी, भा० १, पृ० २७३–७६

१८ एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आर्क्यालॉजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, १९३४, पृ ५।

शंकरघट्टा का लेख[१९] (७१३ ई०)

ये लेख शंकरघट्टा से प्राप्त हुआ था जो वि. स. ७७० का है। इसमें १७ पंक्तियां हैं जो ९" × १२" के शिला के भाग में उत्कीर्ण हैं। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत है। दाहिनी ओर के भाग के टूट जाने से इसके समझने में अस्पष्टता हो गई है। इसके प्रारंभ में शिव की वन्दना की गई है। प्रस्तुत लेख का भाग, जहां से राजा-मानभंग का वर्णन मिलता है, बड़ा उपयोगी है। संभवतः यह मानभंग वही मान-मोरी है जिसके शिलालेख का जिक्र टॉड ने किया है। इस शासक के सम्बन्ध में इस लेख से महत्त्वपूर्ण सूचना यह मिलती है कि उससे चित्तौड़ में गगन चुंबी प्रासाद, वापी आदि का निर्माण करवाया। चित्तौड़ के प्राचीन मन्दिरों में सूर्य का मन्दिर, जो कला की दृष्टि से बड़ा सुन्दर है, संभवतः राजा मानभंग ने बनवाया हो। उस समय के प्रासाद, वापी आदि तो अब नहीं बचे हैं। परन्तु उस समय का एक सूर्य मन्दिर अवश्य है जो ८वीं शताब्दी का माना जाता है। वैसे तो मानभंग और मानमोरी अलग-अलग व्यक्ति भी हो सकते हैं परन्तु एक ही स्थान में एक ही समय में दो शासकों का होना युक्तिसंगत नहीं मालूम होता। ऐसी स्थिति में ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के ही दीख पड़ते हैं।

मानमोरी का लेख[२०]

यह लेख चित्तौड़ के पास मानसरोवर झील के तट पर एक स्तंभ पर खुदा हुआ, कर्नल टॉड को मिला था। संभवतः इंग्लैण्ड ले जाते हुए, भारी होने के कारण, उसे इसे समुद्र में फेंक देना पड़ा। केवल इसका अनुवाद उसके पास बच रहा जिसको उसने अपनी पुस्तक 'एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज' में प्रकाशित किया। पार्थिव स्थिति में ये लेख उपलब्ध नहीं हैं, अतएव हमें उसके द्वारा दिये गये अनुवाद पर आश्रित रहना पड़ता है। प्रस्तुत लेख में पहिले समुद्र और तालाब का वर्णन करते हुए अमृत-मंथन तथा उसके सम्बन्ध में कर का उल्लेख किया है। इसके अनन्तर इसमें चार राजाओं का वर्णन मिलता है यथा महेश्वर, भीम, भोज और मान। महेश्वर को शत्रुहन्ता तथा सम्पन्न शासक बतलाया गया है और उसके सन्दर्भ में त्वस्थ (तक्षक) वंश की प्रशंसा की है। भीम को अवन्तिपुर का राजा बतलाया है उसने अपने अनेक शत्रुओं को कारागृह में डाल दिया और उनकी स्त्रियों का फिर भी वह प्रिय बना रहा। उसके बारे में लिखा गया है कि मानों वह अग्नि से उत्पन्न हुआ हो और उसमें समुद्र के नाविकों को शिक्षा देने की क्षमता हो। उसका पुत्र भोज भी बड़ा पराक्रमी था जिसने युद्ध क्षेत्र में हस्ती के मस्तक को विदीर्ण किया। उसका पुत्र मान था जो सद्गुण-सम्पन्न, ईमानदार, सद्चरित्र और समृद्ध था। उसने संसार को क्षणभंगुर

---

१९. राजस्थान भारती, वर्ष ९ अंक २, पृ. ३०-३१

२०. टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज, भा १, पृ. ६२५-६२६, वीर विनोद, भा. १, पृ ३७८-३८८।

समझकर अपनी सम्पत्ति के सदुपयोग के लिए मानसरोवर झील का निर्माण करवाया। लेख में मान के योद्धाओं व सर्दारों को भी योग्य और चतुर बतलाया है जो सर्वदा मान की कृपा के आकांक्षी रहते थे। इस प्रशस्ति का लेखक नागभट्ट का पुत्र पुष्य और पंक्तियों का उत्कीर्णक करुग का पौत्र शिवादित्य था।

ये लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। इस वंश का इसमें तक्षक वंश का तथा अग्नि वंश से उत्पन्न होने का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। संभवतः इस वंश का सम्बन्ध गोरी वंशीय अथवा औलिकरों से भी रहा हो जिनका प्रभाव मंदसोर, उज्जैन आदि भागों पर था। मान का वसन्तपुर आदि प्रान्तों के शत्रुओं का विजेता उल्लेखित करना भी यह प्रमाणित करता है कि इस वंश के शासकों के राज्य में मध्य भारतीय तथा दक्षिण पश्चिमी राजस्थान के भाग भी रहे हों और उनका अधिकार चित्तौड़ पर भी स्थापित रहा हो। चित्तौड़ के शंकरघट्टा से प्राप्त वि. स. ७७० के लेख में ५वीं पंक्ति में राजा 'मानभंग' का वर्णन आता है जो इस वंश के शासकों का चित्तौड़ पर अधिकार होना प्रमाणित करता है। चित्तौड़ से प्राप्त एक अन्य वि. स. ८११ ई. के लेख से इसी वंश में कुकड़ेश्वर नामक राजा के होने का उल्लेख मिलता है। इस लेख के संदर्भ में यह भी ठीक प्रतीत होता है कि बापा रावल ने मोरियों से, प्रचलित कथा के अनुसार, चित्तौड़ नहीं लिया था। कुकड़ेश्वर का वि. स. ८११ ई. का लेख इस संभावना की कल्पना को समाप्त कर देता है।

वंश-क्रम की गुत्थियों को समझने की उपादेयता के साथ-साथ इस लेख का उस समय की सामाजिक स्थिति समझने में भी बड़ा महत्त्व है। लेखक अमृत मंथन की कथा के सन्दर्भ में राजाओं के द्वारा लिये जाने वाले करों के प्रचलन का उल्लेख करता है। युद्ध में हाथियों का प्रयोग, शत्रुओं को कैद किया जाना तथा उनकी स्त्रियों की देख-भाल की उचित व्यवस्था करना, राजाओं में सामुद्रिक नाविक योग्यता होना आदि विशेषताओं का इसमें उल्लेख है। सामन्त और राजाओं के सम्बन्ध में भी पूर्ण सहयोग और आश्रित स्थिति की इसमें चर्चा की गई है। उस समय के समाज में धार्मिक भावना से सरोवरों का निर्माण करवाना लोकोपकारी कार्यों को प्राधान्यता देना अनुमानित होता है।

कल्याणपुर का लेख[21]

यह लेख ७-८वीं शताब्दी का है जो प्रारंभ में कल्याणपुर में एक शिवालय में लगा हुआ था। यहां से उसे उदयपुर संग्रहालय में लाया गया जहां संख्या 'म' के अन्तर्गत ४२ नम्बर पर उसे सुरक्षित कर दिया गया है। इस शिलालेख का आकार ११½" × ८½" है जिसमें एक ही संस्कृत का श्लोक है, जिसे पांच पंक्तियों में लिखा गया है। इसको कुटिल-लिपि में लिखा गया था, जो उस समय की प्रचलित लिपि थी।

२१-ज. इ. हि. जि. ३५, भा. १, १९५७, पृ ७३-७४

यह लेख ७वीं-८वीं शताब्दी के जन-जीवन, धार्मिक भावनाओं तथा राजनीतिक स्थिति समझने के लिए बड़ा उपयोगी है। शिलालेख का सम्बन्ध किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा एक शिवालय के निर्माण से है। इस शिवालय को महाराजा पद्र के काल में बनवाया गया था। लेख से इस भाग के ऐसे शासक का नाम मिलता है जो अन्यत्र साधनों में नहीं मिलता। इस दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। संभवतः पद्र कल्याणपुर के आसपास के भाग का या तो स्वन्त्रत शासक था या निकटवर्ती प्रदेश के गुहिलों का सामन्त था। इस पर निश्चित रूप से कहना तो कठिन है परन्तु इसको महाराजा से सम्बोधित करना महत्त्वपूर्ण है। अलवत्ता सामन्तों के लिए भी राजस्थान में बहुधा महाराज शब्द का प्रयोग होता रहा है। स्थान विशेष की पर्वतीय स्थिति होने से उसका स्वतन्त्र शासक होना भी अनुमानित किया जा सकता है। ये भी संभव है कि ज्यों वल्लभीपुर से गुहिलवंशी राजपूत मेवाड़ की ओर बढ़े तो उनके सम्बन्धी या आश्रित भी स्थान-स्थान में रहने लग गये और परिस्थिति के अनुसार उनका केन्द्रीय शक्ति से सम्बन्ध बनता रहा हो या बिगड़ता रहा हो। परन्तु यह तो निश्चय है कि पद्र भी धुलेप ताम्रपत्र वाले महाराज भेटी की भाँति स्थानीय शासक रहा हो।

जिस व्यक्ति ने उक्त मन्दिर का निर्माण करवाया था वह निस्पृह स्वभाव का भक्त रहा हो, क्योंकि यह लेख निर्माणक की प्रतिष्ठा व उपलब्धियों के सम्बन्ध में मौन है। परन्तु प्रस्तुत शिलालेख में दिये गये कुछ शब्दों से यह ध्वनि निकलती है कि जिसने इस शिवालय का निर्माण कराया था वह धार्मिक संगति का व्यक्ति था और यह कार्य उसके वंश की परम्परा के अनुरूप था। उसने, ऐसा प्रतीत होता है कि, शिव से साक्षात्कार प्राप्त करने के हेतु इस धार्मिक कार्य के लिए अपने धन का समुचित प्रयोग किया।

इसकी प्रथम-द्वितीय तथा अन्तिम पंक्ति यहां उद्धृत की जाती है—

पंक्ति १-२ ॐ स्वस्ति प्रणम्य शंकरं करचरणमनः शिरोभिः।

पंक्ति ५ श्री महाराज पद्र राज्ये।

कणसवा का लेख [२२] (७३८ ई०)

कोटा के निकट कणसवा गांव के शिवालय में लगा हुआ यह लेख सं० ७९५ का है। इसमें धवल नामक राजा का नाम है जो मौर्य वंशी राजा था। इस उल्लेख के बाद अन्य किसी मौर्य वंशी (मोरी) राजाओं का राजस्थान में वर्णन नहीं मिलता, जिससे इस शिलालेख का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

चाटसू की प्रशस्ति [२३] (८१३ ई०)

चाटसू जयपुर राज्य में एक स्थान रहा है जहां गुहिलवंशीय शासकों का

२२–टॉड, राजस्थान, जि. २. पृ ९१९–२२।

२३. ए. इ., जि १२, पृ. १३-१७; ओझा, उदयपुर, भा. १ पृ. ११६–११८

राज्य था। यह प्रशस्ति वि० सं० ८७० (८१३ ई.) की थी, जैसा डॉ. ओझा ने इसके अंकों को पढ़ा। इस प्रशस्ति में उल्लिखित है, कि "गुहिल के वंश में भर्तृभट्ट हुआ। उसका पुत्र ईशानभट्ट और उसका उपेन्द्रभट्ट था। उस उपेन्द्रभट्ट से गुहिल, गुहिल से धनिक और उससे आउक हुआ। आउक का पुत्र कृष्णराज और उसका पुत्र अनेक युद्धों में विजय पाने वाला शंकरगण था, जिसने भट नामक राजा को जीतकर गौड़ के राजा की पृथ्वी को अपने स्वामी के अधीन बनाया। उसकी शिवभक्त राणी यज्जा से हर्षराज का जन्म हुआ, जिसने उत्तर के राजाओं को जीतकर उनके उत्तम घोडे भोज को भेंट किये। उसकी राणी लिल्ला से गुहिल दूसरा पैदा हुआ। उस स्वामीभक्त गुहिल ने गौड़ के राजा को जीता, पूर्व के राजाओं से कर लिया और प्रमार (परमार) वल्लभराज की पुत्री रज्झा से विवाह किया। उसका पुत्र भट्ट हुआ, जिसने दक्षिण के राजाओं को जीतकर वीरुक की पुत्री पुराशा (आशापुरा) से विवाह किया। भट्ट का पुत्र बालादित्य (बालार्क, बालभानु) था, जो चाहमान शिवराज की पुत्री रट्टबा का पति था। उससे तीन पुत्र वल्लभराज, विग्रहराज और देवराज हुए। रट्टबा के मरने पर उसके कल्याण के निमित्त बालादित्य ने मुरारि (विष्णु) का मंदिर बनवाया। छित्ता के पुत्र करणिक (कायस्थ ?) भानु ने उक्त प्रशस्ति की रचना की और सूत्रधार रजुक के बेटे भाइल ने उसे खोदा।"

इस लेख से ऐसा मालूम होता है कि चाटसू वंश के गुहिल बड़े पराक्रमी थे और वे प्रतिहार वंशीय शासकों के सामन्त थे। इस वंश में मेवाड़ के गुहिलों की भाँति शिवभक्ति और विष्णुभक्ति की प्राधान्यता दिखाई देती है।

बुचकला शिलालेख[२४] (८१५ ई०)

इस लेख की खोज ब्रह्मभट्ट नानूराम ने बिलाड़ा (जिला जोधपुर) के निकट बुचकला के पार्वती के मन्दिर वाले सभामण्डप से की थी। लेख में २० पंक्तियां हैं और वे २'.४½"×११¼" आकार के शिला भाग में उत्तर-भारती लिपि में उत्कीर्ण हैं। यह लेख वत्सराज के पुत्र नागभट्ट प्रतिहार के समय का है। इसमें चैत्र मास के शुक्लपक्ष की पंचमी, वि. सं. ८७२ (८१५ ई०) का समय अङ्कित है। इसमें भाषा संस्कृत प्रयुक्त की गई है और गद्य में है।

इस प्रशस्ति में प्रतिहार वंशीय सामन्त और कुछ उस वंश के व्यक्तियों के नाम मिलते हैं जिससे हम उस समय के शासकों और सामन्तों के सम्बन्ध और स्तर का अनुमान लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ नागभट्ट के सामन्त युवक की पत्नी जावाली ने, जो जज्जक की पुत्री थी, यहाँ सम्भवतः देवालय में मूर्ति स्थापित की। इसमें परमेश्वर शब्द के प्रयुक्त होने से शिव की मूर्ति की स्थापना का अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु देवालय की अन्य मूर्तियों के देखने से इसमें विष्णु की मूर्ति की स्थापना की जाना प्रमाणित होता है। इस कार्य से प्रतिहारों की धर्मनिष्ठा

२४. ए. इ. जि. ९, पृ. १९८–२००

व्यक्त होती है। इस निर्माण कार्य का श्रेय सूत्रधार देइश्रा पुत्र पञ्चहरि को दिया गया है। अब इस मन्दिर को पार्वती का मन्दिर कहते हैं। सम्भवतः विष्णु की प्रतिमा का किसी कारण नष्ट हो जाने से पीछे से इसमें पार्वती की मूर्ति स्थापित की गई हो और तभी से उसे पार्वती का मन्दिर माना जाने लगा हो।

इसकी कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

पंक्ति—१-३—ॐ (१) संवत्सर शते ८७२ चैत्रस्य सितपक्षस्य पंचम्यां निवेसिता (निवेशिता) महाराजाधिराज

पंक्ति—१६-२०—परमेश्वरस्य पादपूजयित्वा देव गृहं कराप्यं पुन तस्य उपलेपने देइश्रा-सुत पंचहरिः सूत्रधार

नासून का लेख[२५] (८३० ई०)

इस लेख में ईशानभट्ट और धनिक का नाम अङ्कित है जिसमें धनिक को मण्डलाधिप कहा गया है। इससे प्रमाणित होता है कि धनिक की एक अपनी स्वतन्त्र स्थिति थी। इसका समय वि. सं. ८८७ है।

मण्डोर का शिलालेख[२६] (८३७ ई०)

यह लेख मूलत. मंडोर के किसी विष्णु मन्दिर में लगा था। मण्डोर के नष्ट होने पर वह पत्थर के रूप में जोधपुर नगर के शहरपनाह में कभी लगा दिया गया। वहाँ से उसे उपलब्ध किया गया। ये लेख मण्डोर के प्रतिहारों की वंश परम्परा जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। इसका समय वि. सं. ८९४ चैत्र सुदी ५ है। इस लेख को तथा दूसरे दो घटियाले के लेखों को पढ़ने से प्रतिहारों के सम्बन्ध में कई नई जानकारी हमें मिलती है। यह प्रशस्ति बाउक ने खुदवाई थी।

घटियाला के शिलालेख[२७] (८६१ ई०)

ये लेख चार लेखों के समुदाय में घटियाला (जोधपुर से २२ मील उत्तर-पश्चिम) स्थित एक स्तम्भ के दो पार्श्वों पर उत्कीर्ण है। ये स्तम्भ एक जैन मन्दिर के, जिसे माता की साल कहते हैं, निकट है। ये लेख संस्कृत भाषा में है जिसमें कुछ पद्य और कुछ गद्य का प्रयोग किया गया है। लिपि उत्तर भारतीय शैली की है। प्रथम लेख में २० पंक्तियां हैं जिन्हें २'.३"½×१'×६" भाग में उत्कीर्ण किया गया है। दूसरा लेख ११ पक्तियो मे है जिसको १'.३"×१'×२½ के आकार में अङ्कित है। तीसरे लेख में दो पंक्तियाँ है तथा चौथे में चार। लेखों का समय चैत्र शुक्ला द्वितीया बुधवार, वि सं. ९१८ है।

दो लेखों को क्रमशः विनायक तथा सिद्धम् से आरम्भ किया गया है। इन लेखों में कुक्कुक प्रतिहार को न्यायप्रिय, जनहित सम्पादन कर्त्ता, दुष्टों को दण्ड देने

---

२५. ए. इ. भाग २ IX, १९३०, पृ० २१

२६. ज. रा. ए सो. १८९४, पृ. ४–९

२७ रा. ए. सो., १८९५, पृ. ५१६, प्रो रि. आ. स. रि. इं, वेस्टर्न सर्कल १९०७, ए इं. भा. ९ पृ. २७७–२७९, गोपीनाथ शर्मा, बिबलियोग्राफी, पृ. ३

वाला, दीनों का रक्षक, वीर तथा साहसी शासक व्यक्त किया गया है। इसमें इसकी लोकप्रियता का प्रभावक्षेत्र गुजरात, वल्ल, लाट, माड, शिव, मलानी, पचभद्रा आदि तक विस्तारित बतलाया गया है जिसमे उसके राजनीतिक वैभव का पता चलता है। अन्तिम लेख में उसके गुणों में सज्जनों की संगति, विनीति स्त्रियों का साथ, पुत्र स्नेह, गुरुभक्ति, कृतज्ञता, संगीत तथा पुष्पों से प्रेम सम्मिलित किये गये हैं। इन गुणों के उल्लेख में अतिशयोक्ति हो सकती है, परन्तु इनसे उसका एक सम्पन्न तथा सद्चरित्र शासक होना प्रतीत होता है। वह सुबोध भी प्रमाणित होता है क्योंकि प्रथम लेख का लेखक कुक्कुक बताया गया है। अलबत्ता इससे यह अवश्य प्रमाणित होता है कि वह लोकप्रिय शासक था, क्योंकि शासक के सभी गुणों की स्थिति उसमें कल्पित की गई है।

एक लेख के चतुर्थ श्लोक से विदित होता है कि कुक्कुक ने दो और स्तम्भों की स्थापना की थी—एक घटियाला में और दूसरा मण्डोर में। दूसरे शिलालेख में एक बड़ी महत्त्व की ऐतिहासिक बात दी गई है। वह यह है कि रोहिंसकूप (घटियाला) आभीरों के उपद्रव के कारण अच्छे नागरिकों के लिए रहने के योग्य स्थान नहीं था जिसे उसने भय रहित बनाकर आबाद किया। इसमें बाजारों की व्यवस्था की गई और तीनों वर्णों के रहने के मकान, सड़कों आदि का निर्माण करवाया गया। इस प्रकार की शांति स्थापित होने से ये नगर भले आदमियों के रहने के योग्य स्थान बन गये। ये सूचना इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्व की है। ऐसा मालूम होता है कि कुक्कुक ने आभीरों को परास्त कर मारवाड़ में शांति स्थापित कर नागरिक जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की जिससे दूर-दूर से व्यापारी वर्ग आकर बस गए और ये भाग जन-जीवन तथा व्यापार के लिए उपयोगी बन गया। तीनों वर्णों के लिए उसने उद्योग और धन्धों की व्यवस्था पैदा करदी।

इस लेख में 'मग' जाति के ब्राह्मणों का भी विशेष उल्लेख किया गया है जो वर्ण के विभाजन की प्रवृत्ति का द्योतक है। यह जाति मारवाड़ में शाकद्वीपीय ब्राह्मण के नाम से भी जाने गए हैं जो ओसवालों के आश्रित रहकर जीवन निर्वाह करते हैं। जैन मन्दिरों में सेवा पूजा के कार्य करने से इन्हें सेवक भी सम्बोधित किया जाता है। यदि इन लेखों को जोधपुर के प्रतिहारों के अन्य लेखों के संयोग से पढ़ा जाय तो मारवाड़ में प्रतिहारों के विस्तार और शासन पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। स्वतन्त्र रूप से भी इन लेखों का नवमीं शताब्दी के प्रतिहारों की राजनीतिक व्यवस्था, नागरिक जीवन तथा उनके द्वारा स्थापित लोकोपकारी साधनों की स्थापना का अच्छा परिज्ञान हो जाता है।

इन लेखों का लेखक मग तथा उत्कीर्णक सुवर्णकार कृष्णेश्वर तथा स्तम्भों का बनाने वाला एक सूत्रधार था जिसका नाम लुप्त हो गया है।

इन लेखों की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं—

पंक्ति ११-१४—येन प्राप्ता महाख्याति स्त्रवण्यां वल्लमाडयोः।

आर्येषु गुर्ज्जरत्रायां लाट देशे च पर्व्वते ।। तेन
मड्डोदरे स्तम्भास्तथा रोहिन्सके कृतः

पंक्ति दूसरे लेख की ६-८—श्रीमत्कक्कस्य पुत्रेण सत्प्रतिहार जातिना ।
कक्कुकेन स्थितिदत्वा स्थापितोत्र महाजनः ।।

पंक्ति तीसरे लेख की २—अयमुत्तम्भितस्तम्भो यशस्तम्भ इवोन्नतः ।।

पंक्ति चौथे लेख की ३-४—न्यायमार्गो गुरोर्भक्तिः पुत्र स्नेहः कृतज्ञता ।
प्रियावाग्नागरो वेषः कक्कुकस्य प्रियाणि षट् ।।

घटियाले के दो लेख [२८] (८६१ ई.)

जोधपुर से २० मील उत्तर में घटियाला गांव है, जहां से वि. स. ६१८ चैत्र सुदी २ के दो लेख उपलब्ध हुए। इनमें से एक लेख महाराष्ट्री भाषा का श्लोक बद्ध और दूसरा उसी का आशय रूप संस्कृत में है। इन से पाया जाता है 'हरिश्चन्द्र' नाम ब्राह्मण, जिसको रोहिल्लद्धि भी कहते थे, वेद तथा शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता था। उसके दो स्त्रियां थी—एक ब्राह्मण वंश से दूसरी क्षत्रिय कुल से। ब्राह्मणी के पुत्र ब्राह्मण प्रतिहार और क्षत्रिय रानी के मद्यपान करने वाले (क्षत्रिय) कहलाये। हरिश्चन्द्र का समय इसमें उपलब्ध नहीं है, परन्तु बाउक के समय का अंकण जो इसमें संवत् ८९४ दिया है उससे औसत २० वर्ष मानने से हरिश्चन्द्र का समय वि० स० ६५४ (५९७ ई०) होता है। उपर्युक्त शिलालेख से मंडोर के प्रतिहारों की नामावली तथा उनकी उपलब्धियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस वंश का प्रमुख हरिश्चन्द्र हुआ। उसके चार पुत्र-भोगभट, कक्क, रज्जिल और दह ने मिलकर मंडोर दुर्ग का ऊँचा प्राकार बनवाया। हरिश्चन्द्र के उत्तराधिकारी क्रमशः रज्जिल, नरभट, तथा नागभट थे। नागभट ने मेड़ता को अपनी राजधानी बनाया। इसके पुत्र तात ने राज्य छोड़ कर अपने भाई भोज को दे दिया और स्वयं माडव्य के आश्रम में रहकर अपना जीवन बिताता रहा। भोज के बाद यशोवर्द्धन और उसके बाद चंदुक प्रतिहारों की गद्दी पर बैठे। चंदुक के पुत्र शीलुक ने अपने राज्य का विस्तार त्रवणी और वल्लदेश की सीमा तक बढ़ाया और वल्लदेश के राजा भट्टिक को परास्त कर उसका छत्र छीना। उसके उत्तराधिकारी झोट ने गंगा में मुक्ति प्राप्त की और उसके पुत्र भिल्लादित्य ने राज्य छोड़ कर हरिद्वार जाकर अपना देह छोड़ा। भिल्लादित्य का पुत्र कक्क बड़ा प्रतापी और विद्वान था। उसने मुंगेर के गोड़ों को परास्त किया। वह रघुवंशी प्रतिहार वत्सराज का सामंत था। उसके पुत्र बाउक ने नंदावल्ल को परास्त किया और शत्रु सैन्य का संहार किया। जब उसका भाई कुक्कुक शासक बना तो उसने अपने सच्चरित्र से मरु, माड, वल्ल, तमणी (त्रवणी), अज्ज (आर्य) एवं गुर्जरत्रा के लोगों का अनुराग प्राप्त किया। उसने बड-

---

२८. ज. रा. ए. सो., १८९४, पृ. ६-८, ए. इ. जि. ९, पृ. २८० ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ. १६६-१७१।

णालय मंडल के पहाड़ पर की पल्लियों (पालों) को जलाया और रोहिन्सकप (घटियाले) के निकट गांव में हाट बनवाकर महाजनों को बसाया और जय स्तम्भों की स्थापना की। वह स्वयं विद्वान था। यह शिला लेख उसी के समय लिखा गया था जिसका अन्त का श्लोक उसी ने बनाया था। 'अयश्लोकः कक्कुकेन स्वयं कृतः' प्रस्तुत लेख से भीलों की विजय और राजपूतों के अधिवासन पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। इससे हमें उस समय के राजाओं की विद्वता तथा शौर्य का परिचय मिलता है।

राजोगढ़ का लेख[२९] (९२३ ई.)

राजोगढ़ अलवर के अन्तर्गत है जहां यह लेख प्राप्त हुआ है। इसकी भाषा संस्कृत तथा लिपि नागरी है। इसका समय वि. स. ९७९ है।

इस लेख से हमें कई आवश्यक सूचनाएँ मिलती है। इसमें राजोगढ़ में प्रसिद्ध शिल्पकार सर्वदेव द्वारा शांतिनाथ के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है। सर्वदेव पूर्णतल्लक से निकले हुए धर्कट (धाकड़) वंश के देहदुलक का पुत्र तथा आर्भट का पुत्र था। सर्वदेव ने इस मन्दिर का निर्माण पुलीन्द राजा के आग्रह से किया था। इसमें राजा सावट का भी उल्लेख है। इसमें सर्वदेव के पुत्र वरांग तथा गुरु आचार्य सूरसेन का भी नाम अंकित है। प्रस्तुत प्रशस्ति की रचना सागरनंदि और लोकदेव द्वारा की गई थी।

प्रतापगढ़ का लेख (९४२ ई०)

यह लेख भर्तृभट्ट दूसरे के समय का वि० सं० ९९९ (ई०सं०९४२) श्रावण शुक्ला १ का है जो प्रतापगढ़ से उपलब्ध हुआ। इसमें गद्य संस्कृत का प्रयोग किया गया है और इसकी लिपि दसवीं सदी की नागरी है। यह भी खण्डित अवस्था में है। इससे कुछ राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक बिन्दु पर प्रकाश पड़ता है। लेख का आशय यह है कि खोंमाण के पुत्र महाराजाधिराज श्री भर्तृभट्ट ने घोंटावर्षी (धोटार्सी-प्रतापगढ़ से ७ मील दूर में) गाँव के इन्द्रराजादित्यदेव नामक सूर्य-मन्दिर को पलास-कूपिका (परासिया–मन्दसोर से १५ मील दक्षिण में) गाँव का वब्बूलिका खेत भेंट किया।

इस लेख से भर्तृभट्ट के राज्य की सीमा का हम अनुमान लगा सकते हैं। उस समय तक सूर्य की आराधना का प्रचलन था यह भी इससे प्रमाणित होता है। इससे यह भी जाना जाता है कि उस सदी में खेतों को वृक्षों के निकट होने के संदर्भ से जाना जाता था और उन्हें वैसी ही संज्ञा दी जाती थी—जैसे बबूल के निकट होने से परासिया गाँव के एक खेत को वब्बूलिका कहा गया। अन्यत्र भी आम, वट, इमली,

---

२९. रि. इ. ए., १९६१-६२, क्र. १२८; जैन शिलालेख संग्रह, सं. १५, पृ. १८।

३०. ए. इ.; जि. १४, पृ. १८७; ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० १२१.

पीपल आदि वृक्षों की निकटता के आधार पर खेतों की संज्ञा इसी प्रकार उपलब्ध होती है। ऐसे अनुदानों में साक्षी रूप में राज्य परिवार, अधिकारीवर्ग या ग्राम के प्रमुखों को रखा जाता था।

इसका गद्य भाग इस प्रकार है:—

"संवत् ९९९ श्रावण सुदि १ समस्तराजावलिपूर्वमग्रे (घे)ह
महाराजाधिराज श्री भर्तृभट्टः श्री खोमाणसुतः स्वमातृपित्रो-
रात्मनश्च धर्म्माभिवृद्धये घोण्टावर्षीयेन्द्रराजादित्यदेवाय
पलासकूपिकाग्रामे वंब्बूलिको ना (ना) म कच्छ (च्छः) ...."

आहड़ के आदिवराह मन्दिर का लेख[31] (९४४?)

प्रस्तुत लेख प्रारम्भ में आहड़ के आदिवराह मन्दिर में लगा होगा, जो पीछे से गंगोद्भव में एक ताक में लगाया गया था। इसे यहाँ से हटाकर महाराणा भूपाल कालेज के सग्रहालय-कक्ष में अब सुरक्षित कर दिया गया है। संस्कृत भाषा में १४ पंक्तियों का यह लेख मेवाड़ के शासक भर्तृभट्ट द्वितीय के समय का है। यह खण्डित अवस्था में होने से कई स्थलों तथा संवत् के सम्बन्ध में पढ़ा नहीं जाता। यह १०वीं शती की 'ब्राह्मी लिपि' में बड़ी सुन्दरता एवं कुशलता से १५"×१०" के पाषाण पर उत्कीर्ण किया गया है जो उस समय की उत्कृष्ट शिल्पकला का साक्षी है। इसमें आदिवराह की वन्दना है तथा यह उल्लिखित है कि आहड़ में आदिवराह के मन्दिर का निर्माण किसी आदिवराह नामक व्यक्ति ने किया। इसमें आदिवराह, जनार्दन, विष्णु, कैटभरिपु आदि शब्दों के प्रयोग इस भाग में विष्णु भगवान की मूर्ति की अर्चना का प्राचुर्य प्रमाणित करते हैं। इसी प्रकार 'पंचरात्रविधि' के उल्लेख द्वारा आहड़ में वैष्णव विचार धारा के प्रभाव का बोध होता है। इसमें वर्णित 'आघार' शब्द से आहड़ स्थान का बोध होता है जहाँ आदिवराह के मन्दिर की सम्भावना थी। प्रशस्तिकार वैसे तो मन्दिर का वर्णन न देकर आदिवराह की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख करता है परन्तु इससे मन्दिर की स्थिति भी अनुमानित की जा सकती है। यहाँ 'गंगोद्भव' का भी उल्लेख आता है जो अद्यावधि तीर्थ स्थान के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस लेख से आहड़ का एक समृद्ध तथा धर्म स्थान के रूप में ख्यातिमान नगर होना प्रमाणित होता है।

शिलालेख के अन्तिम भाग में केवल ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी आदि शब्द पढ़े जाते हैं और संवत् के अंक जाते रहे हैं। डा० ओझा ने इस लेख को वि० सं० १००० (९४३ई०) माना है। परन्तु संवत् १००० ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मंगलवार व पुष्य नक्षत्र जैसा इसमें अंकित है, न थे। अतः काल-गणना

---

३१. ए. रि. ए. म्यू. अजमेर, १९१३–१४, पृ०२; ओझा, उदयपुर राज्य, भा १ पृ. १२१

शोध पत्रिका, सि–दि, १९५९, पृ. ५४–५७।

के अनुसार इस लेख का समय ९९८ अथवा १००१ होना चाहिये। इन वर्षों में दिन व नक्षत्र का मेल बैठ जाता है। यदि हम संवत् १००१ स्वीकार करते हैं तो लेख का समय ३० अप्रेल सन् ९४४ ईसवी होता है। ऐसी स्थिति में भर्तृभट्ट द्वितीय का देहान्त काल संवत् १००१ के उपरान्त तथा १००८ से पूर्व निर्धारित होता है, जबकि उसके पुत्र अल्लट को १००८ व १०१० में आहड़ का शासक मानते हैं।

इसकी प्रथम व अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है:—

पंक्ति १	....चित्तचारिणे। नमः समस्ताभरसारपूर्त्तये।
जनार्दनायादिव...........

पंक्ति १४	.......(स) हुस्ने कुजस्य पंचम्यां। आदिवरा (हः)
पुष्ये प्रतिष्ठितो ज्येष्ठसित पक्षे। सं... ....

प्रतापगढ़ शिलालेख[३२] (९४६ ई०)

यह शिलालेख संवत् १००३ (सन् ९४६) का है, जो प्रारम्भ में प्रतापगढ़ नगर में चेनराम अग्रवाल की वावड़ी के निकट एक चबूतरे पर लगा हुआ था, जिसे डॉ० ओझा ने वहाँ से हटाकर अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित किया। यह लेख अच्छी अवस्था में है जिसमें ३५ पंक्तियाँ २'·६" × २'·२½" अकार के पत्थर पर उत्कीर्ण हैं। कुछ ही अक्षरों को छोड़कर सभी अक्षर ठीक रूप से पढ़े जा सकते हैं। कुछ पंक्तियाँ को छोड़कर अन्य सभी पंक्तियों में संस्कृत गद्य काम में लिया गया है और उसमें दसवीं शताब्दी की नागरी लिपि प्रयुक्त है। कुछ पक्तियों में देवस्तुति के लिए पद्यों का भी प्रयोग किया गया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेख की संस्कृत भाषा के साथ कुछ प्रचलित देशी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। इस सम्बन्ध में अरहट, कोशवाह, (एक चमड़े के चरस से सींची जाने वाली भूमि), चौसर (फूल की माला), पालिका (पूला), पली (तेल का नाप), थाणा (धाणी) आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत लेख चार भागों में विभाजित है जिनमें कई अनुदानों के देने का उल्लेख है जो घोटार्सी के हरिरीश्वर के मठ के साथ लगे हुए अनेक मन्दिरों के लिए दिये गये थे। इस लेख में सूर्य, दुर्गा, शिव आदि से सम्बन्धित स्तुतियों के श्लोक उस समय की धार्मिक निष्ठा पर प्रकाश डालते हैं। महेन्द्रदेव द्वारा दिये गये अनुदान में उसके प्रतिहार वंश के शासकों की नामावली भी दी है जिनमें नागभट्ट, कुकुस्त, रामभद्र, भोज, महेन्द्रपाल आदि प्रमुख हैं। कुछ ऐसे भी इसमें नाम दिये हैं जो संदिग्ध हैं और जिनको अन्य साधनों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। फिर भी इसमें दी गई सूची से ८वीं शताब्दी से १०वीं शताब्दी के कन्नौज के प्रतिहार शासकों के वंशवृक्ष के क्रम में शुद्धि की जा सकती है।

---

३२. ए. रि. रा. म्यू., अजमेर, १९१४; ए. इं., जि. १४ पृ. १८२–८४; जी. एन. शर्मा, ए बिबलियोग्राफी, पृ. ४.

दूसरे अनुदान में चहमान शासक गोविन्द राज, दुर्लभराज और इन्द्रराज की उपलब्धियों का वर्णन है। इसमें महादेव नामक प्रान्तीय अधिकारी और कोक्कट नामी सेनापति का भी उल्लेख है, जो महेन्द्र द्वितीय के अधीन थे। इनके द्वारा उज्जैनी में महाकाल की अर्चना करने के उपरान्त संक्रान्ति पर गाँव भेंट करने का उल्लेख है। लेखमें मंडपिका तथा सभी निकटवर्ती ग्रामीण व्यवस्थाओं को अनुदान सम्बन्धी आदेशों को पालन करने का आदेश दिया गया है जो उस समय की स्थानीय संस्थाओं और राजकीय प्रशासन के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है।

तीसरे व चौथे भाग के अनुदानों से उस समय खेतों की सीमा तथा गाँवों की सीमा निर्धारित करने और उनके वर्गीकरण करने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। बबूल के वृक्ष के पास खेत होने से उसे बबूलिका कहते थे तथा एक चरस से सिंचाई की जाने वाली भूमि को कोशवाह कहा जाता था। इन अनुदानों में दस मन के लिए माणी तथा नाप के पात्र को पल और पलिका की संज्ञा दी गई है।

यह शिलालेख १०वीं शताब्दी के धार्मिक जीवन, गाँवों की सीमा, जनजीवन, शासन व्यवस्था, सहयोगी जीवन, अनुदान, कर-व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसमें दिये गये अनेक नामों से कई व्यक्तियों के वंश, पद तथा उनकी उपलब्धियों का भी पता चलता है। इसमें सामन्त-प्रथा की व्यवस्था सम्बन्धी भी संकेत मिलते है।

इसमें दी गई प्रथम व अन्तिम पंक्तियों को यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

पंक्ति १ भवंतु भव (तां भानो) भूँतये भानवः सदा ।।
पंक्ति ३५ आच्छेत्ता वानुयन्ताः च तात्येव नरकं (वसेत्) ।।
(स) त्पसुत सिद्धपेन इयं प्रशस्ती उत्कीर्णमिति ।।
संवत् १००३ ।।

सिमडोनी का शिलालेख[33] (९४८ ई०)

प्रतिहार देवपाल के समय का एक वि० सं० १००५ का शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें उसके विरुद परमभट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर दिये हैं। उसको क्षितिपालदेव (महीपाल) का पादानुध्यात (उत्तराधिकारी) कहा है। यदि देवपाल महीपाल का पुत्र था तो इस लेख से पता चलता है कि उसके अल्पवयस्क होने से उसका चचा विनायकपाल उसका राज्य दबा बैठा हो और महेन्द्रपाल (दूसरे) के पीछे वह राज्य का स्वामी बना हो।

सारणेश्वर (सांडनाथ) प्रशस्ति[34] (९५३ ई.)

यह प्रशस्ति वि. स. १०१० (ई. स. ९५३) की लगभग ४'.५''×६' चौड़े

३३. ए० इं० जि०१, पृ० १७७।

३४. भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, भा. २, पृ. ६७-६८, प्लेट संख्या ३४, वीरविनोद

भूरे रंग के पत्थर पर खुदी हुई है और उदयपुर के श्मशान के सारणेश्वर नामक शिवालय के सभामण्डप के पश्चिमी द्वार के छबने पर लगी हुई है, जिसको सभामण्डप के भीतरी भाग की तरफ से पढ़ सकते हैं। उदयपुर से डेढ़ मील दूर पूर्व स्थित आहड़ गाँव के किसी वराह मन्दिर में यह प्रशस्ति प्रारंभ में लगी होगी। उक्त वराह मन्दिर के गिर जाने से इस प्रशस्ति को वहाँ से हटाकर वर्तमान सारणेश्वर के मन्दिर के निर्माण के समय में सभामण्डप के छबने के काम में ले ली गई हो। यह पुरातत्त्वज्ञों के लिए संतोष की बात है कि यह प्रशस्ति किसी तरह सुरक्षित रह गई और उसका महत्त्व स्थिर रह गया।

इस प्रशस्ति में केवल छः पंक्तियाँ हैं; परन्तु यह प्रशस्ति आद्योपान्त है। इस काल की आहड़ से मिलने वाली प्रशस्तियों में यही प्रशस्ति ऐसी है जो सुरक्षित रही। इसमें भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है, जिसकी बनावट मध्यकालीन युग की लिपि के रूप में है। ग्यारहवीं शताब्दी के मेवाड़ के इतिहास के लिए तो यह प्रशस्ति उपयोगी है ही, पर राजस्थान के इतिहास में भी यह प्रशस्ति अपना स्वतन्त्र स्थान रखती है, क्योंकि इसमें तत्समयक शासन तथा कर व्यवस्था का अच्छा वर्णन है। गुहिलवंशी मेवाड़ के राजा अल्लट का इस प्रशस्ति से समय स्थिर होकर उसकी माता महालक्ष्मी तथा पुत्र नरवाहन के नाम स्पष्ट हो जाते हैं। इसमें मुख्य-मुख्य कर्मचारियों के नाम उनके पद सहित उल्लिखित किये गये हैं। उक्त लेख से पाया जाता है कि अल्लट का आमात्य (मुख्यमन्त्री) मंमट, सांधिविग्रहिक (संधि और युद्ध का मन्त्री) दुर्लभराज, अक्षपटलिक (आय-व्यय का अधिकारी) मयूर और समुद्र, बंदिपति (मुख्य भाट) नाग और भिषगाधिराज (मुख्य वैद्य) रूद्रादित्य था। इन नामों के अतिरिक्त उस वराह के मन्दिर से सम्बन्धित गोष्टिकों की बड़ी नामावली दी है जिसमें वणिकदेवराज, श्रीधर, हूण तथा कुशराज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मंदिर के निर्वाह के लिए उधर से गुजरने वाले हाथी पर एक द्रम (द्रम एक चाँदी का सिक्का था, जिसका मूल्य चार से छः आने के करीब होता था), घोड़े पर दो रूपक (चाँदी का सिक्का जिसका वजन लगभग ३ रत्ती होता था), सींगवाले जानवरों पर एक द्रमा का चालीसवाँ अंश, लाटे (फसल का हिस्सा) पर एक तुला (लगभग पाँच सेर) और हट्ट (हटवाड़े) से एक आढक (अन्न का नाप लगभग साढ़े तीन सेर का सूचक) अन्न, शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन हलवाई की प्रति दुकान से एक घड़िया दूध, जुआरी से एक पेटक (एक दाव की जीत का भाग), प्रत्येक घानी से एक पल (लगभग चार तोला) तेल, प्रति रंधनी (भोज) एक रूपक और मालियों से प्रतिदिन एक माला लिये जाने की व्यवस्था राजा ने की थी। इसी तरह वहाँ रहने वाले अनेक व्यापारी जो कर्णाटक, मध्य प्रदेश, लाट (गुजरात और आसपास का भाग)

भा. १, पृ. ३८०, ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १, पृ. १२२-१२४, जी. एन. शर्मा : ए बिबलिओग्राफी पृ. ४।

और टक्क (पंजाब का एक भाग) से आकर यहाँ बस गए थे उन्होंने भी मन्दिर को अपनी ओर से दान दिया था। इससे स्पष्ट है कि आहड़ उस समय एक सम्पन्न नगर था जहां देश-विदेश से आकर लोग व्यापार करते थे और नगर की स्थिति भी व्यापारिक मार्ग पर थी। इसी स्थिति के कारण कर की भी व्यवस्था की गई थी। यहाँ के मन्त्रिमण्डल के गठन से भी आहड़ का उस समय की राजधानी होना प्रमाणित होता है। अथवा राजधानी यदि नागदा भी रही हो तो अल्लट आहड़ में तीर्थस्थल तथा प्रधान नगर होने से वहाँ रहा करता हो। इस मन्दिर का निर्माण उत्तम सूत्रधार अग्रट ने किया और इसमें वराह मूर्ति की स्थापना वैषाख शुक्ला सप्तमी वि. सं. १०१०, तदनुसार २३ अप्रेल ९५३ ई. में हुई। प्रशस्ति के लिपिकार कायस्थ पाल और वेलक थे।

इस प्रशस्ति की प्रथम तथा अंतिम पंक्ति के पद्यांश इस प्रकार हैं—

१. ॐ पांतु पद्यांगस्तं संगचंचन्द्रोमाँचवीचयः। श्यामाः कलिद तनया पूरा इव हरेर्भुजा ॥

६. लेखितारौच कायस्थौ पालवेल्लक संज्ञकौ ॥

ओसिया का लेख,[३५] (९५६ ई०)

ये लेख २२ संस्कृत पद्यों में है जिसके जगह-जगह अक्षर खण्डित हो गए हैं। इसमें मानसिंह भूमि का स्वामी वत्सराज को रिपुओं का दमन करने वाला कहा गया है। वत्सराज के पुर में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों में समाज विभाजित था। उसके भवन हाथियों से शोभायमान थे और विद्वान अध्ययन और स्तुति में लगे रहते थे। इस प्रशस्ति से वत्सराज के समय की समृद्ध स्थिति का पता चलता है। ये लेख १०१३ फाल्गुन शुक्ला तृतीया का है जिसे सूत्रधार पदाजा द्वारा उत्कीर्ण किया गया उल्लिखित है। इसके मूलपाठ का कुछ अंश इस प्रकार है—

"श्री मानसिंह प्रभुरिह भुवि·······येक वीर स्त्रैलोक्येयं प्रगट महिमा राम नामासयेन चक्रे शार्कं दृढतर भुरो निर्दयालिंगनेपु स्त्र प्रेयस्यादशमुख वधोत्पादित स्वास्थ्य वृतिः ॥५॥"

"तद्वंशे सर्वश्री वशीकृत रिपु श्री वत्सराजो भवत्कीतिय्यस्य तुपार हार विमला ज्योत्स्नात्तिरस्कारिणी·······॥७॥"

"क्वचित्·······रवुद्धयोविक्रम धीयते साधवः
क्वचित्पटुपटीयसो प्रकटयन्ति धर्म्मस्थितिम्
क्वचिन्तु भगवत्स्तुति परिपठयन्ति यस्यागिरे·······॥१२॥"

जगत् का लेख[३६] (९६० ई०)

राजस्थानान्तर्गत उदयपुर जिले में जगत् नामक गाँव में एक 'अम्बिका' माता

---

३५. नाहर, जैन लेख, भा. १, सं. ७८८।

३६. मरु भारती, अप्रेल १९५७, पृ. ५६।

का मन्दिर है। सभामण्डप के एक स्तम्भ पर वि. सं. १०१७ वैशाख वदी १ का एक लघु लेख है। इस लेख द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मन्दिर ईसा की १०वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान था। कला की दृष्टि से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है।

राजोरगढ़ का लेख[३७] (९६० ई०)

राजोरगढ़ (अलवर जिला) के वि. सं. १०१६ माघ सुदी १३ के लेख से पाया जाता है कि ११वीं शताब्दी में राज्यपुर (राजोगढ़) पर प्रतिहार गोत्र का गुर्जर महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था और वह महीपाल का सामंत था। उसी लेख से वहाँ गुर्जर जाति के किसान होने की भी सूचना प्राप्त होती है।

चित्तौड़ का लेख[३८] (९७१ ई०)

यह लेख प्रारम्भ में चित्तौड़ में प्राप्त हुआ था, परन्तु अब यह वहां उपलब्ध नहीं है। भाग्यवश इसकी एक प्रतिलिपि अहमदाबाद में भारतीय मन्दिर में संग्रहीत है। लेख श्लोकवद्ध है और जो ७८ की संख्या में हैं। स्तुतिभाग के अनन्तर इसमें भोज और उसके उत्तराधिकारियों की उपलब्धियों का वर्णन मिलता है जो उनके व्यक्तिगत गुण और शौर्य पर प्रकाश डालता है। श्लोक में २१–२८ तक इसी वंश के नरवर्मा का वर्णन आता है जिसके समय की यह प्रशस्ति है। इससे नरवर्मा का अधिकार चित्तौड़ पर रहना सिद्ध होता है। प्रशस्ति के अनुसार इसी के समय में चित्तौड़ में महावीर जिनालय का निर्माण तथा प्रतिष्ठा हुई। इस प्रशस्ति का महत्त्वपूर्ण भाग वह है जहां महावीरप्रसाद के निर्माण में योगदान करने वाले कई धर्कट तथा खण्डेलवाल जाति के श्रेष्ठियों का नामोल्लेखन किया गया है। साधारण, वीरक, रासल, धन्धक, मानदेव, मानदेव, पद्म आदि प्रतिष्ठित श्रेष्ठियों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये लोग राजकार्य तथा व्यापार-वाणिज्य में निपुण थे और उनका राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में हाथ रहता था। आगे चलकर ७३वें श्लोक में नरवर्मा द्वारा भी प्रसाद के लिए दो पारुत्थ मुद्रा देने का उल्लेख मिलता है जिससे उस समय के शासकों की सहिष्णुतापूर्ण नीति का बोध होता है। इस प्रशस्ति के ७५वें श्लोक में देवालय में स्त्रियों के प्रवेश को निषिद्ध बतलाया है जो उस समय की सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। निषेधात्मक नियम से हमें संभावित दुराचार की प्रवृत्ति और धार्मिक स्तर के पतन की ओर संकेत मिलता है। इस शिलालेख से परमार शासकों की उपलब्धियाँ, उनका चित्तौड़ पर अधिकार, चित्तौड़ की समृद्धि, उस समय के प्रतिष्ठि व्यक्तियों के नाम तथा सामाजिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

---

३७. ए. इं., जि. ३, पृ. २६६।

३८. सोमानी–चित्तौड़

नाथ प्रशस्ति-एकलिंगजी[३९] (९७१ ई०)

यह एकलिंगजी के मन्दिर से कुछ ऊँचे स्थान पर लकुलीश के मन्दिर में लगा हुआ वि. सं. १०२८ (ई. सं. ९७१) का शिलालेख है जिसे नाथ प्रशस्ति भी कहते हैं। नरवाहन के समय का यह एक महत्त्वपूर्ण लेख है। उक्त मन्दिर में ऊपर से बहने वाले बरसाती पानी से इस प्रशस्ति की कई पंक्तियाँ बिगड़ गई हैं और उसमें कई जगह दरारें आ गई हैं। इतना होते हुए भी इसका बहुत कुछ अंश पढ़ा जा सकता है। प्रशस्ति का आकार २.११"×१८" है और उसमें १८ पंक्तियाँ हैं। इसकी भाषा संस्कृत है जो पद्यों में लिखी गई है और इसमें देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया है।

यह प्रशस्ति मेवाड़ के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के लिए बड़े काम की है। तीसरे और चौथे श्लोक में नागदा नगर का वर्णन है। पाँचवें से आठवें श्लोकों में यहाँ के राजाओं के गुणों और शौर्य का वर्णन है जो बापा, गुहिल तथा नरवाहन है। आगे चलकर स्त्री के आभूषणों का वर्णन मिलता है जो उस समय के जनजीवन को समझने में बड़ा सहायक हो सकता है। १३वें से १७वें श्लोक में ऐसे योगियों का वर्णन है जो भस्म लगाते हैं, वल्कल वस्त्र तथा जटाजूट धारण करते हैं। पाशुपत योग साधना करने वाले कुशिक योगियों तथा उस सम्प्रदाय के अन्य साधुओं का भी हमें परिचय मिलता है जो एकलिंगजी की पूजा करने वाले तथा उक्त मन्दिर के निर्माता कहे गये हैं। १७वें श्लोक में स्याद्वाद (जैन) तथा सौगत (बौद्ध) विचारकों को वादविवाद में परास्त करने वाले वेदाङ्ग मुनि की चर्चा है। इस प्रशस्ति का रचयिता भी इन्हीं वेदाङ्ग मुनि के शिष्य आम्र कवि थे। इसमें अन्य व्यक्तियों के भी नाम हैं जो मन्दिर के निर्माणक थे या उससे सम्बन्धित थे, जैसे श्रीमार्तण्ड, लैलुक, श्री सधोराशि, श्री विनिश्चित राशि आदि।

इस प्रशस्ति की प्रथम व अन्तिम पंक्ति के पद्यांश इस प्रकार हैं—

पंक्ति १—ॐ नमो लकुलीशाय ।। प्रथम तीर्थ··········श्वरम् किंतात········स्व हस्ते विसक।

पंक्ति १८–··········प्रापमाले प्रसिद्धिम् ।। श्री सुपुजितरासिकारापक प्रणमति । श्री मार्कण्ड श्रीभातृपुर सधोरासि श्रीविनिश्चितरासि । लैलुक नोहल । एव कारपक···············।

३९–बंब. ए. सो. ज., जि. २२, पृ. १६६–६७, भावनगर इन्स्क्रि., भा. २, पृ ६९–७२.

नागरी प्र. प. भा. १, पृ २५६–५९.

वीर विनोद, भा. १, पृ. ३८१–३८३, ओझा, उदयपुर, भा. १, पृ. १२५–१२६।

हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति[४०] (९७३ ई०)

यह प्रशस्ति शेखावाटी के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मन्दिर की वि. सं. १०३० आसाढ़ सुदी १५ की है। इसमें ४८ पद्य संस्कृत भाषा में हैं। उक्त मन्दिर का निर्माण अल्लट द्वारा किया गया था। यह प्रशस्ति सांभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय की है। इससे चौहानों के वंशक्रम तथा उनकी उपलब्धियों पर प्रकाश पड़ता है। इस वंश के शासकों के नाम इस प्रकार है—युवक, चन्द्रराज, युवक द्वि, चन्दन, वाक्पतिराज, सिंहराज और विग्रहराज। इसमें बागड़ के लिए बार्गट शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें विग्रहराज के पिता सिंहराज के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने सेनापति की हैसियत से उद्धत तोमर (तंवर) नायक सलवण को मारा या परास्त किया। युद्ध में उसने अनेक राजाओं को कैद किया और उन्हें तब तक नहीं छोड़ा जब तक पृथ्वी के चक्रवर्ती रघुवंशी राजा स्वयं वहां न आये। सिंहराज की सेनापति की स्थिति तथा रघुवंशी राजा के आने तक शत्रुओं को नहीं छोड़ना उसका किसी का सामन्त होना व्यक्त करता है। उस समय रघुवंशी शक्तिशाली शासक कन्नौज का राजा प्रतिहार देवपाल था। सिंहराज इसी देवपाल का सामन्त हो सकता है। इस सम्बन्ध का इसमें श्लोक इस प्रकार है—

"........।.... तोमरनायकं सलवणं सैन्याधिपत्योद्धतं युद्धे येन नरेश्वराः प्रतिदिशं निर्न्ना (एर्णा) शिता जिष्णुना कारादेश्मनि भूरपश्च विधृतास्तावद्धि यावद्गृहे तन्भुक्त्यर्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयम् ।।

आहड़ का देवकुलिका का लेख[४१] (९७७ ई.)

इस लेख का संवत् वाला अंश टूट गया है, परन्तु इसमें मेवाड़ के राजा अल्लट, नरवाहन और शक्तिकुमार के नाम होने से यह शक्तिकुमार के समय का प्रतीत होता है। इस लेख का सबसे बड़ा उपयोग यह है कि इससे इन तीनों शासकों के समय के अक्षपटलाधीशों का वर्णन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति कुमार के अक्षपटलाधीश के द्वारा बनवाये गये किसी मन्दिर का यह लेख हो। अब यह लेख का खण्ड आहड़ के एक जैन मन्दिर की देवकुलिका के छबने में तोड़फोड़ कर लगा दिया गया है और थोड़ा सा भाग जो बच रहा है जिससे उपर्युक्त सूचनाएँ मिलती हैं। अल्लट के सम्बन्ध में इसमें उल्लिखित है कि उसने अपनी भयानक गदा से अपने प्रबल शत्रु देवपाल को युद्ध में मारा। सम्भव है कि देवपाल कन्नौज का शासक था जिसने अपने राज्य में मेवाड़ सम्मिलित करने का प्रयत्न किया हो और चढ़ाई के अवसर पर वह मारा गया हो। इस लेख में अल्लट के अक्षपटलाधीश का नाम मयूर दिया है। मेवाड़ के प्राचीन शासन सम्बन्धी सूत्रों को तथा सैनिक प्रतिभा को सम-

---

४०. ए. ई. जि. २, १२१–२२, ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ. १७३, डा. जी. एन. शर्मा–बिलियोग्राफी, पृ. ४।

४१. ओझा, उदयपुर, जि. १, पृ. १२४–१३३।

झने में यह लेख बड़े काम का है ।

आहड़ का शक्तिकुमार का लेख[४२] (९७७ ई०)

वि. सं. १०३४ वैशाख- सुदी १ के आहड़ के लेख में शक्ति कुमार को प्रभु शक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साह शक्ति से सम्पन्न कहा है । यह लेख टॉड को मिला था । सम्भवत: वह उसे इंगलैण्ड ले गया । इसमें यह भी उल्लिखित है कि शक्तिकुमार का निवास स्थान आहड़ था जो सम्पत्ति का घर तथा विपुल वैभव वाले वैश्यों से सुशोभित था । इस लेख से शक्तिकुमार की राजनीतिक प्रभुता तथा आहड़ की आर्थिक सम्पन्नता का बोध होता है । इस लेख में अल्लट की माता महालक्ष्मी का राठौड़ वंश की होना तथा अल्लट की राणी हरियदेवी का हूण राजा की पुत्री होना और उस राणी का हर्षपुर गाँव बसाना अङ्कित हैं। इस लेख में गुहदत्त से शक्ति कुमार तक पूरी वंशावली दी है जो मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के लिए बड़े काम की है । इस लेख में वर्णित शक्तिकुमार की राजनीतिक प्रभुता आहड़ के एक देवकलिका वाले शिलालेख से भी प्रमाणित होती है । एक अन्य लेख द्वारा हमें यह सूचना मिलती है कि राजा नरवाहन के अक्षपटलिक श्रीपति के दो पुत्र मत्तट और गुंदल थे । ये दोनों भाई शक्तिकुमार की दोनों भुजाओं के समान थे । वे सब राजकार्य में अपने स्वामी को सहायता पहुँचाते थे तथा राजधानी के भूषण थे। यह राजधानी एक प्रकार से सैनिक छावनी थी इसलिए प्रशस्तिकार ने इसके लिए 'कटक' शब्द का प्रयोग किया है । ये दोनों बन्धु इस कटक के भूषण बतलाये गए हैं, जिससे उनकी सैनिक उपयोगिता का भी बोध होता है । एक अन्य जैन मन्दिर के सीढ़ी के लगे हुए अपूर्ण लेख से मत्तट का शक्तिकुमार का अक्षपटलाधिपति होना भी सूचित होता है । उसने राजा की आज्ञा से एक सूर्य मन्दिर के लिए प्रतिवर्ष १४ द्रम देने की व्यवस्था की थी । इस सीढ़ी वाले लेख से उस समय की प्रचलित सूर्यपूजा और द्रम का बोध होता है । यह अपूर्ण लेख उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है ।

यदि हम ये तीनों लेखों को साथ-साथ पढ़ते हैं तो शक्ति कुमार की उपलब्धियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"राष्ट्रकूट कुलोद्भूता महालक्ष्मीरितीस्त्रिया अभूधस्या भवत्तस्या तनयः श्रीमदल्लटः"

वागड का लेख[४३] (९९४ ई.)

राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित एक जैन मूर्ति पर, जो वि. सं. १०५१ की है, खुदे हुए लेख में डूंगरपुर-बांसवाड़ा जिले के लिए 'वागट' शब्द का प्रयोग किया गया है । प्रचलित भाषा में इसे वागड कहते है। इसकी पंक्ति का अंश इस

४२–इ. ए. भा, ३९, पृ. १९१, सेसिल बैंडाल, जर्नी इन नेपाल, पृ. ८२ ।

४३–ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ १ ।

प्रकार है—

"जयति श्री वागटसंघः"

हस्तिकुण्डी शिला लेख[४४] (९९६ ई.)

यह लेख माउन्ट आबू जाने वाले उदयपुर सिरोही मार्ग पर एक द्वार पर केप्टेन वस्ट को मिला था। इसके बारे में बतलाया जाता है कि प्रारंभ में यह लेख बीजापुर (बाली तहसील) से दो मील दूर एक जैन मन्दिर में लगा हुआ था। यहाँ से पहिले तो उसे बीजापुर की जैन धर्मशाला में लगाया गया और पीछे उसे वहाँ से हटा कर अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया।

ये लेख वैसे दो भागों में विभक्त है, प्रथम भाग में ३२ पंक्तियों को श्लोकबद्ध २.'८३ × १.'४" आकार के पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण कर दिया गया है। इसमें प्रयुक्त भाषा संस्कृत है और इसकी लिपि हर्षनाथ के लेख जैसी है। प्रशस्ति के रचयिता सूर्याचार्य हैं जिन्होंने उसे इतवार माघ शुक्ला तृयोदशी पुष्य नक्षत्र वि. स. १०५३ (२४-१९९७) इसको लिखा था।

इस लेख से हमें कई उपयोगी राजनीतिक सूचनाएँ मिलती हैं। प्रथम तो इसमें हमें हस्ति कुण्डी चौहान शाखा के प्रमुख शासक हरिवर्मा, उसकी पत्नी रचि तथा विदग्ध, मम्मट और धवल की उपलब्धियों का परिज्ञान होता है। द्वितीय इसमें धवल के सम्बन्ध में लिखा गया है कि उसने मूलराज चालुक्य की सेनाओं तथा महेन्द्र और धरणीवराह को शत्रुओं के विरुद्ध आश्रय दिया। वास्तव में ये उपलब्धियाँ धवल और उसके वंश के राजनीतिक महत्त्व को बढ़ाती हैं। विदग्ध के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार बतलाता है कि उसने अपने गुरु वासुदेव की प्रेरणा से हस्तिकुण्ड में एक जैन देवालय का निर्माण करवाया। उसकी धर्मनिष्ठा की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना संसार से विरक्त करना तथा अपने पुत्र बाला प्रसाद को राज्य भार सौंप देना था। बाला प्रसाद ने भी अपनी प्रतिष्ठा हस्तिकुण्डी को राजधानी बनाकर प्राप्त की और वंश परम्परा को उचित रूप से निभाया। देवालय के सन्दर्भ में गोष्ठी का भी यहां उल्लेख आता है जो उसके प्रबन्ध को देखती थी।

दूसरे भाग के लेख में २१ श्लोक हैं, जिनमें इस वंश के राजाओं की उपलब्धिओं को दुहराया गया है तथा मन्दिर के लिए दिये गये अनुदानों को अंकित किया गया है। प्रशस्ति में दिए गए अनुदानों के सम्बन्ध में राज्य द्वारा उस समय लिए जाने वाले अनेक करों का जो क्रय-विक्रय या व्यवसाय पर लिए जाते थे, उल्लेख बड़े महत्त्व का है। इसके द्वारा हम उस समय की आर्थिक व्यवस्था को भली प्रकार समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ उस समय २० बोझों पर गाड़ी के तथा ऊँट के भार पर तथा ऊँट की बिक्री पर एक रुपया लिया जाता था। जुआरियों, पान बेचने

४४ ए. ई. जि १० पृ. १७-२०, भावनगर इ., जि. ३, ६८-६९, नाहर, लेख संग्रह, भा. १, सं. ८९८, पृ. २३३ २३८

वालों और तेल विक्रेताओं से एक 'कर्ष' वसूल होता था, एक बोझ जो सर पर उठाया जाता था उसकी बिक्री पर एक 'विंशपक' तथा सूती कपड़े, ताँबा, केसर के भार पर १० 'पल' सरकारी कर था। इसी तरह गेहूँ, जौ, नमक आदि पर भी निश्चित कर थे। विदाध ने इन उपरोक्त करों की आय को मन्दिर की व्यवस्था के लिए निर्धारित किया। इन करों में कुम्हारों के व्यवसाय पर भी कर लगता था। सबसे अच्छी बात जो इन करों के सम्बन्ध में दिखाई देती है वह यह है कि उन दिनों राज्य यदि किसी संस्था को स्थापित करता था तो उसमें स्थानीय जनता का भी सहयोग क्रय-विक्रय के ऊपर लगाए हुए कर के द्वारा प्राप्त कर लिया जाता था। इसी कारण इन संस्थाओं का स्थायित्व निर्धारित हो जाया करता था। क्रय-विक्रय की वस्तुओं में नमक तथा सूत का उल्लेख उस भाग के विशेष व्यापार की ओर संकेत करता है। करों के तथा तोल के लिए प्रयुक्त शब्द बड़े रोचक हैं और आगे के युग में प्रचलित मुद्रा तथा तोल के अध्ययन के लिए बड़े उपयोगी हैं। जैन मन्दिर के लिए अनुदान देने की राजकीय पद्धति तथा सभी धर्मों के मानने वाले जन-समुदाय का उसमें योगदान उस युग की धर्मसहिष्णुता के द्योतक हैं।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"संवत् १०५३ माघ शुक्ल १३ रवि दिने पुष्य नक्षत्रे श्री ऋषभनाथ देवस्य प्रतिष्ठा (मंभटेन) रूपक एको देयो वहता मिह विंशते प्रवहणानां। धर्म''''क्रय-विक्रये च तथा ।।८।। संभृत गंत्र्या देयस्तथा वहुत्याश्च रूपक श्रेष्ठः। घाणे घटेचकर्षोदेय सर्वेण परिपाट्या ।।९।। श्री भट्ट लोकदत्ता पत्राणाँ चोल्लिका त्रयोदशिका। पेल्लक-पेल्लक मेतदद्यूत करेः शासने देयं ।।१०।। देयं पलाश पाटक मर्यादावर्तिक''''''''प्रत्यर घट्टं धान्या ढकं तु गोधूभ यव पूर्णं। पेड्डा च पंचपल्लिका धर्म्मस्य त्रिशोंपकस्तथा भारे। शासन मेतत्पूर्व विदग्धे न संहत्तं ।।१२।। कर्प्पासकोस्यं कुंकुभपुर माँजिष्ठादि सर्व भांडस्य दश दश पल्लनि भार देयाति"

किणसरिया लेख[४५] (९९९ ई.)

यह लेख किणसारिया नामक ग्राम में, जो परवतसर के उत्तर में ४ मील दूरी पर, एक पहाड़ के ऊपर बने कैवायमाता के मन्दिर में लगाया गया था। ये लेख २३ पंक्तियों तथा २६ श्लोकों में $१.'१०\frac{३}{८}'' \times ११\frac{५}{८}''$ के आकार के पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण है। इसमें लिपि उत्तरी वर्णमाला की है और भाषा संस्कृत है। पंक्ति २२ को छोड़ कर संपूर्ण लेख पद्यमय है परन्तु वर्ण लेखन सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ इसमें अवश्य पाई जाती है। इसमें पंक्ति संख्या १, २२ व २३ नष्ट हैं और कही-कहीं अक्षर या तो घिस गये हैं या प्रायः लुप्त हो गये हैं।

इस लेख के प्रारंभ में कात्यायनी, काली आदिदेवियों की स्तुति की गई है जो देवी के मन्दिर में लगाये जाने का औचित्य प्रमाणित करता है। इसके अनन्तर इसमें

---

४५. एक प्राचीन प्रतिलिपि से उद्धृत।

चहमान वंश की प्रशस्ति देकर वाक्पतिराज, सिंहराज और दुर्लभराज की उपलब्धियों का वर्णन है।

प्रशस्ति के दूसरे भाग में दधिचि वंश के मेघनाद, उसकी पत्नी मासटा, वेरीसिंह, दुन्दा (पत्नी) तथा चच्च के उल्लेख हैं। इसी चच्च के सम्बन्ध में भवानी के मन्दिर बनाने का वर्णन है। इस प्रशस्ति का लेखक गोड कायस्थ महादेव था जिसका पिता कल्या स्वयं कवि था। लेख का समय रविवार वैशाख सुदी अक्षय तृतीय संवत् १०५६ दिया गया है।

लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्ति २ "सा यस्या :–प्रसादात्सतां सा सर्व्वार्थ विभूतिका भगवती कात्यायनी पातुवः"

पंक्ति २१ "गोड कायस्थवंशेभूच्छ्री कल्योनाम सत्कविः। सूनुस्तस्य महादेव प्रशस्तिं……………"

आहड़ का लेख अम्बाप्रसाद के समय का[४६]

इस लेख को डॉ. ओझा ने उदयपुर के महलों की पायगा (अस्तबल) के ऊपर के मकान में रखा हुआ पाया था। इसमें शक्तिकुमार का उत्तराधिकारी अंबाप्रसाद दिया गया है और उसकी राणी को चौलुक्य (सोलंकी) वंश के किसी राजा की पुत्री बतलाया है। लेख के दाहिनें ओर का लगभग आधा भाग नष्ट हो गया है जिससे आगे का वर्णन तथा उस राजा का नाम नहीं मालूम होता। इस प्रशस्ति से एक बहुत महत्त्वपूर्ण सूचना यह मिलती है कि गुहिल और चालुक्यों का उस समय मैत्री सम्बन्ध था। इसकी एक पंक्ति का भाग इस प्रकार है—

"तस्मादंबाप्रसाद…………चोलुक्यवंश…………देवी तस्य जाता तनूजा"

हस्तिमाता के मन्दिर की सीढ़ियों में लगा हुआ लेख[४७] (शुचिवर्मा के काल का)

यह लेख प्रारंभ में किसी आहड़ के मन्दिर में लगा हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है। जब हस्तिमाता का मन्दिर बना तो किसी ने इस लेख का जितना अंश सीढ़ियों के बनाने के लिए आवश्यक था लेलिया और सीढ़ी बनादी गई। डॉ. ओझा ने इसको वहाँ से निकलवा कर उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित किया। इस लेख में शुचिवर्मा को शक्तिकुमार का पुत्र कहा है। इससे सिद्ध है कि वह अम्बाप्रसाद का छोटा भाई था। आहड़ के एक दूसरे लेख से शक्तिकुमार का उत्तराधिकारी अम्बाप्रसाद होना सिद्ध है। प्रशस्तिकार ने शुचिवर्मा की बड़ी प्रशंसा करते हुए लिखा है

---

४६ ओझा, उदयपुर, भा. १, पृ. १३४।

४७ भावनगर प्राचीन-शोधसंग्रह, पृ. २२-२४; वीरविनोद, भा. १, पृ. ३८१; ओझा, उदयपुर, भा. १, पृ. १३८।

कि वह समुद्र के समान मर्यादा पालन करने वाला, कर्ण के सदृश दानी और शिव के समान शत्रुओं का संहार करने वाला था। इस प्रशंसात्मक वर्णन से शुचिवर्मा द्वारा मेवाड़ में फिर से अपनी शक्ति संस्थापित करना प्रमाणित होता है। जयानक के वर्णन से हम जानते हैं कि वाक्पतिराज द्वितीय ने अम्बाप्रसाद की हत्या करदी थी। संभवतः इसके मरने के बाद शुचिवर्मा को शत्रुओं को नाश करने के द्वारा पुनः अपनी शक्ति स्थापना करने में सफलता मिली हो। उसने मर्यादा पालन तथा उदार नीति से भी लोकप्रियता प्राप्त की हो, जैसाकि प्रशस्तिकार उसके सम्बन्ध में लिखता है।

इस लेख में आगे चलकर मन्दिर बनाने वाले या अन्य वंश का वर्णन है जिसमें सिद्धराज का नाम हमें मिलता है जिसने अपने बंधुवर्ग से उपयुक्त शेष धन को अर्पित किया या निर्माण कार्य में लगाया। उसने अपने पिता के नाम से श्रीराहिलेश्वर का मन्दिर बनाया। इसमें हमें चालुक्य कुल की सोडुक की पुत्री का किसी की पत्नी होने का तथा उसके गुणों की प्रशंसा का वर्णन मिलता है। उपलब्ध अंतिम पंक्ति में किसी को राजाओं के द्वारा सेवित भी कहा गया है। लेख संस्कृत पद्यों में है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"प्रख्यातः सोडुकोस्तिस्म चौलुक्यकुलसंभवः
तत्सुतासीत्प्रियायस्य महिमामहिमास्पदम्"
"ये नादावनुराजिणा प्रतिदिनं संसेवितो मित्रवत्"
"राजकार्येषु सामार्थ्यं वीक्ष्यचाद्भुतं"

नागदा का लेख[४८] (१०२६ ई.)

यह लेख वि. सं. १०८३ का एकलिंगजी के पास नागदा गाँव का है। प्रस्तुत लेख में किसी सूर्यवंशी राजा द्वारा, जिसका नाम नष्ट हो गया है, विष्णु मन्दिर बनाने का वर्णन है। लेख का प्रारंभ 'ॐनमों पुरूषोत्तमाय' से किया गया है जिससे प्रमाणित होता है कि विष्णु मन्दिर सम्बन्धी लेख का प्रयोजन है। लेख में कुल १६ पंक्तियाँ हैं।

जैत्रसिंह का लेख[४९] (१०२६ ई.)

यह लेख भी एकलिंगजी में है जो बड़ा सूक्ष्म है। प्रस्तुत लेख का महत्त्व यह है कि इसके द्वारा जैत्रसिंह के समय के प्रारम्भिक शासन-व्यवस्था के काल को निर्धारित करने में हमें बड़ी सहायता मिलती है।

वसन्तगढ़ (सिरोही) की लाहरण बावड़ी की प्रशस्ति,[५०] (१०४२ई०)

यह प्रशस्ति लाहरण बावड़ी, जो वसन्तगढ़ (सिरोही) में है. के निर्माण काल

---

४८. एक प्राचीन प्रतिलिपि के आधार पर।

४९. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

५०. वीरविनोद, द्वि० भा० प्रकरण ११, शेषसंग्रह, नं० ८, १३१ पृ० ११९९-१२००।

की है। इसमें उत्पलराज, आरण्यराज, कृष्णराज महीपाल आदि राजाओं के शौर्य का वर्णन है। इसमें लाहिणी नामक रानी का वर्णन है जिसके पुण्यार्थ इस वावड़ी का निर्माण कराया गया था। प्रस्तुत प्रशस्ति में वदपुर नामक नगर के निर्माण का उल्लेख है जो तालाब घर, राजप्रासाद, प्राकार, दुर्ग आदि से युक्त था। इसमें ब्राह्मण तथा वैश्य अपने धर्माचरण करते थे और वह पुराणपाठी ब्राह्मण, गणिका तथा सैनिकों की बस्ती से सुशोभित था। प्रशस्ति का लेखक हरि का पुत्र मातृशर्मा था और उसे शिवपाल ने उत्कीर्ण किया था। प्रशस्ति श्लोकवद्ध है।

इसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत है:—

"तद्वदाख्ये नगरे वनेऽस्मिन् बहुप्रासादान् कृतवान् वसिष्ठः।
प्राकार वप्रोपवनैस्तडागैः प्रासाद वेश्मैः सुधनैः सदुर्गैः" ।।
"अतिमन्त्रोक्ष्म शोम्यं पारगव क्रमाकुलं
वेदार्णवं द्विजासम्मग् यत्र तीर्ण्यिगर्विताः"

पाणाहेड़ा का लेख[५१] (१०५९ई०)

पाणाहेड़ा में जो बाँसवाड़े के अन्तर्गत है, वि० सं० १११६ का मंडलीश्वर के शिवालय की ताक में लगा हुआ एक लेख है जिसके कई टुकड़े हो गये हैं। इसका एक तिहाई अंश जाता रहा है। परन्तु जो भी बचा हुआ अंश है वह मालवा एवं वागड़ के परमारों के इतिहास के लिए बड़े महत्व का है। उक्त लेख में मालवा के परमारों की वंशावली तथा उनकी कुछ उपलब्धियों का वर्णन है। जिन राजाओं की इसमें वंशावली है उनमें मुंज, सिंधुराज, भोज आदि प्रमुख हैं। इन राजाओं के वर्णन के साथ इसमें बागड़ के परमारों की वंशावली धनिक से लेकर मंडलीक तक, दी गई है। इस मंदिर के बनवाने वाले मंडलीक के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख में लिखा है कि उसने बड़े बलवान सेनापति कान्ह को पकड़कर हाथी और घोड़ों सहित जयसिंह के सुपुर्द किया। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं— एक तो यह कि इस समय तक (वि० सं० १११६) जयसिंह विद्यमान था; दूसरा यह कि बागड़ का मंडलीक जयसिंह का आश्रित सामन्त था। कान्ह किस राजा का सेनापति था इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि वह परमारों का शत्रु था। इस लेख में पाणाहेड़ा का नाम पांशुलाखेटक दिया है। नगर, ग्राम आदि की इकाई की भाँति 'खेटक' भी एक इकाई थी जो गाँवों के साथ लगी रहती थी। एक बड़े गाँव के साथ कई खेटकों अर्थात् 'खंडों' की वस्ती रहती थी। यह लेख श्लोकवद्ध है जिसके ३८वें श्लोक की पंक्ति का अंश इस प्रकार है:—

'भक्त्या कार्यत मंदिरं स्मररिपोस्तत् पांशुलाखेटके'

---

५१. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १७।

अर्थूणा (बाँसवाड़ा) के शिव मन्दिर की प्रशस्ति[५२] (१०७९ ई०)

यह शिलालेख संवत् ११३६ फाल्गुन शुक्ला ७ शुक्रवार का मंडलेश्वर अर्थूणा के विशाल शिवालय में लगाया गया था। इस मन्दिर का निर्माण चामुण्डराज ने अपने पिता मंडलीक के निमित्त करवाया था। इस प्रशस्ति में ८७ श्लोक हैं जिसमें वागड़ के परमारों का अच्छा वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि वागड़ के परमार मालवे के परमारवंशी राजा वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डंबरसिंह के वंशज थे और उनके अधिकार में वागड तथा छप्पन का प्रदेश था। उसके पीछे वागड के शासक धनिक और कंकदेव हुए। कंकदेव ने मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष के कर्णाटक के राठोड़ राजा खोट्टिकदेव पर चढ़ाई की। इस समय कंकदेव ने श्रीहर्ष की सहायता की और वह इस युद्ध में काम आया। प्रस्तुत शिलालेख से कंकदेव के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता है। एक तो कंकदेव संभवत: श्रीहर्ष का सामान्त था और दूसरा उस समय प्रतिष्ठित व्यक्ति हाथी पर बैठ कर लड़ते थे। कंकदेव ने चंडप और उसके सत्यराज नामक पुत्र हुआ जिसकी आज्ञा को सामंत समुदाय शिरोधार्य करता था। उसके योग्य मंत्रियों के वर्णन से उस समय की शासन व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। युद्ध के लिए धनुर्विद्या तथा खड्ग प्रयोग का ज्ञान राज-परिवार के लिए आवश्यक माना जाता था जैसाकि इस शिलालेख में उल्लिखित है। यहाँ के स्थापित मन्दिर की व्यवस्था के वर्णन से उस समय को व्यापारिक स्थिति, तौल, नाप आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उस समय की प्रमुख व्यापारिक वस्तुओं में गुड़, मजिष्ट, कपास, सूत, नारियल, सुपारी, बर्तन, तेल, जव आदि थे। इनके बेचने की व्यवस्था मंडियों में होती थी और व्यापारियों का मण्डल रहता था जो क्रय-विक्रय की देख-रेख रखता था। इन वस्तुओं के प्रति बोझा या नाप के हिसाब से धार्मिक संस्थाओं को अनुदान दिया जाता था जिससे मन्दिर की सेवा-पूजा का प्रबन्ध किया जाता था। गुड़, कपास, सूत, जव, मजिष्ट, नारियल आदि की गणना 'भरक' से होती थी सुपारी का माप सहस्त्र की गणना से होता था। द्रव्य पदार्थ जिनमें तेल मुख्य था घाणी के नाप से आँकते थे। अन्न का नाप 'पाइली' से होता था। उस समय की प्रचलित मुद्राओं में रुपक, द्रम, विंशोपक मुख्य थे। इस प्रशस्ति की रचना विजय ने की थी और उसे अस्तराज कायस्थ ने लिखा था तथा गंदाक नामक सूत्रधार ने खोदा था। प्रशस्ति में रचियता के तथा लेखक के वंशक्रम को देकर प्रशस्तिकार ने उस प्रान्त की विद्योन्नति पर अच्छा प्रकाश डाला है।

अर्थूणा का लेख[५३] (१०८०ई०)

अर्थूणा गाँव के बाहर जो बाँसवाड़ा में है, एक प्राचीन मंडलीक नामक शिवालय है। इस मन्दिर को यहाँ के परमार राजा मंडलीक के पुत्र चामुंडराज ने अपने

---

५२. वीरविनोद भा० २, प्रकरण ११, शेप संग्रह ६, पृ० ११९१–९६।

५३. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ३४।

पिता की स्मृति में वि० सं० ११३६ फाल्गुन शुक्ला शुक्रवार को बनवाया था । इस मन्दिर के एक ताक में एक बड़ी प्रशस्ति लगी है, जो कविता और इस प्रान्त के परमार शासकों की उपलब्धियों की दृष्टि से बड़े महत्त्व की है । लेख की भाषा श्लोक-बद्ध है । इसका कुछ अंश इस प्रकार है:—

"रुचिरमिद मुदारं कारितं धर्म्मधाम्ना
त्रिदशगृहमिह श्रीमंडलेशस्य तेन"

झालरापाटन का लेख,[५४] (१०८६ ई०)

यह लेख सर्वसुखिया कोठी, झालरापाटन में सुरक्षित हैं । इसका आकार ८"-×६½" है । जिसमें १० पंक्तियों में संस्कृत गद्य है । इसका समय वि० ११४३ वैशाख शुक्ला १०वीं है । इसमें वर्णित है कि उदयादित्य के राज्यकाल में जनक नाम के एक तेली पटेल ने मन्दिर का और वापी का निर्माण करवाया । इसमें उदयादित्य का सम्बन्ध भोज परमार का बतलाया गया है जो बड़े महत्त्व का है । पं० हरसुख ने प्रशस्ति को उत्कीर्ण किया । इसमें वर्णित है कि जनक पटेल ने चार पल दीपक के लिए तेल और एक मोदक प्रति वर्ष देने का संकल्प किया । इसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

१. अएं नमः शिवाय ।। संवत् ११४३ वैशाख श्रु (सु) दि. १० अ
२. घेह श्रीमदुदयादित्यदेव कल्याण विजयराज्ये । तै
३. लिकान्वए (ये) पट्टकिल [पट्टिकिल] चाहिल सुतपट्टकिलजन्न [के]
४. न शेभोः प्रासाद मिदं कारितं । तथा चिरिहिल्लतलेचा
५. डाघोपकूपिकावु वासकयोः अन्तराले वापी च ।
६. उत्कीर्णोयं पडित हर्षुकेनेति ।। जानासत्कभा
७. ता धाइणिः प्रणमति ।। श्री लोजिगस्वामिदेवस्सकेरिं
८. तैलकान्वयपट्टकिल चाहिलसुलपट्टकिल जनकेन ।।
श्री सेंधवदेव पर
९. वनिमित्यं दीपतैल्य चतुप (ष्प) लमेकं मुदकं क्षीत्या तथा वरिषं प्रतिस ( ) विशा
१०. ७ तं ।।छ।। मंगलं महा श्री ।।६

दूबकुण्ड का लेख[५५] (१०८८ ई.)

यह लेख १८६६ ई. कैप्टिन मेलविले द्वारा जाना गया जो दूबकुण्ड में है । वह स्थान घने जंगल में ग्वालियर से दक्षिण-पश्चिम में ७६ मील की दूरी पर है ।

---

५४. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, न्यू सीरीज, भा० १०. नं० ६, १९१४ ई० पृ० २४१–२४३; रेउ: ग्लोरीज ऑफ मारवाड़, पृ० २२३–२२५ ।

५५. एपिग्राफिआ इण्डिका, भा-१८, पृ-२३२–२३६ ।

प्रस्तुत लेख में ६१ पंक्तियाँ हैं और प्रथम पंक्ति के कुछ भाग एवं ५६ से ६१ पंक्तियों को छोड़ इसमें श्लोक हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें चन्दोमा नगर (दूबकुण्ड) का वर्णन है। यह लेख कच्छपघाट विक्रमसिंह के समय का है। इसमें वि. सं. ११४५ दिया गया है। यह लेख एक जैन मन्दिर की स्थापना के उपलक्ष्य में जैन मुनि विजयकीर्ति द्वारा लिखा गया है। उदयराज ने उसे लिखा, शिल्पी तिलहन ने उसे उत्कीर्ण किया। इस मन्दिर के लिए विशोपक कर प्रत्येक गोणी अनाज पर विक्रमसिंह द्वारा लगाया गया था। इसमें दिये गये पाँच राजा, युवराजदेव, अर्जुनदेव, अभिमन्यु, विजयपाल और विक्रमसिंह हैं।

उक्त लेख के प्रारंभिक भाग में स्तुति भाग है और पंक्ति १०–३२ तक विक्रमसिंह और उसके पूर्वजों की उपलब्धियों का वर्णन है। ३२ से ५१वीं पंक्ति में मन्दिर की स्थापना और उससे सम्बन्धित मुनियों का वर्णन है। अन्तिम पंक्तियों में प्रशस्तिकार, लेखक, समय आदि का परिचय है। इस लेख का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि उसी युग में डबकुण्ड की कच्छपघट शाखा के शासकों के साथ इसी वंश के अन्य शासक भी आस-पास के क्षेत्रों में राज्य करते थे और उनका सम्बन्ध कन्नौज के शासकों के साथ था। सबसे बड़ा महत्त्व इस लेख का यह है कि हमें देखना है कि क्या इनका आमेर के कछवाओं के साथ कोई सम्बन्ध था? इसकी प्रारंभ की एवं अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्ति १ "ॐ नमो वीतरागाय। आ—द्रीं–ट–टना (द्यत्पा)
दयोटलुठ त्यंदारस्यगमंदगुन्ज विभन्निप्ठूत्रसांराविणम्"

पंक्ति ६१ "शिलाकूट रत्तीलूहणस्तांसदक्षणाम्॥ संवत् ११४५ भाद्रपद सुदि ३ सोमदिने॥ मंगल महाश्रीः"

सादड़ी व नाडोल के अभिलेख [५६] (१०९० ई.)

सादड़ी का लेख जागेश्वर के मन्दिर के एक स्तंभ पर उत्कीर्ण है जिसमें ११ पंक्तियाँ है जो $८\frac{1}{2}$" × $६\frac{3}{4}$" के पत्थर के भाग पर संस्कृत गद्य में उत्कीर्ण हैं। ये लेख अपनी-अच्छी अवस्था में है जिसको समुचित रूप से पढ़ा जा सकता है। लेख में नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है।

दूसरा नाडोल का लेख सोमेश्वर के मन्दिर के एक स्तंभ पर $८\frac{1}{2}$" × $६\frac{1}{4}$" स्थान को घेर कर उत्कीर्ण किया गया है। इसमें १३ पंक्तियाँ नागरी लिपि में हैं और भाषा संस्कृत। इसकी अवस्था भी अच्छी है जिससे पढ़ने में कोई असुविधा नहीं होती।

दोनों लेखों का समय वैशाख शुक्ला २, बुधवार, वि सं. ११४७ (१०९० ई.) है और महाराज श्री जोजलदेव के समय का है।

दोनों लेखों में प्राय: एक ही विषय तथा अभिप्राय है जो आज्ञा के रूप में

---

५६. ए. इं जि. ९, पृ. ६२ व १५८।

महाराज जोजलदेव ने लक्ष्मणस्वामि आदि देवताओं के यात्रा उत्सव के सम्बन्ध में प्रसारित की थी। ये यात्रा विभिन्न देवताओं के उत्सव के उपलक्ष्य में हुआ करती थीं और उनमें राजकीय सहयोग होता था। इस आज्ञा में यह भी उल्लिखित है कि सभी यात्राओं के उत्सवों में राज्यकर्मचारियों को सुन्दर वस्त्रों व आभूषणों से सुसज्जित होकर सम्मिलित होना होगा, बिना इस विचार के कि वे किसी अन्य देवताओं को मानते हों और अमुक अवसर की यात्रा के देवताओं का उनकी निष्ठा से कोई सम्बन्ध न हो। यह आज्ञा का भाग बड़े महत्त्व का है, क्योंकि इस आज्ञा से जोजलदेव की सहिष्णुतापूर्ण नीति का बोध होता है। जब यात्राओं के उत्सव होते थे तो साथ में नृत्यकारों, संगीतकारों, शूलधारियों को भी उपस्थित होने के आदेश थे। इस लेख के द्वारा महाराजा ने अपने वंशजों को भी इस परम्परा का परिपालन करने का आदेश दिया था। आगे चलकर प्रशस्तिकार ने इस परम्परा का साधु, वृद्ध, विद्वान् आदि से भी उलंघित करने के लिए वर्जित किया है और लिखा है कि इसका जो भी उल्लंघन करे उसको उस समय का शासक रोके। परम्परा को भंग करने वाले के लिए प्रशस्ति में पापों का उल्लेख किया गया है।

वास्तव में उस समय की धर्मसहिष्णु नीति, उत्सवों में गायन, नृत्य की परिपाटी तथा धार्मिक कार्यों में सभी के सहयोग तथा अनुशासन सम्बन्धी निर्देश पर बल देने वाले ये लेख बड़े महत्त्व के हैं।

इन लेखों की कुछ पंक्तियाँ यहां उद्धृत की जाती हैं—

पंक्ति १–३—"ॐ संवत् ११४७ वैशाख सुदि २ बुधवासरे महाराज श्री जोजलदेवेन श्री लक्ष्मणस्वामि प्रभृति समस्त देवानां यात्राकाल व्यवहारो लेखितः"

पंक्ति १२–१३—"यश्च राजाऽनेन क्रमेण सर्वदेवेषु यात्रां न कारयिष्यति तस्य गर्दभोऽन्तरे"

सेवाड़ी का अभिलेख[५७] (१०९० ई०)

प्रस्तुत लेख सेवाड़ी गाँव के महावीरजी के मन्दिर का है। लेख में केवल तीन पंक्तियाँ हैं जिन्हें ३'.६"×२'३/४" के पाषाण को घेर कर उत्कीर्ण किया गया है। लेख की भाषा संस्कृत और लिपि नागरी प्रयुक्त की गई है। इसमें लेख गद्य में है।

लेख की तिथि चैत्र शुक्ला १, संवत् ११६७ है। इसमें अश्वराज चौहान को महाराजाधिराज तथा कटुकराज को युवराज सम्बोधित किया गया है। मन्दिर के अनुदान के सम्बन्ध में पद्राड़ा, मेद्रचा, छेछड़िया तथा मदड़ी ग्रामों से प्रत्येक रहट से एक हारक (एक डलिया का नाप) यव प्रदान किये जाने का उल्लेख है। इस विधि को रोकना गो, स्त्री और ब्राह्मण की हिंसा के तुल्य पाप बतलाया गया है। इस दान

५७. नाहर, जैन लेख, भा. १, पृ. २२६।

की वैधानिक व्यवस्था महासाणिय उवलराक के द्वारा की जाना प्रतीत होता है।

इस अभिलेख में दिये गये 'महासाणिय' शब्द सड़े महत्त्व का है। वैसे तो साहणिय अस्तबल का अधिकारी माना जाता है, परन्तु उसका काम राजकीय आज्ञाओं और अनुदानों को वैधानिक व्यवस्था देना भी था जैसा इस लेख से स्पष्ट है। ये पदाधिकारी वर्तमान समय तक भी राजस्थान के कई राज्यों में अनुदानों के सम्बन्धी लेखा रखने और उसको वैधानिक मान्यता देने के काम को करते रहे हैं। इसमें उपयुक्त 'हारक' शब्द भी डलिया के लिए प्रयुक्त हुआ है। आज भी बाँस के बने डलिया को दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में 'हूण्ल्लो' कहते हैं। इसी तरह दान के साथ युवराज का नाम जोड़ा जाना बड़े महत्त्व का है, क्योंकि उस युग की शासन प्रणाली में युवराज का भी एक स्वतन्त्र अस्तित्व माना जाता था।

इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"सं. ११६७ चे. सु. ६ महाराजाधिराज श्री अश्वराज राज्ये श्री कटुक राज युवराज्ये समीपाठीय चैत्ये श्री धर्म्मनाथ देवसां नित्य पूज्यार्थं महासाहणिय पूअवि-पौत्रेण उत्तिम राजपुत्रेण उप्पल राईन मा गढ आंवल। वि. सलखण जोगादि कुटुंब समं। प्रद्राडा ग्रामो तथा मेद्रचा ग्रामे तथा छेछडिया महवडी ग्रामे।। अरहटं अरहटं प्रतिदत्तः जवहारक."

चित्तौड़ का लेख[५८] (१२वीं सदी)

यह चित्तौड़ से प्राप्त एक खण्डित लेख है जिसमें खुमाण वंश के राजा जैत्रसिंह के नाम का उल्लेख है तथा चित्तौड़ के प्राग्वाट यशोनाग के वंश का वर्णन है। इसमें चाहमान, परमार तथा गुर्जरों द्वारा पूजित आचार्य शुभचन्द्र का भी इसमें वर्णन दिया गया है। इस लेख की रचना संस्कृत में शुभकीर्ति ने जैन मन्दिर के निर्माण के समय की। इसको सोढाक ने नागरीलिपि में उत्कीर्ण किया।

अर्थूणा (बाँसवाड़ा) के जैन मन्दिर की प्रशस्ति[५९] (११०९ ई०)

प्रस्तुत प्रशस्ति में ३० तथा आगे के ८ श्लोक तथा कुछ खण्डित पंक्तियाँ हैं। इसमें वागड़ के परमार शासकों का वर्णन है जिनमें मंडलीक और चामुण्डराज का वर्णन है तथा उसके पुत्र विजयराज का वर्णन है। इसमें विजयराज का संधि-विग्रहिक वालम जाति के वामन कायस्थ का वर्णन मिलता है। इसमें दिए गए तलपाटक नगर का वर्णन है जो १२वीं शताब्दी की नगर योजना पर प्रकाश डालता है। इस प्रशस्ति से नागर जाति में विद्या प्रचार का बोध होता है और प्रमाणित होता है कि उस समय गाँवों के शासन में ग्रामणी प्रमुख होता था और उसका समाज में

---

५८. रि. इ. ए., १९६२-६३, क्र. ८३६;
जैन-शिलालेख संग्रह, क्र. ११३, पृ. ५२।

५९. वीरविनोद, द्वि. भा., प्रकरण ११, शेष संग्रह सं. ७, पृ. ११९७-९८।
ओझा, बाँसवाड़ा, पृ. ३५।

प्रतिष्ठित स्थान होता था। इस प्रशस्ति में कई उपयोगी सूचनाएं भी मिलती हैं, जैसे वेद-शास्त्र अध्ययन के विषय थे तथा सूर्य उस समय तक आराध्यदेव थे।

सेवाड़ी का लेख[६०] (१११५ ई०)

यह लेख सेवाड़ी स्थित महावीर के मन्दिर का है जिसे ८ पंक्तियों में २'.१$\frac{1}{8}$×४$\frac{1}{2}$" के दायरे में उत्कीर्ण किया गया है। मंगल सूचक तथा समय सूचक पंक्तियों को छोड़ सम्पूर्ण लेख संस्कृत पद्यों में है जिनकी संख्या १५ है। इसका समय संवत् ११७२ है।

लेख में इस शाखा के चौहानों का जैसे अणहिल, जिंदराज, अश्वराज और कटुकराज का नामोल्लेखन हुआ है और जिंदल को कुशल राजनीतिज्ञ सम्बोधित किया है। सेवाड़ी जिसका नाम शमीपाटी दिया है उस समय समृद्ध पत्तन (नगर) था। इस लेख में यशोदेव बलाधिप (सेनाध्यक्ष) का भी उल्लेख आता है जो निर्पक्ष होकर व्यवस्था करता था और जिसे स्थानीय नागरिकों और राज्य का विश्वास प्राप्त था। यह लेख सेनापति की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है जो इस पदाधिकारी की नियुक्ति के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं। यहाँ बाहड़ का भी उल्लेख मिलता है जो शिल्पशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। उसका पुत्र थल्लक था। इसी के पितामह ने शांतिनाथ की प्रतिमा का निर्माण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शिल्पियों का परिवार वंश परम्परा से शिल्पशास्त्र के अच्छे ज्ञाता माने जाते थे और उन्हें इन चौहानों का आश्रय प्राप्त था। इसीलिए कटुकराज ने थल्लक को माघ कृष्णा चतुर्दशी अर्थात् शिवरात्रि को ८ द्रम प्रतिवर्ष दिए जाने की घोषणा की थी। इससे स्पष्ट है कि कटुकराज विद्वानों और शिल्पियों को प्रश्रय देता था और उन्हें अनुदान देकर संतुष्ट रखता था। इस लेख में दान की अवहेलना करने वाले को पाप का भागी बतलाया है और इसे स्थायित्व देने की कामना की है।

इसके कुछ सारभूत पंक्तियों के भागों को उद्धृत किया जाता है—

पंक्ति ४—"इतश्चासीत् वि (शु) द्धात्मा यशोदेवो बलाधिपः।
राज्ञां महाजनस्यापि सभायामग्रणी स्थितः।।७।।"

पंक्ति ७—"पितामहे (न) तस्येदं समीपाट्यां जिनालये।
कारितं शांतिनाथस्य बिंबं जन मनोहरं।।१४।।"

जालोर का लेख[६१] (१११८ ई०)

यह लेख तोपखाना की इमारत के उत्तरी दीवार पर जालोर में लगा हुआ था जो अपनी पहले की जगह से लाकर यहाँ लगाया गया था। यह सफेद पत्थर पर खोदा हुआ है जिसकी लम्बाई, चौड़ाई २'.३$\frac{1}{2}$"×१'.१०" है। अब इसे जोधपुर संग्रहालय में लाकर सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें १३ पंक्तियाँ संस्कृत में हैं। इसमें संवत्

६०. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

६१. इ० ए०, भा० ४२, १९३३, पृ० ४१।

११७४ आषाढ़ शुक्ला पंचमी सोमवार का समय अंकित है। इसका महत्त्व इस दृष्टि से अधिक है कि इस लेख से हमें जालोर शाखा के परमारों की सूचना मिलती है। इसमें वाक्पतिराजा का उल्लेख है जो इस शाखा का प्रवर्तक था और उसका आबू के परमार धरणीवराह से सम्बन्ध था। इसमें परमारों की उत्पत्ति वशिष्ठ के यज्ञ से होना अंकित है। इसमें वाक्पति के वंशक्रम में चंदन, देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष और वीसल के नाम दिये गये हैं। वीसल की रानी मेलरदेवी के सम्बन्ध में अंकित है कि उसने सिन्धु राजेश्वर के मन्दिर के लिए सुवर्ण कलश अर्पित किया। इसमें वीसल को अपने मंडलीकों को धर्म दर्शक बताया गया है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

पं० ६ "पुत्रोभूदपराजितस्य विजयी श्री विज्जलो भूपतिः"

पं० ९-१२ "धारावर्षस्य पुत्रोयं जातो वीसल भूपतिः
येन धूमंडलीकानां धर्मभार्ग्गोत्र दर्शितः"
राज्ञी मेलरेदेव्या (वी) तु पत्नी वीसल भूपतेः"
सौवर्ण कलसं मूर्द्धनि सिंधुराजेश्वरेत्र (कृ) तं।
[सं]वत् ११७४ आषाढ़ सुदि ५ भौमो "

नाडलाई के महावीर के मन्दिर का लेख[६२], (११३० ई.)

इस लेख में महावीर के लिए मोरकरा गाँव से धाणक तेल से चौहान पत्तरा के पुत्र विसरा ने कलश के नाप का तेल अनुदान में दिया। इसकी साक्षी प्रमुख व्यक्तियों ने दी। उक्त लेख से 'धाणक' 'कलस' आदि से नाप का बोध होता है एवं उस समय की स्थानीय संस्थाओं का ऐसे कार्यों में सहयोग होना प्रमाणित होता है। इसमें कई स्थानीय शब्दों को संकृत रूप में बदला गया है जो उस समय की भाषा पर प्रकाश डालते हैं।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है:—

"संवत् ११८७ फाल्गुन सुदि १४ गुरुवार श्रीषंडेर कान्वय दे श्री चैत्य देव श्री महावीर दत्तः। मोरकरा ग्रामे धाणक तैल वल मध्यात् चतुर्थ भाग चाहुवाण पत्तरा सुत विसराकेना कलसो दत्तः। ए० वात्स्लयसमेत। साखिय भण्डो नाग सिज। उतिवरा बीद्धुरा पोसरि। लष्मणु।"

नाडलाई का लेख[६३](११३२ई०)

यह लेख नाडलाई के आदिनाथ के मन्दिर के सभामण्डप के स्तम्भों पर खुदा हुआ है। इसकी ६ पंक्तियाँ १'.५½×४½" पाषाण के भाग पर उत्कीर्ण हैं। लेख में संस्कृत भाषा तथा नागरीलिपि प्रयुक्त की गई है। लेख माघ शुक्ला ५ संवत् ११८९ का चहमान वंशीय महाराजाधिराज रायपाल देव के समय का है। आगे की पंक्तियों

६२. नाहर जैन लेख, भा० १, संख्या ८४२, पृ० २१२।

६३. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८४३, पृ० २१३।

में रायपाल देव के दो पुत्रों रुद्रपाल व अमृतपाल तथा उसकी महारानी मानलदेवी का नामोल्लेखन है। इसमें राजकुमारों द्वारा दिये गये दान का विवरण है जिसमें प्रति घाणी से नाडलाई के बाहर के जैन सन्तों को दो पलिका तेल दिये जाने की व्यवस्था है। इसके साक्षी में ग्राम प्रमुख नागशिव, रा० त्तिमटा, वि० सिरिया तथा वणिक पोसरी व लक्ष्मण के नाम गिनाये गये हैं। अन्त में दान की अवहेलना करने वाले के लिए हजार गाय तथा सौ ब्रह्महत्या का पाप बतलाया गया है।

लेख छोटा होते हुए भी उस समय तेल के नाप का 'पलिका' के प्रचलन पर तथा व्यवसाय पर लगाये जाने कर पर प्रकाश डालता है। इस लेख में ग्राम प्रमुख तथा उसके सहयोगी विविध जाति तथा व्यवसायों के उल्लिखित् कर ग्राम समिति के गठन का संकेत कर दिया गया है और बतलाया गया है कि गाँव से सम्बन्धित साधारण से साधारण व्यवस्था के लिए ग्राम समिति की अनुमति कितनी महत्त्वपूर्ण थी। ब्रह्महत्या तथा गौहत्या का पाप कितना भंयकर माना जाता था जिसको लेकर समाज में एक नैतिक आचरण की व्यवस्था बनाई जाती थी, यह भी इस लेख से निर्धारित होता है।

इस लेख की कुछ पंक्तियाँ उद्धत की जाती हैं:—

"संवत् ११८९ माघ सुदि पंचम्या श्री चाहमानान्वय श्री महाराजधिराज रायपालदेव तस्य पुत्रो रुद्रपाल अमृतपालौ। ताभ्या माताश्री राज्ञी मानल देवी तथा नडुल डागिकायां। सतां पराजतीनां राजकुल पल मध्यात् पलिका द्वयं। घाणकं प्रति घर्माय प्रदत्त भं नागसिव प्रमुख समस्त ग्रामणिक। रा० तिवरा वि० सिरिया वणिक पोसरि। लक्ष्मण एते सारियं कृत्वादत्तं"।

इंगनौड़ा का शिलालेख[६४] (११३३ई०)

यह शिलालेख वि० सं० ११९० (११३३ ई०) का प्रतिहार कालीन है जो संस्कृत पद्यों में १५ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इसमें पृथ्वीपाल, तिहुणपाल तथा विजयपाल का उल्लेख किया गया है। इनके महाराजाधिराज, परमेश्वर तथा परमभट्टारक के विरुद्ध इस बात के प्रमाण हैं कि प्रतिहारों की शक्ति कन्नौज से क्षीण होने पर भी इन्हें इन उपाधियों से विभूपित किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि इस वंश का प्रभाव १२ वीं शताब्दी तक राजस्थान और मध्य भारतीय भागों में किसी न किसी रूप से बना रहा। इसमें आपाढ़ शुक्ला एकादशी के अवसर पर श्री गोहडेश्वर महादेव के मन्दिर के लिए आगासिया गाँव को भेंट करने का उल्लेख है। इसमें गाँव से वसूल किये जाने वाले कर जो हिरण्य, भाग और भोग के रूप में लिए जाते थे उनके समेत देने का वर्णन है। इसमें राज्य के द्वारा दिये जाने वाले अनुदानों के सम्बन्ध में गाँव के 'समस्त महाजन के समक्ष सूचना दिये जाने की प्रथा की ओर भी संकेत किया है। इस संस्था में स्थानीय सभी जातियों के शिष्टमण्डल के प्रमुख सम्मिलित होते थे।

---

६४. इ० एन्टी०, भा० ६, पृ० ५५-५६।

इस लेख से यह भी प्रतीत होता है कि उन दिनों सभी जातियों की बस्तियाँ अपने-अपने मुहल्लों में रहती थीं—जैसे ब्राह्मणों के रहने के भाग को ब्रह्मपुरी कहा जाता था। इस अनुदान की मान्यता के लिए जनपद और भावी भूपालों से भी सम्मान किये जाने की अपेक्षा की गई है। इसका लेखक कायस्थ कल्हण था और उत्कीर्णक सूत्रधार साजण था। इस लेख में कायस्थ तथा सूत्रधार परिवारों के अन्य व्यक्तियों के नाम भी दिये हैं जिससे इन कार्यों का उन्हीं परिवारों में वंश परम्परा से होते रहने का बोध होता है। यह लेख बारहवीं शताब्दी की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डालता है। इस शिलालेख में नगर-योजना, उसमें रहने वाले शिष्ट समुदाय तथा उसका राज्य से सम्बन्ध तथा अनुदान देने के सम्बन्ध में आचरित सभी परम्पराओं का अच्छा ब्यौरा मिलता है। इस लेख में भू-स्वामित्व का अधिकार शासकों में निहित प्रतिपादित किया गया है। लेख में यत्र-तत्र भाषा की अशुद्धियाँ हैं।

इस लेख के प्रथम व अंतिम पद्यांशों को नीचे दिया जाता है;—

पंक्ति १. "ॐ नमः सिवाय" संवत्सर शतेष्व का दशसु नवत्यधिकेषु आषाड सुक्ल पक्षैकादश्यां संवत् ११९० आषाड सुदि ११ अद्येह इंगणपदे

पंक्ति १५. कुका आन्वय सूत्रधार महाबलस्य सूनुना हरसेण सुत साजणेन लेखितं ।।

नाडलाई का लेख[६५] (११३८ ई०)

यह लेख नाडलाई के नेमिनाथ जी के मन्दिर के एक स्तम्भ पर ९¾"×१'×११½" पाषाण के दायरे में उत्कीर्ण है। लेख में २६ संस्कृत की गद्य पंक्तियाँ हैं और उसका समय आश्विन कृष्णा १५, मंगलवार, संवत् ११९५ है। यह लेख रायपाल चौहान के काल का है। इस लेख में गुहिल वंशीय उद्धरण के पुत्र ठक्कुर राजदेव द्वारा नेमिनाथ की पूजा के निमित्त नाडलाई में आने-जाने वाले लदे हुए वृषभों पर लिए जाने वाले कर का दशमाँश प्रदान किया गया है। इस लेख पर सही राजदेव ने की और उस पर ज्योतिषी दूपा के पुत्र गूगि, पाला, पृथा, माँगु, देपसा, रापसा आदि व्यक्तियों ने साक्षी की।

यह लेख बड़े महत्त्व का है, क्योंकि इसमें चौहानो के अधीन गुहिल वंशीय व्यक्ति का सामन्त होना तथा उसका शासन में योग देना उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त एक अधिकारी की हैसियत से राजदेव ठक्कुर ने कर का दशमांश पूजा निमित्त अर्पित किया। परम्परा के अनुसार इस पर स्थानीय समिति के सदस्यों ने, जो विविध जाति के थे, इस आज्ञा को अपनी साक्षी द्वारा वैध बनाया। नाडलाई उस युग में व्यापार का केन्द्र था जैसाकि आने-जाने वाले वृषभों पर कर से सिद्ध है। सामान को लाने व लेजाने के लिए उस युग में बैलों को काम में लिया जाता

६५. नाहर-जैन लेख, भा. १, पृ. २१७।

था । इस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

पंक्ति ६–१४—"श्री नेमिनाथ देवस्य दीपधूपनैवे (द्य) पुष्प पूजाद्यर्थे गुहिलान्वय: राज. उद्धरणसूनुना भोक्तारि ठ. राजदेवेन स्वपुण्यार्थे स्वीयादान-मध्यात् मार्गे गच्छतनामागतानां वृषभानां शेके (षु) यदा भाव्यं भवति तन्मध्यात् विं (श) तिभो भार्गे: चंद्रार्क यावत् देवस्य प्रदत्त:"

नाडोल लेख [६६] (११४१ ई.)

प्रस्तुत लेख नाडोल के सोमेश्वर के मन्दिर का है जिसमें ३९ पंक्तियाँ हैं, जो ९" × २' ३" के पाषाण खण्ड के भाग पर उत्कीर्ण हैं । इसमें भाषा गद्यमय संस्कृत तथा लिपि नागरी प्रयुक्त हुई है । इसका समय श्रावण बदी ८ रविवार, संवत् ११९८ अंकित है । इसमें महाराजाधिराज श्री रायपालदेव का नामोल्लेखन है ।

ये लेख स्थानीय शासन-व्यवस्था के इतिहास के अध्ययन के लिए बड़े महत्त्व का है । इसके द्वारा बड़े नगरों तथा गाँवों के विभाजन का पता चलता है और यह भी स्पष्ट होता है कि गाँव के प्रत्येक भाग से प्रतिनिधियों की एक समिति होती थी और उसके द्वारा गाँव के अनुशासित जीवन की व्यवस्था होती थी । इस प्रकार की समिति का प्रमुख भी होता था । इस समिति का जो निर्णय होता था उसकी स्वीकृति नगर या गाँव के निवासियों द्वारा की जाती थी । एक अर्थ में १२वीं शताब्दी में ग्रामीण व्यवस्था में पूर्ण लोकतन्त्र स्थापित था ।

इस प्रकार की व्यवस्था का उल्लेख हम धालोप गाँव के सम्बन्ध में पाते हैं, जहाँ गाँव को ८ ब्राह्मणों के वाडों में बांटा गया था और प्रत्येक वाडे से २ ब्राह्मण प्रतिनिधि होते थे । उदाहरणार्थ भेरीवाड़ के वाडे से विरिगु और प्रभाकर, डीपावाडा से आसदेज तथा महड्ड, दुंअणावास से देउ और धहडि आदि । इन्होंने देवाइच को, जो पीपलवाडा का प्रतिनिधि था, अपना मध्यक बनाया और धोलक ग्राम की ओर से सभी के हस्ताक्षर वाला एक पत्र प्रस्तुत किया । इस पत्रक में यह निर्णय दर्ज किया गया था कि यदि भाट, भट्टापुत्र, दौवारिक, कार्पटिक वणिज्यारक (वनजारा) आदि का माल असबाव कोई लूटले तो चोरी का पता लगाने का उत्तरदायित्व गाँव के पंचों का होगा । इसमें उन्हें धन, शस्त्र और चौकीदारी की सहायता राज्य देगा । इसमें यह भी उल्लेख है कि यदि कोई ब्राह्मण मुखिया चोरी का पता लगाने में सहयोग देना अस्वीकार करेगा तो वह बुरी मौत मरेगा ।

इस सामूहिक निर्णय पर वहां के अनेक मन्दिरों के भट्टारकों तथा समस्त महाजनों के प्रतिनिधियों ने तथा अन्य नगरों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने साक्षी दी और कायस्थ ठकुर पेथड ने इस लेख को गाँव-निवासियो की इच्छा से लिखा ।

इस लेख से चोरी, डकैती का पता लगाने का उत्तरदायित्व ग्राम प्रमुखों का होना सिद्ध है । राज्य भी इस सम्बन्ध में उदासीन नहीं था जैसाकि इसमें शस्त्र,

---

६६–एक प्राचीन प्रतिलिपि केआधार पर

धन और चौकीदारी का भार रायपाल पर होना अंकित है। इसमें भाट, भट्टापुत्र, वनजारे आदि का उल्लेख है वह भी बड़े महत्त्व का है। भाट उस युग में सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने घोड़ों में लादकर ले जाया करते थे तथा घोड़ों का भी व्यापार करते थे। वनजारे अपने बैलों पर एक स्थान से दूसरे स्थान वस्तुओं का आदान प्रदान करते थे। इन जातियों के व्यापार में सहयोग देने के लिए चोरी आदि होने की संभावना रोकने का गाँव समिति द्वारा इस प्रकार प्रवन्ध करना उस युग की विशेषता थी। सम्पूर्ण गाँव तथा निकटवर्ती गाँव या नगर के प्रतिनिधि ऐसे निर्णय को मान्यता देते थे और उस कार्य में अपना हाथ बँटाते थे। यह एक विशेषता की बात थी। लेख में वाड, वाडी, पाडि, पेटी चौकड़ी आदि बोलचाल के शब्दों का संस्कृत रूप में इस लेख में प्रस्तुत कर लेखक ने स्थानीय भाषा की लोकप्रियता भी प्रमाणित की है।

मूलपाठ से यहाँ हम कुछ पंक्तियों के भाग उद्धृत करते हैं—

पंक्ति ६–१४ "समस्तलोको मध्यकदेवाइचसहित: स्वहस्ताक्षरपत्रं
प्रयच्छति यथा" मार्गे गच्छमान भाट पुत्र
दौवारिक कार्पटिक वणिज्जारकादि समस्त लोकस्य
च सत्कंगतमपहृतं च देशाचारेण चौकडिका
प्राहेणास्मभि: निमिनीयं"

पंक्ति ३५–३७ "देवधरादिसमस्तमहाजनं तथा कटकवालश्रे
जसधवलादि समस्त महाजन (स्यश्य)
श्रीधालोपीयलोकस्य संमतेन लिखितं"

चरलू का लेख[६७] (११४३ ई.)

छापर से १४ मील की दूरी पर चरलू नामक ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ मोहिलों का स्मारक देवलियाँ हैं जिनमें वि. सं. १२०० के लेख से विष्णुदत्त देवसरा, आहड़ और अम्बराक के नाम ज्ञात होते है। देवली के लेख से पता चलता है कि आहड़ और अम्बराक नागपुर (नागोर) की लड़ाई में मारे गये थे। इस लेख तथा अन्य देवलियों के लेख से सिद्ध होता है कि वि. सं की १३वीं शताब्दी के पूर्व इस प्रदेश पर मोहिलों का अधिकार था और चरलू उनकी पहली राजधानी थी।

वाली का लेख[६८] (११४३ ई०)

प्रस्तुत लेख वाली के बोलामाता के मन्दिर के सभा मण्डप के एक स्तम्भ पर ७"×२'.२½" आकार के पाषाण खण्ड के भाग पर उत्कीर्ण है। यह ६ पंक्तियों वाला लेख नागरी लिपि में है और इसमें संस्कृत भाषा प्रयुक्त की गई है। केवल एक पद्य को छोड़कर इसमें गद्य का प्रयोग किया गया है। यह लेख महाराजा-

६७. ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भा. १, पृ. ६१।

६८. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

धिराज जयसिंह देव के काल का है और उसमें संवत् १२०० दिया गया है। इसका लेखक कुलचन्द्र था।

इसमें अश्वक का उल्लेख है जो जयसिंह का सामन्त था। लेख में देवी की पूजा निमित्त ४ द्रम दिए जाने का उल्लेख है तथा और भी व्यक्तियों से और रहटों से द्रमों को दिलाए जाने का वर्णन है। इसमें घोड़े के विक्रय पर १ द्रम तथा थामिल ग्राम में रहने वाले संघपति चोहड के पुत्र गलपल्या से २ द्रम तथा कई अरहटों से एक-एक द्रम दिलाये जाने की व्यवस्था है। इसमें मण्डी में एक धरण पर एक द्रम देने का उल्लेख है। इससे उस समय लिए जाने वाले कर पर प्रकाश पड़ता है।

प्रस्तुत लेख की कुछ पंक्तियों के भाग इस प्रकार हैं—

पंक्ति १–४—"श्री जयसिंहदेव कल्याण विजयराज्येपादपद्मोपजीवि महाराजा श्री आश्वके"

"तथा घोड़ा विक्रए द्रां १ तथा थामिल ग्रामवासाव्य संघपति चोहडि पुत्र गलपल्यादिवाइ प्रति प्रदत्तं द्रां २ पू. मोहण सुत वाल्हण गारवाटं प्रति द्रां १ सीतकभरिया बोहडामहिमा प्रभृति अरहट प्रति प्रदत्तं द्रां १"

नाडलाई लेख[६९] (११४३ ई)

प्रस्तुत लेख नाडलाई के आदिनाथ मन्दिर का है जिसमें ६ पंक्तियाँ हैं जो १'×९"×४½" पाषाण भाग पर नागरी लिपि में उत्कीर्ण हैं। इसमें भाषा संस्कृत प्रयुक्त की गई है जो गद्य में है। इसका समय जेष्ठ शुक्ला ५ गुरौ, संवत् १२०० है।

लेख उस समय का है जबकि महाराजाधिराज श्रीरायपाल यहाँ रथयात्रा के उत्सव में आये। राउल राजदेव ने उस समय अपनी माता के तथा धर्म निमित्त १ विंशोपक व दो पल्लिका तेल प्रदान किया तथा इस शासन की परम्परा को तोड़ने वाले के लिए स्त्री हत्या और भ्रूण हत्या के पाप का भागी बनाया। इस दान की घोषणा महाजन गाँव वाले लोगों और जनपद के समक्ष की गई।

इस लेख से दान देने की वैधता महाजन, ग्रामीण जनता और जनपद की समक्षता में निहित है जो महत्त्वपूर्ण है। लेख में प्रचलित मुद्रा (विंसोपक) तथा पाइला, पर्ल, और पल्लिका के नाम का उल्लेख है। ये नाप पश्चिम-दक्षिणी राजस्थान में वर्तमान काल तक प्रचलित थे। इस लेख से रायपाल की धर्मसहिष्णु नीति पर तथा कर-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्तियाँ १–४ श्री महाराजाधिराज श्रीरायपाल देव राज्ये...... हास.......
समए रथयात्रायां आगतेन रा. राजदेवेन आत्म पाइला मध्यात् विंसोपको दत्तः ।। आत्मीयधाणक तेल प (ल) मध्यात् माता

---

६९. नाहर, जैन लेख संग्रह, भा. १, सं. ८४४, पृ. २१३।

निमित्तं पलिकाद्वयं प्ली. २ दत्तः (त्तं) । महाजन । ग्रामीण । जनपदसमक्षाय । धर्माय निमित्तं विंसोपको १ पलिकाद्वयं दत्तं"

नाडलाई का लेख [७०] (११४५ ई.)

प्रस्तुत लेख नाडलाई के आदिनाथ के मन्दिर में था जो महाराजाधिराज रायपाल देव के काल का संवत् १२०२ आश्विन कृष्णा ५ शुक्र का है। इसमें १'.८$\frac{1}{8}$" × ४$\frac{1}{2}$" पाषाण के भाग में नागरीलिपि में ५ पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसमें भाषा संस्कृत गद्य प्रयुक्त की गई हैं उस समय नाडलाई का ठाकुर रावत राजदेव था जिसने महावीर चैत्य के साधुओं के दान की व्यवस्था की। इसी प्रकार अभिनवपुरी के वदर्या (वारदवाले) तथा समस्त वनजारों पर प्रति २० पाइल भार वाले वृषभ पर २ रुपया तथा धर्म के निमित्त गाडे के भार पर १ रुपया लेना निर्धारित किया इसके पालन न करने वाला सहस्त्र गौ-हत्या और सौ ब्रह्म-हत्या के पाप का भागी घोषित किया गया।

इस लेख में कई ऐसे शब्द जो स्थानीय भाषा से संस्कृत में प्रयुक्त किये गये हैं जैसे देसी, किराडर (किराणा) गाड (गाडी) व लगमान (लाग), वदर्या (वारद) आदि।

इसकी कुछ पंक्तियां यहां उल्लिखित की जाती हैं:

पंक्ति २:५ "श्रीनदूलडागिकायां रा. राजदेव ठकुरेण प्रव (र्त) मानेन श्रीमहावीर चैत्ये साधुतपोधननि (ष्ठार्थे) श्री अभिनवपुरीय वदर्म्या अत्रेपु समस्तवणजारकेपु देसी मिलित्वा वृ (प) भरित जतु पाइला लगमाने ततुवीसं प्रति रुआ २ किराडजआ गाउ प्रति रु० १ वणजार कै (व) र्माथ प्रदत्त'

चित्तौड़ का कुमारपाल का शिलालेख [७१] (११५० ई० ?)

प्रस्तुत लेख कुमारपाल सोलंकी के समय का चित्तौड़ के समिधेश्वर के मंदिर में लगा हुआ है। इसमें २८ पंक्तियां है। इनके बीच १७वीं से २४वीं पंक्ति के मध्य एक यन्त्र भी उत्कीर्ण है। सर्वप्रथम इसमें शिव, शर्व, मृड, समिद्धेश्वर तथा सरस्वती की वन्दना की गई है और तत्पश्चात् क्षत्रियों की रचना तथा चालुक्य वंश का यशोगान किया गया है। इसके अनन्तर मूलराज और सिद्धराज का वर्णन आता है। कुमारपाल के वर्णन में इसमें शाकंभरी विजय का उल्लेख आता है। प्रशस्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि चौहानों को परास्त करने के बाद कुमारपाल शालिपुरा गाँव से चित्तौड़ जाता है। यहां प्रशस्तिकार चित्तौड़ के राजप्रासादों, झील, वापिका तथा

---

७०. नाहर, लेख संग्रह. भा. १, सं. ८४६, पृ. २१४।

७१. ए. इं. भा. २; इं. ए. भा. २, पृ ५२१, जैन लेख संग्रह, भा. ३, पृ. ८२-८४।

जंगली भाग का बड़ा सुन्दर वर्णन करता है जो उस समय की भौगोलिक स्थिति तथा सामाजिक स्थिति जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। जब कुमारपाल समिघेश्वर मन्दिर में जाता है तो भक्ति से शिव की पूजा करता है और मन्दिर को एक गाँव भेंट करता है। सज्जन, जो चालुक्यराज का दण्डनायक था वह भी मन्दिर के लिए एक घाणक तेल देने की व्यवस्था करता है। संभवतः यह वही सज्जन है जिसे कुमारपाल ने उज्जैन से चित्तौड़ बुलाया था इससे से तथा अन्य साधनों से यह भी स्पष्ट है कि कुछ समय चित्तौड़ पर चालुक्यों का शासन था। प्रशस्ति का रचयिता जयकीर्ति का शिष्य रामकीर्ति था। यह उस समय का दिगम्बर विद्वान था।

कुमारपाल का दूसरा लेख[७२] (११५० ई० के ठीक पीछे के काल का)

यह लेख उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है और कुमारपाल के समय का है। इसमें तिथि स्पष्ट नहीं है, परन्तु वर्णन की विशेषता के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह संभवतः वि. १२०७ के बाद का हो। लेख संस्कृत में है और उसमें २७ पंक्तियाँ हैं। सम्पूर्ण लेख काफी घिस चुका है, अतएव पद-पद पर इसके पढ़ने में कठिनाई होती है।

प्रारम्भ में इसमें वराह की स्तुति की गई है और इसके पश्चात् चालुक्य वंश की उत्पत्ति का वर्णन दिया है। इसमें बताया है कि जब देवता राक्षसों के उपद्रवों से अत्यधिक पीड़ित हो गए तो उन्होंने ब्रह्मा की शरण ली। ब्रह्मा ने उनके रक्षणार्थ एक वीर पुरुष को जन्म दिया जो चालुक्य था। ये उत्पत्ति का वर्णन तुर्कों के आक्रमण के विरुद्ध लड़े गए युद्धों की परिस्थिति का पोषक है। प्रस्तुत लेख में मूलराज के बाद होने वाले चालुक्य शासकों का वंशक्रम दिया है यथा मूलराज, चामुण्डराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमदेव, कर्ण जयसिंह, क्षेमराज, देवप्रसाद, त्रिभुवनपाल तथा कुमारपाल। कुमारपाल की विशिष्ट उपलब्धियों में जाँगलदेश और शाकंभरी विजयें हैं। इन विजयों के अनन्तर कुमारपाल का चितौड़ आना और वहां मधुसूदन के पुत्र सोमेश्वर का चितौड़ में नियुक्त करना उल्लिखित है। सोमेश्वर कुछ समय चित्तौड़ अधिकारी के रूप में रहा तथा उसने वहाँ वराह मन्दिर का निर्माण करवाया। मन्दिर के पूजा निमित्त दूनाडा गाँव का दिया जाना भी इसमें अंकित है। ये लेख चित्तौड़ तथा उसके सन्निकट भागों में चालुक्यों के राजनीतिक तथा धार्मिक प्रभाव का अच्छा प्रमाण है।

किराडू का लेख[७३] (११५२ ई०)

प्रस्तुत लेख किराडू के निकट वाले एक शिव मन्दिर का है जिसमें २१ पंक्तियाँ १'.५½"×१'.२" के पाषाण-खण्ड पर उत्कीर्ण है। लेख की रचना संस्कृत गद्य में है और उसमें नागरीलिपि को प्रयुक्त किया गया है। यह आल्हणदेव के समय

---

७२. ए. रि. रा. म्यू. अजमेर, १९३१।

७३–एक प्रतिलिपि के आधार पर'।

का है जिसमें माघ कृष्णा १४ शत्रो, संवत् १२०९ की तिथि अंकित है। इसमें कई पंक्तियों के अक्षर नष्ट हो चुके हैं।

इसमें शाकम्भरी कुमारपालदेव के नामोल्लेखन के पश्चात् महादेव का नाम आता है जो मुहर व्यापार आदि सम्बन्धी कार्यों का व्यवस्थापक था। कुमारपाल के एक सामन्त, श्री आल्हणदेव के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि उसने शिवरात्रि को पशुवध निरोध की आज्ञा अपने हस्ताक्षर से निकाली और मास के दोनों पक्षों की अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को पशुवध की रुकावट की। पुरोहितों और आमात्यों को भी इसके पालन के लिए आदेश दिया गया। आज्ञा का उल्लंघन करने वाले साधारण नागरिक पर पाँच द्रम और राजा के सम्बन्धी पर १ द्रम दण्ड लिये जाने की व्यवस्था की। इस आज्ञा पर महाराजकुमार केल्हण व गजसिंह की साक्षी है। लेख की रचना संधिविग्रहिक ठाकुर खोलादित्य ने की और नाडोल निवासी पोरवाड़ जातीय शुभंकर के पुत्रों—पूतिग व शलिग ने इस आज्ञा को प्रसारित किया। लेख का उत्कीर्णक भाइल था।

इस लेख से पशुवध के निरोध की व्यवस्था से शाकंभरी राज्य में मानवीय तत्त्वों की स्थिति का बोध होता है और प्रतीत होता है कि कई सामन्त जैसे आल्हणदेव तथा ठाकुर खोलादित्य राज्य की सेवा में रहते थे और उनके द्वारा अपने-अपने आधिपत्य के स्थानों में राजाज्ञा का परिपालन करवाते थे। उस युग के अधिकारियों में करण, आमात्य, संधिविग्रहिक, राजकुमार, तथा विज्ञप्ता आदि मुख्य थे। दण्ड विधान में सर्वसाधारण से ५ द्रम और राजपरिवार के व्यक्ति से १ द्रम लेने की व्यवस्था से स्पष्ट है कि विशेष अधिकार को उस युग में मान्यता दी जाती थी। इस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्ति ६–१२ "शिवरात्रि चतुर्दश्यां शुचि....पुण्ययशोभि वृद्धये प्राणिनांभय प्रदानं.... उभयोः पक्षयो अष्टमीएकादशीचतुर्द्दशी...........व्यतिक्रम्य जीवानां वध वकारयति करोति वा स व्यापा........आचंद्रार्कयावत् केनापि न लोपनीयं"

भेराघाट (जबलपुर) का लेख[७४] (११५५ई०)

यह लेख वि० सं० १२१२ का चेदि के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा गयकर्णदेव की विधवा राणी अल्हणदेवी के बनवाये हुए शिव मन्दिर का है। इसमें उसने अपने पिता, मेवाड़ के राजा वैरीसिंह तथा उसके पूर्वज हंसपाल तथा उसके उत्तराधिकारी विजयसिंह का वर्णन दिया है। उसमें हंसपाल के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने अपने शौर्य से शत्रुओं के समुदाय को अपने आगे झुकाया। उसके पुत्र वैरीसिंह के चरणों में अनेक सामंत सिर झुकाते थे। आगे इसमें यह भी वर्णन मिलता है कि उसने अपने शत्रुओं को पहाड़ों की गुफाओं में भगाया और उनके नगर छीन लिये।

---

७४. ए० इं० जि० २, पृ० ११–१२।

शिलालेख की ये पंक्तियाँ उस समय की सामन्त प्रथा पर तथा मेवाड़ के शासकों का भीलों से युद्ध होने की स्थिति तथा उनके अधिवासन पर प्रभूत प्रकाश डालती हैं। वैरीसिंह के उत्तराधिकारी विजयसिंह के सम्बन्ध में वर्णित है कि उसकी राणी श्यामल देवी मालवे के परमार राजा उदयादित्य की पुत्री थी। उससे अल्हणदेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका विवाह चेदि देश के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा गयकर्णदेव से हुआ। अल्हणदेवी से नरसिंहदेव और जयसिंहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने पिता के पीछे चेदि के क्रमशः राजा हुए। इस लेख से मेवाड़ का मालवा तथा चेदि राजवंश से सम्बन्ध प्रमाणित होता है जो उस समय के राजनीतिक गठबन्धन पर अच्छा प्रकाश डालता है।

इस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"अस्ति प्रसिद्धमिह गोमिलपुत्र गोत्र-
न्तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपाल।
शौर्या वसज्जित निरगलि सैन्य संघ-
नम्रीकृतखिलमिल द्रियुच क्वालः ॥१७॥"
"तस्या भवत्तनुभवः प्रणमत्समस्त
सामन्तशेरदर शिरोमणिरज्जितांह्रिः ॥१८॥"
"तस्माद जायत समस्तजनाभि वन्द्य
सौन्दर्यशौर्यभरभङ्गुरिताहित श्रीः।
पृथ्वीपतिर्विजयसिंह इति प्रदर्द्ध
मानः सदा जगति यस्य यशः सुधांशुः ॥२०॥"

थकराडा लेख[७५] (११५५ ई०)

इस लेख की खोज रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा ने अपने डूंगरपुर के दौरे के समय की थी जिसका सम्पादन आर० आर० हलधर ने किया था। प्रस्तुत लेख में १० पंक्तियाँ ११" × ९" पाषाण भाग में नागरीलिपि में उत्कीर्ण हैं और इसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं भाषा में अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। यह लेख भाद्रपद के शुक्लपक्ष की १ संवत् १२१२, तदनुसार ३१ जुलाई, ११५५ ई० का है तथा विजयपाल के उत्तराधिकारी सूर्यपालदेव के समय का है। यह वही प्रतिहार सूर्यपाल है जिसका संवत् ११९० का इंगोदा का लेख है और जो मध्यभारत तथा राजस्थान के कुछ भागों का अधिकारी था।

इस लेख में महाराज पुत्र अनंगपालदेव द्वारा सिद्धेश्वर के मन्दिर के लिए एक हल भूमि के दान देने का उल्लेख है। इसमें वर्णित महाराज सम्भवतः परमारों के सामन्त रहे हों और समय मिलने पर स्वतंत्र शासक बन गये हों। इस लेख से तथा इस समय के आस-पास के कई शिलालेखों के अध्ययन से इस शाखा के शासकों

---

७५. ए० रि० रा० म्यू० अजमेर, १९१५-१६।

का वंशक्रम इस प्रकार है:—

पृथ्वीपालदेव या भतृभट्ट
|
त्रृभुवनपालदेव
|
विजयपालदेव (स० ११९०)
|
सूर्यपालदेव (स० १२१२)
|
अनंगपालदेव

इस अनुदान के साथ एक छोटी तलाई के पास के खेतों के दान की भी पुष्टि की गई है। इस लेख को पं० श्रीधर के पुत्र मइव ने लिखा था। इसमें प्रयुक्त 'समस्त राजावलि विराजित' तथा 'तत्पादपधोजीविनी महाराजपुत्र' से उस समय के आश्रित राजाओं की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख में खेत को तड़ाग के निकट होने की संज्ञा दी गई है जो उस समय की भूमि-संज्ञा की प्रणाली का द्योतक है।

इस लेख की कुछ पंक्तियों के भाग इस प्रकार हैं:—

पंक्ति २–३ "समस्त राजावली विराजित भर्तृपट्टाभिधाना श्री पृथ्वीपालदेव"

पंक्ति ८ "उदकपूर्वहन्नमेकस्य भूमि: प्रदत्ता"

घाणेराव का लेख[७६] (११५६ ई०)

इस लेख से बारहवीं शताब्दी के राजस्थान की स्थिति को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। किस तरह उस समय के शासक अपने राज्य में दण्डनायक जैसे पदाधिकारी रखते थे और सामंत किस प्रकार भुक्ति कहलाते थे और उनके भाग को 'वाट' कहा जाता था। इस लेख से स्थानीय नागरिकों का भी अनुदानादिक कार्यो में हाथ रहता था, ऐसा इससे प्रमाणित होता था।

इस लेख का मूल भाग इस प्रकार है:

"संवत् १२१३ भा० सु० ४ मंगल दिने श्री दंडनायक वैजल्यदेव राज्ये श्री वंसगत्तीय राउल महणसिह भुक्ति वंसहउवाट मध्यात् श्री महावीरदेव वर्ष प्रति द्राम ४ खाज सूणो दत्ता सेठ रायपाल सुतराव राजभत्र महाजन रक्षपाल निसाणि यस्तदिवहि"

मंडोर की प्रशस्ति[७७] (११५६ ई०)

मंडोर से प्राप्त एक लेख रक्तपाषाण शिला पर उत्कीर्ण है जिसका आकार २९इंच × १७ इंच है। इसका समय संवत् १२१३ ज्येष्ठ सु० १ रविवार है। इससे

---

७६. नाहर, जैन लेख, भा० १, पृ० २१८–१९।

७७. एर्डमनि वि० १९३२, पृ० ७।

सूचना मिलती है कि संवत् १२१३ में भुवनिग के पुत्र राठौड़ सलखा का (पंचकुंड नामक स्थान पर) स्वर्गवास हो गया और उसके पीछे उसकी राणियाँ सती हुई। यह लेख बृहस्पति-कुंड से प्राप्त हुआ था और अब जोधपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

संवत् १२१३ (ज्येष्ठ) सु० १ वारो र (वे)
सलखा राठउ भुवणिग पुत्र
सलखणदेवि चाहुया (वा) णी वडी
वितीक सावलदेवि सोलकि
णी त्रतीक सेजणदेवि गुहिलोतणी"

मंडोर के खंड लेख[७८] (१२वीं शताब्दी ई०)

मंडोर से प्राप्त १२वीं शताब्दी ई० के एक लेख के १७ टुकड़े जोधपुर संग्रहालय में उपलब्ध हैं। लेख का तिथि का भाग तो प्राप्त नहीं है परन्तु अनुमानित किया जाता है कि इसका समय वि० सं० १२०२ के बाद का रहा होगा। इस शिलालेख के विभिन्न टुकड़ों को मिलाने से कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख में एक गाँव के दान दिये जाने का उल्लेख है जिसके उत्तर में सीयाहटी (सीहट—सोजत से ६ मील पूर्व) नामक गाँव था। अभिलेख के प्रारम्भ में विष्णु तथा लक्ष्मी की वन्दना की गई है। इसमें दान लेने वाले का नाम भट्ट स्वामी है तथा दाता चौहान सहजपाल है। प्रस्तुत लेख में दिवाकर तथा महेश्वर की पूजा का भी उल्लेख मिलता है। दान में दी गई वस्तुओं में एक पल कस्तूरी देना भी वर्णित है। १२वीं शताब्दी ई० की धार्मिक स्थिति की जानकारी के लिए इस प्रशस्ति का बड़ा महत्त्व है।

इसकी कुछ पंक्तियों का अंश इस प्रकार है—
"उतरत: सीयाहटी..............ॐ नमो नारायणाय
युक्तः प्रवितत वनमाला.... .. ..रत्नाकरो लक्ष्मी समेत........"

किराडू लेख [७९] (११६१ ई)

किराडू बाड़मेर से १६ मील उत्तर-पश्चिम में एक कस्बा है। इसमें एक जीर्णशीर्ण शिव मन्दिर के खंभे पर एक संस्कृत में लेख है। इसको १७"×१७" के दायरे में २६ पंक्तियों एवं २६ श्लोकों में खोदा गया है। इसकी कई पंक्तियाँ एवं अक्षर नष्ट हो गये हैं। और कहीं 'व' के स्थान पर 'ब' एवं 'स' के स्थान पर 'श' का प्रयोग किया गया है। इसका समय सँवत् १२१८ आश्विन शुक्ला १ एक गुरुवार है। (२१ सितम्बर, ११६१ ई.)

प्रस्तुत लेख का महत्त्व यह है कि इस में किराडू की परमार शाखा का वंश-

---

७८. आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९०९–१०, पृ० १०२–३।

७९. इन्डियन एन्टीक्वेरी, भा. ४१, १९३२ ई., पृ. १३५-१३६; जैन इंस भा. १, पृ. २५१; भंडारकर, इन्स, नं. ३१२; रेऊ, ग्लोरियस राठौड़, पृ. २११-२१४।

क्रम है और इसमें आबू के उत्पलराज के पिता मारवाड़ के सिद्धराज का नाम है। इस लेख में परमारों की उत्पत्ति वशिष्ठ के आबू यज्ञ से बतलाई गई है। इसमें सिन्धूराज को मारवाड़ का शासक बताया गया है। उसके लड़के उत्पल का नाम इसमें दिया हुआ है परन्तु उसके पुत्र और पौत्र का नाम जाता रहा है। तदन्तर वरणीवराह और देवराज का नाम आता है जिसने संभवत: देवराजेश्वर का मन्दिर बनवाया था। फिर धंधुक का वर्णन आता है जिसने चालुक्य दुर्लभराज की कृपा से मरुमण्डल पर शासन किया था। फिर कृष्णराज तथा सोच्छराज का वर्णन आता है। सोच्छराज का पुत्र उदयराज चालुक्य उदयराज का सामन्त था जिसने चोड, गौड, कर्नाटक एवं मालवा की विजय की थी। इसी तरह इसमें चालुक्य सिन्धूराज एवं कुमारपाल की कृपा से उदयराज के पुत्र सोमेश्वर का संकेत मिलता है जिसने किराटकूप तथा शिवकूप में अपनी शक्ति का संगठन किया। उसके द्वारा जज्जक की पराजय और १७०० घोड़े लेने का वर्णन। इस लेख में वि. १२१८ के जज्जक के साथ लड़े गये युद्ध का काल सूर्योदय के साढ़े चार घंटे के बाद दिया गया है और उसकी तन्नूकोट (जैसलमेर) एवं नौसार (जोधपुर) की विजय का उल्लेख है। इसका प्रशस्तिकार नरसिंह, लेखक यशोदेव और उत्कीर्णक यशोधर था।

इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

"(ॐ नम:) सर्व्वज्ञाय। नमोनंताय सूक्ष्माय ज्ञान गम्याय वेधसे ॥ विश्वरूपाय शुद्धाय देवदेवाय शंभवे ॥१॥

देवस्य तस्य चरितानि जयन्ति शंभो मस्व (शश्व) त्कपालवि

(भुभ) स्य विभूषणस्य। गर्व्व: सकोपि हृदियस्य पदं करोति गौरीनितंव (ब) चिरवल्कल—प्रदर्शात् ॥२॥"

"दंडं सप्तदशशतान्यश्वानां नृपजज्जकात्"

"तणुकोहं नवसरो दुर्गौं सोमेश्वरोग्रहीत्"

"पशस्तिमकरोदेतां नरसिंहो नृपाज्ञया। लेखकोत्र य (शो) देव: सूत्रधारोस्तु जसोधर:"

सांडेराव (देसूरी के निकट) के महावीर देवालय का लेख [८०] (११६४ ई.)

इस लेख में राजकीय भोग से महावीर की पूजा के लिए कल्हणदेव की रानी आनल ? ने एक 'एल' का अनुदान किया। इसमें 'भोग' शब्द एवं एल शब्द की प्राचीनता प्रमाणित होती है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है :

"१२२१ माघ वदि २ शुक्रे कल्हणदेव विजय राज्ये। तस्य मातृ राज्ञी श्री आनल ? देव्या श्री महावीरदेवाय चैत्र वदि १३ कल्याणिक निमित्तं राजकीय भोगमध्यात् युगधर्या–एल एक प्रदत्त:"

---

८०. नाहर, जैन लेख, भा. १, संख्या ८८३, पृ. २२९।

साण्डेराव पाषाण लेख [८१] (११६४ ई.)

प्रस्तुत लेख साण्डेराव के महावीर के मन्दिर का है जिसमें केवल ४ पंक्तियाँ ३.'११" × ३½" के पाषाण भाग पर नागरीलिपि में उत्कीर्ण है। इसमें संस्कृत गद्य का प्रयोग किया गया है। इसका समय कल्हणदेव के शासन काल का है जिसमें माघ कृष्णा २ शुक, संवत् १२२१ की तिथि अंकित है।

इसमें उल्लिखित है कि श्री कल्हणदेव की माता ने महावीरदेव के चैत्र वदि १३ को होने वाले कल्याणिक उत्सव के निमित्त राजकीय भोग से एक हाएल ज्वार प्रदान की। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट पात, केल्हण व उनके भतीजों—उत्तमसिंह, सद्रग, काल्हण, आहड़, आसल, अणतिग आदि ने इसी निमित्त तलारक की आय से १ द्रम दान दिया। इसी उत्सव के लिए रथकार धनपाल, सूरपाल, जीपाल, सिगड़ा, अभियपाल, जिसहड, दोल्हण आदि ने भी ज्वार का एक हाएल अर्पित किया।

इस प्रशस्ति में भोग (भूमि से राज्य का भाग अन्न के रूप में, हाएल भण्डारक के अनुसार एक दिन के हल चलाने से बोया जाने वाला नाज का अनुपात), तलाराभव्य (नगर कोतवाल की आय) आदि शब्दों का प्रयोग भूमि सम्बन्धी परिज्ञान के लिए बड़े महत्त्व के हैं। एक हल से उत्तर-मध्यकालीन युग में ५० बीघा भूमि का बोध होता था। 'हाएल' यदि हल का रूपान्तर है तो ५० बीघा से पैदा होने वाला अन्न या आय दिया जाना मान्य है। यदि 'हाएल' हल के अतिरिक्त दूसर शब्द है तो भण्डारकर द्वारा इसका अर्थ एक दिन में जोती जाने वाली भूमि लेना उपयुक्त होगा। इस प्रशस्ति से उन दिनों सभी धर्मों के प्रति, विविध जाति के लोगों का सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार दिखाई देता है तथा राज्य के द्वारा लगाये गये विविध करों और भूमि की नाप का अनुमान होता है।

इसकी कुछ पंक्तियों के अंशों को यहाँ उद्धृत किया जाता है:

पंक्ति १–३ "राजकीय भोग मध्यात् युगंधर्या: हाएल एक: प्रदत्त: तलाराभाव्यथस गटसत्कात् अस्मिन्नेव कल्याणके द्र. १ प्रदत्त:"

अजाहरी का शिलालेख [८२] (११६६ ई.)

यह लेख अजाहरी का है जिसका समय वि. स. १२२३ फाल्गुण सुदी १३ रविवार का है। इससे रणसिंह परमार के सम्बन्ध में आबू के शासक होने की सूचना मिलती है। आबू क्षेत्र के कुछ शिलालेख जो ब्राह्मणवाड तथा अचलेश्वर मन्दिर के हैं उनसे यह प्रमाणित होता है कि वहां गुहिलोतों का राज्य था। इससे रणसिंह के सम्बन्ध में भी इसी वंश का होने की भ्रान्ति हो सकती है। परन्तु प्रस्तुत लेख को यदि रोहिड़ा के दानपत्र के संदर्भ में पढ़ा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि रणसिंह परमार इस समय आबू का शासक था। इसमें 'द्रम' का तथा 'पंचकुल' शब्दों का

---

८१. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

८२. शोध–पत्रिका, वर्ष २२, अंक ३, पृ. ७।

प्रयोग किया गया है जो उस समय की प्रचलित मुद्रा तथा शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालते हैं। इसका कुछ अंश इस प्रकार है :

" ॐसंवत् १२२३ फाल्गुण सुदि १३ रवी अद्येह चांदा पल्या महामण्डलेश्वर। श्री रणसीदेव नियुक्त मंह श्री जैसल प्रभृति वादिकागणे मंह जगदेव प्रभृति पंचकुल ....पादुकागण पंचकुले न खीच सत्कं अष्टौ द्रमा गृह्यंते"

इंद्रगढ़ का लेख[८२] 'अ' (१६८३ ई.)

इन्द्रगढ़ कस्बे के निकट काकीजी की बावड़ी की ताक से वि. सं. १७४० माघ बुधवार का एक लेख प्राप्त हुआ है। लेखाकार २२ × १२ इंच तथा अक्षराकार ०.७ × ०.१ वर्ग इंच है। इसमें कुल २२ पंक्तियाँ हैं। इसकी भाषा प्रायः संस्कृत है। लेख में इन्द्रगढ़ के चौहान राजा गिरदारसिंह, जो इन्द्रसिंह का पौत्र है, के राज्य काल में उक्त तिथि पर खण्डेलवाल बाब्राराम के शुभ विवाहोत्सव के पर्व पर महारानी आलां द्वारा उक्त बावड़ी का निर्माण वर्णित है। इसमें इन्द्रसिंह को इन्द्रगढ़ाधिपति की संज्ञा दी गई है। इसका लेखक गुजराती नटल नमण अंकित है। संभवतः नटल नमण 'नटवर' 'रमण' के द्योतक हैं। इसमें साक्षी का नाम भी दिया गया है।

इसका कुछ अंश नीचे उद्धृत है।

"इन्द्रगढ़ाधिपति महाराजाधिराज श्री राजसिंहजी तत्सुत महाराजाधिराज महाराव श्री सिरदारसिंहजी तस्य महाराक्षी मायावती महाराणीजी आलीजी तत्कृत वाप्या"

मेनाल के दुर्ग के महल के उत्तरी द्वार के स्तम्भ का लेख[८३] (११६९ ई.)

यह वि. सं. १२२६ का लेख संस्कृत भाषा तथा नागरी लिपि में हैं, जो मेनाल-दुर्ग के उत्तरी द्वार के स्तंभ पर उत्कीर्ण है। इससे चौहानवंशी राजा पृथ्वीराज द्वितीय की कुछ विशेषताओं के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। इसमें इसे अपने समय का सत्यनिष्ठ, मृदुभाषी, सुन्दर, धर्मपरायण, कल्याणमय, धर्मज्ञ तथा विचारशील शासक बतलाया गया है। इसमें मेनाल में एक मठ स्थापना का भी उल्लेख है। प्रस्तुत प्रशस्ति से पृथ्वीराज द्वितीय के राज्य में मेनाल का होना प्रमाणित होता है।

इसकी एक पंक्ति इस प्रकार है :

"तस्मै धर्मवरिष्ठस्य पृथ्वीराजस्य धीमतः पुण्यैकुर्वति वैराज्यं निष्पन्नं मठमुत्तमं"

---

८२. अ' वरदा, जुलाई १९७१, पृ. ५३, ५४, ६१।

८३. वीर विनोद, भा० १, पृ० ३८९।

बिजोलिया का लेख[८४] (११७० ई०)

यह लेख बिजोलिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की उत्तरी दीवार के पास एक चट्टान पर उत्कीर्ण है। इसमें ९३ संस्कृत पद्यों का प्रयोग किया गया है और इसका समय वि. सं. १२२६ फाल्गुन कृष्णा तृतीया, तदनुसार फरवरी ५, सन् ११७० है। ये लेख मूलतः दिगंबर लेख है, जिसको दिगंबर जैन श्रावक लोलार्क ने पार्श्वनाथ के मन्दिर और कुण्ड के निर्माण की स्मृति में लगाया था। इसमें साँभर और अजमेर के चौहान वंश की सूची तथा उनकी उपलब्धियों की अच्छी जानकारी मिलती है। इन शासकों को वत्सगोत्र के ब्राह्मण कहा गया है। इस वंशावली में जयराज, विग्रहराज, चन्द्रराज, गोपेन्द्रराज, दुर्लभराज, गोविन्दराज, चन्द्रराज, गुवक, चन्द्रराज, वाक्पतिराज, विन्ध्यराज, विग्रहराज, गोविन्द, सिंह, दुर्लभराज, पृथ्वीराज, अजयराज, अर्णोराज आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा दिये गये हेम पर्वतदान, ग्रामदान तथा स्वर्णादि दान का भी वर्णन इससे उपलब्ध होता है। इसमें दिये गये कई प्राचीन नामों से उस समय के कई स्थानों की जानकारी हमें मिलती है, जैसे जाबालिपुर (जालौर), नड्डुल (नाडोल) शाकंभरी (साँभर), दिल्लिका (दिल्ली), श्रीमाल (भीनमाल), मंडलकर (मांडलगढ़), विंध्यवल्ली (बिजोलिया), नागहृद (नागदा) आदि। इसमें बिजोलिया के आस-पास के पठारी भाग को उत्तमाद्री कहा है जिसे आज भी ऊपरमाल कहा जाता है। यह मेवाड़ का पूर्वी भाग उस समय बड़ा उपजाऊ, धन-धान्य से परिपूर्ण तथा व्यापार का केन्द्र था, जैसाकि प्रशस्तिकार लिखता है। इसमें बहने वाली कुटिला नदी के आस-पास कई शैव तथा जैन तीर्थ-स्थानों की भी सूचना इस लेख के द्वारा हमें मिलती है। प्रशस्तिकार ने अनुप्रास के प्रयोग से षट्गुणों और पंच आचार, ज्ञान आदि के वर्णन द्वारा उस समय के नैतिक स्तर पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। उस समय की आबादी के स्तर को बतलाते हुए ग्राम, पल्लि, पुर, पत्तन, देश का वर्गीकरण इसमें हमें उपलब्ध होता है। वंशक्रम में सामंत, भुक्ति आदि शब्द के संकेत से सामाजिक व्यवस्था पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

प्रशस्ति का प्रधान प्रयोग जैन धर्म के सम्बन्ध में होते हुए भी इसमें उत्तमाद्रि के अन्य तीर्थ-स्थलों का वर्णन भी मिलता है जिनमें घटेश्वर, कुमारेश्वर, सौभाग्येश्वर, दक्षिणेश्वर, मार्कण्डेश्वर, सत्योवरेश्वर, कुटिलेश, कर्करेश, कपिलेश्वर, महाकाल, सिद्धेश्वर, जातेश्वर, कोटीश्वर आदि मुख्य हैं। इस भाग की वनस्पति के वर्णन से यहाँ की आर्थिक सम्पन्नता का भी बोध होता है। उस समय दी जाने वाली भूमि अनुदान को 'डोहली' की संज्ञा दी जाती थी और भूमि को क्षेत्रों में बाँटा जाता था। इसी तरह ग्राम समूह की बड़ी इकाई के लिए 'प्रतिगण' का प्रयोग किया जाता था। गाँवों तथा प्रतिगणों के अधिकारियों को महत्तम तथा पारिग्रही आदि नामों

---

८४. ए. इ. भा. २६, पृ. ९०–१००।
गोपीनाथ शर्मा : बिबलियोग्राफी, पृ. ५।

से जाना जाता था।

इस प्रशस्ति का रचयिता गुणभद्र था और इसको कायस्थ केशव ने लिखा तथा इसे नानिग के पुत्र गोविन्द ने उत्कीर्ण किया। इस जैन मन्दिर का निर्माणक माहणक था, जो हरसिग तथा प्राह्लण सूत्रधार के वंशक्रम में था। वास्तव में बारहवीं शताब्दी के जन-जीवन, धार्मिक व्यवस्था तथा भौगोलिक और राजनीतिक स्थिति को जानने के लिए यह लेख बड़े महत्त्व का है। इसकी कुछ अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"खंडुवराग्रामवास्तव्यगौड सोनिगवासुदेवाभ्यां दत्तडोहलिका आतरी प्रतिगण केरायताग्रामीयमहंतमलींवडियोपलिभ्यां दत्तक्षेत्र डोहलिका १ वडोवाग्राम वास्तव्यपारिग्रही आल्हणेन दत्तक्षेत्र डोहलिका १ लघुविक्रौली ग्रामसंग्रहिलपुत्र रा. शाहरु महत्तम माहवाभ्यां दत्तक्षेत्र डोहलिका १"

नारलाई लेख[८५] (११७१ ई०)

नारलाई लेख महावीर के मन्दिर का है जो केवल तीन पंक्तियों में नागरी लिपि में संस्कृत, प्राकृत तथा डिंगल की मिली-जुली भाषा में उत्कीर्ण हैं। इसमें मार्ग शीर्ष शुक्ला १३ सं० १२२८ का समय अंकित है जबकि कुमारपालदेव का इस भाग में शासन था। उसी के शासन के अन्तर्गत, जैसाकि प्रशस्ति से प्रमाणित होता है नाडोल में केल्हण, बोरिपद्यक में राणा लक्ष्मण और सोनाणा ग्राम में ठाकुर अणसीह उसके सामन्त थे। इसी समय भिवड़ेश्वर देव के मन्दिर के मंडप का निर्माण सूत्रधार महड्डुआ व उसकी पत्नी जसदेवि के पुत्र पाहिणी ने करवाया। इस कार्य में पत्थर व ईंटों के निर्माण में ३३० द्रमों का व्यय हुआ। इस धार्मिक कार्य में महिदरा व इंदरा ने निर्माण कार्य में सहयोग दिया।

वैसे तो यह लेख छोटा है पर उस युग की सामन्त प्रथा को तथा शिल्पकार्य में आर्थिक व्यय को जानने के लिए बड़े महत्त्व का है। इसमें अठावीस, लखमण, राजे, इटिका, लागे आदि शब्दों का प्रयोग स्थानीय प्रभाव के द्योतक हैं। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

पंक्ति १–३. "ओं संवत् १२ अठावीसा वरषे मागसिर सुदि १३ सोमे श्री भिवड़ेश्वर देवस्य। श्री कुँवरपालदेवविजयराज्ये। श्री नाडुल्यपुरात श्री केल्हणराजे बोरिपद्य के राणा लखमण राजे स्वस्ति सोनाण ग्रामे ठा० अणसी हुस्य। स्वस्ति सूत्र. महड्ड अ भार्या जसदेवि सुत पाहिणी, मंडप: कर्तव्या पाषाणइटकायां घटित: चहूटापने द्र. ३३० लागे। धर्मसखाइत सूत्र महिदरा.तथा इंदरा को घटित कार्य·······कापाडीय।"

---

८५. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

जगत् का स्तंभ लेख[८६] (११७२ ई०)

जयसमुद्र के निकट, उदयपुर जिले में, जगत् गाँव के देवी मन्दिर के स्तम्भ पर एक वि० सं० १२२८ फाल्गुन सुदि ७ (ई० ११७२ ता० ३ फरवरी) का एक लेख है जो ऐतिहासिक महत्त्व का है। इससे प्रमाणित होता है कि ११७२ ई० में सामन्तसिंह का अधिकार छप्पन के भाग में विद्यमान था। इसमें उल्लिखित है कि उसने देवी के लिए सुवर्णमय कलश भेंट किया। इस सम्बन्धी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"संवत् १२२८ वरिखे (वर्षे) फ (फा) ल्गुन सुदि ७ गुरौ श्री अंबिकादेवी (व्यै) महाराज श्री सामंतसिंघ (ह) देवेन सुवर्न (र्ण) मयमलसं प्रदत्त (म्) ·······।"

नाडोल का लेख[८७] (११७६ ई०)

इस लेख में कल्हण के राज्य में नाणक भोक्ता राजपुत्र लपण आदि परिवार द्वारा प्रत्येक रहट से पैदावार का कुछ भाग शांतिनाथ की यात्रा निमित्त अनुदान दिया, ये ग्राम के पंचकुल समक्ष दिया गया। इससे पंचकुल जैसी संस्था की विशेषता का भी परिचय मिलता है। इसका मूल इस प्रकार है :

"संवत् १२३३ ज्येष्ठ वदि १३ गुरौ अद्येहं श्री नड्डूल महाराजाधिराज श्री केल्हण देवराज्ये वर्तमाने श्री कीर्तिपाल देवपुत्रै सिनाणकं भोक्ता राजपुत्र लापण पाल्ह राजपुत्र अभयपाल राज्ञी श्री महिबल देवि सहितैः श्री शांतिनाथ देव यात्रा निमित्तं भडिया उवअरघट उरहरि मध्यात् गूजर तुहार १ जय ग्राम पंच कुल समक्षि एतद् दानं कृतं पुण्याय।"

लालराई (बाली के निकट) के शांतिनाथ के मन्दिर का लेख[८८] (११७६ ई.)

इसमें आस-पास के गाँवों की खाड़ी से (भंडार) जव तथा अरहट से पैदावार का गूजरी यात्रा निमित्त देने का उल्लेख है। यह लेख स्थानीय भाषा के शब्दों को जैसे 'तुहार' (त्यौहार) संस्कृत में प्रयोग किया गया है जिससे स्थानीय भाषा के विकास पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ राजपूत के लिए राजपुत्र शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है :

"सम्वत् १२३३ वैशाख सुदि ३ सनाणक भोक्ता राजपुत्र लाखणपाल राजपुत्र अभयपाल तस्मिन् राज्ये वर्तमाने चा. भीवडा पडि देहवसी सू. आसधर समस्त सीर सहितै खाडी जव मध्यात् जवा से ४ गूजरी जात्रा निमित्तं श्री शान्तिनाथ देवस्य दत्ता तथा भडिया उअ अरहटे आसधर सीरोइय समस्त सीरण जवा हरीधु १ गूजरतू-या त्राहि वील्हस्य पुण्यार्थ"

---

८६. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. ३५।

८७. नाहर, जैन लेख, भा. १, संख्या ८९२, पृ. २३१।

८८. नाहर, लेख संग्रह, भा. १, संख्या ८९१, पृ० २३१।

लालराई लेख[८९] (११७६ ई.)

वाली से दक्षिण–पूर्व स्थित लालराई के एक जैन मन्दिर का यह लेख १८ पंक्तियों का है जिसको १०१/४" × २१/२" के आकार के पत्थर के भाग में उत्कीर्ण किया गया है। १० से १८ पंक्तियों के प्रारम्भिक भाग के अक्षर प्रायः नष्ट हो गये हैं। लेख में संस्कृत भाषा तथा नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है। इसका समय ज्येष्ठ कृष्णा १३ गुरुवार संवत् १२३३ है जब नाडोल पर महाराजाधिराज केल्हणदेव का शासन था। उसके राजपुत्र लखणपाल व राजपुत्र अभयपाल सिनाणव के भोक्ता (जागीरदार) थे। उन्होंने तथा रानी श्री महिदेवी ने ग्राम पंचों के समक्ष श्री शांतिनाथ-देव के रथयात्रा के उत्सव निमित्त भादियात्र व ग्राम के उरहारि रहट से गुजराती नाप के एक हारक यव प्रदान किए। इसकी साक्षी भी प्रमुख व्यक्तियों ने दी जिनके नाम लेख में नष्ट हो गये हैं।

इस लेख से उस समय की जागीर व्यवस्था तथा तारक और हारक नाप विशेष तथा उरहारी खेत विशेष के उल्लेख मिलते हैं जो उस समय के प्रयुक्त नाप के बोधक हैं। इसमें पंचकुल की प्रधानता भी अंकित है।

पंक्ति ३–१० "श्री कीर्तिपालदेवपुत्रै सिनाणव भोक्ता राजपुत्र लापणपाल राजपुत्र अभयपाल राज्ञी श्री महिलदेवि सहितैः श्री शांतिनाथदेवयात्रानिमित्त मडिभाउ व (अ) रघट उरहारि मध्यात् गूजर (तृ) हार (क) १ जवा ग्राम पंचकुल समक्षि एतत्········ दान कृतं पुण्याय साक्षि"

किराडू का लेख[९०], (११७८ ई.)

यह लेख एक किराडू के शिव मंदिर में लगा हुआ है जिसमें १६ पंक्तियों को १७१/२ × ९१/२ की लम्बाई चौड़ाई में खोदा गया है। प्रथम तथा अंतिम तीन श्लोकों को छोड़कर लेख संस्कृत में है। इसमें ५वीं से १४वीं तथा १६वीं पंक्ति का अधिकांश भाग नष्ट है। इसमें 'स' के स्थान में 'श' और 'श' के स्थान में 'स' का प्रयोग किया गया है। इसका समय वि० सं० १२३५, कार्तिक शुक्ला १३ गुरुवार है (२६ अक्तूबर ११७८ ई०)। यह किराडू के महाराजपुत्र मदनब्रह्मदेव चौहान (शाकंभरी) के समय का है जो भीमदेव द्वितीय का सामन्त था। इस समय तेजपाल शासन का काम करता था। इसमें वर्णित है कि तेजपाल की स्त्री ने जब तुरुष्कों के द्वारा मन्दिर की मूर्ति को तोड़ा हुआ पाया तो उसने उक्त तिथि को नई मूर्ति की स्थापना कराई और मदनब्रह्मदेव द्वारा मन्दिर की पूजा के लिए दो विंशोपक एवं दीपक के लिए तेल की व्यवस्था की।

इसका कुछ अंश इस प्रकार है :

---

८९. नाहर लेख संग्रह, भा. १।

९० इण्डियन एन्टीक्वेरी, भा. ४२, १९३३, पृ० ४२; प्रोग्रेसरिपोर्ट, वेस्टर्न-सर्कल, १९०६–०७, पृ० ४२; रेऊ, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़, २१५–१६।

पंक्ति ३–५. "श्रीमद्भीमदेव कल्याण विजयराज्ये तत्प्रभुप्रसादावाप्त श्री किरोट कूपे रविरिवसप्रताप: हिम[कर]रुचिर कराभिराम: मेरुरिव सुवर्णश्रियामनोरभो........... शाकंभरी भूपाल....महाराजपुत्र श्रीमदनब्रह्मदेवराज्ये",

पंक्ति ६–७. सर्वाधिकार सकलव्यापारचिंता:त (भ) रस (श) कट धुराधौरेयकल्प महं श्री तेजपालदेव सुपत्नीव ....राजहंसीमिव...........देवभवा

पंक्ति १०–१४. मूर्तिरासीत् सातुरुकैं (ष्कै) र्भग्ना तांच्च निरीक्ष्य तस्मिन्न्य (न्न) पि..........कारयित्वाऽस्मिन् दिने प्रतिष्ठिता ।।.......दत्तमिदं विंशोपकद्वयं तथा दीपार्थं च दत्तं तैल......................."

ओसिया के सच्चिका माता के मन्दिर की प्रशंस्ति[६१] (११७९ ई०)

इस लेख में केल्हण को महाराज तथा कीर्तिपाल को माडव्यपुर का अधिपति तथा धारावर्ष को विषयी उल्लिखित किया है जिससे मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति एवं शासन व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । इसमें देवी के मन्दिर की गोष्ठी का भी उल्लेख है । जिसके समक्ष भोजक के कार्यों का निर्धारण है एवं पारिश्रमिक के रूप में उसे सच्चिका देवी के कोष्टागार से प्रतिदिन दो अंजली मूंग और २५० ग्रेन (कर्प) देने की व्यवस्था का उल्लेख है । इसमें नौकरी का समय तक भोजक की आयु १२ वर्ष से ऊपर आंकी है ।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"सं० १२३६ कार्तिक सुदि १ बुधवारे अद्येह श्री केल्हणदेव महाराज राज्ये तत्पुत्र श्री कुंवरसिहे सिंहविक्रमे श्री माडव्यपुराधिपति.......दभिकान्विय कीर्तिपाल राज्य वाहके तद्भुक्तौ श्री उपकेशीय श्री सच्चिकादेवी देव गृहे श्री राजसेवक गुहिलं ग्रोत्रय विषजी धारावर्षेण श्री सच्चिकादेवि भक्ति परेण श्री सच्चिका देवि गोष्ठि कान् भाणित्वा तत्समक्ष तइयं व्यवस्था लिखापिता । यथा । श्री सच्चिकादेवि द्वारं भोजकैः प्रहरमेकं यावदुद्धाट्य द्वारस्थितम् स्थातव्यं । भोजक पुरुष : प्रमाणं द्वादश वर्षायोत्पर: । तथा गोष्ठिकैः श्री सच्चिका देवि कोष्ठागारात् मुग मा ।०।। घृत वर्ष १ भोजकेभ्यो दिने प्रति दातव्य:"
मा = मान = दो अंजली । कर्प = २५० ग्रेन ।

सांडेराव (देसूरी के निकट) के पार्श्वनाथ के मन्दिर का लेख[६२] (११७९ ई०)

इस लेख में जाल्हणदेवी ने, जो कल्हणदेव की रानी थी, अपना घर पार्श्वनाथ को भेंट किया । इस मकान में रहने का भा ४ एला प्रति वर्ष देने का इसमें उल्लेख

---

६१. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८०४, पृ० १९८ ।
६२. नाहर, जैन लेख, भा० १, पृ० २२९ ।

है। इस लेख से उस समय की राज्य की सहिष्णुतापूर्ण नीति का बोध होता है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है :

"वि० सं० १२३६ कार्तिक वदि २ बुधे श्री कल्हणदेव कल्याण विजय राज्ये राज्ञी श्री जाल्हणदेवि पार्श्वनाथ परम श्रेयार्थ निज गृहं प्रदत्तः राल्हाश सत्क-मुनुपै वसद्भिः वर्षप्रति द्रा. एला ४ प्रदेया"

वोरेश्वर का लेख[६३] (११७६ ई०)

यह लेख डूंगरपुर जिले के सोलज गाँव से लगभग डेढ़ मील दूर माही नदी के तट पर वोरेश्वर महादेव के मन्दिर की दीवार पर लगा हुआ है जिसका समय वि० सं० १२३६ है। इस शिलालेख से इस समय तक सामन्तसिंह, जिससे मेवाड़ राज्य छूट गया था, जीवित था और उसका अधिकार ११७६ ई० के पूर्व वागड़ पर स्थापित हो गया था प्रमाणित होता है।

उंस्तरा की देवली का लेख[६४] (११८१ ई०)

जोधपुर जिले के उंस्तरा नामक कस्बे में एक वीर स्मारक वि० सं० १२३७ चैत्र वदि ६ (ई०स० ११८१ ता० ९ मार्च) का है जिससे प्रतीत होता है कि गोहिल-वंशीय राणा निहुणपाल के साथ उसकी राणियाँ सती हुईं।

ओसिया के महावीर का लेख[६५], (११८८ ई०)

इस लेख में यशोधरा भार्या द्वारा रथशाला के निमित्त अपना घर भेंट किया।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है :

"संवत् १२४५ फाल्गुन सुदि ५ अघेह श्री महावीर रथशाला निमित्त पाल्हिया धीयदेव चन्द्र वधू यशोधर भार्या सम्पूर्ण श्राविकया आत्म श्रेयार्थ आत्मीय स्वजन वर्गा समन्तेन स्वगृह दत्तं"

उंस्तरा के स्मारक का लेख[६६] (११९२ ई०)

जोधपुर जिले के उंस्तरा नामक कस्बे में एक वीर स्तम्भ पर वि० सं० १२४८ ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० ११९२ ता० ४ मई) का लेख है जिसमें गुहलोत्र (गहलोत) वंशी राणा मोटीस्वरा के साथ उसकी मोहिल राणी राजी के सती होने का उल्लेख है। मोहिल चौहानों की एक शाखा है, जिसका पहले नागौर और बीकानेर राज्य के कुछ भाग पर अधिकार था।

---

६३. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५।

६४. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ३०।

६५. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८०६ पृ० १९८।

६६. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ३०।

वड़ा दीवड़ा गाँव का लेख[९७] (११९६ ई०)

डूंगरपुर राज्य के वड़ा दीवड़ा नामक गाँव के शिव मन्दिर की मूर्ति के आसन पर वि सं० १२५३ का लेख इस आशय का है कि महाराज भीमदेव (दूसरे) के राज्य काल में डव्वराक (दीवड़ा) गाँव में श्री नित्यप्रभोदितदेव के मन्दिर में महंतम एल्हा के पुत्र वैजा ने मूर्ति स्थापित कराई। इससे यह ज्ञात होता है कि उक्त संवत् तक भीमदेव का वागड पर अधिकार था।

आबू के परमार राजा धारावर्षदेव के समय का लेख[९८] (१२०८ई.)

प्रस्तुत प्रशस्ति में १४ श्लोक हैं और अन्त के भाग की कुछ पंक्तियां गद्य में हैं। इसमें विकलराशि, ज्येष्टजराशि, योगेश्वर राशि, मौनिराशि, केदारराशि आदि मठाधीशों का वर्णन है। इसमें निर्वाण मार्ग, चण्डी यज्ञ तथा महेष की महिमा का वर्णन है जो उस समय की धार्मिक प्रवृत्तियाँ थीं। प्रशस्ति की रचना संवत् १२६५, वैशाख शु० १५ सोमवार को लक्ष्मीधर के द्वारा की गई थी और उसे सूत्रधार पाल्हण ने उत्कीर्ण किया था। इसमें परमार धारावर्ष को चन्द्रवती नाथ कहा गया है तथा पंचकुल की स्थिति का उल्लेख है। इसमें प्रह्लादन देव को कुमार गुरु तथा युवराज कहा गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति से शासन व्यवस्था में श्रीकरण, महामुद्रामात्य, पंचकुल तथा युवराज की प्राधान्यता का बोध होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि युवराज के लिए शास्त्र तथा कला का ज्ञान होना अच्छा समझा जाता था।

इसकी कुछ अन्त की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

"चौलुक्योद्धरण परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीमद्‌भीमदेव प्रवर्द्धमान विजयराज्ये श्रीकरणे महामुद्रामत्यमहंवा शूप्रभृति समस्तपंचकुलेपरिपंथयति चन्द्रावतीनाथ मांडलिकासुर शंभु श्रीधारावर्षदेवे एकातपत्रवाहकत्वेनभुवं पालयति पट्‌दर्शन अवलंबन स्तंभसकल कलाकोविद कुमारगुरु श्री प्रह्लादनदेवे यौवराज्ये सति इत्येवंकाले केदारराशि मिदं कीर्तनं सूत्रपाल्हण केन उत्कीर्णम्।"

जालोर का लेख[९९] (१२११ ई०)

यह लेख जालोर की मस्जिद में प्राप्त हुआ। संभवतः मन्दिरों की तोड़-फोड़ की सामग्री को आक्रमणकारियों द्वारा मस्जिद के निर्माण में लगाते समय इसका भी उपयोग उसी रूप में कर दिया गया हो। इस लेख में केवल ६ पंक्तियाँ हैं जो २'.८"×५½" दायरे में उत्कीर्ण हैं। इसमें संस्कृत गद्य तथा नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है।

इस लेख के द्वारा हमें अलग अलग समय—वि० १२२१, १२४२. १२५६, १२६८ में काञ्चनगिरि पर स्थित विहार और जैन मन्दिर के निर्माण का व्यौरा

---

९७. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५१।

९८. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

९९. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

मिलता है। जैसे चालुक्य राजा कुमारपाल द्वारा यहाँ एक विहार का निर्माण देवाचार्य की अध्यक्षता में १२२१ में हुआ। इसके पश्चात् १२४२ में चहमान वंशीय समरसिंह देव की आज्ञा से भण्डारी यशोवीर ने इसका पुनर्निमाण करवाया। १२५६ में यहाँ ध्वजोरोपण, तोरण आदि की प्रतिष्ठा हुई और फिर १२६८ में दीपोत्सव पर पूर्णदेव सूरी के शिष्य रामचन्द्राचार्य ने स्वर्णकलश की प्रतिष्ठा की। उस समय की धार्मिक सहिष्णु नीति पर इस लेख से प्रकाश पड़ता है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ यहां हम उद्धृत करते हैं :

पंक्ति १. "ॐ" संवत् १२२१ श्री जावालिपूरीय कांचन (गि) रि गढस्योपरि प्रभु श्री हेमसूरि प्रबोधित गुर्जर धराधीश्वर परमार्हत चौलक्य।"

पंक्ति ६. "चंद्राचार्य : सुवर्णमय कलसारोपण प्रतिष्ठा कृता ।। सु (शु) भं भवतु ।।"

एकलिंगजी में एक स्मारक-शिला[१००] (१२१३)

यह लेख एकलिंगजी के मन्दिर के चौक में नंदी के निकट वाली एक स्मारक शिला पर उत्कीर्ण है जिसमें जैत्रसिंह को महाराजाधिराज कहा है और उसका समय संवत् १२७० दिया हुआ है।

इस प्रकार उत्कीर्ण पंक्ति का भाग इस प्रकार है :

"संवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्री जैत्रसिंह देवेपु.........."

जगत् का लेख[१०१] (१२२१ ई.)

यह लेख सामन्तसिंह के वंशधर सीहडदेव का वि. सं. १२७७ का है। लेख से प्रमाणित होता है कि उन दिनों जगत् वागड़ राज्य के अन्तर्गत था। इस से तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मेवाड़ और वागड़ की सीमा निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिलती है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि उसका राणा विल्हण सांधिविग्रहिक था जिसने रणीजा गाँव देवी के मन्दिर को अर्पित किया था। इसका अक्षान्तर इस प्रकार है—

"संवत् १२७७ वरिषे (वर्षे) चैत्र सुदि १४ सोमदिने विशाप (खा) नक्षत्रे.... श्री अंबिकादेवी (व्यै) महाराऊ (रावल) श्री सीहडदेव राज्ये महासां (साधिविग्रहिक) वेल्हणकराण (राणकेन) रजणीजा ग्रामं.........."।

नादेसमां गाँव का लेख[१०२] (१२२२ ई)

यह शिलालेख मेवाड़ के नांदेसमा गाँव के चारभुजा के मन्दिर के निकट टूटे

१००. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१०१. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. ३८–३९,
ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. ५५।

१०२. भावनगर प्राचीन शोध संग्रह, पृ. ४७ टिप्पण;
भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ.६३ टिप्पण;
ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ. १६६,

हुए सूर्य के मन्दिर के एक स्तंभ पर उत्कीर्ण है। इसका समय वैशाख शुक्ला १३, संवत् १२७६ अंकित है। इसमें जैत्रसिंह की राजधानी नागद्रह (नागदा) दी गई है। इससे स्पष्ट है कि १२२२ ई. तक नागदा नगर का विध्वंस नहीं हुआ था। इससे एक और महत्त्वपूर्ण सूचना हमें यह मिलती है कि जैत्रसिंह का 'श्री' के चिह्न वाली मुख्य मुद्रा या मोहर लगाने वाला मन्त्री 'श्रीकरण' कहलाता था और उसका नाम डूंगरसिंह था। इसका समय संवत् १२८६, वैशाख सु. १२ शुक्रवार है। लेख की भाषा में संस्कृत गद्य प्रयुक्त की गई है।

"ॐ संवत् १२७६ वर्षे वैशाख सुदि १३ सु (शु) क्रे अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराज श्रीजयतसिंहदेवकल्याण विजयराज्ये तन्नि [युक्त] श्री श्रीकरणे महं [डुं]गरसीह प्रतिपत्तौ................"

लूणवसदी (आबू-देलवाड़ा) की प्रशस्ति[103] (१२३० ई०)

यह प्रशस्ति पोरवाड़ ज्ञातीय शाह वस्तुपाल तेजपाल द्वारा बनवाये हुए आबू के देलवाड़ा गाँव के लूणवसही के मंदिर की संवत् १२८७ फाल्गुन वदि ३ रविवार की है। इसकी भाषा संस्कृत है और इसे गद्य में लिखा गया है। इसमें आबू के परमार शासकों तथा वस्तुपाल तेजपाल के वंश का वर्णन है। इसमें उल्लिखित है कि सोमसिंह के समय में मंत्री वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल ने आबू पर देलवाड़ा गाँव में लूणवसही नामक नेमिनाथ का मंदिर अपनी स्त्री अनुपमादेवी के श्रेय के लिए बनवाया। उसकी पूजा आदि के लिए सोमसिंह ने वारठ परगने का डवाणी गाँव उक्त मन्दिर को भेंट किया। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा विजयसेन सूरि ने की। प्रस्तुत प्रशस्ति में कई गोष्ठिकाओं का वर्णन है जो वर्ष में विभिन्न अवसरों पर होने वाले मन्दिर के उत्सवों का प्रबन्ध करती थीं। गोष्ठिकाओं के सदस्यों की नामावलियां उस समय के कई श्रेष्ठि परिवारों का परिचय देती हैं जो सामाजिक इतिहास के लिए उपयोगी हैं। इसमें तपोधन गूगुली ब्राह्मणों का वर्णन एक विशेष ब्राह्मण जाति का द्योतक है। इसमें दिये गये कई गाँवों के नाम उपयोगी हैं जिनका या तो अब नाम बदल गया है या जिनका महत्त्व अब घट गया है या बढ़ गया है। ऐसे गाँवों में सरउली, कासहृद, हएडाउद्रा, मडाहटवा, साहिलवाड़ा, देउलवाड़ा, महुवा, आबुधा, उरासा, ऊतरछ, सिहर, साल, हेठउजी, आरवी आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसमें १२ गाँवों के समूह को धान्धलेश्वरदेवी की कोटड़ी कहा गया है। सम्भवतः कोटा और जयपुर राज्य में कोटड़ी में सामन्तों के गाँवों का विभाजन इसी प्रथा से सम्बन्धित दिखाई देता है।

इसके मध्य के भाग का कुछ अंश इस प्रकार है :

" तथा मडाहडवास्तव्य प्राग्वाट ज्ञातीय श्रे. देसल उ. ब्रह्मसर तथा ज्ञा. जसकर उ. श्रे. धणिया तथा ज्ञा श्रे. देल्हण उ. अल्हा तथा ज्ञा. श्रे. वाल्न उ.

---

१०३. वीर विनोद, भा० २, प्र. ११, शेष संग्रह १३।

पद्मसिंह प्रभृति गोष्टिका ६ नवमि दिने श्री नेमिनाथ देवस्य सप्रभाष्टाहिका महोत्सवः कार्यः।"

नेमिनाथ (आबू) के मंदिर की प्रशस्ति[१०४] (१२३० ई०)

यह प्रशस्ति वि० सं० १२८७ श्रावण वदि ३ रविवार की है जिसमें ७४ श्लोक हैं। इसको तेजपाल के द्वारा बनवाये गये आबू पर देलवाड़ा गाँव के नेमिनाथ के मंदिर में लगाई गई थी। इसमें आबू, मारवाड़, सिंध, मालवा तथा गुजरात के कुछ भागों पर शासन करने वाले परमारों के तथा वस्तुपाल और तेजपाल के वंशों का वर्णन दिया है। उक्त प्रशस्ति में उल्लिखित है कि यशोधवल ने कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को मारा। यशोधवल के दो पुत्र धारावर्ष और प्रह्लादनदेव थे। धारावर्ष, आबू के परमारों में, बड़ा प्रसिद्ध और पराक्रमी शासक था। गुजरात के राजा कुमारपाल ने जब कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन पर दो बार चढ़ाइयां कीं और उसे मारा उस समय धारावर्ष कुमारपाल के साथ गया था। इन युद्धों में उसने अपनी अद्भुत वीरता दिखाई थी। धारावर्ष का छोटा भाई प्रह्लादनदेव वीर एवं विद्वान् था। उसकी वीरता और विद्वत्ता का वर्णन प्रस्तुत प्रशस्ति में मिलता है। जब मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामंतसिंह और गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल के बीच युद्ध हुआ था और जिसमें अजयपाल घायल हुआ था, प्रह्लादन ने बड़ी वीरता से लड़कर गुजरात की रक्षा की थी। धारावर्ष का पुत्र सोमसिंह था, जिसने अपने पिता से तथा चाचा प्रह्लादन से शस्त्र-विद्या सीखी थी। उसके समय में मंत्री वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल ने आबू पर देलवाड़ा गाँव में लूणवसही नामक नेमिनाथ का मंदिर करोड़ों रुपये लगाकर अपने पुत्र लूणसिंह तथा अपनी स्त्री अनुपमादेवी के श्रेय के लिए बनवाया था। यह मन्दिर अपनी सुन्दरता में अनुपम है।

इससे वस्तुपाल तथा तेजपाल की व्यापार कुशलता कूटनीति, प्रबन्ध योग्यता, दानशीलता आदि का परिचय मिलता है। इनके सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि इन दोनों भाइयों ने अपने प्रभाव-क्षेत्र के गाँव-गाँव में बावड़ियां, कुँए, तालाब, मन्दिर, धर्मशालाएँ, सत्र आदि का निर्माण करवाया या उनका जीर्णोद्धार करवाया। यह प्रशस्ति उस समय के जनसमुदाय की विद्यानिष्ठा, दानपरायणता तथा धार्मिक भावना की अच्छी परिचायिका है। इस प्रशस्ति की रचना सोमेश्वरदेव ने की और उसे सूत्रधार चण्डेश्वर ने खोदा। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा विजयसेन सूरि द्वारा सम्पादित की गई थी।

इसके कुछ श्लोकों के अंश इस प्रकार हैं :

---

१०४. ए. इ. जि. ८, २१०-२२२;
वीर विनोद, द्वि० भा० प्रकरण ११, शेष संग्रह संख्या ६, पृ० १२००-१२०५;
ओझा, राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० १९७-२००।

"य श्चौलुक्यकुमारपाल पनतिप्रत्यर्थिताभागतं ।
मत्वा सत्वरमेष मालवपति बल्लालमालब्धवान् ।।३५।।"
"तेन भ्रातृयुगेन या प्रतिपुर ग्रामाध्वशैलस्थलं ।
वापीकूपनिपान काननसरः प्रासाद सत्रादिका: ।।
धर्मस्थान परंवरा न व तराचक्रेथ जीर्णोद्धृता ।
तत्संख्यापिनवुध्यते यदि परं तद्वेदिनी मेदिनी ।।६६।।"

वैजवा माता का लेख[105] (१२३४ ई०)

भैंकरोड़ गाँव के पास वैजवा (विंध्यवासिनी) माता के मंदिर का एक लेख वि. सं. १२९१ का है । इसका आशय यह है कि वागड़ के वटपद्रक (वड़ौदा) के महाराजाधिराज श्री सीहडदेव का महा-प्रधान वीहड़ था । उस समय उक्त देवी के भोपा मेल्हण के पुत्र वैजाक ने उस मन्दिर का पुनरुद्धार करवाया । इसमें प्रयुक्त महाप्रधान तथा भोपा शब्द का प्रयोग विशेष महत्त्व के हैं । इसका अक्षांतर इस प्रकार है :

"संवत् १२९१ वर्षे पौष शुदि ३ रवौ ।। वागड़ वटपद्र के महाराजाधिराज श्री सीहड़देव (वो) विजयोदयी । सर्व्वमुद्रा.......महाप्रधान.......वीहड़ । विंझलपुरे निवसितादेव्या: भोपा महिलण सुत.....वयजाकेन देव्याः प्रासादो.......नवकारापित:"

नगर का लेख[106] (१२३५ ई०)

यह लेख नगर (मारवाड़) के एक महादेव के मन्दिर के दोनों तरफ स्त्रीमूर्तियों की चरण चौकी पर है । इसमें ९८२ वि. में मन्दिर के अतिवृष्टि के कारण नष्ट हो जाने का उल्लेख है जो बड़े महत्त्व का है । पुनः इसमें वस्तुपाल द्वारा यहाँ नई मूर्ति का स्थापित होना वि. १२९२ में वर्णित है । लेख में संस्कृत भाषा में पाँच पंक्तियां उत्कीर्ण हैं । इसका कुछ अंश इस प्रकार है :

"संवत् १२९२ वर्षे आषाढ़ सुदि ७ रवौ नारद मुनि विनिवेशिते श्री नगर महास्थाने सं. ९८२ वर्षे अतिवर्षाकाल वशादतिपुराणतया च आकस्मिक श्री जयादित्य देवीयं महाप्रसाद विनष्टायां.......वस्तुपालेन स्वभार्या महं श्री स—पुण्यार्थ मिहै व श्री जयानित्य देवपत्न्या राजदेव्या मूर्तिरिमकारिता"

वटपद्रक का लेख[107] (१२३५ ई०)

यह लेख डूंगरपुर राज्य के वटपद्रक अर्थात् वड़ौदा से प्राप्त हुआ है जो सामंतसिंह के वंशधर सीहड़देव के समय का है । इसका समय वि. सं. १२९१ है । इससे ज्ञात होता है कि भीमदेव (भोला भीम) के समय में ही सामंतसिंह के वंशवरों ने वि. सं. १२७७ (१२२१ ई.) से पूर्व सोलंकियों का वागड़ से अधिकार समाप्त कर

---

१०५. ओझा, डू. रा. इ. पृ० ५६ ।
१०६. नाहर, जैन लेख भा० २, सं० १७१३, पृ० १६६ ।
१०७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ३९ ।

दिया था ।

जगत् का लेख[१०८] (१२४६ ई०)

मेवाड़ के जगत् नामक गाँव के अम्बिका के मन्दिर का है जो वि० सं १३०६ फाल्गुन सुदि ६ रविवार का है । यह लेख वागड़ शाखा के नरेशों के वंश-वृक्ष के लिए बड़े काम का है । इससे सामन्तसिंह के जयत्सिंह, सीहड़ तथा विजयसिंह—यह क्रम निर्धारित होता है । प्रस्तुत लेख में मेवाड़ी भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट है जिससे एतद्कालीन साहित्यिक गतिविधि पर कुछ प्रकाश पड़ता है ।

लेख इस प्रकार है :

"ॐ संवत् १३०६ वर्षे फागुण सुदि ३ रवि दिने रेवती नक्षत्रे मीनस्थिते चंद्रे देवी अंबिका सुवंन.डंड प्रतिठित । गुहिल वंसे रा० जयतसीह । पुत्र सीडह पौत्र विजयसंघ देवेन । कारापितं वद्रुक विजय सीहन"

खमणोर का शिलास्तंभ लेख[१०९] (१२५० ई०)

खमणोर ग्राम के अन्दर चारभुजा के मन्दिर के प्राङ्गण में एक शिलास्तंभ है जिसमें १६ पंक्तियों का एक लघुलेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है । इसका समय संवत् १३०७ वैशाख शुक्ला तृतीया है । इसमें अंकित है कि 'संतावलि' नामक ग्राम में महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का डेरा था । उस समय अपने माता व पिता के कल्याण हेतु खामणपुर की माण्डवीय से सोमेश्वरदेव की पूजा के लिए उसने १२८ द्रम्मों का दान दिया । पृथ्वीमल्ल व पृथ्वीपाल सीसोदवंशज पूर्णपाल का पुत्र था । इस लेख द्वारा महाराजकुमार पृथ्वीसिंह के शासन सम्बन्धी सूचना प्राप्त होती है और प्रतीत होता है कि खमणोर की मण्डपिका अर्थ व्यवस्था की एक इकाई थी जिससे महाराज श्री पृथ्वीसिंह ने अनुदान की व्यवस्था की थी ।

यह लेख इस प्रकार है :

"ॐ संवत् १३०७ वर्षे संतावलि (या) मावासित श्री कटके महाराजकुमार श्री प्रिथिम्वसीह देवेन पिता मात्रा: श्रेयार्थ वैशाख सुदि ३ अक्षयतृतीया पर्वे देव श्री सोमेश्वर पूजा नैवेद्य (स्या) र्थे खामणपुर माण्डव्यां आ····यार्थे द्र १२८ दत्तं"

झाडोल गांव के शिव मन्दिर का लेख[११०] (१२५१ ई०)

उदयपुर जिले की जयसमुद्र झील के निकट झाडोल गाँव के विजयनाथ के शिवमंदिर में संवत् १३०८ कार्तिक शुक्ला १५ सोमवार का एक लेख संस्कृत में है जिससे दो महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती है—एक तो यह गाँव 'वागडमंडल' के अन्तर्गत था और उस मंडल में जयसिंघदेव का राज्य था ।

---

१०८. मरु-भारती, अप्रैल, १९५७ पृ० ५७ ।

१०९. शोधपत्रिका, आषाढ सं० २०१३, पृ० ५०–५२ ।

११०. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० २ ।

हुडेरा जोगियान (चूरू) का सती-स्मारक लेख[१११] (१२५२ ई०)

चूरू जिले में रतनगढ़ रेलवे जंक्शन के निकट हुडेरा जोगियान का वास है। यहां एक प्राचीन मठ में सं० १३०९ का सती स्मारक रखा हुआ है जो रठौड़ों के इतिहास के लिए बड़े महत्त्व का है। यह स्मारक लगभग डेढ़ फुट लम्बा और पौन फुट चौड़ा है। इस पर हाथ में खाँडा लिए एक घुड़सवार उत्कीर्ण है और उसके आगे एक सती हाथ जोड़े खड़ी है। इसके नीचे एक लेख है जिसका आशय यह है कि सं. १३०९ वैशाख सुदि १ को राठौड़ नरहरिदास की स्त्री पोहड़ (भाटी राजपूतों की एक शाखा) किसना यहाँ सती हुई। इसकी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ यह हैं कि राठौड़ इस क्षेत्र तक पहुँच चुके थे, उनका वैवाहिक सम्बन्ध भाटियों से होने लग गया था और उनमें सती प्रथा का भी प्रचलन था। सबसे बड़ी बात इस सम्बन्ध में यह है कि रावसीहा (राठौड़ शाखा का प्रमुख प्रवर्तक) की देवली (सं. १३३०) से भी यह प्राचीन पड़ती है यदि इस में पढ़ा गया संवत् (१३०९) सही है।

लेख का मूलपाठ इस प्रकार है :

'सवत् १३०९ मत व—
साप सूद १ रठड नर—
हरदस र सत पहड़
कसन ईभ सत चड"

सुन्डा पर्वत का शिलालेख[११२] (१२६२ ई०)

यह लेख दो शिलाखण्डों मे सुन्डा (सुगंधाद्रि) पर्वत में, जो जोधपुर के जसवन्तपुरा गाँव से दस मील की दूरी पर है, मिला। इसकी पहली शिला में २६ पंक्तियां और दूसरे में २४ पंक्तियाँ हैं तथा दोनों का क्रमशः आकार ३'.३"×१'.७½" और २'.१०"×१'×५" है। सम्पूर्ण लेख ५९ श्लोकों में है और कुछ पंक्तियाँ पद्य में है। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत और लिपि देवनागरी है। प्रशस्तिकार जैन साधु जयमंगलाचार्य, लेखक विजयपाल का पुत्र और उत्कीर्णक सूत्रधार जेसा है। प्रशस्ति का समय वैशाख मास वि. सं. १३१९ (१२६२ ई.) अंकित है।

इस प्रशस्ति में प्रशस्तिकार के नाम के साथ या लेखक और उत्कीर्णक के नामों के साथ उनके गुरुओं तथा पिताओं के नाम देकर इस ओर संकेत किया है कि उस युग तथा पीछे के युग में साहित्य सृजन और हस्तकौशल की परम्परा गुरु और शिष्य तथा पिता-पुत्र के क्रम में चली आती थी। वैसे तो यह शिलालेख चाचिगदेव चौहान के सम्बन्ध में है परन्तु इसमें इसके साथ इसके पूर्वजों और पड़ोसी शासकों की नामावली देकर इसे अधिक उपयोगी बना दिया है। इन नामों के सन्दर्भ में हमें नाडोल के शासक लक्ष्मण तथा उसके पुत्र शोभित को अर्बुद स्वामी के रूप में जानते

१११. मरु भारती, १९६९ (चूरू जिले का एक महत्त्वपूर्ण स्मारक लेख)
११२. ए. ई., जि. ९, पृ० ७०–७४।

हैं। इसी तरह से कुछ संकेत परमारों के सम्बन्ध में मिलते हैं जो सामन्तों के रूप में दिखाई देते हैं। यहां पृथ्वीपाल का भी वर्णन आता है जिसने गुर्जर देश की सेना को परास्त किया था। इसमें योजक, असराज तथा सिद्धराज के सन्दर्भ भी आते हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। इसमें अल्हरणदेव का वर्णन बड़ा रोचक है जिसने गुर्जर राजा को अपनी सहायता देकर शांति स्थापित की थी। उसके द्वारा नाडौल में शिवालय का निर्माण करवाया गया था। इसी तरह केल्हरण ने भी सुवर्ण तोरण बनाकर ख्याति प्राप्त की। समरसिंह ने जालोर में गढ़ का निर्माण करवाया और समरपुर की स्थापना की। उदयसिंह के राज्य के सम्बन्ध में इस लेख के द्वारा हमें उसके राज्यविस्तार की सूचना मिलती है। उसके राज्य के अन्तर्गत जावालीपुर, मांडव्यपुर, वाग्भट्टमेरु, सूराचण्ड, खेड, रामसैन्य, श्रीमाल, रतनपुर, सत्यपुर आदि थे। उदयसिंह की पत्नी प्रह्लादन देवी ने चाचिगदेव को जन्म दिया जिसने तुरुष्कों को परास्त किया और सिंधु के शासकों की इतिश्री की। इसने श्रीमाल (भीनमाल) में कई करों को लेना बन्द किया। उसने रामसैन्य नगर में विग्रहादित्य देव की पूजा के लिए धनराशि स्थापित की और अपराजितेश के मन्दिर के लिए सुवर्ण कलश और ध्वजा बनवाये। उसने इस मन्दिर का सभामण्डप बनवाया और मन्दिर के लिए रथ और मेखला अर्पित किए। वह चामुण्डा का उपासक था फिर भी अनेक धर्मों के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखता था।

यह लेख उस समय की कई राजनीतिक समस्याओं पर, जो अनेक छोटे राज्यों के बनने से उत्पन्न हो गई थी, प्रकाश डालता है और उनकी कूटनीति तथा राजनीतिक सम्बन्धों को समझने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। धार्मिक भावनाओं और जनजीवन में उसके प्रभाव को आंकने के लिए भी इसका एक स्वतन्त्र महत्त्व है। उस समय के पर्वतों तथा नगरों की स्थिति समझने तथा उनके नामों का वैविध्य जानने का यह लेख एक उपयोगी साधन है।

जालोर में महावीर के मन्दिर का लेख[११३] (१२६३ ई०)

इस लेख में द्रम, द्रम दशक आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जो उस समय की मुद्रा का द्योतक है। यहाँ गोष्ठिक शब्द का प्रयोग भी उस समय की एक संस्था पर प्रकाश डालता है जो मन्दिर की सभी व्यवस्था देखती थी। इसमें स्थानीय व्यक्ति सदस्य के रूप में होते थे।

उक्त लेख का मूल पाठ इस प्रकार है :

> "संवत् १३२० वर्षे माघसुदि सोमे लक्ष्मीधरेण देव श्री महावीरस्य अष्टाहिका पट्टे द्रम्माणां १०० शतमेकं प्रदत्तं तद्व्याज मध्यात् मठपतिना गोष्ठिकैश्च द्रम्म १० दशकं वंचनीयं, पूजा विधाने देव श्री महावीरस्य"

---

११३. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं० ९०१, पृ० २३८।

घाघसा का शिलालेख[११४] (१२६५ ई०)

घाघसा गाँव चित्तौड़ के निकट है। इस गाँव में एक बावड़ी है, जिसमें वि० सं० १३२२ कार्तिक शुक्ला १ रविवार का महारावल तेजसिंह के समय का लेख लगा हुआ था, जिसे डा० ओझा ने वहाँ से हटाकर उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित किया है। इसमें २८ पंक्तियाँ और ३३ श्लोक हैं। प्रशस्तिकार चैत्रगच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि थे जिन्होंने चीरवे की प्रशस्ति की भी रचना की थी। कलिसिंह नामी व्यक्ति इसका शिल्पि था।

प्रस्तुत प्रशस्ति में मंगलाचरण के पश्चात् मेवाड़ के शासक पद्मसिंह, जैत्रसिंह और समरसिंह का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जैत्रसिंह की उपलब्धियों में उसके द्वारा मालवा तथा गुजरात के तुरुष्कों और शाकंभरी के शासकों के परास्त करने का वर्णन है। तेजसिंह के वर्णन के उपरान्त रचयिता ने डीडू वंश के महाजन जातीय गाल्हू, माल्हू, केशव, बलभद्र, रत्न सोढल आदि का उल्लेख किया है। इसी वंश के रत्न ने उक्त बावड़ी का निर्माण करवाया और चित्तौड़ के कुम्भेश्वर मन्दिर में शिवलिंग की स्थापना की। यह मन्दिर इस नाम से अब प्रसिद्ध नहीं है। सम्भवतः मध्यकालीन आक्रमणों के दौरान वह नष्ट हो चुका हो।

जालोर में महावीर के मन्दिर का लेख[११५] (१२६६ ई०)

इस लेख में भी मठपति गोष्ठिक के समक्ष महावीर जी के निमित्त अनुदान दिया गया है। महावीर के मन्दिर के एक विभाग को भांडागार या भंडार कहते थे। इसमें द्रमों के ब्याज से मासिक पूजा की व्यवस्था का भी उल्लेख है। 'द्रमशतार्द्ध' एवं 'द्रम' तथा 'द्रमार्ध' को मुद्रा की विभिन्न इकाइयों के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसमें द्रोण एवं माणक तोल के लिए प्रयुक्त किये गये हैं।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १३२३ वर्षे माघ सुदि ५ बुधे महाराज चाचिग देव कल्याण विजय राज्ये घमेश्मर सूरौ जिन युगल पूजा निमित्तं मठपति गोष्ठिक समक्षं श्री महावीर देव भांडागारे द्रमाणां शतार्द्धं प्रदत्तं। तद् व्याजो द्रमवेन द्रम्मार्द्धेन नेचकं मासं प्रति करणीयं आदानादे तस्माद्भाग द्वयं महेतः कृतं गुरुणा। शेप तृतीय भागो विधाधन मात्मनों विहित। गोधूभ मुद्‌ग यव लवण रालक देस्तु मेय जातस्य। द्रोणय प्रति माणकमेव यत्र सर्वेण दातव्यम्।

चित्तौड़ का लेख[११६] (१२६६ई०)

यह लेख चित्तौड़ से प्राप्त हुआ है जो तेजसिंह के समय का है। इसमें वि०

---

११४. ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० २७०;
वरदा वर्ष ५, अंक ३।

११५. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं० ९०३, पृ० २३८।

११६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

सं० १३२३ ज्येष्ठ शुक्ला ३० तिथि अंकित है। इस लेख में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसके द्वारा हमें तेजसिंह के महामात्य समुद्धर की सूचना मिलती है। अन्य साधनों से प्रमाणित है कि वि० सं० १३०६ में मेवाड़ में तल्हण मुख्य आमात्य था और वि० सं० १३१६ में रामेश्वर मन्त्री के पद पर काम कर रहा था। यह लेख मेवाड़ के मन्त्री और आमात्यों की परम्परा जानने में एक कड़ी है।

गंभीरी नदी के पुल का लेख[११७] (१२६७ ई०)

चित्तौड़ के निकट वाली गंभीरी नदी का पुल ऐसा मालूम होता है कि, चित्तौड के आस-पास के कई भवनों और मन्दिरों के अवशेषों से, जो तुर्की आक्रमण के कारण नष्ट हो गये थे, खिज्र खां ने बनवाया था। इसी अवशेष के अन्तर्गत एक शिलालेख का टुकड़ा गंभीरी नदी के पुल के नवें कोठे में लगा हुआ है। लेख का जो भाग बच गया है उससे हमें यह सूचना मिलती है कि चैत्रगच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से श्री तेजसिंह के प्रधान—राजपुत्र कांगा के पुत्र ने किसी भवन विशेष का निर्माण करवाया। यह लेख कुछ बातों के लिए महत्त्वपूर्ण है। एक तो तेजसिंह के प्रधान कांगा के पुत्र की हमें जानकारी होती है जो राजपूत था और दूसरा उस समय सहिष्णुतापूर्ण धर्म सम्बन्धी नीति थी जिससे जैनाचार्य का प्रभाव राजपूत जाति के प्रधान पर था।

इसका कुछ अंश इस प्रकार है:

"रत्नप्रभसूरिणामादेशात् राजभगवन्नारायणमहाराज श्री तेजसिंह देवकल्याण विजयि राजा विजयमान प्रधानराज राजपुत्र कांगा पुत्र"

भीनमाल का लेख[११८] (१२७१ ई०)

यह लेख मंगलवार, आश्विन कृष्णा १, वि० सं० १३२८ (१२७१ ई०) का भीनमाल के आहुडेश्वर मंदिर में लगा हुआ था। इसकी छाप सरदार संग्रहालय, जोधपुर में उपलब्ध है। इसमें संस्कृत गद्य में ८ पंक्तियां हैं जिसमें वर्णित है कि महाराजकुमार चाचिगदेव ने अपने श्रेय के लिए आहुडेश्वर के भोग, पूजा नैवेद्य के लिए कुछ अनुदान दिया। अनुदान के सम्बन्धी पंक्ति ६, ७ व ८ के कई अक्षर नष्ट हो गये हैं जिससे क्या अनुदान था और उसको किस रूप से दिया गया था यह कहना कठिन है। इस लेख में एक महत्वपूर्ण उल्लेख पंचकुल के सम्बन्ध में है जिसमें महाराजा के द्वारा नियुक्त गजसीह आदि इस पंचकुल के सदस्य थे जिनकी समक्षता ऐसे अवसरों में होना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में ही, अनुमानित होता है कि, ऐसे अनुदानों का वैध

---

११७. बंगा० ए० सो० ज०, जि०, ५५, भाग १, पृ० ४६–४७।
ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० ३७०।

११८. ए० रि० सरदार म्यूजियम तथा सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर, ३० सितम्बर १९२२, पृ० ५;
ज० बिहार रि० सो०, जि० ३९, भा० ४, १९५४।

होना माना जाता था। इस उल्लेख से राजकीय कार्यों में जनसमुदाय का सहयोग अपेक्षित होना दीख पड़ता है।

इस लेख का गद्यांश इस प्रकार है—

१. संवत् १३२८ वर्षे आश्विण (न) वदि १ भीमे अद्येह
२. श्रीमाले महाराजकुल श्रीचाचिगदेव कल्याण वि-
३. जयराज्ये तन्नियुक्तमहं गजसीह प्रभृति पंचकुलप्र-
४. तिपत्तौ शासनाक्षराणि प्रयच्छति यथा महाराज कु-
५. ल श्री चाचिगदेव आत्मश्रेयसे आहुडेश्वर
६. ....अंगभोगपूजानैवेद्यार्थं श्री..............
७. ....यां शासने दिनं दिनं प्रति प्रदत्त........
८. ....दिनं आचंद्रार्क........................

चीरवे का शिलालेख[११९] (१२७३ ई०)

इस लेख का प्रथम सम्पादन वियाना ओर्यन्टल जर्नल में और फिर इन्डियन एन्टिक्वेरी में हो चुका है। यह शिलालेख चीरवा गांव के, उदयपुर से ८ मील उत्तर में, एक नये मन्दिर के बाहरी द्वार पर लगा हुआ है। इसमें ३६ पंक्तियां नागरी लिपि में १'.९ × १'.८" दायरे में उत्कीर्ण हैं, जिसमें ५१ श्लोक हैं। इसकी अंतिम पंक्ति में गद्य में संवत् दिया है जो वि. सं. १३३० कार्तिक सुदि १ है। लेख वागेश्वर और वागेश्वरी की आराधना से आरंभ होता है और फिर इसमें गुहिलवंशीय बापा के वंशधर पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह की उपलब्धियों का वर्णन है। जैत्रसिंह के सम्बन्ध में लेखक लिखता है कि वह इतना पराक्रमी था कि वह शत्रु राजाओं के लिए प्रलय मारूत के सदृश था और मालवा, गुजरात, मारवाड़, जांगलदेश तथा सुल्तान उसके मानमर्दन में असफल रहे। लेखक तेजसिंह और समरसिंह की वीरता की भी इसमें प्रशंसा करता है। इस वर्णन से सिद्ध है कि मेवाड़ का इन शासकों के काल में काफी राज्यविस्तार हो चुका था और उसके पड़ोसी शत्रु भी अच्छी तरह से दबाये गये थे।

इस लेख में इन शासकों के द्वारा नागदा या चित्तौड़ में नियुक्त किये गये तलारक्षों का वर्णन मिलता है जो टांटेड जाति के थे और जिनके पास ये पद वंश परंपरा से चला आता था। इसी वंश के योगराज नामी व्यक्ति ने गुहिलवंशी राजा पद्मसिंह की सेवामें रहकर बड़ी आय वाला चीरवा गाँव प्राप्त किया। वहां उसने योगेश्वर शिव और योगेश्वरीदेवी के मन्दिर का निर्माण कराया। उसके पिता उद्धरण ने भी एक उद्धरणस्वामी (विष्णु) के मन्दिर की स्थापना करवाई। योगराज के पुत्र क्षेम के पुत्र मदन ने तलारता के काम के पापों के निवारणार्थ योगराज के द्वारा

---

११९. वियाना ओरियन्टल जर्नल, जि. २१, पृ १५५–१६२; ए. इं., जि. २७, पृ. २८५–९२;
ओझा, उ. राज्य. इ., जि. १, पृ. १७३–१७५।

बनवाये गये शिव और देवी के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और शिव तथा देवी के नैवेद्यार्थ कालेला सरोवर के पीछे की गोचर भूमि में से दो खेत भेंट किये। इस वर्णन में तलारक्षों के कार्यों पर प्रकाश पड़ता है जो नगर के अच्छे व्यक्तियों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देते थे। उनका कार्य मध्यकालीन कोटवालों के समकक्ष था। ये लोग सैनिक सेवाएं भी करते थे। तलारक्ष योगराज का ज्येष्ठ पुत्र पमराज नागदा नगर नष्ट होने के समय भूताला के युद्ध में काम आया। इसी तरह योगराज के चौथे पुत्र क्षेम का जो चित्तौड़ का तलारक्ष था, पुत्र मदन अर्थूणा में परमारों से वीरता-पूर्वक से लड़ा। इसी वंश के महेन्द्र का पुत्र बालाक कोटड़ा लेने में त्रिभुन के साथ लड़ी गई लड़ाई में काम आया और उसकी स्त्री भोली उसके साथ सती हुई।

ये लेख चीरवा गाँव की स्थिति तथा बसी हुई दशा पर भी अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय पर्वतीय भागों के गाँव कैसे बसते थे, वे किस प्रकार वृक्षावलियों और घाटियों से घिरे रहते थे तथा उनमें तालाबों और खेतों की क्या स्थिति रहती थी और उनमें मन्दिर किस प्रकार गाँव के जीवन के अंग होते थे आदि विषयों का इसके द्वारा अच्छा बोध होता है। इसमें दिये गये तलाई और गोचर भूमि तथा खेतों से उस समय की आर्थिक दशा का पता चलता है। इसमें मेवाड़ के निकटवर्ती भागों का, जो मालवा, गुजरात्रा, मरू तथा जांगल देश थे, राजनीतिक वर्णन मिलता है।

उक्त लेख में एकलिंगजी के अधिष्ठाता पाशुपत योगियों के अग्रणी शिवराशि का भी वर्णन मिलता है, जिससे उस मन्दिर की व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। लेख में यत्र-तत्र उस समय की धार्मिक स्थिति की भी हमें सूचना मिलती है। इसी के साथ कुछ चैत्रगच्छ के आचार्यों का भी वर्णन मिलता है जो उस समय के शिक्षा स्तर पर अच्छा प्रकाश डालता है। ऐसे आचार्यों में भद्रेश्वरसूरि, देवभद्रसूरि, सिद्धसेनसूरि, जिनेश्वरसूरि, विजयसिंहसूरि और भुवनसिंहसूरि प्रमुख हैं। ये अपने धर्म तथा विद्या के क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ आचार्य थे। भुवनसिंहसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने चित्तौड़ में रहते हुए चीरवा शिलालेख की रचना की और उनके मुख्य शिष्य पार्श्वचन्द्र ने, जो बड़े विद्वान् थे, उसको सुन्दर लिपि में लिखा। पद्मसिंह के पुत्र केलिसिंह ने उसे खोदा और शिल्पी देल्हण ने उसे दीवार में लगाने आदि कार्य का सम्पादन किया।

इस लेख का, १३वीं सदी की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति के अध्ययन में बड़ा उपयोग है।

इसकी कुछ पंक्तियों के भाग इस प्रकार हैं—

पंक्ति ९–१० "श्रीपद्मसिंह भूपालयोगराजस्त लारतां।
नागहृदपुरे प्रापपौर प्रीति प्रदायकः ॥१२॥"

पंक्ति १५ "क्षेमस्तु निर्म्मित क्षमाश्चित्रकूटे तलारतां।
राज्ञः श्री जैत्रसिंहस्य प्रमादादापदुत्तमात् ॥२२॥"

पंक्ति ३१ "वयराकः पाताको मुंडो भुवणोय तेज-सामंतो।
अरियापुत्रमदन-स्निग्दमनिघंः-पालनीयमिदमखिलं ॥४१॥"

बीठू का लेख [१२०] (१२७३ ई०)

पाली से चौदह मील उत्तर पश्चिम में बीठू गांव के पास वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० सं० १२७३ ता० ६ अक्तूबर) सोमवार का लेख प्राप्त हुआ। इससे प्रमाणित है कि सीहा सेतकुंवर का पुत्र था और वह उक्त तिथि को देवलोक सिधारा। उसके स्मारक रूप उस स्थान पर उसकी स्त्री पार्वती ने देवली स्थापित की। इस लेख से सीहा की मृत्यु तिथि निश्चित होती है तथा मारवाड़ के राठौड़ों के आदि पुरुष सीहा के चरित्र पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। इसकी पंक्तियां इस प्रकार हैं।

श्री "सांवछ १३३० कार्तिक वदि १२ सोमवारे रठडा श्री सेलकुवर सुनु सीहो देवलोक गतः सो [लं] क पारवतिः तस्यार्थे देवली स्थापिना [ता] कराविव सुभं भवतुः"

रसिया की छत्री का लेख [१२१] (१२७४ ई०)

यह शिलालेख रसिया की छत्री के दोनों ओर ताकों में लगा हुआ था। अब एक ही ताक में केवल एक शिला बची है और दूसरी ताकवाली शिला अप्राप्य है। सम्भवतः चित्तौड़ के किसी हमले के समय एक शिला नष्ट हो गई हो। उदयपुर संग्रहालय में एक शिलाखंड ऐसा अनुमानित किया जाता है कि अप्राप्य लेख का यह बचा हुआ भाग हो। जो शिलालेख का भाग रसिया की छत्री की एक ताक में लगा हुआ है उसमें कई स्थानों में दरारें पड़ गई हैं और अक्षरों के कई अंश नष्ट हो गये हैं। लेख का उपलब्ध अंश ६१ श्लोकों में है, अलवत्ता अन्तिम भाग गद्य में है। ये लेख वि० सं० १३३१ आषाढ़ शुक्ला ३ का है जिसकी रचना प्रियपटु के पुत्र नागर जाति के ब्राह्मण वेद शर्मा ने की थी, जो चित्तौड़ का निवासी था। इसको सूत्रधार सज्जन ने उत्कीर्ण किया था।

प्रस्तुत लेख का प्रारंभ देवताओं की वन्दना तथा गुहिलवंश की प्रशंसा से होता है। आगे चलकर रचनाकार मेवाड़ का वर्णन बड़े रोचक ढंग से इस प्रकार करता है कि उसे अपने देश का स्वाभिमान हो। ये वर्णन इतिहास के विद्यार्थी के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। १३वीं शताब्दी की मेवाड़ की प्राकृतिक स्थिति, उपज, वृक्षावली तथा पक्षियों के सम्बन्ध में जानकारी के लिए इसका प्रभूत उपयोग है। इसमें दिये गये देलवाड़ा तथा नागदे का वर्णन उस समय की नगर योजना समझने में बड़ा काम का है। इस नगर के राजप्रासादों, घरों, वन, वृक्षों, भीलों आदि का वर्णन उस समय की समृद्धि पर अच्छा प्रकाश डालता है। प्रशस्तिकार यहां की स्त्रियों की सुन्दरता पर विशेष ध्यान आकर्षित करता है।

---

१२०. इंडियन ऐन्टिक्वेरी, जि० ४०, पृ० ३०१;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, पृ० ६।

१२१. भावनगर इंस्क्रि, भा ४, पृ० ७४–७७;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, नं० २८, पृ० ६।

१०वें श्लोक में बापा का वर्णन आता है जिसमें उसका हारीत द्वारा सुवर्ण कटक तथा राज्य प्राप्त करने का उल्लेख तथा बापा द्वारा यज्ञस्तंभ का स्थापित करना महत्त्वपूर्ण है। आगे चलकर प्रशस्तिकार ने गुहिल को बापा का पुत्र बतलाने की भारी भूल की है। इसमें गुहिल के बाद शील, कालभोज, मम्मट, सिंह, महायक, खुम्माण, अल्लट, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद, शुचिवर्मा और नरवर्मा नामक मेवाड़ के शासकों की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। मम्मट द्वारा मालवा के राजा को हराया जाना, शक्तिकुमार का अर्जुन और कर्ण होना, अम्बाप्रसाद का अगस्त की भाँति होना और उसका बृहस्पति तथा कामदेव का अवतार होना आदि विशेषताएं कई राजनीतिक घटनाओं को समझने में सहायक सिद्ध होती हैं। यहां से लेखक वंश वर्णन को दूसरी शिला में दिये जाने का उल्लेख करता है।

प्रस्तुत प्रशस्ति में रचयिता तुलनात्मक वर्णन द्वारा हमें कई विषयों की सूचना देता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं। लेखक राणियों के शृंगार उनके चंदन के उपटन के वर्णन के साथ तुलनात्मक रूप से शबरियों के बेल, पत्ते, गुंजा आदि आभूषणों की स्वाभाविकता के साथ हमें वनवासियों के जीवन से परिचित कराता है। इसमें दिये गये युद्ध के अवसरों के उल्लेख उस समय की प्रचलित दास प्रथा तथा अस्पृश्यता की ओर संकेत करते हैं। इससे युद्ध के अवसर के नैतिक आचरणों का भी हमें बोध होता है। वैदिक यज्ञों तथा विद्वानों की उपाधियों के प्रचलन की भी जानकारी इस लेख से होती है। मेवाड़ की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति के अध्ययन के लिए इस शिला का महत्त्वपूर्ण उपयोग है। इसमें दिये गये वृक्षों के नाम, खेर, पलाश, आम, चंपा, केसर, अंगूर आदि उस समय की वनस्पति के अध्ययन के लिए बड़े उपयोगी हैं।

इसके कुछ पद्यांश इस प्रकार हैं :

"यः कुंठितारिकरवाल कुठारधारस्तं ब्रूमहे गुहिलवंशमपार शाखं"

"पत्रैः पत्रावलीनां समजनि रचनाधातुभिः पादरागोधूलिभिः कंदराणां विपदमलयजालेपलक्ष्मीरुदारा। गुंजाभिर्हारवल्लीयदरिमृगदशाइत्यरण्येपिभूपा सौंदर्य-नैव नष्टं शबर सहचरी निर्विशेष गतानां।"

चित्तौड़ का लेख[१२२] (१२७७ ई०)

ये लेख चित्तौड़ में बणवीर के द्वारा बनवाई गई 'नवलख भंडार' वाली दीवार में लग रहे हैं। सम्भवतः अलाउद्दीन तथा बहादुरशाह के आक्रमण के समय वहाँ जो मन्दिर व भवन गिराये गये थे उनके अवशेषों का प्रयोग बणवीर ने उक्त दीवार को बनवाने में किया था। इस प्रकार के अनुमान की पुष्टि कई दीवार में लगे हुए मन्दिरों के विभिन्न भाग, मूर्ति खण्ड आदि करते हैं। इन लेखों में वर्णित है कि रत्नसिंह श्रावक द्वारा निर्मित शांतिनाथ के चैत्य में समधा के पुत्र महणसिंह की

---

१२२. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

भार्या साहिणी की पुत्री कुमारिला श्राविका ने पितामह पूना और मातामह ढाडा के श्रेयार्थ देव कुलिकाएं बनवाईं। वैसे तो ये सूचना राजनीतिक दृष्टि से इतनी महत्त्व की नहीं है, परन्तु उस युग के कौटुम्बिक जीवन के स्तर को समझने के लिए बड़ी उपयोगी है। कुमारिला श्राविका पितामह और मातामह के प्रति श्रद्धा के कारण धार्मिक कार्य का सम्पादन करती है और उनके श्रेय की कामना करती है। साथ ही अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों का उल्लेख भी अपने पुण्य कार्य के साथ करती है। इससे स्पष्ट है कि उस युग में कोई भी धार्मिक या सामाजिक कार्य बिना कुटुम्बियों की उपस्थिति या संस्मरण द्वारा नहीं सम्पादित होते थे। संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का यह एक उज्वल पक्ष माना जाना चाहिये जो इस शिलालेख से स्पष्ट है।

चित्तौड़ का शिलालेख[123] (१२७८ ई०)

प्रस्तुत लेख वि. सं. १३३५ वैशाख सुदि ५ गुरुवार का है, जो सम्भवतः श्याम पार्श्वनाथ के मन्दिर के द्वार के छबने का था जो मन्दिर के नष्ट हो जाने से चित्तौड़ के पुराने महलों के चौक में गड़ा हुआ प्राप्त हुआ। इसे यहाँ से उठाकर डॉ. ओझा ने उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया। लेख में ६ पंक्तियां हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह लेख बड़े महत्त्व का है। इससे हमें सूचना मिलती है कि भर्तृपुरीय गच्छ के जैनाचार्य के उपदेश के फलस्वरूप राजा तेजसिंह की राणी जयतल्लदेवी ने चित्तौड़ में एक श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया। इसमें यह भी उल्लेखित है कि इसी मन्दिर के पिछले भाग में उसी गच्छ के आचार्य प्रद्युम्नसूरि को महारावल समरसिंह ने मठ के लिए भूमिदान दिया। इसमें यह भी वर्णित है कि इस मन्दिर के लिए चित्तौड़ की तलहटी, आहाड़, खोहर और सज्जनपुर की मंडपिकाओं से कई एक द्रम, घी, तेल आदि वस्तुओं के मिलने की व्यवस्था की गई। यह लेख वि. सं १३३५ वैशाख शुक्ल पंचमी गुरुवार का है। इस लेख का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि इसमें राजपरिवार तथा राजा के द्वारा जैन मन्दिर के निर्माण और मठ तथा मन्दिर के लिए अनुदान देना उस समय कि सहिष्णुतापूर्ण नीति का फल था। अन्यथा उस समय राजपरिवार के व्यक्ति शैव मतावलम्बी होते थे। इसके अतिरिक्त इस लेख से उस समय की मंडपिकाओं का पता चलता है और यह प्रमाणित होता है कि जिनसे कुछ कर का भाग उस युग में धर्मार्थ उपयोग में लाया जाता था।

इसमें मंडपिकाओं से दान की व्यवस्था इस प्रकार है—

१. चित्तौड़ की मंडपिका से
   उधरा द्रम २४ (यह एक प्रकार की प्रचलित मुद्रा थी), ४ कर्ष घी और ६ कर्ष तेल (उत्तरायन के समय)
२. आघाट की मंडपिका से.........द्रम ३६
३. खोहर की मंडपिका से.........द्रम ३२

---

१२३. ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० १७५-१७६।

४. सज्जनपुर की मंडपिका से.......द्रम ३४

जो भूमिदान सम्बन्धी उल्लेख इस प्रशस्ति में मिलता है उस भूमि की सीमाएं भी इसमें अंकित कर दी गई हैं। इसमें पूर्व और दक्षिण में साढ़ल और सोमनाथ के मकान और पश्चिम में चतुर्विंशति जिनालय का पड़ौस अंकित किया गया है। आगे चलकर कुछ साक्षियों के नाम भी दर्ज किये गये हैं जिनमें श्री एकलिंग जी के मन्दिर के मठाधीश शिवराशि प्रमुख हैं। लेख की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चित्तौड़ के कई अन्य शिलालेखों में मेवाड़ के शासकों को ब्राह्मण संज्ञा दी गई है, परन्तु प्रस्तुत लेख में इन्हें क्षत्रिय कहा गया है। इसी तरह अन्य साक्षियों में गौड जाति के व्यास रत्न के पुत्र ज्योतिः तथा साढल, और ब्राह्मण देल्हण के पुत्र साढा उसके पुत्र द्वारभट्ट खीमट और उसके भाई भीमा आदि थे।

शिवराशि सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार है—

पंक्ति ८ 'एकलिंगशिव सेवनतत्पर श्री हारीत राशिवंश संभूत महेश्वरराशि-
तच्छिष्यशिवराशि"

वुरड़ा का रूपादेवी का शिलालेख[१२४] (१२८३ ई०)

यह शिलालेख वुद्धपद्र (वुटड़ा) गाँव की एक बावड़ी में लगा हुआ था जहाँ से उसे जोधपुर के दरबार हॉल में ले जाकर सुरक्षित किया गया था। प्रस्तुत लेख संस्कृत पद्यों में १९ पंक्तियों में है और १'.५"×१'×४३" आकार के प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। प्रारम्भ के श्लोक में कृष्ण की स्तुति की गई है और फिर समरसिंह, उदयसिंह तथा उसकी पुत्री रूपादेवी और उसके पति तेजसिंह का वर्णन किया गया है। १८वीं और १९वीं पंक्ति में वि. सं. १३४० सोमवार ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को रूपादेवी द्वारा बनवाई गई बावड़ी की प्रतिष्ठा का उल्लेख है। ये घटना महाराजकुल सामन्तसिंह देव के समय में तथा जयशाह आदि के 'पंचोपो' के समय में होना वर्णित है। वैसे तो इस लेख का कोई विशेष ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है सिवाय इसके कि इसमें कुछ आबू के निकटवर्ती प्रदेशों के सामन्तों का वंश-क्रम दिया हुआ है। परन्तु इस लेख की विशेषता यह है कि राजाओं की भाँति उस युग में सामन्त परिवार की स्त्रियाँ भी जनहित सम्पादन के लिए बावड़ियाँ बनवाती थीं और उसको एक सामाजिक तथा धार्मिक महत्त्व दिया जाता था। साथ ही इस लेख में जयशाह आदि व्यक्तियों का 'पंचप' होने का उल्लेख, जिन्हें की शासक नियुक्त करता था, बड़े महत्त्व का है। इसमें दिये हुए सामन्तों के नाम आबू से प्राप्त कई शिलाखण्डों से प्रतिपादित हो जाते हैं।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्ति १०-११. रूपादेवी स्वकुलतिलकाकारिणी पुत्रिकस्य लक्ष्मीदेव्या उदरसरसि-
प्रोल्लसद्राजहंसी"।

---

१२४. ए. इं जि. ४, पृ० ३१२-३१३।

पंक्ति १६. "तन्नियुक्त श्री जापादिपञ्चप प्रतिपत्तावेवं काले वर्तमाने देव्या श्री रूपादेव्या वापिकायाम् प्रतिष्ठिता"

अचलेश्वर लेख[१२५] (१२८५ ई०)

यह लेख अचलेश्वर (आबू) के मन्दिर के पास वाले मठ के एक चौपाल के दीवार में लगाया गया था। इसका आकार २'.११"×२'.११" तथा इसमें पंक्तियां ४७ हैं। इसमें प्रयुक्त की गई पद्यमई भाषा संस्कृत है। इसका समय वि. सं. १३४२ माघ शुक्ला १ दिया गया है। इसमें बापा से लेकर समरसिंह के काल की वंशावलि दी है। समरसिंह के सम्बन्ध में इसमें लिखा गया है कि उसने यहाँ सुवर्ण ध्वजाधारी मठ का निर्माण कराया और वह यहाँ रहने वाले भावशंकर महात्मा का शिष्य था। प्रस्तुत लेख में मेवाड़ का बड़ा रोचक वर्णन है। मेदपाट के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि बापा के द्वारा यहाँ दुर्जनों का संहार हुआ और उनकी चर्बी से यहाँ की भूमि गीली हो जाने से इसे मेदपाट कहा गया। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है परन्तु इससे हमें बापा का शौर्य और उसकी प्रारम्भिक विजय का बोध होता है। मेवाड़ की रम्य छटा के सम्बन्ध मे लेखक उसके सामने स्वर्ग को भी घटिया बतलाता है। नागदा नगर के सम्बन्ध में हारीत ऋषि का वर्णन आता है जिन्होने यहाँ घोर तपस्या की थी। इन्हीं की अनुकम्पा से बापा को राज्य प्राप्त और क्षत्रित्व की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार आबू को भी एक तपस्या का स्थान बताकर यहाँ के सौन्दर्य और वन की सम्पत्ति का वर्णन प्रशस्तिकार देता है जो बड़ा रोचक है। इस प्रशस्ति का रचयिता प्रियपटु का पुत्र वेद शर्मा नागर था। इसका लेखक शुभचन्द्र और उत्कीर्णकर्त्ता कर्मसिंह सूत्रधार था। इस प्रशस्ति का महत्त्व सन्तों के प्रसाद से राज्य प्राप्ति, बापा का शौर्य, मेवाड़ और आबू की भौगोलिक स्थिति तथा समृद्धि और उस समय की सम्पन्नता तथा विद्वत्ता आदि की जानकारी से बहुत बढ़ गया है। उस समय योग, आराधना आदि के प्रचलन पर भी यह प्रशस्ति प्रभूत प्रकाश डालती है। इससे चित्तौड़ निवासी वेद शर्मा नागर ब्राह्मण के पाण्डित्य का भी हमे परिज्ञान होता है। यह वही वेद शर्मा है जिसने प्रसिद्ध समाधीश्वर और चक्रस्वामी के मन्दिर समूह की प्रशस्ति बनाई थी। इससे स्पष्ट है कि १३वीं शताब्दी में चित्तौड़ विद्या के विकास का बड़ा भारी केन्द्र था। आबू के मठाधिपति भावाग्नि और उनके शिष्य भावशंकर की भक्ति और निष्ठा का भी इसमें अच्छा वर्णन है। शुभचन्द्र इसका लेखक था और सूत्रधार कर्मसिंह उसका खोदने वाला। इसमें ६२ श्लोक हैं।

इसके कुछ पद्यांश इस प्रकार हैं—

हारीतात्किल बप्पकोऽध्रिवलय व्याजेन लेभे महः
क्षात्रं धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात्

---

१२५. भावनगर इन्स., ५, पृ० ८३-८७;
गोपीनाथ शर्मा—बिब्लियोग्राफी, नं. ३०, पृ० ६।

एतेऽद्यापि महीभुजः क्षितितले तद्वंश संभूतयः
शोभंते सुतरामुपात्तवपुषः क्षात्राहि धर्मा इव ।।११।।"
"फल कुसुमसमृद्धिसर्वकालं वहंतः"
"लिखिता शुभचन्द्रेण प्रशस्तिरियमुज्वला
उत्कीर्णा कर्मसिंहेन सूत्रधारेण धीमता ।।६२।।"

रत्नपुर के जैन मन्दिर का लेख[126] (१२८६ ई०)

इस लेख में महणदेवी द्वारा द्रमों का दान एवं उनके व्याज से जैनोत्सव मनाने का उल्लेख है।
इसका कुछ भाग इस प्रकार है—

"सं. १३४३ वर्षे माह सुदि १० शनौ रत्नपुररे.......महणदेव्या आत्म श्रेयसे पार्श्वनाथ देव भाण्डागारे क्षिप्त विसलप्रिय द्रम्म १० तथा सं. १३४६ माह सुदि १२ पूर्णिमायां कल्याणिक पंचक निमित्तं क्षिप्त द्र. १० उभयं द्रः ३० अभीषां द्रम्माणां व्याजे शतं मासं प्रति द्र. १० विंशति द्रम्मा पूम्वाणां व्याजेन नवकं करणीयं दश द्रम्माणां व्याजेन कल्याणिकानि करणीयानि शुभं भवतु"

पटनारायण का लेख[127] (१२८७ ई०)

सिरोही के गिरवर नामक गाँव के निकट पटनारायण के मन्दिर का यह लेख है। इसमें संस्कृत पद्य और गद्य का प्रयोग किया गया है जिसकी पंक्तियाँ ३९ हैं। इसमें श्लोकों की संख्या एक से पैंतीसवीं पक्ति तक ४६ हैं और आगे अन्त तक गद्य हैं। लेख का आशय यह है कि वशिष्ठ ने मन्त्र बल से आबू के अग्नि कुण्ड से धूम्रराज परमार को उत्पन्न किया। इसी कुल में धारावर्ष हुआ जो एक तीर से तीन भैंसों को वेध देता था। धारावर्ष के लड़के सोमसिंह का लड़का कृष्णराज था। कृष्णराज के पुत्र प्रतापसिंह ने जैत्रसिंह (मेवाड़ ?) को परास्त कर चन्द्रावती पर अधिकार कर लिया। प्रतापसिंह के मन्त्री देलहण ने संवत् १३४४ में प्रतापनारायण के मन्दिर को पुनः बनवाया। इस लेख में कई स्थानीय शब्दों को संस्कृत में प्रयुक्त किया गया है जो बड़े महत्व के हैं। जैसे 'देवड़ा' एक चौहानों की शाखा के लिए, 'दोनकरी' 'डोली' के लिए, 'ढीवडू' कुँए के लिए, 'अरहट' रेंठ के लिए, आदि 'चोलापिका' चौरा की आय, 'विसार' निर्यात कर के लिए आदि।

इसमें आबू की प्रशंसा, परमारों के वंश, मालवा के शासक वीसल, प्रशस्तिकार गंगदेव की विद्वत्ता, खेतों की उपज, अनाज का तोल, प्रति हल नाज की पैदावार, द्रम का प्रचलन, भूमि कर, निर्यात कर आदि पर काफी प्रकाश पड़ता है। इससे प्रतीत होता है कि चन्द्रावती उस समय व्यापारिक केन्द्र था। इसमें आस-पास के

१२६. नाहर, जैन लेख, भा. २, संख्या १७०६, पृ. १६३।
१२७. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

गाँवों से मन्दिर की सेवा-पूजा की व्यवस्था करने का अच्छा वर्णन है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

पंक्ति ३५–३९. "देवस्य नैवेद्यहेतोर्दत्ताय पदव्यक्तिर्यथा ।। महाराकुलसो (शो) भित पुत्र देवड़ामेलाकेन छनारे ग्रामे दोणकारी क्षेत्र १ उभयं दत्तं।। षीमाउलीग्रामे वीहलरा वीरपालेन ढींवडउ १ दत्तं आउलिग्रामे। ग्रामेयकं अरहट्टं प्रति ८ ठीकडा ठीक आ प्रति से २ दत्तं ।। कल्हणवाड ग्रामे हलं प्रति सेः १ गोहिल उत्रनुडियल (ले) न प्रतिग्रामपाद्रं दत्त द्र. १० तथा मडाउली ग्रामे रा. गांगू कर्मसीहाभ्यां द्वादष्श एकादशीषु चोलायिका आय पदं दत्तं। चन्द्रावती मंपपिकायां विसार अकृतोऽपि ।। सं. १३४४ ज्येष्ठ सुदि ५ शुक्रे जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा।"

चित्तौड़ का लेख[१२८] (१२८७ ई०)

प्रस्तुत लेख चित्तौड़ से ले जाकर उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें ८ पंक्तियाँ हैं जिनमें चित्रांगमोरी की उपलब्धियों, स्थानीय अधिकारी 'तलार' के कार्यों, कायस्थ सांग की उपलब्धियों तथा पंचकुल आदि के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं।

चित्तौड़ का शिलालेख[१२९] (१२८७ ई०)

प्रस्तुत सुरह लेख चित्तौड़ के किसी मन्दिर के स्तंभ पर उत्कीर्ण था, जो सम्भवतः वैद्यनाथ के मन्दिर का हो सकता है। स्तंभ लेख के ऊपरी भाग में शिवलिंग भी वना हुआ है जो इस अनुमान की पुष्टि करता है। अव यह लेख उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित अवस्था में है। इस लेख में वि. सं. १३४४ (१२८७ ई.), वैशाख शुक्ला ३ के समय चित्रांग तड़ाग के ऊपर के, जिसे चित्रांग मोरी का तालाब कहते हैं, वैद्यनाथ के मन्दिर के लिए कुछ द्रम देने तथा कायस्थ सांग के पुत्र बीजड के द्वारा कुछ स्थान वनवाये जाने का उल्लेख है। सम्भवत· बीजड समरसिंह के समय का कोई विशेष अधिकारी था।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"श्री चित्रकूट समस्तमहाराजकुल श्री समरसिंह देवकल्याण विजयराज्ये एवं काले चित्रांगतडागमध्ये श्री वैद्यनाथ कृते………… ।"

हटुंडी में महावीर के मन्दिर का लेख[१३०] (१२८८ ई०)

इसमें नडुल मंडल के अन्तर्गत हटुंडी का होना उल्लिखित है जहाँ राज्य की

---

१२८. वरदा वर्ष ९, अंक १।

१२९. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० १७७।
इ. ए., १९६१–६२, क्र. १७२७;

१३०. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८९७, पृ० २३३।

ओर से करणसिंह की नियुक्ति का तथा महावीर के मन्दिर के लिए हेमाक द्वारा २४ द्रमों का देने का वर्णन है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है।

"संवत् १३४५ वर्षे प्रथम भादवा वदि ६ शुक्रे दिने अद्येह श्री नड्डूल मंडले महाराजकुल श्री संपतसिंह देवराज्येत्र तन्नियुक्त श्री करणे महं हाथीउडी ग्रामे श्री महावीरदेव नैवेद्यार्थं वर्षं प्रति २४ द्रमा प्रदत्ता।"

उंस्तरा के स्मारक दो लेख[131] (१२८८ ई०)

यहां के दो स्मारक लेख जो वि० सं० १३४४ वैशाख वदि ११ (ई० सं० १२८८ ता० २६ मार्च) के हैं; गहलोत वंशी मांगल्य (मांगलियों) शाखा के राव सीहा और उसके पुत्र टीडा के साथ उनकी राणियों के सती होने का उल्लेख करते हैं।

वड़ौदे के तालाव के पास के शिवालय का लेख[132] (१२९३ ई)

यह लेख वड़ौदा के तालाव के पास के एक विशाल शिवालय में पत्थर की कुंडी पर उत्कीर्ण है। उससे ज्ञात होता है कि वि० सं० १३४९ वैशाख सुदि ३ शनिवार के दिन महाराजकुल श्री वीरसिंह देव के विजय राज्य काल में उक्त कुंडी बनाई गई। उस महारावल का 'महाप्रधान' वामण (वावण) था।

मूल लेख का अक्षांतर इस प्रकार है :

"सं० १३४९ वर्षे वैशाख शुदि ३ शनौ महाराजकुल श्री वीरसिंह देव कल्याण विजयराज्ये महाप्रधान पंच श्री वामण प्रतिपत्तौ........"

जूना के आदिनाथ मन्दिर का लेख[133] (१२९५ ई०)

इस लेख में जूना (वाड़मेर इलाका) का व्यापारिक केन्द्र होना स्पष्ट है जहां से ऊंट, घोड़े, बैल आदि माल लेकर गुजरते थे। इन पर मंदिर की व्यवस्था के लिए सभी महाजनों ने लाग (कर) देना स्वीकार कर लिया था। तेरहवीं शताब्दी की व्यापार-व्यवस्था, मार्ग और मुद्रा, कर आदि की जानकारी के लिए यह लेख वड़े उपयोग का है। इसमें प्रयुक्त शब्द सार्थ, पाइला, भीमप्रिय, विंशोपक, लाग आदि वड़े महत्त्व के हैं। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"संवत् १३५२ वैशाख सुदि ४ श्री वाहड मेरौ महाराज कुल श्री सामंतसिंह देव कल्याण विजयराज्ये तन्नियुक्त श्री करणे मं० चीरासेल वेलाउल भा० मिगल प्रभृतयो धर्माक्षराणि प्रयच्छन्ति यथा। श्री आदिनाथ मध्ये संतिष्ठमान श्री विघ्न मर्दन क्षेत्रपाल श्री चाउंडराज देवयोः उभयमार्गीय समायात सार्थ उष्ट्र १० वृष २० उभयादीप उर्द्धं सार्थ प्रति द्वयोर्द्वयोः पाइला। पक्षे भीमप्रिय दर्शविंशोपक अर्द्धार्द्धेन ग्रहीत्वा। असो लागो महाजनेन मानितः।"

---

१३१. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ. ३०।

१३२. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६१।

१३३. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं० ९१८, पृ० २४४।

हटुंडी के महावीर के मन्दिर का लेख[134] (१२६८ ई०)

इस लेख में 'पंचकुल', मंडपिका' एवं द्रमादि का महावीर के अनुदान के सन्दर्भ में उल्लेख है। इस लेख का मूल पाठ इस प्रकार है :

"सं. १३३५ वर्षे श्रावण वदि १ सोमे अद्येह समीपाही। मंडपिकायां भा पाहट उभांवा देवसिंह प्रभृति पंचकुलेन श्री महावीरदेवस्य नेचाप्रचयं १ वर्ष स्थिति कृतं द्र २४। द्रमाः वर्ष वर्षप्रति सर्व मंडपिका पंचकुलेन दातव्याः।

दरीबा माता के मन्दिर का स्तम्भ लेख[135] (१२९९ ई.)

दरीबा कांकरोली स्टेशन से ८ मील की दूरी पर एक गांव है। यहां एक मातृकाओं का मन्दिर है। इस मन्दिर के एक स्तम्भ पर एक लेख उत्कीर्ण है जिसका आशय यह है कि वि. सं. १३५६ ज्येष्ठ कृष्णा १० को श्री समरसिंह के मेवाड़ पर शासन करने के समय में तथा उसके महामात्य श्री निम्बा के काल में करणा और सोहड़ा ने उक्त मन्दिर को १६ द्रम भेंट किए। इस लेख से यह सूचना मिलती है कि मेवाड़ के मुख्यमन्त्री महामात्य कहलाते थे और समरसिंह के समय का महामात्य निम्बा था।

लेख की पंक्तियां इस प्रकार हैं :

"संवत् १३५६ वर्षे जे (ज्ये) ष्ठ वदि १० शनावद्येह श्री मेदपाट भू मंडले समस्त राजावली समलंकृत महाराजकुल श्री समरसिंहदेव कल्याण विजयराज्ये......"

सांभर का लेख[136]

(१२वीं शताब्दी ई. का अंतिम चरण अथवा
१३वीं शताब्दी ई. का प्रथम चरण)

यह लेख शाह का कुवा नामक कुवे (सांभर) में लगा हुआ था जहां से १९२६ ई. में इसे जोधपुर संग्रहालय में लाकर सुरक्षित कर दिया गया। यह दो कृष्ण शिलाओं में १६"×१४¾" के घेरे में उत्कीर्ण है। इसमें २८ श्लोकबद्ध पंक्तियां हैं, जिनमें से कुछ नष्ट हो गई हैं। इसका समय अज्ञात है परन्तु जयसिंह के सन्दर्भ से अनुमानित किया जाता है कि यह १२वीं शताब्दी ई. के अंतिम चरण अथवा १३वीं शताब्दी ई० के प्रथम चरण की हो। इस लेख से सोलंकी मूलराज द्वारा अन्हिलवाड़ा राज्य के संस्थापना का पता चलता है जिससे मूलराज का समय वि. ९९८ (९४१ ई.) तक चला जाता है। लेख में प्रारम्भ में सरस्वती तथा अन्य देवताओं की स्तुति की गई है और उसके पश्चात् तीन पद्यों में चालुक्य वंश की प्रशंसा की गई है। इसके ८वें पद्य से ११वें पद्य तक मूलदेव, चामुण्डराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमदेव, कर्णदेव एवं जयसिंह का परिचय मिलता है। इसके बाद

---

१३४. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८९४, पृ० २३२।

१३५. ओझा, उदयपुर का राज्य, भा० १, पृ० १७७।

१३६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

कोई विशेष सूचना नहीं मिलती सिवाय इसके कि जयसिंह दानी, पुण्यात्मा, विष्णु भक्त आदि था। इसके सन्दर्भ में शाकम्भरी, डूंगरसीह, नगराजपुत्र आदि नामों का उल्लेख मिलता है। इसका कुछ अंश इस प्रकार है :

"वसुनन्दनिधौवर्षे (९९८) व्यतीते विक्रमार्कत:
मूलदेव नरेशस्तु (चूडाम) णि रभूद्भु वि ॥९॥
चौलक्य नामनि प्रसन्न: सुकृती लोक: कूपादे: कृत्यकारकं:
नरागुणैं: विष्णवे रतोनित्यं दानीसत्पात्रपोपक: ॥१४॥

चित्तौड़ का लेख[137] (१३०० ई०)

यह चित्तौड़ का एक खण्डित लेख है, जिसमें २५ से २९ श्लोक हैं। इसमें नागरी लिपि प्रयुक्त की गई है। यह लेख वि. सं. १३५७ का है। इसमें धर्मचन्द्र तथा उनकी गुरु परम्परा का तथा एक मानस्तम्भ की स्थापना का वर्णन दिया गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति में उस समय की जैनाचार्यों की परम्परा का तथा शिक्षा के स्तर का हमें बोध होता है। इसमें वर्णित है कि कुन्दकुन्द आचार्य की परम्परा में केशवचन्द्र, देवचन्द्र, अभयकीर्ति, वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति और धर्मचक्र थे। केशवचन्द्र के सम्बन्ध में इसमें उल्लेख है कि वे तीनों विद्याओं में विशारद थे तथा इनके एक सौ एक शिष्य थे। इसकी प्रथम पंक्ति में पुण्यसिंह का भी नाम मिलता है।

चित्तौड़ के जैन कीर्तिस्तम्भ के तीन लेख[138] (१३वीं सदी)

इन तीनों लेखों का सम्बन्ध चित्तौड़ के जैन कीर्तिस्तम्भ से है, क्योंकि तीनों में स्तम्भ के स्थापनकर्त्ता साह जीजा तथा उनके वंश का विवरण उपलब्ध होता है। वैसे तो इनमें कहीं समय अंकित नहीं मिलता, परन्तु चित्तौड़ की सं. १३५७ की एक प्रशस्ति में, जिसका वर्णन ऊपर दिया गया है, जिस गुरु परम्परा का वर्णन मिलता है उसी का वर्णन प्रथम प्रशस्ति में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ये प्रशस्तियां भी १३वीं शताब्दी की हैं। प्रथम लेख में ४५ श्लोक हैं। इसके प्रारम्भ में दीनाक तथा उनकी पत्नी वाञ्छी के पुत्रनाय द्वारा एक मन्दिर के निर्माण का वर्णन है। नाय की पत्नी नागश्री और उसका पुत्र जीजू थे। इनके सम्बन्ध में उल्लिखित है कि इन्होंने चित्तौड़ में चन्द्रप्रभ मन्दिर और खोहर नगर में भी एक मन्दिर बनवाया। इनके पुत्र पूर्णसिंह ने अपने धन का उपयोग दान के द्वारा किया। इनके गुरु विशालकीर्ति के शिष्य शुभकीर्ति के शिष्य धर्मचन्द्र थे। महाराणा हम्मीर ने इनका खूब सम्मान

---

१३७. ए. रि. इ. ए, १९५६-५७, पृ० ५१, बी० १०८; (Annual Report., Indian Epigraphy) जैन शिलालेख संग्रह, पृ० ६३-६४।

१३८. रि. इ. ए., १९५४ ५५, क्र. ४९१;
अनेकान्त वर्ष २२ प्रथम अंक में श्री सोमानी का लेख;
जैन-शिलालेख संग्रह, पृ० ६४-७०।

किया था। इनके द्वारा मानस्तम्भ की स्थापना की गई थी। चित्तौड़ के वर्णन में वहां वृक्षावली के कारण शीतल वायु का उल्लेख वहां की जलवायु पर अच्छा प्रकाश डालता है। इस वर्णन में 'तलहटि' का वर्णन भी चित्तौड़ दुर्ग के नीचे वाले भाग में आवादी का द्योतक है।

दूसरे लेख का मुख्य भाग स्याद्वाद के सम्बन्ध में है। इस लेख का अन्तिम पंक्ति में बघेरवाल जाति के सानाय के पुत्र जीजाक द्वारा स्तम्भ निर्माण का उल्लेख है। तीसरे लेख के प्रारम्भ के भाग में निर्वाण भक्ति का विवेचन दिया गया है और अन्तिम भाग में जीजा के युक्त संघ की मंगलकामना की गई है।

नीचे तीनों लेखों की कुछ पंक्तियां दी जाती हैं :

(अ) "यश्चंद्रप्रभमुचकूटघटनं श्रीचित्रकूटे नटत्
कोत्रत्पल्लव तालवीजनमरुप्रध्वस्तसुर्याश्रमे"

(ब) "बघेरवालजातीय सा: नाय सुत जीजाकेन
स्तम्भ कारापित: ।।शुभं भवतु ।।

(स) तेन सुवानंतजिने (श्वरा)णां मुनिगणानां च
(निर्वाण)स्थानानि निवृत्यै (वा) पांतु संघं जीजान्वितं सदा ।।

इन तीनों लेखों को यदि हम चित्तौड़ के वि. सं. १३५७ के लेख के साथ पढ़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि चित्तौड़ का जैन-कीर्तिस्तम्भ १३वीं सदी में जीजाक के द्वारा बनाया गया था। वैसे यह मान्यता चली आई है कि जीजाक ने इसे ११वीं सदी में बनाया। इस लेख का महत्त्व जीजाक के १३वीं सदी में होने से अधिक बढ़ जाता है। इसके द्वारा जैन-कीर्तिस्तम्भ का निर्माणकाल भी १३वीं सदी में स्थापित होता है। यदि हम इस स्तम्भ को शिल्पकला को देखते हैं तो उसकी साम्यता ११वीं सदी के स्थापत्य से न होकर १३वीं सदी के स्थापत्य से होती है। वैसे तो इन शिलालेखों का पारस्परिक एक ही क्रम में सम्बन्ध स्थापित करना तो कठिन है, परन्तु तीनों में जीजाक का उल्लेख होना उनकी समकालीनता पर प्रकाश डालता है।

जैन दिगम्बर कीर्तिस्तम्भ सम्बन्धित खण्डित लेख[१३९]

ये लेख दो खण्डों में मिले हैं जिनके द्वारा जैन कीर्तिस्तम्भ के सम्बन्ध में कुछ अपूर्ण सूचना मिलती है। इनमें किसी में तिथियां नहीं हैं। प्रथम खण्ड में कैलाश शैल शिखर स्थित देवता की तथा अरिष्टनेमि की स्तुतियां हैं और पावापुरि का वर्णन है। इसमें कुल १२ श्लोक हैं। इसके अंत के भाग से 'संघजीजान्वित सदा' का पाठ मिलता है। दूसरे खण्ड में भी जीजा का रोचक वर्णन प्राप्त होता है। इसमें अंकित है कि 'वघेरवाल जातीय सा. नाय सुत जीजाकेन स्तंभ: कारापित'

---

१३९. वरदा वर्ष ६, अंक १।

समरसिंह के काल का खण्डित लेख[१४०]

यह एक लघु लेख गोमुख के पास उपलब्ध हुआ था जो पूर्णरूप से खण्डित है। इसमें समय सम्बन्धी दो अंक १३........रह गए हैं। इसमें समरसिंह के समय कुछ मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख है। इसके द्वारा हमें एक बड़े महत्त्व की सूचना मिलती है कि समरसिंह का मंत्री कर्मसिंह था।

चित्तौड़ का एक अन्य लेख[१४१]

यह लेख चित्तौड़ के जैन स्तंभ के पास किसी मन्दिर में लग रहा था, जहां से सम्भवतः किसी तरह वह हटाया गया हो। अब उसकी ३-४ शिलाओं में से एक शिला ही उपलब्ध है जिसे गोसाई जी के चबूतरे पर लगा दिया गया है। इस शिला में २१ से ४५ श्लोक हैं। श्लोक ४४ में हम्मीर का और श्लोक ४५ में पुण्यसिंह द्वारा मानस्तंभ की प्रतिष्ठा का वर्णन है। अन्य कई श्लोकों में श्रेष्ठि पुण्यसिंह का विस्तार से वर्णन है। प्रस्तुत लेख से हम पूर्व मध्यकालीन युग के चित्तौड़ में विद्या की प्रगति का अध्ययन कर सकते हैं। उस काल में जैन साधु विशालकीर्ति, शुभकीर्ति आदि साहित्य और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे, जैसाकि इस लेख से स्पष्ट है, इस लेख से हमें तिथि, संवत् आदि सूचना उपलब्ध नहीं होती।

चित्तौड़ का लेख[१४२] (१३०१ ई०)

यह लेख भी चित्तौड़ से प्राप्त हुआ था जिसे उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। लेख का विषय १८"×१६" में उत्कीर्णित है। इसका दाहिनी भाग का कुछ अंश खण्डित है और अक्षर इतने घिस गये हैं कि स्पष्ट रूप से पढ़े नहीं जाते। प्रस्तुत लेख में महारावल समरसिंह के उल्लेख के अतिरिक्त उसके प्रतिहार वंशी महारावत पाता के पुत्र धारसिंह द्वारा समिद्धेश्वर में कुछ निर्माण करने का वर्णन है। इसका मूल भाग का कुछ अंश इस प्रकार है-

"धारसिंहेन श्री भोजस्वामी देव जगत्यां प्रशस्ति पट्टिका... कारापिता"

वधीणा के शांतिनाथ के मन्दिर का लेख[१४३] (१३०२ ई०)

सिरोही के वधीणा ग्राम में शान्तिनाथ का मन्दिर है उसके निमित्त सोलंकियों ने सामूहिक रूप से ग्राम व खेत और कुंए के हिसाब से मंदिर के निमित्त कुछ अनुदान की व्यवस्था की। इसमें सेई शब्द सेर के तोल के लिए तथा ढीवडा कुंए के लिए और अरहट रहट के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। लेख का मूल इस प्रकार है :

"संवत् १३५९ वर्षे वैशाख शुदि १० शनि दिने........लदेशे वाघसीण ग्रामे

---

१४०. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१४१. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१४२. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० १७८।

१४३. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं० ९५९, पृ० २६७; गोपीनाथ शर्मा, बिबलियोग्राफी, नं० ३३ पृ० ६।

महाराज श्री सामंतसिंह देव कल्याण विजयराज्ये वर्तमाने सोलं—पा भट पु. रजर सोलंगागदेव पु श्रंगद मंडलिक सोल सीमाल पु कुंताधारा सो. माला पु. मोहन त्रिभुवण पट्टा सोहरपाल सो. धूमण पट वायत वणिग् सीहा सर्व सोलंकी समुदायेन वाधसीण ग्रामीय अरहट अरहट प्रति गोधूम सं. ४ ढीवडा प्रति गोधूम सेई २ तथा धूलिया ग्रामे सो. नयणसिंह पु जयतमाल सो. मंडलिक अरहट प्रति गोधूम सेई ४ ढीवडा प्रति गोधूम सेई २ सेतिका २ श्री शाँतिनाथ देवस्य यात्रा महोत्सव निमित्तं दत्ता। एतत् आदानं सोलंकी समुदायः दातव्यं पालनीयंच। आचंद्रार्क। यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलं। मंगलं भवतु।

चित्तौड़ का शिलालेख,[१४४] (१३०२ ई०)

यह शिलालेख चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के पास डॉ. ओझा को प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित किया। यह लेख समरसिंह के समय का है जिसमें माघ शुक्ला १० वि. सं. १३५८ (१३०२ ई.) अंकित है। लेख में कुल मिलाकर १८"×१६" का भाग घेरे हुए है। यह लेख अच्छी दशा में नहीं है। दाहिनी ओर का कुछ अंश टूट जाने से थोड़े से अक्षर भी इस के टूट गये हैं। जो उत्कीर्णित भाग बचा है उसका आशय यह है कि महाराजाधिराज श्री समरसिंह के राज्यकाल में प्रतिहार वंशी महारावत राज्य श्री...... राज पाता के बेटे राज. (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री भोज के बनवाये हुए मन्दिर में प्रशस्ति पट्टिका सहित ...... अपने श्रेय के लिए बनवाया। इस लेख में उल्लिखित प्रतिहार राजपूतों का समरसिंह के समय में सामन्त होना तथा भोज के बनवाये हुए मन्दिर में (समिधेश्वर मन्दिर) किसी भाग को उसके द्वारा बनवाना सिद्ध होता है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसका गद्यांश इस प्रकार है :

"ओं ।। संवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्यां ...... महाराजाधिराज श्री समरसिंह देव (क) ल्याण त्रिजयराज्ये तत्पादोपि (प) जीविनि दे.......र्म्मा....... समस्तराज्य धुरां धारय...... प्रतिहारवंशे महारावत राज श्री.... ....राशाखीय राज० पातासुतराज० धारसिंहेन भोजस्वामिदेव जगत्यां....केलिनिर्म्मित प्रशस्ति-पट्टिका सहिता ...... श्रेय से कारापिता"

गंभीरी नदी के पुल का शिलालेख[१४५] (१२७३–१३०२ ?)

जैसाकि इसी प्रकार के नवमें कोठे के शिलालेख से स्पष्ट है, यह लेख भी गंभीरी नदी के पुल बनाते समय मन्दिरों के अवशेषों के साथ १०वें कोठे में खिज्र खाँ द्वारा लगवा दिया गया हो। इसमें संवत् वाला अंश तो जाता रहा है, परन्तु यह स्पष्ट है कि ये लेख समरसिंह के काल का है। इसमें उल्लिखित है कि रावल समरसिंह

---

१४४. ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० १७८।

१४५. वं. ए. सो. ज., जिल्द ५५, भा० १, पृ० ४७
ओझा, उदयपुर राज्य, जि. १ पृ० १७८।

ने अपनी माता जयतल्लदेवी के श्रेय के लिए श्रीभतृपुरीय गच्छ के आचार्यों की पोषव शाला के निमित्त कुछ भूमि दी। अपनी माता के बनवाये हुए मन्दिर के लिए उसने कुछ हाट की तथा बाग की भूमि भी दान के रूप में दी। इसी प्रकार चित्तौड़ की तलहटी एवं सज्जनपुर की मंडपिकाओं से कुछ द्रम अनुदान के रूप में दिये जाने की आज्ञा दी। इस लेख से कर-व्यवस्था, प्रमुख मंडपिकाओं के स्थान और उस समय की उदार धार्मिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

दरीवे का शिलालेख[१४६] (१३०२ ई०)

यह लेख कांकरोली स्टेशन से कुछ दूर दरीवा गाँव के मातृकाओं के मन्दिर के एक स्तंभ पर उत्कीर्ण है। महारावल रत्नसिंह के समय का यह संभवत. अबतक एक ही लेख उपलब्ध हुआ है जिससे उसकी ऐतिहासिकता पर सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। इसमें मेवाड़ को एक मंडल की संज्ञा दी है तथा रत्नसिंह को समस्त राजाओं से अलंकृत कहा है। इसमें रत्नसिंह के काल का महं. श्री महणसिंह मुद्रा व्यापार सम्बन्धी मन्त्री होना अंकित है। उस समय की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालने में यह लेख बड़ा सहायक है। इसमें स्पष्ट उल्लिखित है कि ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं राजा करते थे। लेख का मूल इस प्रकार है :

"संवत् १३५९ वर्षे माघ सुदि ५ बुध दिने अद्येह श्रीमेदपाटमंडले समस्त राजावलिसमलं कृत महाराजकुल श्री रत्नसिंहदेवकल्याण विजयराज्ये तन्नियुक्त महं. श्री महणसीह समस्त मुद्रा व्यापारान्परिपंथयति............"

अचलेश्वर प्रशस्ति[१४७]

यह प्रशस्ति बहुत बड़ी है। इसके ऊपर के भाग के बहुत से अक्षर खण्डित हैं एवं संवत् का भाग जमीन में हो, ऐसा अनुमान होता है। इसका वीर विनोद में पर-मारों के वंश सम्बन्धी भाग ही मुद्रित हुआ है। इसमें अग्नि कुंड से पुरुष के उत्पन्न होने का उल्लेख है तथा यह वर्णित है कि परमारों का मूल पुरुष धूमराज था। इसी वंश में रामदेव का वर्णन है जो बड़ा सुन्दर था। उसके पुत्र धवल के सम्बन्ध में लिखा गया है कि उसने कुमारपाल के शत्रु मालवे के राजा बल्लाल को मारा था। उसके पुत्र धारावर्ष के लिए कोकण के राजा को मारने का उल्लेख है। धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन की वीरता तथा सोमसिंह के पराक्रम का भी इसमें वर्णन है। प्रस्तुत मुद्रित भाग से १० से २० श्लोक उपलब्ध होते हैं।

इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"दथाथ मैत्रावरुणस्य जुह्वत अवंडोग्नि कुंडात्पुरुषः पुरो भवत्"

"तस्य प्रल्हादनो नाम वामनस्ये वधूभुवः ॥

अनुजन्मा भवधेन दक्षा श्री रग्रजन्मनां ॥

---

१४६. ओझा, उदयपुर राज्य, भा० १, पृ० १९१-१९२।

१४७. वीर विनोद भा० २, प्रकरण ११, शेष संग्रह सं० १०, पृ० १२०५।

बमासा गाँव का लेख[१४८] (१३०२ ई०)

वागड़ के अन्तर्गत बमासा गाँव का वि. सं. १३५९ आषाढ़ सुदि १५ (ई. सं. १३०२ ता. ११ जून) का यह लेख वागड़ वटपद्रक के महाराजकुल श्री वीरसिंह देव के ज्योतिषी महाप के पुत्र वाधादित्य को उक्त महारावल द्वारा मंगहडक (मूंगेड़) गाँव देने की सूचना देता है। इससे वड़ौदे की सम्पन्न अवस्था तथा वीरसिंह देव की धर्म-परायणता, वैभव, दानशीलता व उदारता का बोध होता है।

इसका मूल इस प्रकार है—

"संवत् १३५९ वर्षे आषाढ़ सुदि १५ वागडपद्र के महाराजकुल श्री वीरसिंहदेव कल्याण विजयराज्ये....महामो [ढ] ज्योतिषी महावसुत ज्योतिवाधादित्यस्य (न्याय) मंगहड ग्रामं उदकेन प्रदत्तं ॥"

वरवासा गाँव का लेख [१४९] (१३०२ ई०)

इस लेख में वरवासा गाँव को वि. सं. १३५९ में महाराजकुल श्री वीरसिंह देव द्वारा उसके पुरोहित श्री शंकर को देने का उल्लेख है। इसका मूल इस प्रकार है—

"संवत् १३५९ वर्षे महाराजकुल श्री वीरसिंहदेव (वेन) पुरो. श्री शंकराय वसवासाग्रामं प्रदत्तं।"

वरवासा गाँव का लेख[१५०] (१३०२ ई०)

डूंगरपुर जिले के वरवासा गाँव के संवत् १३५९ आषाढ़ सुदि १५ के लेख से उस प्रदेश में जिसे 'वागड' कहते थे श्री वीरसिंहदेव का शासन था।

अचलेश्वर शिवालय की दूसरी प्रशस्ति[१५१] (१३२० ई०)

यह प्रशस्ति भी बहुत खण्डित है। इसमें ३६ श्लोक हैं और अन्त की कुछ पंक्तियाँ गद्य में हैं। इसमें अचलेश्वर के मन्दिर के जीर्णोद्धार का तथा उसकी पूजा के निमित्त हेदुंडी गाँव के देने का उल्लेख है। इसमें चन्द्रावती, अर्बद शाकम्भरी अपरान्त आदि देशों का वर्णन है जो उस युग की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। इसमें सोमवंश के माणिक्य, लक्ष्मण, सिंधुराज, असराज, कीर्तिपाल, समरसिंह, लूणवर्मा आदि शासकों की उपलब्धियों का अच्छा वर्णन मिलता है। प्रशस्ति का समय संवत् १३७७ वैसाख शुक्ल ८ सोमवार है। इसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं :

संवत् १३७७ वर्षे वैशाख सुदि ८ सोमे........संवत्सरेऽध्येय चंद्रावती प्रतिबद्ध वहुण सभावासित महाराजकुल श्री लुंठागरे चंद्रावती प्रभृति देशेपु तथा यावतीपुर प्रतिबद्ध द्विराजकुलाधिप........संतोशित त्रिशुक्ले श्री करणादियागारे महं. देवसिंह

---

१४८. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६२।

१४९. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६२।

१५०. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३।

१५१. वीर विनोद, द्वि. भा., प्रकरण ११, पृ० १२११–१३।

प्रतिवद्ध देवकुल प्रतिपद्य श्री अर्बुदाचले देव श्री अचलेश्वर महामंडप जीर्णोद्धारो महाराज श्री लुंठापेन कारित:"

आबू के वशिष्ठ के मन्दिर की प्रशस्ति [152] (१३३७ ई०)

यह प्रशस्ति आबू के वशिष्ठ के मन्दिर में लगी हुई है जिसका समय संवत् १३९४ वैशाख सुदि १० गुरुवार है। इसमें चार श्लोक तथा अन्त की कुछ पंक्तियाँ संस्कृत गद्य में हैं। इसमें वशिष्ठ आश्रम और मुनि के प्रभाव का वर्णन है। इस मन्दिर के लिए दिए गए गाँवों के अनुदानों का वर्णन है जिनको चौहान तेजसिंह, देवड़ा श्री निहुण, कान्हडदेव तथा चौहान सामन्तसिंह ने दिये थे। ये गाँव झाँवद्रु, ज्यातुलि, तेजलपुर, सीहलुण, वीरवाड़ा, तुहुलि, छापुलि और किरणथलु थे। यहाँ कान्हडदेव के अधिकार क्षेत्र को राष्ट्र की संज्ञा दी है जो ठीक नहीं। चौहान वंश को भी यहां जाति की संज्ञा दी गई है।

इसकी अन्तिम पंक्तियों का कुछ अंश इस प्रकार है:

"देवड़ा श्री तिहुणाकेन स्वहस्तेन सीहलु ग्रामं दत्त तथा राजश्री कान्हडदेवेन स्वहस्तेन वीरवाड़ा ग्रामं दत्तं तथा चहुमान जातीय श्री सामन्तसिंहेन लुहुलि छापुलि किरणथलुग्रामत्रयं दत्तं"

करेड़ा का लेख [153] (१३३८ ई०

यह लेख करेड़ा का है। इसमें मालदेव के पुत्र बणवीर और उसके सिलहदार महमद सुहडसींह चऊंड के पुत्र के देवलोक का जिक्र है। इस लेख से खिलजियों के चित्तौड़ तथा आसपास के क्षेत्र पर अधिकार रहने के समय को निर्धारित किया जाता है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"संवत् १३९५ वर्षे पौष सु. ५ रवौ श्री चित्रकूट स्याने महाराजाधिराज पृथ्वीचन्द्र........श्री मालदेव पुत्र श्री वणवीर सत्कं सिलहदार महमदेव सुहडसिंह चऊंडरा सत्कं पुत्र........दिवं गतं तस्य सत्कं गोभट्ट कारापितं"

गोगूंदा का लेख [154] (१३६७ ई०)

यह लेख गोगूंदा के शीतला माता के मन्दिर के छवने पर खुदा हुआ है जो वि. सं. १४२३ आषाढ़ कृष्णा १३ भौमवार का है। इसमें राणा षेतपालदे (खेता) के राज्यकाल में ठ. सातल के सुत ठ. डाला ने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और उसमें विष्णु की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। यह संस्कृत भाषा में है और देवनागरी में उत्कीर्ण है। इस लेख का अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री राणा षे (खे) त पालदे राज्ये संवत् १४२३ वर्षे आषाढ़ वदि

---

१५२. वीर विनोद, भा० २, प्रकरण ११, शेष संग्रह सं. १५, पृ० १२१३।

१५३. नाहर, जैन लेख, भा० २, सं. १९५५, पृ० २४२।

१५४. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१३ भौमे अश्विनी नक्षत्रे शोभन योगे ठ. सातल सुत ठ. डाला जीर्णोद्धार प्रासादं विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठितं"

ऋषभदेव का लेख[१५५] (१३७४ ई०)

यह लेख प्रसिद्ध ऋषभदेव के मंदिर के खेला मंडप की दीवार में लगा हुआ है, जिसका समय वि० सं० १४३ वैशाख सुदि ३ बुधवार है। इसका आशय यह है कि दिगंबर सम्प्रदाय के काष्टासंघ के भट्टारक श्री धर्मकीर्ति के उपदेश से शाह बीजा के बेटे हरदान ने इस जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया। यह लेख मंदिर के विभिन्न भागों के निर्माण करने को निर्धारित करने में बड़ा सहायक होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले गर्भगृह, खेला मंडप आदि बने और पीछे इस मन्दिर की देव कलिकाओं का निर्माण हुआ, जैसाकि अन्य लेखों से स्पष्ट है। मंदिर के निर्माण में काष्टासंघ के भट्टारकों और दिगंबरी श्रावकों की प्राधान्यता रही हो ऐसा भी कई लेखों से प्रमाणित होता है।

माचेड़ी की बावली का लेख[१५६] (१३८२ ई०)

माचेड़ी (अलवर जिला) की बावली वाले वि० सं० १४३९ के शिलालेख में 'बड़गूजर' शब्द का प्रयोग पहले पहल प्रयुक्त हुआ। उस लेख से पाया जाता है कि उक्त संवत् में वैशाख सुदि ६ को सुलतान फीरोजशाह तुगलक के शासनकाल में माचेड़ी पर बड़गूजर वंश के राजा आसलदेव के पुत्र महाराजाधिराज गोगदेव का राज्य था। इस बावड़ी का निर्माण खंडेलवाल महाजन कुटुंब ने बनवाई थी।

डेसा गाँव की बावड़ी का लेख[१५७] (१३९६ ई०)

डूंगरपुर राज्य के डेसा गाँव की बावड़ी का वि० सं० १४५३ कार्तिक वदि ७ सोमवार (ई० स० १३९६ ता० २३ अक्तूबर) का यह लेख राजपूताना म्यूजियम अजमेर में सुरक्षित है। उसमें अंकित है कि गुहिलोत वंशी राजा भचुंड के पौत्र और डूंगरसिंह के पुत्र रावल कर्मसिंह की भार्या माणकदे ने उक्त समय में इस वापी का निर्माण कराया। इस लेख से डूंगरपुर के तीन शासकों—भचुंड, डूंगरसिंह और कर्मसिंह की उत्तरोत्तर वंश स्थिति का पता लगता है और यह भी प्रतीत होता है कि कर्मसिंह की भार्या माणकदे थी जो धार्मिक तथा लोकहित कार्यों में रुचि लेती थी। मूल लेख का अक्षान्तर इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री नृपविक्रमसमयातीत संवत् १४५३ वर्षे शाके १३१८ प्रवर्तमाने कार्तिकमासे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ सोमवासरे रोहिणी नक्षत्रे ग (गु) हिल (लो) त-वंशोद्भवभूपचंड सुत डूंगरसिंह त (स्त) त्सुतराउल कर्मसिंह भार्या बाई श्री माणिकदे तथा इयं वापी कारापिता।"

---

१५५. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४१–४२।

१५६. रा. म्यू. अजमेर ई० सं० १९१८–१९ की रिपोर्ट, पृ० २ लेख सं० ८।

१५७. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६३

देव सोमनाथ का लेख[१५८]

इसके समय का भाग तथा अन्य कुछ अक्षर अस्पष्ट हैं। परन्तु इसका आशय यह है कि वागड़ का शासक सोमनाथ का भक्त था। इस मन्दिर को सम्भवत: गुजरात के सुलतान अहमदशाह ने तोड़ा था। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार सोमनाथ ने करवाया। इससे गुजरात की चढ़ाई और सोमनाथ की शिव-भक्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

ऊपरगाँव (डूंगरपुर) की प्रशस्ति[१५९] (१४०४ ई०)

यह प्रशस्ति राजस्थान के दक्षिण भाग पश्चिमीय वागड़ के डूंगरपुर से लगभग सात आठ मील दूर ऊपरगाँव नामक ग्राम के दिगम्बर जैन आम्नाय के श्रेयांसनाथ (लौकिक में सरियण जी) के मन्दिर में लगी हुई है। प्रशस्ति में समय संवत् १४६१ वैशाख सुदि ५ शुक्रवार दिया है, जो उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा का बोधक है। प्रशस्ति लगभग सुरक्षित अवस्था में है। इसके अक्षरों की लिपि सुन्दर है और इसकी अधिकांश भाषा पद्यमय संस्कृत है। इसमें कुल छत्तीस पंक्तियाँ हैं। मंगलाचरण और चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करने के पीछे आठवीं पंक्ति से राजवंश का वर्णन है, जिनका वागड़ में प्रभुत्व रहा। यह राजवंश का वर्णन पंक्ति उन्नीसवीं में जाकर समाप्त होता है। इसके बाद दिगम्बर आम्नाय के काष्टासंघ और नंदीतटगच्छ के आचार्यों की परम्परा का उल्लेख हो कर मन्दिर निर्माणकर्त्ता नरसिंहपुरा जाति के प्रह्लाद के (जो डूंगरपुर रावल प्रतापसिंह का मन्त्री था) पूर्वजों और भाईयों के नाम दिये हैं। पंक्ति ३१ से चार पंक्तियाँ पद्य में दी गई हैं, जिनमें संवत्, मास, पक्ष, तिथि और वार देते हुए डूंगरपुर के रावल प्रतापसिंह के समय प्रहलाद का रत्नकीर्ति गुरु के उपदेश से श्रेयांसनाथ का मन्दिर बनाकर वहाँ पर ५२ प्रतिमाएं स्थापित करने आदि का उल्लेख है।

राजस्थान के इतिहास के लिए यह प्रशस्ति बड़े महत्त्व की है। इससे स्पष्ट होता है कि डूंगरपुर के आहाड़ा गुहिलोतों की शाखा के राजा मेवाड़ के प्रसिद्ध गुहिलवंशी राजा बापा, खुम्माण, वैरड, वैरिसिंह, पद्मसिंह और जैत्रसिंह के पुत्र सीहडदेव के वंशधर हैं। सिहडदेव का पुत्र जैसल (जयसिंह) और देदू (देवपाल) हुए। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से भी जैत्रसिंह का वागड़ विजय करना प्रमाणित होता है। डा. ओझा सामंतसिंह को डूंगरपुर राज्य का संस्थापक मानते हैं जो जैत्रसिंह का चचेजाद भाई था। इससे सम्भव है कि सोलंकी भीमदेव ने राज्य छीन लिया जिसे जैत्रसिंह ने फिर से जीतकर अपने पुत्र सीहड को दिया।

प्रशस्ति में प्रहलाद के सम्बन्धियों और उनकी स्त्रियों आदि की नामावलि उस समय की संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली तथा धर्मकार्यों में सामूहिकता की द्योतक है।

---

१५८. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६७।

१५९. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

प्रशस्ति का मूल भाग पंक्ति ३४ में समाप्त हो जाता है। अंतिम ३५वीं और ३६वीं पंक्तियाँ अस्पष्ट हैं, वे इस मन्दिर के निमित्त दान की हुई भूमि आदि का उल्लेख करती हैं, जो पीछे से खुदी हुई होना लिपि से स्पष्ट है।

इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

पंक्ति २६. "प्रहलादनामाप्रवरप्रधानो यो मन्दिरं कारयतिस्म जैनं"

पंक्ति ३१–३२. "राउल श्री प्रतापसिंह विजयराज्ये ऊपरगांम नाम्नि ग्रामे
श्री काष्टासंघे नदी तट गच्छे श्री रत्नकीर्ति
उपदेशात् नारसिंह ज्ञातीय खरनहर गोत्रे"

पार्श्वनाथ मन्दिर प्रशस्ति, जैसलमेर[१६०] (१४१६ ई०)

यह प्रशस्ति संस्कृत गद्य में है तथा यत्र-तत्र कुछ श्लोक भी इसमें दिये गये हैं। प्रस्तुत प्रशस्ति जैसलमेर के पार्श्वनाथ के मन्दिर में श्रेष्ठिधना जयसिंह नरसिंह द्वारा प्रासाद और बिंब प्रतिष्ठा के समय लगाई गई। इसका समय वि० सं० १४७३ चैत्र शुक्ला १५ है। प्रस्तुत प्रशस्ति में उकेशवंशीय रांका श्रेष्ठि परिवार के व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर किये गये धार्मिक कार्यों का वर्णन है। जैसे इस परिवार के व्यक्तियों ने वि. सं. १४१५, १४२७, १४३६, १४४६ में सकुटुम्ब तीर्थयात्राएं सम्पादन कीं। इस परिवार को उपदेश देने वाले आचार्यों का भी इसमें नामोल्लेखन है जिनमें श्री जिनोदयसूरि, श्री जिनराजसूरि, श्री जिनदत्तसूरि और श्री जिनवर्द्धनसूरि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रशस्ति से संयुक्त परिवार प्रणाली तथा धार्मिक कार्यों में कौटुम्बिक सहयोग का बोध होता था। यह रांका परिवार जैसलमेर का बड़ा समृद्ध परिवार था जैसाकि अन्य ग्रन्थ प्रशस्तियों से भी स्पष्ट है। इसमें वि. सं. १४७३ में लक्ष्मणराज का जैसलमेर में राज्य होना उल्लिखित है।

इसके कुछ अंश को नीचे दिया जाता है—

पंक्ति १–२ जगदभिमतफलवितरण विधिना निरवधि गुणेन यशसा च।
यः पूरितविश्वासः सकोपि भगवान् जिनो जयति ॥१॥"

पंक्ति २१–२३ "अथ श्री जेशलमेरौ श्री लक्ष्मणराज्ये विजयिनि सं० १४७३ वर्षे चैत्र सुदि १५ दिने तैः श्री जिनवर्द्धनसूरिभिः प्रागुक्ता न्वयास्ते श्रेष्ठिधना जयसिंह नरसिंह धामाः समुदायकारित प्रसाद प्रतिष्ठया सह जिनबिंब प्रतिष्ठा कृत"

कोटसोलंकी का लेख[१६१] (१४१८ ई०)

प्रस्तुत लेख देसूरि गाँव के समीप स्थित कोटसोलंकियों के एक जीर्ण मन्दिर में

---

१६० भाण्डारकर रिपोर्ट, १६०४–०५ तथा १६०५–०६, सं. ४८, पृ० ६३;
गा. ओ. सि. नं० २१, एपेन्डिक्स, नं० २;
जैन ले. संग्रह, नं० २११३।

१६१. मरु-भारती, अंक अप्रैल १६६७, पृ० १।

लगा हुआ है। इसका समय वि. सं. १४७५ आषाढ़ सुदि ३ है। इस लेख का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि इससे प्रमाणित होता है कि गोडवाड क्षेत्र को महाराणा लाखा ने जीता था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात इस लेख से सिद्ध होती है कि महाराणा लाखा वि. सं. १४७५ तक जीवित था। इस लेख के मिलजाने से ख्यातों में दी गई लाखा की निधन-तिथि वि. सं. १४५४ असत्य प्रमाणित होती है।

इस लेख में १० पंक्तियाँ हैं जिसमें प्रधान ठाकुर श्री मांडण, आसलपुर दुर्ग और साह कडुआ, पु. जगसीह, पुत्र खेडा, पुत्र सुहड तथा इनकी भार्याओं का नाम अंकित है। साथ ही इसमें पार्श्वनाथ के चैत्य के मंडप के जीर्णोद्धार का वर्णन है। इसमें समस्त संघ ही साक्षी का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है।

लेख का मूल इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री संवत् १४७५ वर्षे आषाढ़ सुदि ३ सोमे राणा श्री लाषा विजय-राज्ये प्रधानठाकुर श्री मांडण व्यापारे श्री आसलपुर दुर्गे श्री पार्श्वनाथ चैत्ये। उपकेशवंशी [ ] लिगा गोत्रे साह कडुआ भार्या कमलादे पु. जगसींह वाउरा तूलु केल्हा जगसींह भार्या त्रजाल्हणदे पुत्र खेढा भार्या जयंती पुत्र सुहड सल्लू सहितेन आत्मपुण्य श्रेयसे वालणामंडपजीर्णोद्धार: कारापित शुभं भवतु। समस्त संघ मांडणठाकुर साक्षिक:"

जावर की प्रशस्ति[१६२] (१४२१ ई०)

यह प्रशस्ति जावर गाँव (मेवाड़) के पार्श्वनाथ के मंदिर के छवने में उत्कीर्ण है। इसका समय वि० सं० १४७८ पौष शुक्ला ५ है। इसमें वर्णित है कि मोकल के समय में प्राग्वाट सा. नाना ने, उसकी भार्या फनी और उसका पुत्र सा. रतन तथा भार्या लापू के पुत्र सहित शत्रुंजय गिरि, आबू, जीरापल्ली, चित्रकूट आदि तीर्थों की यात्रा की। इसी तरह संघ मुख्य सा. धणपाल ने भी पुत्र और पुत्रवधुओं के साथ शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाया। इनमें स्त्रियों के नाम उस समय दिये जाने वाले नामों के ढंग पर प्रकाश डालते हैं, जैसे—हांसू, देजू, पूनी, पूरी, मरगद, चमकू आदि। इस नामावली से उस समय की संयुक्त परिवार प्रणाली का बोध होता है जिसमें कुटुम्ब का प्रमुख एक व्यक्ति होता है और उसके लड़के, लड़कियाँ, पुत्रवधुएँ उसके कुटुम्ब के सदस्य होते हैं। ऐसे धार्मिक कार्यों में सम्पूर्ण कुटुम्ब का होना आवश्यक समझा जाता था। संयुक्त कुटुम्ब में 'धाइत्रि' का भी अपना स्थान रहता था, जैसाकि इस लेख से स्पष्ट है।

इन नामों के अतिरिक्त इसमें जैनाचार्यों के नाम भी अंकित हैं—देवसुन्दर सूरि, दिननायक, सोमसुन्दरसूरि, मुनि सुन्दर, श्री जयचन्द्रसूरि, श्री भुवनसुन्दरसूरि, श्री जिनसुन्दरसूरि, श्री जिनकीर्तिसूरि श्री विशालराजसूरि, श्री रत्नशेखरसूरि, श्री उदयनन्दसूरि, श्री लक्ष्मीसागरसूरि, श्री सूरसुन्दरगणि, श्री सोमदेवगणि

---

१६२. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० २७९।

आदि। इन आचार्यों में श्री सत्यशेखरगणि महोपाध्याय तथा श्री सोमदेवगणि पंडित की उपाधि से विभूषित थे। ये सभी आचार्य अनेक विषयों के ज्ञाता थे। इस प्रशस्ति के अन्त में इनकी शिष्य परंपरा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे और उनका सतत उदय होता रहे ऐसी कामना की गई है। प्रस्तुत प्रशस्ति से उस समय के शिक्षाविदों और शिक्षा की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसकी प्रारम्भ और अन्त की पंक्तियों का अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"संवत् १४७८ वर्षे पोष सुद ५ राजाधिराज श्री मोकलदेव विजयराज्ये प्राग्वाट सा. नाना भा. फनी सुत सा. रतन भा. लाषू पुत्रेण........"

"पं० सोमदेवगणि प्रमुखं प्रतिदिन्नधिकाधिकोदयमान शिष्यवर्गो चिरं विजयतां"

ठाकरडा गाँव के शिवालय का लेख[१६३] (१४२७ ई०)

यह लेख डूंगरपुर जिले के ठाकरडा गाँव के सिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर का है, जिसका समय वि० सं० १४८३ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १४२७ ता० ३ मार्च) है। इसमें गुहिल के वंशधर खुंमाणवंशी प्रतापसिंह के पुत्र गोपीनाथ के राज्य-काल में उक्त मन्दिर का निर्माण मेघ नामक वडनगरा जाति के नागर ब्राह्मण द्वारा कराया जाना उल्लिखित है।

समाधीश्वर लेख[१६४] (१४२८ ई०)

मूल लेख चित्तौड़ के समाधीश्वर के मन्दिर के सभामण्डप की पूर्वीय दीवार में संगमूसा पत्थर पर ५३ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इसमें कुल ७५ श्लोक हैं। इसका समय वि० सं० १४८५ माघ शुक्ला तृतीया है। प्रथम से चतुर्थ श्लोकों में गणपति, पार्वती, अच्युत, राधा और रुक्मणी की स्तुति की है। आगे गुहिलवंश की धर्मसंस्थापन तथा कार्यक्षमता की प्रशंसा है। जहां हम्मीर का वर्णन है उसकी तुलना अच्युत, कामदेव, ब्रह्मा, शंकर तथा कर्ण से की है। उसके द्वारा हजार गौओं के दान देने का भी उल्लेख इसमें मिलता है। क्षेत्रसिंह के समय की समृद्धि का वर्णन उसके द्वारा स्थापित शान्ति से है जो अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण भंग हो गई थी। लाखा को भी इसमें एक वीर योद्धा के रूप में उपस्थित किया गया है। मोकल की विजयों में चीन, कश्मीर को सम्मिलित कर ऐतिहासिक तथ्यों को नष्ट किया गया है, परन्तु इसमें दिये गये नागौर के सुलतान को परास्त करने का वर्णन तथ्यपूर्ण है। मोकल के द्वारा चित्तौड़ में प्रासादों के निर्माण, सुवर्ण तुलादान तथा द्वारिकाधीश के मन्दिर का बनाना रोचक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसमें दिये गये मेदपाट तथा चित्तौड़ की प्राकृतिक स्थिति, झरने, तड़ाग आदि का वर्णन

---

१६३. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६७।

१६४. भाव. इं. नं. ६, पृ० ९६–१०८;
ए. इ. भा० २, पृ० ४०८–४१०;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, नं. ३५, पृ० ७।

वास्तविकता लिए हुए है और वह लेखक का इस भाग से परिचित होना बतलाता है। महाराणा लाखा द्वारा झोटिंग भट्ट को प्रश्रय देने वाली बात उस समय की विद्योन्नति का सूचक है। इसका समय वि० सं० १४८५ माघ कृष्णा ३ है।

प्रस्तुत प्रशस्ति का रचयिता विष्णुभट्ट का पुत्र एकनाथ था जो दशपुर (दशोरा) जाति का था। मन्दिर का जीर्णोद्धार सूत्रधार बीजल के वंशज तथामना के पुत्र वीसल ने अपने अनेक सहयोगियों की सहायता से करवाया। वीसल शिल्प विद्या में बड़ा निपुण था और राणा का कृपापात्र भी था। वीसल ही इसका उत्कीर्णक था।

इसके कुछ श्लोक के पद इस प्रकार हैं—

"पीरोजं कीर्तिवल्ली कुसुममुरुमतिर्योकरोत्संगरस्थः ॥५१॥"

"प्रासादं रचितोपचाग्मकरोद्भूमीपतिर्मोकलः ॥६१॥"

शृङ्गी ऋषि शिलालेख[१६५] (१४२८ ई०)

प्रस्तुत लेख एकलिंगजी से अनुमान ६ मील दक्षिण-पूर्व में शृङ्गी ऋषि नामक स्थान में तिवारे में लगा हुआ है। इसका समय वि. सं. १४८५ श्रावण शुक्ला ५ का है। इस लेख में समानान्तर दो दरारें हो गई हैं और इसके तीन टुकड़े हो गये हैं। फिर भी यह १'.१०"×१'.३" के श्याम पत्थर पर ३१½ पंक्तियों में उत्कीर्ण है और यथा स्थान लगा हुआ है। इसमें संस्कृत भाषा उपयोग में लाई गई है और सम्पूर्ण लेख ३० श्लोकों में है। इसकी रचना कविराज वाणीविलास योगीश्वर ने की और सूत्रधार हादा के पुत्र फना ने इसे खोदा।

यह लेख मोकल के समय का है जिसने अपने धार्मिक गुरु की आज्ञा से अपनी पत्नी गौराम्बिका की मुक्ति के लिए शृङ्गी ऋषि के पवित्र स्थान पर एक कुंड को बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा की। लेख के प्रारम्भ में विद्यादेवी की प्रार्थना की गई है और फिर हम्मीर, क्षेत्रसिंह, लक्षसिंह और मोकल की उपलब्धियों का वर्णन किया गया है। हम्मीर के बारे में इसमें उल्लिखित है कि उसने झालावाड़ के स्वामी को परास्त किया, ईडर के शासक को मारा, पालनपुर को भस्म किया तथा भीलों को परास्त कर भोमट और वागड के भागों पर अधिकार स्थापित किया। उसके पुत्र क्षेत्रसिंह ने अमीशाह (मालवा के प्रान्त पति) को परास्त किया और इसके फलस्वरूप धनराशि तथा कई घोड़े उसके हाथ पड़े। उसने मांडलगढ़ को भी नष्ट किया। उसके पुत्र लाखा ने त्रिस्थली से—काशी, प्रयाग और गया—हिन्दुओं से लिए जाने वाले कर को हटवाया और गया में मन्दिर बनवाये। लाखा के पुत्र मोकल के सम्बन्ध में भी लेख में उल्लेख किया गया है कि उसने फीरोज खाँ (नागौर) तथा अहमद (गुजरात) से दो युद्ध लड़े और उन्हें परास्त किया।

---

१६५. ए. रि. रा. म्यू. अजमेर, १९२४–२५;
ए. इं, जि. २८, पृ० २३०–२४१;
गोपीनाथ शर्मा—बिब्लियोग्राफी, सं० ३४, पृ० ६–७।

इन राजनीतिक सूचना के अतिरिक्त मोकल के सम्बन्ध में हमें यह भी सूचना इस लेख से मिलती है कि उसने श्री एकलिंगजी के मन्दिर के चारों ओर प्राचीर तथा तीन द्वार बनवाये और जीवन में २५ बार उसने सोना, चाँदी और बहुमूल्य पदार्थों का तुलादान किया और उसे ब्राह्मणों को बाँट दिया। इनमें से एक तुलादान पुष्करराज में भी किया गया था, जो तीर्थयात्रा का बहुत बड़ा केन्द्र है। इसमें भीलों का गुहा में रहने का उल्लेख इनकी सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता है।

इस लेख की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

पंक्ति ४–५. "चेलाख्यं पुरमग्रहीदरिगणान्भिल्लान्गुहागिहकान्जित्वा तानखिलान्निहत्य च बलाख्यातासिना संगरे"

पंक्ति १७. सत्कपाटविलसद्वारत्रयालंकृतः कैलासंनुविहायशंभुरकरो घात्राधिवासे मतिम्"

पंक्ति ३०. "विद्वद्वृद [विभूषि] तः समकरोद्वापी प्रतिष्ठामिह"

पदराड़ा का लेख[१६६] (१४३३ ई०)

यह पदराड़ा का लेख कुंभाकालीन सबसे प्रथम लेख के रूप में प्रकाश में आया है। मोकल के एक अप्रकाशित लेख से, जो साहित्य संस्थान उदयपुर में संग्रहीत है; प्रमाणित होता है कि वि० सं० १४८७ ज्येष्ठ सु० ५ में मोकल मेवाड़ का शासक था। निजामुद्दीन व फरिश्ता के अनुसार भी वि० सं० १४८९ में मोकल जीवित था। ऐसी दशा में इस लेख का यह महत्त्व है कि कुंभा ने राज्य प्राप्ति के बाद विद्रोहियों को दबाया न कि रणमल ने, जैसाकि जोधपुर की ख्यातों में वर्णित है। इसमें पदराड़ा का नाम 'पाटकेपद्र' से सम्बोधित किया है। अंतिम पंक्ति के अक्षर जाते रहे हैं, परन्तु अन्तिम शब्द 'व इसरा' से लेख के उत्कीर्णकर्ता का बोध होता है। लेख में कुल ८ पंक्तियां हैं और इसमें भाषा संस्कृत गद्य है।

इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :

"संवत् १४९० वर्षे तथा शाके १३५६ प्रवर्तमाने वसंतऋतौ वेशाषमासे कृ (कृ)ष्ण पक्षे सोम उत्तराफाल्गुननक्षत्रे एवमादि महाराणा कुंभकर्ण विजय राज्ये"

देलवाड़ा का ऋषभदेवजी के मंदिर का लेख[१६७] (१४३४ ई०)

इस लेख में 'मांडवी' पर लगाये जाने वाली लागों का जिकर है और अन्य कर मापा, पट्टसूत्रीय आदि करों का उल्लेख है। ऐसे भागों को ग्रामों में सम्मिलित किया गया है। इसमें संघ के एवं सेलहथ के महत्त्व को भी बतलाया गया है। पंद्रहवीं शताब्दी की स्थानीय भाषा को समझने के लिए ऐसे लेख से हमें बड़ी सहायता मिलती है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है :

---

१६६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१६७. नाहर, लेख संग्रह, भा० २, सं० २००६, पृ० २५५–५६।

"संवत् १४९१ वर्षे कार्तिक सुदि १ सोमे राणा श्री कुंभकर्ण विजय राज्ये उपकेश ज्ञाति साह साहणा सारंगेना मांडवी उत्परे लागू कीधु । सेलहथि साजणि कीधू । अंके टका चउद १४ जको मांडवी लेस्यइ सु देस्यई । चिहुजणे वइसी ए रीति कीधी । श्री धर्मचिंतामणि पूजा निमित्ति । सा रणमल मह डूंगर से हाला साह साडा साह चांप वइसी विडु रीति कीधी । एक वोल लोपवा को न लहई । टंक ५ देउलवाडानी मांडवी ऊपरी टंका ४ देउलवाडाना मापा ऊपरि टंका १ देलवाड़ा नी पटसूत्रीय ऊपरी । एवं करिई टंका १४ श्री धर्म चिंतामणि पूजा निमित्त सा सारंग समस्त संघि लागु की धउ । शुभं भवतु । ए आसु जिको लोपई तहेरहि राणा हमीर राणा षेता राणा लाषा रा मोकल राणा कुंभकर्णनी आणछइ । श्री संघनी आण"

देलवाड़ा का लेख[168] (१४३४ ई०)

प्रस्तुत लेख में १८ पंक्तियां हैं जिसमें कुछ प्रारंभिक भाग को छोड़कर मूल भाग स्थानीय प्रचलित भाषा में है । इस लेख से हमें पन्द्रहवीं शताब्दी की राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक अवस्था की जानकारी होती है । इसमें सहणपाल और सारंग के द्वारा जो मोकल और कुंभा के समय के विशिष्ट अधिकारी थे, अपने अधीनस्थ मंडपिकाओं से कर के कुछ अंश को धर्मचिन्तामणि की पूजा के निमित्त दिलाये जाने की व्यवस्था का उल्लेख है । इसमें जहाँ मंडपिका से धर्मचिन्तामणि की पूजा के लिए १४ टंका दिलाया जाना अंकित है वहाँ सहणपाल के साथ जो मुख्यमन्त्री था, सेलहथ (स्थानीय अधिकारी) तथा अन्य पंचों का भी उल्लेख है । इससे यह स्पष्ट है कि मंडपिका के प्रबन्धकों में मन्त्री, सेलहथ तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति होते थे । इन १४ टंकों का ब्यौरा भी इस प्रकार मिलता है । देलवाड़ा की मंडपिका से ५ टंका, देलवाड़े के मापा (एक प्रकार का टेक्स) से ४ टंका, देलवाड़ा के मणहेडावटा पर (मण के बोझ पर लिया जाने वाला कर) २ टंका, देलवाडा के खारीवटा पर (नमक के कर पर) २ टंका और देलवाड़ा के पटसूत्रीय पर (कपड़ा तथा सूत) पर १ टंका लेने की व्यवस्था थी । इस लेख से हमें कई स्थानीय करों की जानकारी होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि देलवाड़ा उन दिनों अच्छा व्यापार का केन्द्र था । यह लेख वि. सं १४९१ कार्तिक शुक्ला २ सोमवार का है ।

"इसकी कुछ पंक्तियों का अंश इस प्रकार है—

पंक्ति ९–११ साह सहणा साह सारंगेन मांडवीउपरिलागु कीधु
सेलहथि साजणि कीधु अंके टंका चउद १४
जको मांडवीलेस्यइसु देस्यई । चिहुजणे वइसी
ए रीति कीधी'

१६८. जैन लेख संग्रह, भा० २, संख्या २००६, पृ० २५५–२५६ ।

नागदा के लेख[१६६अ] (१४३४ ई०)

ये तीन लेख नागदा के जैन मन्दिर के हैं जो वि. सं. १४९१ के माघ वदि ५ व माघ शुक्ला ५ बुधवार के हैं। इनमें श्रेष्ठि रामदेव के परिवार, उसकी भार्या, पुत्र और पौत्रों के नाम मिलते हैं। इनका महत्त्व श्रेष्ठि परिवार की धर्मनिष्ठा जानने, बहु-विवाह तथा संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली की जानकारी के लिए है। इनके द्वारा हमें यह भी विदित होता है कि धार्मिक उत्सवों के अवसर पर संपूर्ण कुटुम्ब का साथ होना सामाजिक व्यवस्था का अंग था और ऐसे कार्य सभी के सामूहिक श्रेय के लिए किये जाते थे। इन लेखों से कई जैन आचार्यों के नाम भी हमें उपलब्ध होते हैं जिनके उपदेश के फलस्वरूप ऐसे कार्य किये जाते थे। ऐसे आचार्यों में जिनवर्द्धनसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसागरसूरि आदि मुख्य थे। ये आचार्य उस युग के अच्छे विद्वान् होते थे और उनका समाज पर बड़ा प्रभाव होता था।

देलवाड़ा का लेख [१६६ब] (१४३६ ई०)

ये लेख संवत् १४९३ वैशाख कृष्णा ५ का है जिसमें वर्णित है कि पंडित लक्ष्मणसिंह ने, जो देलवाड़ा का निवासी था, पार्श्वनाथ स्वामी के जिनालय में दो कायोत्सर्ग पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाईं। प्रस्तुत लेख में इस प्राग्वाटवंश का क्रम बतलाया गया है। इसमें अंकित है कि श्रे. झांझा की धर्मपत्नी लक्ष्मीबाई के देवपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देवपाल की स्त्री देवलदेवी से श्रे. कुरपाल, श्रीपति, नरदेव, धीणा और पंडित लक्ष्मणसिंह उत्पन्न हुए। लक्ष्मणसिंह काछोलीवाल-गच्छीय आचार्य भद्रेश्वरसूरि, श्रीरत्नप्रभसूरि के पट्टालंकार सर्वानंदसूरि का श्रावक था। इस प्रशस्ति में लक्ष्मणसिंह को पंडित की संज्ञा दी है जो शिक्षा का प्रचार वैश्यों में होने का बोधक है। ये परिवार देलवाड़ा का प्रतिष्ठित परिवार था और उसका सदस्य झांझा वहाँ के मंदिर का गोष्ठिक था। उस समय लोक संस्थाओं को गोष्ठिक व्यवस्था द्वारा सञ्चालित किया जाता था।

देलवाड़ा का लेख[१७०] (१४३७ ई०)

ये लेख हासा ने, जो देलवाड़ा का रहने वाला पिछोलिया जाति का था, कायोत्सर्ग प्रतिमा की प्रतिष्ठा के अवसर पर पट्टिका पर उत्कीर्ण कराया। इसका समय १४९४ वि. फाल्गुन कृष्णा ५ है। लेख में देवपाल के वंशक्रम का वर्णन मिलता है जो कुटुम्ब प्रणाली के अध्ययन के लिए तथा श्रेष्ठियों के वंश-क्रम के अध्ययन के लिए बड़ा उपयोगी है। इसके अनुसार देवपाल के सुहडनाम का पुत्र था और उसकी स्त्री सुहड़ादेवी थी। इसके एक पुत्र करणसिंह था और उसकी पत्नी चनूदेवी थी। इसके सात पुत्र हुए जो धार्धा, हेमा, वर्मा, कर्मा, हीरा, काला और हीसा नाम से

---

१६६. अ एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१६६. ब एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१७०. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

विख्यात थे। ईसी हीसा ने उक्त प्रशस्ति और प्रतिष्ठा कार्य करवाया।

देलवाड़ा का लेख[१७१] (१४३७ ई०)

यह लेख भी वि. १४९४ का है जिसमें वीसल परिवार का वर्णन मिलता है। वीसल का पिता वत्सराज था। वीसल के सम्बन्ध में इसमें लिखा है कि उसने क्रियारत्न समुच्चय की १० प्रतियाँ लिखाई थी। उन दिनों जब मुद्रण की कोई व्यवस्था न थी तो समृद्ध लोग पुस्तकें लिखवाते थे और उनका वितरण करवाते थे। इस प्रकार शिक्षा और धर्म का प्रचार होता रहता था। वीसल को एक धर्मधुरीण, सुवर्णमुकट तथा संघनायक, विवेकी तथा समृद्ध व्यक्ति के रूप में अन्यत्र भी वर्णित किया गया है।

नागदा का लेख[१७२] (१४३७ ई०)

यह लेख नागदा गाँव की अद्भुत जी की मूर्ति पर ८ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इसका समय संवत् १४९४ माघ शुक्ला ११ गुरुवार है और इसकी भाषा संस्कृत गद्य है। इसमें श्रेष्ठि रामदेव परिवार का वर्णन है जो महाराणा खेता के समय से बड़ा प्रसिद्ध रहा था। इस लेख में रामदेव के पूर्वज लक्ष्मीधर से वंशावली उपलब्ध होती है। इस लेख से रामदेव मन्त्री की दो स्त्रियाँ—मेलादे और माल्हणदे के नाम मिलते हैं। इसी तरह इसमें उसके पुत्र सारंग के हीमादे और लषमादे नामक दो भार्याओं का उल्लेख मिलता है। इस लेख से सिद्ध है कि उस समय बहु-विवाह एक प्रचलित-सा रिवाज-सा था और संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली थी। धार्मिक कार्यों में सम्पूर्ण कुटुम्ब का सहयोग रहता था। इसके अतिरिक्त इसमें सारंग द्वारा श्री शांतिनाथ के बिंब की संस्थापना करवाने का उल्लेख है। इसमें सूत्रधार मदन के पुत्र धरणा द्वारा मूर्ति बनाना वर्णित है। यह लेख एक समृद्ध परिवार की जानकारी के लिए तथा उस समय की प्रचलित प्रणालियों के अध्ययन के लिए बड़े महत्त्व का है।

इसकी कुछ पंक्तियों का अंश उद्धृत है—

पंक्ति ४–५ "लक्ष्मीधर सुत सा. लाधू तत्पुत्र साधु श्री रामदेव तद्भार्या प्रथमा मेलादे द्वितीया माल्हणदे।"

पंक्ति ५–६ 'लषमादे प्रमुख परिवार सहितेन सा. सारंगेन निजभुजोपार्जितलक्ष्मीसफलीकरणार्थं.....श्री शांतिजिनवरबिंबं सपरिकरं कारितं''

चित्तौड़ का शिलालेख[१७३] (१४३८ ई०)

इस लेख का एक खण्ड सातबीसदेवरी के अधिकारी के पास देखा गया था, जिसकी लम्बाई चौड़ाई २"×१२" के लगभग है और जो काले पत्थर पर उत्कीर्ण

---

१७१. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१७२. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१७३. वरदा, वर्ष ११, अंक २।

है। इसमें ५/२" के अक्षर हैं जो १३ पंक्तियों में हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पूरा शिलालेख इससे काफी बड़ा रहा होगा। इसमें १०४ श्लोक हैं।

प्रस्तुत लेख में श्लोक संख्या ६ तक सर्वज्ञ, सरस्वती, वृषभदेव, शांतिनाथ, नेमीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की स्तुति है। इसके पश्चात् मेवाड़ देश का वर्णन आता है जिसमें कई प्रासाद और कीर्तिस्तम्भ हैं। यहाँ के शासकों का वंश वर्णन हम्मीर से आरम्भ होता है जिसे तुर्कों को जीतने वाला कहा है और मोकल को सपादलक्ष का विजेता और न्यायी शासक बतलाया है। इसमें चित्तौड़ का वर्णन भी बड़ा रोचक है।

लेख का महत्त्वपूर्ण वर्णन मन्दिर के निर्माता के सम्बन्ध में आता है जहाँ साधु गुणराज की वंशावली उल्लिखित है। इसी तरह चित्तौड़ के श्रेष्ठि वीसल के पौत्र आसपाल के सम्बन्ध में लिखा है वह कर्णावती जाकर व्यापार करता था। इसी वंश के भाई और भतीजों और उनकी पत्नियों का वर्णन आता है जिसमें गुणराज के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि वह गुजरात के बादशाह का दरबारी था और उसके वहाँ बड़ा प्रभाव था। १४६८ के भीषण दुष्काल में इसके द्वारा विपुल सम्पत्ति के व्यय से अनेकों लोगों को सहायता पहुँचाई गई थी। इसी तरह १४७७ की शत्रुञ्जय यात्रा में सोमसुन्दरसूरि के नेतृत्व में इस श्रेष्ठि ने उसमें सहयोग दिया और बादशाह के फरमान द्वारा यात्रा में सुविधाएँ प्राप्त कीं। गुजरात के उस समय के बादशाह की धर्म सहिष्णु नीति पर इससे प्रकाश पड़ता है।

फिर आगे गुणराज के पुत्र वाल्हा का वर्णन मिलता है जो महाराणा मोकल का कृपापात्र था और चित्तौड़ का अच्छा व्यापारी था। उसका एक दूसरा पुत्र कालु भी राज्य का सम्मानित अधिकारी था। मोकल की आज्ञा से इस मन्दिर को बनवाया गया, जहाँ यह शिलालेख लगाया गया था। लाखा सूत्रधार के पुत्र नारद ने इस प्रशस्ति को उत्कीर्ण किया। इसका लेखक संवेगयति था जिसने सुवर्ण अक्षरों में उक्त लेख को लिखा और जो देवकुल पाटन का विद्वान था। प्रशस्ति की रचना चरित्ररत्न गणि नामक जैन साधु ने की। यह प्रशस्ति अपने आप में बड़े महत्त्व की है जो उस समय के अच्छे व्यापारियों तथा विद्वानों का हमें परिचय देती है। चित्तौड़ की समृद्धि पर भी इस लेख से अच्छा प्रकाश पड़ता है। धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति की भी इस से हमें जानकारी प्राप्त होती है। इसमें दिये गये पत्नियों के नाम से बहु-विवाह की परम्परा, समृद्ध परिवारों में थी, इसका अनुमान हमें होता है। उस समय के व्यापारियों का राजकीय स्तर में भी अच्छा प्रवेश था जो इस प्रशस्ति से स्पष्ट है। इस समय के दुष्काल का भी पता हमें इससे चलता है जबकि एक समृद्ध नागरिक दुष्काल पीड़ितों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता था।

कुछ श्लोक के पद यहाँ उद्धृत हैं—

"पुरे पुरे श्री मलिकाश्चरणका: सोपायना: समुखनागता:"

यह श्लोक का पद बड़े महत्त्व का है। इसमें जैन संघ की यात्रा के सम्बन्ध में

उल्लिखित है कि जहाँ-जहाँ संघ जाता था वहाँ के शासक हिन्दू या मुसलमान हों उसकी अगवानी करते थे।

प्रशस्ति के उत्कीर्ण करने के सम्बन्ध में श्लोक १०२ के पद में वर्णित है यथा—

"लक्षस्य सूत्रधारस्य नन्दनो नारदः प्रशस्तिमिमाम् उत्कीर्णवान्"

कडिया का लेख[१७४]

प्रस्तुत लेख साहित्य संस्थान उदयपुर में संग्रहीत है जो कडिया ग्राम में दिये गये अनुदान के सम्बन्ध का है। यह ४'×२' के आकार का ३६ पंक्तियाँ का है। इसमें नागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा का उपयोग किया गया है। यह लेख ६० श्लोकों का है। जिनमें अनुप्रास का जगह-जगह प्रयोग किया गया है। इसमें तिल्लभट्ट को मेवाड़ के राजपरिवार के गुरु रूप में माना है। उसके लिए महाराणा लाखा द्वारा वाजवी ग्राम माफी में दिये जाने का उल्लेख है, इस गाँव को देने के समय उसकी सीमा भी वर्णित है तथा उसके साथ वहाँ लिये जाने वाले हाट, मापा, कपड़ों का कर आदि जो मंडपिका से राज्य के लिए लिये जाते थे उनको भी माफ करने का उल्लेख है। इसमें तिल्लभट्ट की स्त्री तारादेवी का वर्णन बड़ा रोचक है और उसके प्रपिता तथा पिता के नाम क्रमशः नादा और कर्णा मिलते हैं। उक्त भट्ट के लिए लिखा है कि महाराणा कुम्भा भी इस गुरु को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था। प्रशस्ति के अन्त में शिल्पी हादा के पुत्र करणा एवं फणा का उल्लेख है जो नागदा के रहने वाले थे। इसमें प्रशस्तिकार का नाम मुरारी का पुत्र कल्याण दिया गया है। इस प्रशस्ति से उस समय की प्रचलित विद्वानों की उपाधि साहित्यरत्नाकर का बोध होता है। प्रशस्ति का समय माघ मास शुक्ल पक्ष की पंचमी गुरुवार, वि. स. नभ-ख-भूतेंदु विराजताब्दे दिया गया है। प्रस्तुत लेख से उस समय यज्ञों की परम्परा, उपवन तथा सरोवरों की विशेषता, शिक्षापद्धति, कौटुम्बिक जीवन, गुरुभक्ति आदि पर प्रकाश पड़ता है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंक्ति ८. "य प्रावारम्यवाचां बहुलरसमुचां सत्प्रवाचां मुवाचा-मर्वाचामप्य
वा चीं गतिमिह दिशति स्वीयवाणी विलासैः।
यद्दृष्टचैव प्रकृष्ट प्रगट पटुवचरचातुता कृष्ट पुष्टः
क्ष्मावीशोयं जगति विजयते ध्वस्तवादि प्रवादः ॥१३॥"

राणकपुर प्रशस्ति[१७५] (१४३९ई०)

प्रस्तुत प्रशस्ति राणकपुर के चौमुख मन्दिर के बाएं स्तम्भ में लगे हुए पत्थर

१७४. ए. रि. रा म्यू. अजमेर, १९३२, पृ० ४-६;
वरदा वर्ष ६, अंक ३, पृ० २।

१७५. भा. इ. नं० ८, पृ० ११४; भावनगर प्राचीन शोध-संग्रह, पृ० ५६-५८

में ३'.३"×१'×१" के स्थान में उत्कीर्ण है, जिसमें नागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा का गद्य प्रयुक्त किया गया है। इसका समय वि. सं. १४९६ है तथा इसमें ४७ पंक्तियाँ हैं। इस प्रशस्ति का एक ऐतिहासिक महत्त्व है। इसके द्वारा हमें मेवाड़ के राजवंश का, धरणा श्रेष्ठि वंश का तथा उसके शिल्पी का परिचय मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें मेवाड़ के राजपरिवार के वंशक्रम को बड़ी छानबीन के साथ लिखने का सफल प्रयत्न किया गया है। इतना होते हुए भी प्रशस्तिकार ने गुहिल को बापा का पुत्र लिख दिया है। सम्भवतः यह भून वेद शर्मा द्वारा की गई चित्तौड़ की तथा आबू की वि० सं० १३३१ की प्रशस्ति से उद्धृत की है। ऐसा लगता है कि इस प्रशस्ति के रचयिता ने वि० सं० १०२८ का नरवाहन का शिलालेख न देखा हो। यदि ये सूचना उसे होती तो यह भूल न होने पाती। परन्तु इस प्रशस्ति से एक स्पष्टीकरण अवश्य होता है कि इसमें बापा और कालभोज को पृथक्-पृथक् व्यक्ति बतलाया है जिससे इन दोनों को एक ही नाम मानने का जो डॉ० ओझा का सुझाव है उसमें शंका की संभावना हो जाती है।

इसी तरह वंशावली के वर्णन में बापा से लेकर कुम्भा के नामोल्लेखन महेन्द्र, नागादित्य, अपराजित, महेन्द्र द्वितीय, खुम्माण प्रथम, मत्तट, मुम्माण द्वितीय, भर्तृभट्ट द्वितीय, अम्बाप्रसाद, शुचिवर्मा के नाम छोड़ दिये हैं। इसके अतिरिक्त शीशोदे की शाखा के वंशज भुवनसिंह का उल्लेख करते हुए भीमसिंह को टाल दिया है, जिसकी उपलब्धि अपने आप में महत्त्व की है।

जहाँ कुम्भा का वर्णन इसमें दिया गया है वहाँ उसके विरूदों और विजयों का अच्छा वर्णन है। ये विजये बूंदी, गागरोण, सारंगपुर, नागोर, चाटसू, अजमेर, मंडोर, मांडलगढ, खाटू आदि हैं। इस अर्थ मे यह प्रशस्ति चित्तौड़ और कुंभलगढ़ की राजकीय प्रशस्ति की पोषक हो जाती है। इसमें महाराणा कुम्भा को विजेता के अतिरिक्त एक सफल शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अपने वंश परम्परा के अनुकूल धर्माचरण, न्यायपरायणता तथा प्रजापालन में निपुण था।

इस प्रशस्ति से श्रेष्ठि धरणा के पूर्वज और उसके पुत्रों का भी हमें पता चलता है। धरणा प्रथम सिरोही जाकर मेवाड़ में आ बसा, ये घटना मेवाड़ में सुख शांति होने का प्रमाण है। इसी अवस्था से प्रभावित होकर उसने अपने द्रव्य का उपयोग चतुर्मुख प्रसाद के निर्माण मे किया। इसमे मांगण, कुरपाल, रत्ना, धरणा और उसके पुत्र जाखा और जावड़ इस वंश की परम्परा में उल्लिखित हैं।

इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे आचार्यो का नाम— जैसे श्रीजगच्चन्द्रसूरि श्री देवेन्द्रसूरि, श्री सोमसुन्दरसूरि उल्लिखित है। इसका निर्माता सूत्रधार देपाक या दीपा था यह भी सूचना प्रशस्ति के अन्त में दी गई है।

ए. रि. आ. आ. स. इ., १९०७–०८, पृ० २१४–१५;
गोपीनाथ शर्मा–बिबलियोग्राफी, नं० ३९, पृ० ७।

इसके कुछ पंक्तियों के अंश इस प्रकार हैं—

पंक्ति १७–२० "कुल करनतपंचाननस्य। विपमतमरभंगसारंगपुर
गागरणनराणा का ऽजयमेरुमंडोरमंड लकरबूंदि
खाटूचाटसूजानादिनानामहादुर्ग लीलामरत्र ग्रहण
प्रमाणितजित काशित्वाभिमानस्य"

चारभुजा का लेख[१७६] (१४४४ ई०)

मेवाड़ राज्य के चारभुजा कस्बे के प्रसिद्ध चारभुजा के मन्दिर में वि० सं० १५०१ (१४४४ ई०) का एक शिलालेख लगा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर पहले से बना हुआ था जिसका जीर्णोद्धार खरवड जाति के रावत या राव महीपाल, उसके पुत्र लक्ष्मण, उसकी स्त्री क्षीमिणी तथा उसके पुत्र झाझा, इन चारों ने मिलकर करवाया। उक्त लेख में इस कस्बे का नाम बदरी लिखा है। सम्भवतः पहिले इस स्थान का नाम बदरी रहा हो, क्योंकि चार भुजा को भी बदरीनाथ का रूप मानते हैं।

हारीतराशि का लेख[१७७] (१४४५ ई०)

यह लेख हारीतराशि की मूर्ति के नीचे खुदा हुआ है जिसका समय वि० सं० १५०२ श्रावण शुक्ला पंचमी गुरुवार का है। लेख में वर्णित है कि लकुलीश मतावलम्बी साधु वेदगर्भराशि ने हारीतराशि की मूर्ति को विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में स्थापित करवाया। इसमें कुल पाँच पंक्तियाँ हैं जो संस्कृत गद्य में हैं।

चित्तौड़ के शिल्पकारों के सम्बन्धित[१७८] लेख (१४४२–१४५८ ई०)

चित्तौड में मन्दिर और राजप्रासादों का काम अलाउद्दीन के आक्रमण के उपरान्त पुनः आरंभ किये जाने का बीड़ा महाराणा कुंभा ने उठाया। इसीलिए कई मन्दिरों तथा महलों के आसपास प्रस्तर खण्डों पर सहस्त्रों शिल्पियों के नाम उत्कीर्ण किये हुए मिलते हैं। इन नामों में उस शिल्पकार परिवार के सदस्यों के नाम मुख्य हैं जिसने कीर्तिस्तंभ, कुंभा के महलों के कुछ भाग तथा आसपास के कुछ मन्दिरों का निर्माण कार्य का नेतृत्व किया था। ये ही परिवार, चित्तौड़ के भाग के निर्माण सम्बन्धी कार्यों की देखरेख भी रखता था। वि. १४९९ फाल्गुन शुक्ला ५ के लेख में सूत्रधार जइता और उसके पुत्र नापा, पुंजा के नाम मिलते हैं जो समाधीश्वर को वन्दना करते हैं। इसी प्रकार वि. सं. १५०७ के एक लघु लेख में जइता का नाम अंकित है। इसी तरह वि. सं १५१० के दो लेखों में सूत्रधार पामा तथा जइता के पुत्र नापा के नाम मिलते हैं। एक अन्य वि. सं. १५१५ के लेख में जइता के पिता

---

१७६. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ३६।

१७७. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१७८. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

लाषा का नाम उपलब्ध होता है । वि. सं. १४६५ के महावीर जैन प्रशस्ति में सूत्रधार नारद को लाषा का पुत्र कहा गया है । इस प्रकार खण्ड में मिलनेवाली सूचना से हमें कुंभा के एक विशिष्ट सूत्रधार परिवार का परिचय मिलता है जिसमें लाषा के दो पुत्र जइता तथा नारद प्रतीत होते हैं और जइता के पुत्र नापा, पुंजा आदि हैं । लाषा के लिए 'सकलवास्तुशास्त्रविशारद' अंकित करना प्रमाणित करता है कि यह परिवार वास्तुशास्त्र का अच्छा वेत्ता था और उसी के आधार पर इस परिवार के सदस्यों ने कुंभाकालीन निर्माण कार्य (चित्तौड़ के इलाके में) बड़ी निपुणता से किया ।

वेला का लेख[१७९] (१४४८ ई०)

चित्तौड़ के शृंगार चंवरी के स्तंभ पर एक लघु लेख उत्कीर्ण है जिसमें वर्णित है कि भंडारी वेला ने, जो महाराणा कुंभा का एक विशिष्ट अधिकारी था, इस मन्दिर का निर्माण करवाया । इसमें लाखा, मोकल तथा कुंभा के नाम उल्लिखित हैं और वेला के पिता साह कोला का कोपाध्यक्ष के रूप में होने का वर्णन है । लेख में मन्दिर की प्रतिष्ठा करने वाले जिनसागरसूरि के शिष्य जिन सुन्दरसूरि तथा अन्य साधुओं के नाम भी अंकित हैं । मन्दिर की कला देखने से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर वेला के पहिले बना हुआ था, उसने संभवत: इसकी मरम्मत करवाई और मुस्लिम आक्रमणों से नष्टभ्रष्ट हो जाने के कारण उसकी पुन: प्रतिष्ठा करवाई । इसका समय १५०५ विक्रमी है और इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत गद्य है । मूल लेख के कुछ अंश को यहाँ उद्धृत किया जाता है :

"संवत् १५०५ वर्षे राणा श्री लाषापुत्र राणा श्री मोकल नन्दन राणा श्री कुंभकर्ण कोश व्यापारिणा साह कोल्हा पुत्र रत्न भंडारी श्री वेलाकेन..............'

आबू का सुरह लेख[१८०] (१४४९ ई०)

प्रस्तुत लेख सुरह के रूप में आबू में है जिसका समय वि० सं० १५०६ आषाढ़ शुक्ला २ है । इसको महाराणा कुम्भा के समय अचलगढ़ के मन्दिर की सरस्वती देवी के सान्निध्य में लिखा गया था । लेख की लिपि उस समय की ग्रन्थ लिपि से ज्यादा मेल खाती है जिससे अनुमान लगाया जाता है कि इसको किसी ग्रन्थों के लिपिकार ने लिखा हो । इससे उस समय लिए जाने वाले करों पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है । इसमें वर्णित है कि देलवाड़ा के मन्दिरों के लिए यात्रा करने वालों से मंडपिका कर, दाण, बलावी, रखवाली, गाड़ियों और बैलों पर लिए जाने वाले कर जो डूंगरभोजा को मया किया हुए थे, वे अब नहीं लिए जायेंगे । इसकी सभी व्यवस्था 'सुरह' लेख में लिखदी गई और जो इसको नहीं मानेगा वह पाप का भागी होगा । इसमें यह भी उल्लिखित किया गया कि इधर यात्रा करने वाले यात्रियों से

---

१७९. एक प्रतिलिपि के आधार पर ।

१८०. एक प्रतिलिपि के आधार पर ।

एक-एक 'फदिया' तथा अन्दुगाणी ? चार विशिष्ट भण्डारी वसूल करेगा। लेख को आबू में बोली जाने वाली स्थानीय भाषा में लिखा गया था, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"श्री नेमिनाथ तथा बीजो श्राव्य के देहरे राण मुंडिकं वलानी रषवाली गाडा पोठ्याराणि मंह डूगर भोजा जोग्यं मया उधारी जिको ज्यात्रि आवि तिहिरू सर्वमुकावुं ज्यात्रा समंधि आचन्द्राक लगि पायक इको कोई माँगवा न लहि राणि श्री कुंभकर्ण मं. डूगरभोजा ऊपरि मया उधारी यात्रा मुगति कीधी।"

वीलिया गाँव की बावड़ी का लेख[१८१] (१४४९ ई०)

यह लेख डूंगरपुर जिले के वीलिया गाँव की एक बावड़ी का है, जिसका समय वि० सं० १५०५ चैत्र सुदि १३ (ई० स० १४४९ तारीख ६ अप्रेल) है। इसका आशय यह है कि इस बावड़ी का निर्माण रावल गजपाल की राणी लीलाई ने करवाया था और उसका जीर्णोद्धार रावल सोमदास की राणी सुरत्राणदे ने करवा कर इस प्रशस्ति को लगवाया। इससे राज्य परिवार की स्त्रियों का लोकोपकारी कार्यों में रुचि लेना प्रकट होता है।

राणकपुर के कुछ लघु लेख[१८२] (१४५० ई०)

ये लेख राणकपुर के प्रासाद और देव कुलिकाओं पर उत्कीर्ण हैं जिनकी भाषा संस्कृत गद्य है। इनका समय वि० सं० १५०७ है। इनके द्वारा हमें कई श्रावकों के सम्पूर्ण परिवार के व्यक्तियों के नामों का बोध होता है। ऐसे परिवारों में केल्हा का परिवार, सीधवी भीमा का परिवार आदि हैं। इन लेखों से धार्मिक कार्यों को सामुहिक रूप से किसी के श्रेय के निमित्त सम्पादित किया जाना व्यक्त होता है। इनमें से एक लेख में भीमा की तीन स्त्रियों के नाम—भामिणी, नानलदेवी तथा पउमादेवी उल्लिखित हैं जो बहु-विवाह प्रथा पर प्रकाश डालते हैं।

नाडोल का लेख[१८३] (१४५१ ई०)

नाडोल के वि० सं० १५०८ के लेख में जगसी परिवार का वर्णन मिलता है जिसने कई चतुर्विंशति जिन प्रतिमाओं को बनावाया और उनकी प्रतिष्ठा देवकुलपाटक के रत्नशेखर से करवाई। इसी अवसर पर अन्य स्थानों में भेजे जाने के लिए भी प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाई गई थीं। इस लेख में दिये गये स्थानों के नाम से राजस्थान के तथा निकटवर्ती प्रमुख जैन यात्रा के स्थानों का हमें बोध होता है। वे स्थान ये थे—चांपानेर, चित्रकूट, जाउरनगर, कायद्राह, नागहृद, ओसियाँ, नागोर, कुंभपुर, देलवाड़ा, श्रीकुण्ड आदि।

---

१८१. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६९।

१८२. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१८३. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

चित्तौड़ के कुछ लघु लेख[१८४] (१५वीं शताब्दी)

ये कुछ लेख कीर्तिस्तंभ पर या यत्र-तत्र उत्कीर्ण हैं जो वि० सं० १४९५, १४९९, १५०७, १५१०, १५१५ आदि के हैं। इनमें सूत्रधार लाषा और उसके पुत्र जइता, नारद तथा जइता के पुत्र नापा, पुंजा, भोमा, चोथा आदि के नाम हैं जो कुम्भा के समय के प्रमुख शिल्पी थे। इन्हीं के द्वारा कीर्तिस्तंभ, कुम्भ स्वामी का मन्दिर, कुछ राजप्रासाद तथा रामपोल आदि का निर्माण हुआ या उनका जीर्णोद्धार कराया गया। एक वि० सं० १५१५ वाले लेख में लाषा सूत्रधार को 'सकल वास्तुशास्त्र विशारद' की संज्ञा दी है जिससे स्पष्ट है कि ये शिल्पी परिवार वास्तुशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। यही कारण है कि कुम्भा का काल शिल्प-कला के विचार से एक समृद्ध काल था।

आसोड़ा गाँव का लेख[१८५] (१४५४ ई०)

यह लेख आसोड़ा गाँव, जिला बाँसवाड़ा का है। इसका समय वि. सं १५१० माघ सुदि ११ (ई० स० १४५४ ता. १० जनवरी) है। इससे सूचना मिलती है कि महारावल गंगपालदेव की जब अस्थियाँ प्रयाग में प्रवेश की गईं उस अवसर पर ब्राह्मण शोभा को आसोड़ गाँव में १ हलवाह भूमि दान दी गई। इससे अन्त्येष्टि क्रिया, अस्थि प्रवेश और उस समय किये जाने वाले भूमिदान तथा हलवाह भूमि के नाप पर प्रकाश प्रड़ता है।

गोमुख का लेख[१८६] (१४५७ ई० ?)

प्रस्तुत लेख चित्तौड़ के गोमुख कुण्ड का है जिसमें संवत् का प्रथम अंक '१' जाता रहा है। इसमें कई पंक्तियाँ भी नष्ट हो चुकी हैं। लेख के कुछ भाग जो पढ़े जाते हैं उनसे यह सूचना मिलती है कि भतृगच्छ के आदिनाथ के मन्दिर में दक्षिणाभिमुख में पादुका लगाई गईं। इस लेख में 'भतृपुर महादुर्गे' 'गुहिल पुत्र विहार' आदि वाक्यों के प्रयोग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह लेख भटेवर के दुर्ग में किसी विहार में लगा हो। भटेवर से सम्भवतः टूटी-फूटी सामग्री किसी समय चित्तौड़ दुर्ग की दुरुस्ती के समय लाई गई हो, जिसमें ये लेख खण्डित हो गया हो या खण्डित अवस्था में हो।

माचेडी की बावली का दूसरा शिलालेख[१८७] (१४५८ ई०)

इसी माचेडी की बावली के दूसरे शिलालेख से प्रमाणित होता है कि उस भाग में बडगूजर वंशी रजपालदेव का राज्य था। यह रजपालदेव रामसिंह का पुत्र था और रामसिंह गोगदेव का पुत्र अथवा पौत्र अनुमानित किया जाता है।

---

१८४. सोमानी, चित्तौड़।

१८५. ओझा, डूंगरपुर का इतिहास, पृ० ६९।

१८६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१८७. रा. म्यू. अजमेर रिपोर्ट १९१८–१९, पृ० ३, लेख संख्या ११।

अचलगढ़ का लेख[१८८] (१४५८ ई०)

इसमें हमें उस समय के आबू क्षेत्र के सूत्रधारों के नाम मिलते हैं। लेख का मूल भाग इस प्रकार है—

"१५१५ अव्बुदगिरी देवडा श्री रावधर सायर डूंगरसिंह विजयराज्ये राजमान्य मंडन भार्या भोली भार्या हाँसी १०८ मन प्रमाण जिनविंव कारितं विज्ञानं सूत्रधार देवाकस्य। मेवाड ज्ञातीय सूत्रधार मिहीपा देवा हला पदा हांपा नाला दाना कला सहित"

कोडमदे-सर का लेख[१८९] (१४५९ ई०)

यह लेख कोडमदे-सर (जोधपुर) नामी तालाव के तट पर, स्थापित कीर्ति-स्तंभ पर अंकित है। इस तालाव के तट पर, जो उसके द्वारा वनवाया गया था, कोडमदे रणमल्ल के मारे जाने की सूचना मिलने पर सती हुई। वह वीकूंपुर और पुंगल के स्वामी भाटी केल्हण की कन्या थी।

इस लेख का अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"संवत् १५१६ [वर्षे] सा [शा] के १३८ [१]
प्रवर्तमाने : [ने] [महा] मांगल्य
भाद्रवा सु [दि] [६] सोमदिनो
हस्त नि [न] [क्षत्रे] सुक [ल] [शुक्ल] जो
[यो] गे
[कौ] लव [करणे]
राठ [उ] [म] हाधिराम श्री
रा [य श्री] जोधा
राय श्री रिणमल सु [त] त [डा]
उ [ग] पत्रिस्टा [प्रतिष्ठा] कार [रि] ता।
माता श्री कोडमदे [नि] मिति [त्तं] की
रति [त्ति] स्तंभ [:] था [पि] ता: [स्थापित:]

कोडमदेसर का लेख[१९०] (१४५९ ई०)

वीकानेर से १५ मील पश्चिम में कोडमदेसर नामक गांव के एक स्तंभ पर वि० सं० १५१६ भाद्रपद शुक्ला सोमवार का लेख है जिससे प्रमाणित होता है कि राव रिणमल के पुत्र राव जोधा ने यहां एक तालाव खुदवाया और अपनी माता

---

१८८. नाहर, जैन लेख, भा० २, सं० २०२५, पृष्ठ २५६।

१८९. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३, १९१७, पृ० २१७–२१८।

१९०. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३, ई० स० १९१७, पृ० २१७–२१८;

ओझा, वीकानेर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ५१।

कोडमदे के निमित्त कीर्तिस्तंभ की स्थापना की।

कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति [१६१] (१४६० ई०)

प्रस्तुत प्रशस्ति चित्तौड़ के कीर्तिस्तंभ की कई शिलाओं का सामूहिक नाम है। परन्तु अभाग्यवश इसकी अन्य शिलाएं तो नष्ट हो चुकी है, अब केवल दो ही शिलाएं अवशेष हैं। पहली शिला में १ से २८ तक श्लोक हैं और दूसरी में १६२ से १८७ तक। यहां पूरी प्रशस्ति समाप्त हो जाती हो ऐसा नहीं है। संभवतः इसके बाद कम से कम एक शिला और होनी चाहिये। ऐसा मानने का आधार यह है कि श्लोक १८७ के बाद वर्णित है कि इसके आगे का वर्णन लघुपट्टिका में अंक क्रम से जानना चाहिये। यदि एक-एक पट्टिका में २५ या २६ श्लोकों का भी औसत मान लिया जाय तो यहां अनुमानतः कुल मिलाकर ८ शिलाएं रही होंगी। वि० सं० १७३५ में प्रशस्ति की अधिक शिलाएं वहां पर विद्यमान थीं जिनकी प्रतिलिपि 'प्रशस्ति संग्रह' में की गई। इस प्रशस्ति संग्रह से कई नष्ट प्रशस्तियों के भागों के वर्णन स्पष्ट हो जाते हैं। फिर भी उक्त समय में भी कुछ शिलाएं नष्ट हो गई थीं, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि १४३–२४ तक के श्लोक प्रशस्ति-संग्रह में भी नकल नहीं हो सके हैं। इतना होते हुए भी इस प्रशस्ति का जो भी अंश बचा है वह इतिहास के लिए बड़े महत्त्व का है।

पहिले दो श्लोकों में शिव और गणेश की स्तुति दी गई है, और फिर श्लोक ३ से ८ तक बापा का वर्णन, जिसमें उसे विपुल पराक्रमी और शिवभक्त कहा गया है। आगे हमीर का वर्णन मिलता है। उसके सम्बन्ध में चेलावाट के जीतने का उल्लेख है। खेता के वर्णन में उसे अमीशाह को तथा रणमल को पराजित करने वाला कहा है। प्रशस्तिकार उसके सम्बन्ध में फिर लिखता है कि खेता ने मेदों को परास्त किया तथा गया तीर्थ को मुक्त करवाया। आगे फिर मोकल का वर्णन किया जाता है।

जहां कुम्भा का वर्णन हमें मिलता है वहाँ यह उल्लिखितहै कि वह माण्डव्यपुर (मंडोर) से हनुमान की मूर्ति लाया और १५१५ वि. सं. में उसकी स्थापना दुर्ग के प्रमुख द्वार पर की। इसके अनन्तर कुम्भा के द्वारा सपादलक्ष, नराणा, वसंतपुर और आबू जीतने का वर्णन है। इसमें यह भी उल्लिखित है कि महाराणा ने एकलिंगजी के मन्दिर के पूर्व की ओर कुम्भ-मंडप का निर्माण कराया। जहाँ-जहाँ कुम्भा की सेना विजयार्थ प्रस्थान करती है, उसके वर्णन से हमें उस समय के काम में आने वाले अनेक मार्गों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। आबू के सम्बन्ध में इसमें दी गई दो सूचनाएं बड़े महत्त्व की हैं। एक तो यह कि कुम्भा के आबू विजय के पहिले

१६१: आ० स० रि, भा० २३, प्लेट २०–२१;
ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० ३१६;
गोपीनाथ शर्मा–बिबलियोग्राफी, पृ. ८।

यहां कई प्रकार के कर लगाये जाते थे जिनको उसने समाप्त कर दिया। दूसरी यह है कि सामरिक दृष्टि से आबू का दुर्ग मेवाड़ के लिए बड़ा उपयोगी था अतएव महाराणा ने यहाँ तेजस्वी अश्वारोहियों को रखा। आगे चलकर मालवा और गुजरात की ओर सेना के प्रयाण का वर्णन बड़ा रोचक है। इसी तरह जाँगल प्रदेश तथा बुंकराद्रि और खंडेला की विजय के उल्लेख के साथ लेखक ने उस भाग की प्राकृतिक स्थिति पर भी कुछ प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत प्रशस्ति मे दिया गया चित्तौड़ का तथा इसमें बनाए गए मन्दिरों, मार्गो, जलयन्त्रो द्वारो और जलाशयों के वर्णन सम-सामयिक होने से बड़े काम के है। अलबत्ता सरोवरो के वर्णन मे कमलो की तुलना युवतियों से करने में तथा कुम्भस्यामा के मन्दिर की साम्यता कैलाश पर्वत और सुमेरु से करने में कवि ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है। आगे चलकर कुम्भलगढ़ तथा उसके प्राहार तथा गोपुर का वर्णन हमें मिलता है। श्लोक १४६ मे किसी शत्रु के पुर से गणेश-मूर्ति को यहाँ स्थापित करने का भी उल्लेख है। इसी मे डीडवाने की नमक की खान से कर लेना तथा विशाल सैन्य से खण्डेले को तोड़ना भी उल्लिखित है।

इस प्रशस्ति से हमें कुम्भा के विरुदों का भी बोध होता है जिनमें उसे दानगुरु, राजगुरु और शैलगुरु कहा गया है। प्रशस्तिकार ने कुम्भा द्वारा विरचित ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है जिनमें चण्डीशतक, गीत गोविन्द की टीका, संगीतराज तथा कई नाटक महत्त्वपूर्ण है। इसके आगे मालवा और गुजरात की सम्मिलित सेनाओं को परास्त करने का वर्णन मिलता है जो अन्यत्र नही मिलता। प्रशस्ति के अन्त मे कीर्ति-स्तम्भ, कुम्भलगढ़ तथा अचलगढ़ आदि मे की गई प्रतिष्ठाओं से सम्बन्धित तिथियां दी है जो बड़े काम की हैं। इसी तरह अन्त वाली पंक्तियों में प्रशस्तिकार महेशभट्ट का वर्णन हमें मिलता है। १५वी शताब्दी की राजस्थान की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति समझने के लिए इस प्रशस्ति का बड़ा उपयोग है। इसका समय वि० सं० १५१७, मार्गशीर्ष कृष्णा ५, तदनुसार ३ दिसम्बर १४६० है।

इसके कुछ श्लोक यहां उद्धृत किए जाते है—

"मेदानाराम्रल्लसादुल्लसत्त-
न्दूरीधीरध्वानविध्वस्तधैर्यान्,
कारं कारं योग्रहीदुग्रतेजा
दग्धागतिर्वद्धनाख्यं गिरीन्द्रम ॥३६॥"

"निपात्य दुर्गं परिखा प्रपूर्य गजान्गृहीत्वा यवनीश्च बन्द्वा।
अदडयधो यवनाननन्तान् विडम्बयन्गुर्जरभूमिभर्तु: ॥२०॥"

"इनीव दुर्गे खलु रामरथ्यां स सेतुबन्धामकरोन्महीन्द्र ॥३६॥"

"तेनात्रेस्तनयेन नव्यरचना रम्या प्रशस्ति: कृता
पूर्णा पूर्णनर महेशकविना सूक्तै. सुधास्यन्दिनी ॥१८२॥"

कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति[१९२] (१४६० ई०)

यह प्रशस्ति कुंभलगढ़ से लाकर उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका समय वि० सं० १५१७, मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी सोमवार दिया हुआ है। इसमें प्रयुक्त की गई लिपि देवनागरी और भाषा संस्कृत है। इसमें कुल ६४ श्लोक हैं। कुंभलगढ़ की पाँचों शिलाओं से यह विभिन्न है क्योंकि इसमें उस प्रसिद्ध प्रशस्ति के कई श्लोक उद्धृत किये गये हैं और कई पंक्तियों में कुटिलर वर्णन, मेदपाट वर्णन तथा चित्तौड़ वर्णन दिया गया है जिससे हमें उस समय की मेवाड़ की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति का पता चलता है। इस प्रशस्ति से ऐसा अनुमान होता है है कि उस समय मेवाड़, चित्तौड़ और एकलिंगजी के आसपास के भाग शासकीय विचार से अलग-अलग घटक थे।

कुम्भलगढ़ का शिलालेख[१९३] (१४६० ई०)

यह शिलालेख पाँच शिलाओं पर उत्कीर्ण था जिसमें से पहली, तीसरी और चौथी शिलाएँ उपलब्ध हैं। दूसरी शिला का एक छोटा-सा टुकड़ा मिला है और पाँचवीं शिला अप्राप्य है। मूलत: ये शिलाएं कुम्भलगढ़ के कुम्भश्याम मन्दिर में, जिसे अब माभादेव का मन्दिर कहते हैं, लगी हुई थीं। इनको यहाँ से (सिवाय पांचवीं शिला के) हटाकर उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित कर दी गई है। पहली और तीसरी शिला के नाप से अनुमान लगाया जाता है कि ये शिलाएँ लगभग ३' फीट से अधिक लंबी और चौड़ी थीं। पहली शिला ३'.१०" × ३'.७" तथा तीसरी शिला ३'.१" × ३' × ६" के आकार में हैं। इन शिलाओं के कई अक्षर जगह-जगह नष्ट हो गये हैं, फिर भी इसके गद्यांश तथा पद्यांश से विषय की जानकारी आसानी से हो जाती है। इनमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत तथा लिपि नागरी है। इस सम्पूर्ण शिलालेख में वर्णन शैली को काम में लिया गया है, जैसे त्रिकूट वर्णन, मेटपाट वर्णन, राज वर्णन आदि।

पहली शिला में ६८ श्लोक हैं जिनमें उस युग के भौगोलिक वर्णन, जन-जीवन, तीर्थस्थान आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। एकलिंगजी के मन्दिर तथा कुटिला नदी के वर्णन में बड़ी स्वाभाविकता है। इसके साथ इन्द्रतीर्थ वर्णन, कामधेनु, तक्षक, धारेश्वर आदि के वर्णन भी बड़े रोचक हैं। चित्तौड़ के वर्णन में

---

१९२. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

१९३. ए० रि० ए० म्यू० अ०, १९२५–२६;
ए० इ० भा० २४, संख्या ४४, पृ० ३१४–२८;
प्रोसीडिंग, इ. हि. कां, १९५१;
ज० वि० रि० सो०, मार्च १९५५
वीर विनोद, भा० १, पृ० ४११–१६;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, नं० ४३, पृ०८

प्राकृतिक स्थिति तथा समाधिश्वर कुम्भश्याम, महालक्ष्मी के मन्दिरों का वर्णन बड़ा रोचक है। प्रशस्तिकार ने ५८ से ६८ श्लोकों में आनुसंगिक ढंग से मेवाड़ के नगरों नदियों, पहाड़ों, झीलों, बागों तथा जनसमुदाय का वर्णन किया है जो १५वीं शताब्दी के जनजीवन को समझने में बड़ा सहायक है।

दूसरी शिला के केवल छः पंक्तियों के कुछ वाक्य ही अवशेष रहे हैं। सम्पूर्ण शिला के सभी श्लोक मैंने एक प्रशस्ति संग्रह की प्राचीन पाण्डुलिपि से खोज निकाले हैं। इस दूसरी पट्टिका में ६९ से १११ तक श्लोक दिए गए थे। इसमें चित्रांग ताल, चित्तौड़ दुर्ग तथा चित्तौड़ का वैष्णव तीर्थरूप होने का वर्णन मिलता है। चित्तौड़ के बाजारों, मन्दिरों तथा राजप्रासाद के वर्णन से कुम्भा के समय की समृद्धि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसके अन्तिम छः श्लोकों में जो हमें वंश वर्णन मिलता है उससे रावल शाखा तथा राणा शाखा की विभिन्नता को समझने में हमें बड़ी सहायता मिलती है। प्रशस्तिकार ने यहाँ बापा को स्पष्ट रूप से विप्रवंशीय कहा है जो बड़े महत्त्व का है।

तीसरी शिला में वंश वर्णन चलता रहता है जिसमें बापा को फिर विप्र कहा गया है जिसने हारीत की अनुकंपा से मेवाड़ राज्य प्राप्त किया। यहां प्रशस्तिकार ने बापा को वंश प्रवर्तक माना है और गुहिल को उसका पुत्र लिखा है जो भ्रमात्मक है। इसमें गुहा के पुत्र लाटविनोद का नाम दिया है जो अन्यत्र नहीं मिलता। इसके बाद खुमाण की विजयों तथा उसके तुलादान का वर्णन आता है। इसके पश्चात् इसमें दिया गया राज वर्णन एकलिंग महात्म्य के राज वर्णन से मिलता जुलता है। वैरिसिंह के सम्बन्ध में यह उल्लिखित है कि उसने आहड के चारों ओर परकोट तथा चार गोपुर बनवाए। इसमें कीतु के साथ सामंतसिंह के संघर्ष का भी वर्णन मिलता है। इसके बाद इसमें वर्णित है कि रत्नसिंह की चित्तौड़ रक्षा के निमित्त मृत्यु हो जाने पर खुमाण के वंशज लक्ष्मणसिंह ने दुर्ग रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी और उस अवसर पर उसके सात पुत्र दुर्ग रक्षा में काम आये।

इस प्रशस्ति से उस समय के मेवाड़ के चार विभागों का पता चलता है जो चित्तौड़, आघाट, मेवाड़ और बागड थे। इसमें दी गई कुछ सामाजिक संस्थाओं के उल्लेख जैसे दास प्रथा, आश्रम व्यवस्था, वैदिक यज्ञ, तपस्या, धर्मशाला तथा पाठन व्यवस्था बड़े रोचक हैं।

चतुर्थ प्रशस्ति में हम्मीर के वर्णन में उसके चेलावाट जीतने का वर्णन है, और उसे विषमघाटी पंचानन कहा गया है। लाखा के वर्णन में उसके धार्मिक और विजय कार्यों का तथा तुलादान का अच्छा वर्णन है। मोकल के वर्णन के साथ सपादलक्ष जीतने तथा फीरोज को हराने का उल्लेख मिलता है। क्षेत्रसिंह द्वारा भी यवन शासक को कैद करने और अलीशाह को परास्त करने का उल्लेख है। इस प्रशस्ति में विशेष रूप से कुम्भा का वर्णन तथा उसकी विजयों का सविस्तार उल्लेख है। उसके द्वारा की गई विजयों में योगिनीपुर, मंडोवर, यज्ञपुर, हमीरपुर, वर्द्धमान

चम्पावती, सिंहपुरी, रणस्तम्भ, सपादलक्ष, आभोर, वंवावदा, मांडलगढ़, सारंगपुर आदि मुख्य हैं। कुम्भलगढ़ का निर्माण तथा वहां अनेक मन्दिर, वाग और वावड़ियां भी कुम्भा द्वारा वनवाये जाने का उसमें उल्लेख है। कुम्भलगढ़ में हनुमान और गणेश की मूर्ति की स्थापना का भी इसमें वर्णन है।

इस प्रशस्ति को किसने रचा यह निश्चय रूप से कहना कठिन है। डा० ओझा के विचार से चित्तौड़ प्रशस्ति का रचयिता महेश ही होना चाहिए, क्योंकि कुछ श्लोक इन दोनों प्रशस्तियों में मिलते जुलते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये श्लोकों की साम्यता दोनों में एकलिंग महात्म्य के कारण है, जो दोनों लेखों के लिए सावन सामग्री का स्रोत था। इन दोनों प्रशस्तियों का एक ही समय में दूरस्थ भागों में वनना महेश का रचयिता होना संदेह का विषय है। इसके अतिरिक्त दोनों प्रशस्तियों में वर्णन की शैली एक-सी नहीं है जिससे भी महेश की दोनों रचना नहीं हो सकतीं। संभवतः इसका रचयिता कन्ह व्यास हो जो इसके रचना काल में कुम्भलगढ़ ही रहता था।

प्रशस्ति के रचना का काल वि. सं. १५१७, मार्गशीर्ष की कृष्णा पंचमी थी। इस लेख के कुछ श्लोक यहां उद्धृत किए जाते हैं—

"ततः श्री हंस पालश्च वैरिसिंहो नृपाग्रणी ।।१४४।।"

"स्थापितोभिनवो येन श्रीमदाघाटपत्तने'
प्राकारश्च चतुर्दिक्षु चतुर्गोपुरभूषितः ।।१४५।।"

"हाडावटीदेशपतीन् स जित्वा तन्मंडलं चात्मवशीचकार।
तदत्र चित्रं खलु यत्करांतं तदेव तेषामिह यो वभंज ।।१६८।।"

"पीरोजं समहंमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत् :
कुंतव्रातनिपातदीर्णहृदयांस्तस्यावधीद्दंतिनः ।।२२१।।"

"धों विप्रानमितान् हलं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलं
वेदं सांगमपाठयत् कलिगलग्रस्ते धरित्रीतले ।।२१७।।"

"एतद्दग्धपुराग्निवाडवमसौ यन्मालवांभोनिधि
क्षोणीशः पिवतिस्म खड्गचुलुकैस्तस्मादगस्त्यः स्फुटम् ।।२७०।।"

आवू के आदिनाथ की मूर्ति का लेख [१६४] (१४६२ ई०)

यह लेख आवू के अचलगढ के जैन मन्दिर में प्रतिष्ठित आदिनाथ की पीतल की मूर्ति पर उत्कीर्ण है और उसका समय वि. सं. १५१८ वैशाख वदि ४ (ई० स० १४६२ ता० १७ अप्रेल) है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय आवू पर महाराणा कुंभा का अधिकार था तथा उस समय सूत्रधार लूंवा और लापा ने, जो डूंगरपुर के निवासी थे, उक्त मूर्ति का निर्माण किया। रावल सोमदास के राज्य के निवासी ओसवाल शोभा, भार्या कर्मादे और माला तथा साल्हा ने सूत्रधार द्वारा मूर्ति का निर्माण करवाया।

---

१६४. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७०।

इसकी प्रतिष्ठा तपागच्छ लक्ष्मीसागरसूरि के द्वारा की गई। इस लेख से प्रतीत होता है कि उस युग में धार्मिक कार्यों में सम्पूर्ण कुटुम्ब का सहयोग वाँच्छनीय होता था।

आबू की शांतिनाथ की मूर्ति का लेख[१६५] (१४६२ ई०)

यह लेख आबू में शांतिनाथ की मूर्ति पर उत्कीर्ण है और इसका समय वि० सं. १५१८ वैशाख वदि ४ (ई० स० १४६२ ता० १७ अप्रेल) है। इस लेख से विदित है कि रावल सोमदास के राज्य के ओसवाल भंभव की भार्या पातूसुत शोभा की भार्या धर्मादे ने अपने पति के कल्याण के लिये डूंगरपुर के सूत्रधार नापा और लुंबा द्वारा उक्त मूर्ति का निर्माण करवाया और उसकी प्रतिष्ठा लक्ष्मीसागरसूरि के द्वारा की गई। इस लेख से डूंगरपुर के सूत्रधारों के नाम तथा उनकी मूर्तिकला में कार्य कुशलता का बोध होता है। संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली और वैवाहिक सम्बन्ध के धार्मिक बंधन के पक्ष पर भी इस लेख से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

आँतरी गाँव का लेख[१६६] (१४६८ ई०)

यह प्रशस्ति डूंगरपुर जिले के आँतरी गाँव की वि० सं० १५२५ की है। जिसमें इस भाग को वागड कहा गया है। लेख संस्कृत पद्य में है। इसके एक श्लोक की पंक्ति का भाग इस प्रकार है—

"इक्षुक्षेत्र पवित्रभूर्विजयते नीवृद्वरोवागड: ॥३॥"

आँतरी का लेख[१६७] (१४६९ ई०)

यह लेख डूंगरपुर जिले के आँतरी गाँव के शांतिनाथ के मन्दिर का है। इसकी भाषा संस्कृत है और उसमें पद्यों को प्रयुक्त किया गया है। इसमें दी गई सूचना गुजरात के साथ किये गये युद्ध के सम्बन्ध में बड़े महत्व की है। लेखक ने स्पष्ट रूपसे लिखा है कि "वागड प्रदेश के स्वामी वीराविवीर गोपीनाथ ने गुजरात के मद-मत्त स्वामी की अपार सेना को नष्ट कर उसकी संपत्ति छीनली"। इसी तरह इसमें उल्लिखित है कि उसके समय में उसके अमात्य सालराज ने भीलों की पालों को दबाया और उसने सं० १५२५ ई० में शांतिनाथ के मंदिर में मंडप तथा देवकुलिकाओं का निर्माण करवाया। यह अमात्य ओसवाल जाति का था। उसकी उपलब्धि भीलों के उपद्रवों को दबाकर कटारा प्रदेश को बचाना तथा वागड में शांति स्थापित करना था। इसका ११वां पद्य इस प्रकार है—

"अन्याय पत्र वल्लीर्भल्ली मुख्या स्त्रभिल्लमृतपल्ली "
जित्वा यो नि: शल्यीचकार वागडं देशं ॥११॥"

---

१६५. ओझा, डूंगरपुर, राज्य का इतिहास पृ० ७०

१६६. ओझा, डूंगरपुर, राज्य का इतिहास, पृ० २।

१६७. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६९,७०।

अचलगढ़ की आदिनाथ की मूर्ति [१९८] (१४७३ ई०)

आबू के अचलगढ़ पर आदिनाथ की पीतल की मूर्ति के वि० सं० १५२९ वैशाख वदि ४ शुक्रवार (ई० स० १४७३ ता० १६ अप्रेल) के लेख से डूंगरपुर में उक्त मूर्ति के बनाये जाने का उल्लेख है। इससे प्रमाणित होता है कि डूंगरपुर के सूत्रधार न केवल पत्थर की मूर्तियों के निर्माण कार्य में कुशल थे वरन् वे पीतल की मूर्तियों के बनाने में भी निपुण थे।

रामपोल द्वार का लेख [१९९] (१४७४ ई०)

यह लेख डूंगरपुर के रामपोल दरवाजे पर लगा हुआ है, जिसका समय वि० सं० १५३० चैत्र वदि ६ (इ० सं० १४७४ ता० ७ अप्रेल) है। इससे ज्ञात होता है कि जब मांडू का सुलतान गयासुद्दीन चित्तौड़ जाते हुए डूंगरपुर की ओर से गुजरा तो उसने डूंगरपुर को नष्ट किया। इस समय बीलिया भील का पुत्र रातकाला अपने स्वामी के बिना बुलाये ही नगर रक्षा के लिए आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने अपने कुल धर्म का पालन करते हुए वीरव्रत में प्राणों की आहूति दे डाली। ऐसा प्रतीत होता है कि तबतक भील डूंगरपुर के रावल के पूर्ण अधिकार में आचुके थे और रावल के सहयोगी बन चुके थे। इस लेख से उस समय की वागड भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस लेख से स्पष्ट है कि उस समय के वीर युद्ध में मरकर सायुज्य मुक्ति पाने में विश्वास करते थे और वे सूर्यमंडल को भेद पर स्वर्ग को सिधारते थे। युद्ध के प्रति ये भावना धार्मिक श्रद्धा का द्योतक है उस समय युद्ध एक धार्मिक कर्तव्य था।

इसका मूल लेख इस प्रकार है—

"संवत् १५३० वर्षे शाके १३९६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्ण पक्षे षष्ठयां तिथौ गुरुदिने बीलीआ मालासुत रातकालइ मंडपाचलपति सुरत्राण ग्यासदीन आदि........ डूंगरपुर भाज तई स्वामि न इछति आपणऊं कुलमार्ग्ग अनुपालनां वीरेव्रतेण प्राण छांडी सूर्यमंडल भेदी सायोज्य मुक्ति पामि।"

चीतली गाँव का लेख [२००] (१४७९ ई०)

डूंगरपुर राज्य के अन्तर्गत चीतली गाँव से एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है जो महारावल सोमदास के समय का है। इसका सकय वि. सं १५३६ आषाढ़ शुक्ला १ है। इससे पाया जाता है कि उक्त महारावल का कुंवर गंगदास जो बांसवाड़ा में रहता था उसने चीतली गाँव से ४ हल की भूमि भट्ट सोमदत्त को प्रयाग में दान की थी। प्रस्तुत लेख से भूमि का नाप हल से आंका जाना तथा विद्वानों के प्रति राज्य की श्रद्धा होना आदि सिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इससे उस समय प्रयुक्त की गई संस्कृत

---

१९८. ओझा डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७१।

१९९. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६९।

२००. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० २, १३।

भापा के साथ स्थानीय भापा का समावेश का भी अनुमान किया जा सकता है। इस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'…………………स्वस्ति संवत् १५३६ आपाढ़ सुदि १ पूर्व महाराजाधिराज श्री सोमदासविजयराज्ये अवेह श्री वांसवाला ग्रामात् युवराज श्री गंगदास एतैः भट्ट सोमदत्त एतेभ्य: चीतलीग्रामे भूमिहल ४ चारि उदकधारया शासनपत्रप्रसादीकृतं ए भूमि प्रयागि संकल्पकरी………… ।"

चीतरी गाँव के दो लेख[201] (१४७६ ई०)

वांसवाड़े के चीतरी गाँव के वि० सं० १५३६ आपाढ़ सुदि १ (ई० स०१४७६ ता. २० जून) के दो लेखों से प्रमाणित है कि श्री सोमदास के राजत्वकाल में युवराज श्री गंगदास ने भट्ट सोमदत्त के लिए चीतरी गाँव में चार हल भूमि का दान प्रयाग में संकल्प किया। मूल लेख इस प्रकार है—

"…………………स्वस्ति संवत् १५३६ आपाढ़ सुदि १ पूर्व महाराजाधिराज श्री सोमदासविजयराज्ये अवेह श्री वांसवाला ग्रामात् युवराज श्री गंगदास एनैः भट्ट सोमदत्त एतेभ्य: चीतली ग्रामो भूमि हल ४ च्यारि उदकधारया शासन पत्र प्रसादीकृतं ए भूमि प्रयागि संकल्पकरी……………"

चित्तौड़ का लेख[202] (१४८१ ई०)

प्रस्तुत लेख रामपोल के सामने वाले सभागृह के ऊपरी भाग में उत्कीर्ण है। इसमें १४ पंक्तियाँ हैं। इसका समय वि० सं० १५३८ पोष सुदि ७ है। इस लेख से खरतरगच्छ परम्परा के साधुओं की नामावली का वोध होता है और हमें यह जानकारी मिलती है कि तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में चित्तौड़ खरतरगच्छीय साधुओं का केन्द्र रहा था। इसमें शांतिनाथ के मन्दिर और जयकीर्ति का उल्लेख मिलता है। जयकीर्ति की उपाधि महोपाध्याय दिया हुआ है जिससे उस समय दी जाने वाली उपाधियों का वोध होता है।

पलाणा का लेख[203] (१४८२ ई०)

वीकानेर से १४ मील दक्षिण में पलाणा गाँव है जहाँ एक स्मारक लेख वि. सं० १५३६ का है। इससे प्रमाणित है कि वीका के सहयोगी चाचा रिणमल के पुत्र मांडण की मृत्यु यहां हुई थी।

मोकल का लेख[204]

प्रस्तुत लेख चित्तौड़ से लेजाकर उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित किया गया

---

२०१. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७१।

२०२. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

२०३. ओझा, वीकानेर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ५३।

२०४. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

था। ये लेख प्रारंभिक लेख का केवल एक खण्डमात्र है जिसका बाँयी तरफ का भाग टूटा हुआ है और इसमें प्रस्तुत किये गये कई श्लोक तथा उसके भाग नष्ट हो गये हैं। इसमें संभवतः ७० के लगभग श्लोक रहे होंगे। इस स्थिति में अभी इस लेख की केवल ३६ पंक्तियाँ अवशेष हैं। लेख समाधीश्वर के स्तुति से आरंभ होता है और किसी शासक का वर्णन देता है जिसको 'गुहिलवंश सर्वस्व' कहा गया है। इसमें हम्मीर को पृथ्वी का बड़ा विजेता तथा लाखा को हाड़ाओं से संघर्षकर्ता बतलाया है। आगे चलकर इसमें मोकल का वर्णन ६१वें श्लोक में आता है। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि इसमें ७० के लगभग श्लोक हों, जैसा डॉ० ओझा लिखते हैं, तो इस लेख में कुंभा का वर्णन हो सकता है। इस स्थिति में इसे मोकल के काल का लेख न मानकर कुंभा के समय का भी माना जा सकता है। इस लेख के प्रारंभ में मेवाड़ के कई प्राचीन तीर्थों का वर्णन उल्लिखित है, जिससे हमें उस राज्य की धार्मिक अवस्था का परिचय होता है।

गोमुख का लेख[२०५] (१४८६ ई०)

प्रस्तुत लेख चित्तौड़ में गोमुख के पास स्थित जैन मन्दिर के एक पत्थर पर उत्कीर्ण है। लेख का काल वि० सं० १५४३ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ का है। इस पर कीर्तिधर अर्हत्मूर्ति, सुकोशल ऋषिमूर्ति आदि मुनियों की मूर्तियां बनी हैं। प्राकृत गाथाओं में सुकोशल ऋषि की स्तुति भी इसमें अंकित है। इसमें यह भी उल्लिखित है कि सुकोशल ऋषि की प्रतिमा महाराणा रायमल के राज्य में स्थापित की गई थी और इसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छीय जिनसमुद्रसूरि ने की थी।

एकलिंग जी के मन्दिर की दक्षिणद्वार प्रशस्ति[२०६] (१४८८ ई०)

यह प्रशस्ति श्री एकलिंग जी के मन्दिर के दक्षिण द्वार के ताक में उस समय लगाई गई थी, जबकि महाराणा राममल ने उस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। उक्त प्रशस्ति का समय वि० सं० १५४५ चैत्र शुक्ला १०मीं गुरुवार है (२३ मार्च, १४८८ ई०)। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत तथा लिपि नागरी है। इसमें कुल १०१ श्लोक हैं। प्रशस्तिकार ने प्रारंभ के कुछ श्लोकों में गणेश, शिव, रुद्र, पशुपति, हर तथा पार्वती की स्तुति की है। तदनन्तर इसमें मेदपाट तथा चित्रकूट की विशेषताओं का वर्णन दिया है। यहां की समृद्धि के वर्णन के साथ लेखक ने यहां की जनता की सम्पन्नता, सदाचार, दानशीलता और पात्रों के दान के सम्बन्ध में लिखा है जिससे हमें उस समय की जनता के नैतिक स्तर और शासकों की न्यायपरायणता का बोध होता है। आगे चलकर नागदे के वर्णन के साथ लेखक बापा को द्विज कहकर उसका हारीत द्वारा राज्य अधिकार प्राप्ति की ओर संकेत करता है। तत्पश्चात्

---

२०५. ए० रि० रा० म्यू० अजमेर, १९२९।

२०६. भावनगर इन्स०, नं० ६, पृ० ११७–१३३।
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, पृ० ६

बापा का सन्यास लेने का वर्णन दिया गया है फिर हम्मीर के द्वारा सिंहलिपुर का, क्षेत्रसिंह के द्वारा पन्वडपुर का, लक्ष्मणसिंह द्वारा चीरुवर (चीरवा) का, मोकल द्वारा वंधनवाल (वांवनवाड़ा) तथा रामागाँव और कुंभा द्वारा नागहृद, कठड़ावन, मलकखेट और भीमाण का, और रायमल द्वारा नौवांपुर का श्री एकलिंग जी के पूजार्थ समर्पण करने का वर्णन है। इन अनुदानों से उक्त शासकों की शिवभक्ति तथा उदारता का हमें बोध होता है। चूंकि श्री एकलिंग जी इन महाराणाओं के इष्टदेव थे, अतएव इन्होंने समय-समय पर अनुदानो के द्वारा इस मंदिर की पूजा और वैभव की व्यवस्था की थी। इसी तरह क्षेत्रसिंह ने यज्ञों के द्वारा अपनी धार्मिक प्रवृत्ति का परिचय दिया था।

इस प्रशस्ति से ऐसा मालूम होता है कि महाराणा लाखा के पास धन–संचय बहुत हो गया था, जिससे इसने एक लाख सुवर्ण मुद्राएं दान में दीं, सुवर्णादि की तुलाएं कीं, सूर्यग्रहण में झोटिंग भट्ट को पिप्पली (पीपली) गाँव और धनेश्वर भट्ट को पंच-देवला गाँव दिया। रायमल ने भी इसी प्रकार कई ब्राह्मणों और विद्वानों को दान से संतुष्ट किया और विविध धार्मिक संस्थाओं को अनुदान देकर अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया।

प्रस्तुत प्रशस्ति में इन शासकों के अन्य पुण्य कार्यों और सार्वजनिक निर्माण कार्यों का भी वर्णन मिलता है। क्षेत्रसिंह ने धर्मशालाओं तथा ताड़ागों का निर्माण करवाया। महाराणा कुंभा ने कुंभलगढ़ का बृहद् दुर्ग सुदृढ़ द्वारों से सुशोभित किया तथा चित्तौड़ दुर्ग के ऊपर जाने के मार्ग को चौड़ा बनवाया और यहां लक्ष्मी के मंदिर और जनहित के लिए रामकुंड का निर्माण करवाया। रायमल ने भी इसी तरह राम, शंकर तथा समयासंकट नामक तालाब बनवाया और एकलिंग जी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।

इस प्रशस्ति द्वारा हमें मेवाड़ के कुछ शासकों की सैनिक उपलब्धियों का भी परिज्ञान होता है। इससे पाया जाता है कि क्षेत्रसिंह ने मांडलगढ़ के प्राचीर को तोड़कर उसके भीतर से लड़ने वाले योद्धाओं को मारा, तथा युद्ध में हाड़ों के मंडल को नष्ट कर उनकी भूमि को अपने अधीन किया। इसके सम्बन्ध में प्रशस्तिकार यह भी लिखता है कि उसने (क्षेत्रसिंह) अमीसाहिरूपी बड़े सांप के गर्वरूपी विष को निर्मूल किया। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्रसिंह ने मालवे के स्वामी अमीशाह को चित्तौड़ के पास हराया था। इसमें यह भी वर्णित है कि क्षेत्रसिंह ने ऐल (ईडर) के गढ़ को जीतकर राजा रणमल्ल को कैद किया, उसका सारा खजाना छीन लिया और उसका राज्य उसके पुत्र को दिया। इसी तरह युवराज की हैसियत से लाखा ने रणक्षेत्र में जोगा दुर्गाधिप को परास्त कर उसके हाथी तथा घोड़े छीन लिए। इसी तरह उसने बहुत-सी सुवर्ण मुद्राएं देकर गया को यवन-कर से मुक्त किया। इस लेख में मोकल को बलवान् पक्षवाले शत्रु और लाखों को नष्ट करने वाला, बड़े संग्रामों में विजय पाने वाला और दूतों के द्वारा दूर-दूर की खबरें जानने वाला तथा जहाजपुर के युद्ध में हाड़ों को

परास्त करने वाला बतलाया है। महाराणा कुंभा के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि उसने मालवा के शासक को कुचल दिया और सारंगपुर को नष्ट कर दिया। इस अवसर पर उसने कई स्त्रियों को अपने अंतःपुर में स्थान दिया। रायमल ने भी गयासुद्दीन को चित्तौड़ में परास्त किया और खेराबाद को नष्ट कर वहां से दण्ड इकट्ठा किया। उसने दाडिमपुर के युद्ध में क्षेम को पराजित किया था।

प्रस्तुत प्रशस्ति से उस युग की शिक्षा की स्थिति पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है। स्वयं कुंभा ने संगीतराज की रचना की। रायमल ने रत्नखेट गाँव महेश कवि को देकर उसका सम्मान किया तथा अपने गुरु गोपाल भट्ट को प्रहाण और थूर के गाँव भेंट किये। नरहरि, झोटिंग, अत्रि, महेश्वर आदि का भी वर्णन इस प्रशस्ति में दिया गया है जो इस समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। थूर गाँव की समृद्धि के वर्णन के प्रसंग में लेखक उस स्थान की उपज का भी वर्णन करता है जिनमें चांवल, दाल और गन्ना प्रमुख हैं। इस प्रशस्ति को सूत्रधार अर्जुन ने उत्कीर्ण किया था और उसी की देखरेख में एकलिंग जी के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया गया था। इस प्रशस्ति में महाराणा हम्मीर से लेकर रायमल तक के राजाओं के सम्बन्ध की कई घटनाओं का उल्लेख होने से मेवाड़ के इतिहास के लिए बड़े महत्त्व की है।

देव-सोमनाथ का लेख[२०७] (१४९२ ई०)

देव-सोमनाथ के मन्दिर का वि० सं० १५४८ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १४९२ ता० ३१ मार्च) के लेख से महारावल गंगदास द्वारा देव-सोमनाथ के मन्दिर में एक तोरण बनाने का उल्लेख है। इस लेख में गंगदास की उपाधि रायरामां महारावल अंकित है। ऐसा प्रतीत होता है इस समय के पीछे वागड के शासक अपने लिए इस उपाधि का प्रयोग करते रहे।

जावर की प्रशस्ति[२०८] (१४९७ई०)

यह प्रशस्ति जावर गाँव के रामस्वामी के मन्दिर की है जिसे महाराणा रायमल की बहिन रमाबाई ने बनवाया था। प्रशस्ति का समय वि० सं० १५५४, चैत्र शुक्ला ७ रविवार है। इसमें प्रयुक्त भाषा संस्कृत पद्य तथा लिपि नागरी है।

प्रस्तुत प्रशस्ति के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में १० श्लोक हैं जिसमें कुंभलगढ़ के दागोदर और कुंडेश्वर के मन्दिर का उल्लेख है। इसमें जावर को पुर की संज्ञा दी है जिसमें रमाबाई ने एक कुंड बनवाया था। कुंड की शोभा के वर्णन में अतिशयोक्ति अवश्य है, परन्तु उससे जावर क्षेत्र की वनस्पति, पक्षी तथा जलवायु का संकेत मिलता है। यहाँ के निवासियों पर भी इस प्राकृतिक सौंदर्य का प्रभाव झलकता

---

२०७. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७३।

२०८. ए० रि० रा० म्यू०; अजमेर, १९२४–२५;
वीर विनोद, भा० २, पृ० ५९८;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, पृ० ९–१०।

है। इस भाग के वर्णन से ज्ञात होता है कि रमाबाई का विवाह जूनागढ़ के यादव राजा मंडलीक (अंतिम) के साथ हुआ था।

प्रशस्ति के दूसरे भाग में 'रमावर्णन' है जिसके ५ श्लोक हैं। इसमें रमाबाई के द्वारा श्री दामोदर के मन्दिर के बनाने का उल्लेख है। इसमें सूत्रधार ने रामा के कल्याण की कामना की है। रमाबाई के वर्णन से उसके सौन्दर्य, गुण, प्रतिभा, संगीत प्रेम आदि की हमें जानकारी होती है। इससे प्रतीत होता है कि उस युग में उच्च वर्ग की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार था तथा उनसे रम्यता, प्रवीणता तथा कला प्रेम की अपेक्षा की जाती थी। रमाबाई अपनी कृष्ण-भक्ति के लिए प्रसिद्ध मालूम होती है। राज-परिवार की राणियों में कृष्ण-भक्ति की परम्परा में यह एक महत्त्व-पूर्ण सीढ़ी दिखाई देती है। सम्भवतः इसके कुछ वर्षों के बाद यह परम्परा मीराँ के लिए प्रेरणा का एक स्रोत रहा हो।

तीसरा भाग 'मण्डलीक प्रबन्ध' है जिसमें महाराज मंडलीक के गुणों की व्याख्या की गई। इसमें १२ श्लोक हैं। इसके अंतिम भाग में इस निर्माण कार्य का श्रेय मंडन के पुत्र ईशर को दिया गया है और इसके साथ देवीदास का भी नाम अंकित है।

इस प्रशस्ति की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"धत्ते यावदपुत्रवादिनमणिर्माणिक्यनैराजनं।
तावच्चारुतरं रमा विरचितं कुंडं चिरं नंदतु॥"
"मेरौकुंभकुले महीपतनया श्री मंडलीक प्रिया।
दामोदर मंदिरं व्यरचयत् कैलाश शैलोज्वलं॥"
"श्री मेदपाटेवरेदेशे कुंभकर्णनृपग्रहे
क्षेत्राण्ट सूत्रधारस्य पुत्रोमंडन आत्मवान्"

चित्तौड़ का खरतरगच्छ का लेख[२०९] (१४६९ ई०)

यह लेख वि० सं० १५२६ का है जो चित्तौड़ के खरतरगच्छीय किसी मन्दिर में रहा होगा। यह अब उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। मूलतः यह लेख तीन शिलाओं में था जिसकी दो शिलाएं तो नष्ट हो गई हैं और तीसरी शिला से ८३ से १२८ तक के श्लोक उपलब्ध हैं। इसमें जयकीर्ति उपाध्याय को विवेकरत्नसूरि का शिष्य वर्णित किया गया है। इससे हमें अनेक अन्य साधुओं के सम्बन्ध में भी जान-कारी मिलती है। भण्डारी भोजा का भी इस लेख से सम्बन्ध प्रगट होता है। प्रशस्ति में एक बड़े महत्त्व की पंक्ति है जिसमें रायमल की महत्ता का बोध होता है। प्रशस्ति-कार उसके सम्बन्ध में 'महाराजाधिराज समस्त रिपु गजघटा रायमल विजयराज्ये' वाक्यों का प्रयोग करता है। इसमें छीतर सूत्रधार का जो ईश्वर का पुत्र था, उल्लेख किया गया है।

---

२०९. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

लेख में कुल ३५ पंक्तियां हैं ।

नाडलाई की प्रशस्ति[२१०] (१५०० ई०)

नाडलाई के जो मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर बसा हुआ कस्बा है, आदिनाथ के मन्दिर में एक स्तम्भ प्रशस्ति है । यह ६०"×१" के आकार में ५५½ पंक्तियों में उत्कीर्ण है । इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत गद्य तथा लिपि नागरी है । इसमें उकेश वंश के सींहा और समदा द्वारा, महाराणा रायमल के समय में नाडलाई में आदिनाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है । इसका लेखन आचार्य ईश्वरसूरि ने किया था और सूत्रधार सोमा ने इसको उत्कीर्ण किया । इस लेख का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है । इसके द्वारा हमें मेवाड़ की सीमा निर्धारित करने में सहायता मिलती है । तदनन्तर इसमें उल्लिखित है कि मूर्ति की स्थापना की आज्ञा सींहा और समदा को पृथ्वीराज के द्वारा दी गई थी जो महाकुमार स्वीकृत हो चुका था और मेवाड़ का यह पश्चिमी भाग उसके शासन क्षेत्र का भाग था । उस समय, ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्भलगढ़ का भाग मेवाड़ के शासन विभाग की प्रमुख इकाई था । इससे पृथ्वीराज का अन्य कुमारों की तुलना में महाकुमार स्वीकृत होना प्रमाणित होता है । प्रशस्ति का समय वि. सं. १५५७ वैशाख शुक्ल पक्ष ६ शुक्र है । प्रशस्ति में मूल रूप से संडगच्छीय साधुओं का वर्णन, राजवंश वर्णन और श्रेष्ठि वर्णन बड़े रोचक हैं । लेख में संडरगच्छीय आचार्य यशोभद्रसूरि का उल्लेख है जिन्होंने वि. सं ९६४ में यहाँ मन्दिर बनवाया था । यशोभद्रसूरि पाली के निवासी थे और इनका धार्मिक प्रभावक्षेत्र गोड़वाड़, मेवाड़, चित्तौड़ आदि तक प्रसारित था । चित्तौड़ के 'सतवीस देवरी' के खंडित लेख में जो १०वीं शताब्दी का है 'यशोभद्रसूरि' परम्परा के साधु का उल्लेख मिलता है जो उनके प्रभावक्षेत्र का प्रमाण है ।

इसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"श्री मेदपाट देशे श्री कुम्भकर्ण पुत्र राणा श्री रायमल्ल विजयमानराज्ये तत्पुत्र महाकुमार श्री पृथ्वीराजानुशासनात्"

"आ. श्री ईश्वरसूरिभिः इति लघुप्रशस्तिरियं लि. आचार्य श्री ईश्वरसूरिणा उत्कीर्णा सूत्रधार सोमाकेन"

घोसुन्दी की बावड़ी का लेख[२११] (१५०४ ई०)

यह लेख वैशाख शुक्ला ३ बुधवार का है और इसमें कुल २५ श्लोक हैं । प्रस्तुत प्रशस्ति में महाराणा रायमल की रानी शृंगारदेवी के—जो मारवाड़ के राजा जोधा (राव जोधा) की पुत्री थी—द्वारा उक्त बावड़ी के बनवाये जाने का

---

२१०. भाव. इन्स. सं. १२, पृ० १४३-१४५ ।

२११. ज. ब. ब्रा. रा. ए. सो. अंक ५५, भा० १; गोपीनाथ शर्मा—बिब-लियोग्राफी पृ० १० ।

उल्लेख है। तीसरे श्लोक में खुम्माण के वंशज कुम्भा के पुत्र रायमल का वर्णन दिया हुआ है और यह भी अंकित किया हुआ है कि उसने मालवे के सुल्तान को परास्त किया था। इसके साथ उसकी पत्नी शृंगारदेवी का भी वर्णन है। आगे के श्लोकों में मारवाड़ के रणमल और जोधा का भी उल्लेख आता है। रणमल की उपलब्धियों का वर्णन करने में रचयिता ने उसे विपक्षी सेना को दमन करने वाला बताया है। जोधा के सम्बन्ध में वह लिखता है कि जोधा पठानों और पारसियों को हराने वाला था और उसने गया को कर से मुक्त करवाया था। श्लोक ८ से १७ तक शृंगारदेवी का रायमल के साथ विवाह होने का बड़ा रुचिकर वर्णन है जिससे हम उस समय होने वाले विवाह की परम्परा के बारे में जान सकते हैं। इस प्रशस्ति का रचयिता महेश्वर नामक कवि था।

सेवन्त्री में राठौड़ बीदा की छत्री के लेख[२१२] (१५०४ ई०)

सेवन्त्री (मेवाड़) के तीर्थस्थल रूपनारायण के मन्दिर की परिक्रमा में राठौड़ बीदा की छत्री बनी हुई है, जिसमें तीन स्मारक पत्थर खड़े हुए हैं। उनमें से तीसरे का लेख अस्पष्ट है। पहले लेख का आशय यह है कि वि. सं. १५६१ ज्येष्ठ वदि ७ को महाराणा रायमल के कुंवर संग्रामसिंह के लिए, जो गृहकलह से जान बचा कर भाग रहा था, राठौड़ बीदा अपने साथियों सहित यहां काम आया। दूसरे लेख पर संग्रामसिंह के लिए राठौड़ रायपाल का काम आना अंकित है। ये लेख सेवन्त्री गाँव वाली घटना के जो संग्रामसिंह के साथ घटी थी, समय निर्धारण में बड़े सहायक हैं।

बीका स्मारक शिलालेख[२१३] (१५०४ ई०)

यह स्मारक लेख बीका की मृत्यु का संवत् १५६१ आषाढ़ मास शुक्ला ५ सोमवार अंकित करता है। ख्यातों में यह समय १५६१ आश्विन सुदि ३ दिया गया है, जो विश्वसनीय नहीं है। टॉड द्वारा बीका की मृत्यु का संवत् १५५१ दिया गया है वह भी ठीक नहीं है। दयालदास की ख्यात में बीका के साथ आठ राणियों के सती होने का उल्लेख है, वह ठीक नहीं, क्योंकि इस स्मारक लेख में उसके साथ केवल तीन राणियों के सती होने का उल्लेख है, जो अधिक विश्वसनीय है।

खजूरी गाँव का शिलालेख[२१४] (१५०६ ई०)

बूंदी राज्य के खजूरी गाँव से मिले हुए वि० सं० १५६३ (१५०६ ई०) के शिलालेख में बूंदी के हाड़ाओं का इतिहास उपलब्ध होता है। लेख की भाषा पद्यमय संस्कृत है। इस शिलालेख से निश्चित है कि १५०६ ई० में बूंदी का स्वामी

२१२. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० ३३२।
२१३. दयालदास की ख्यात, जि. २, पत्र ७;
टॉड राजस्थान भा० २, पृ० ११३२;
ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० १०८–१०९।
२१४. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० २४१।

सूरजमल था। इसमें बूंदी का नाम वृन्दावती दिया गया है।

इस सम्बन्ध में श्लोक इस प्रकार हैं—

"गजेन्द्रगिरिसंश्रयं श्रयति धुंधुमारं यकः
सपट्टपुरनराधिपो नमति नर्मदो यं सदा।
कुमार इह भक्तिभिर्भजति चन्द्रसेनः पुनः
सवृन्दावतिकाविभुः श्रयति सूर्यमल्लोपिच ॥६॥
विक्रमार्कस्य समये ख्याते पंचदशे शते।
त्रिषष्ट्या सहितेव्दानां मासे तपसि सुन्दरे ॥१४॥

कुम्भलगढ़ में कुंवर पृथ्वीराज का स्मारक[२१५]

यह स्तम्भ पृथ्वीराज की स्मारक छतरी के बीच एक स्तम्भ पर लगा हुआ है जिसके चारों ओर पृथ्वीराज के साथ सती होने वाली रानियों के नाम तथा कुंवर पृथ्वीराज के घोड़े 'साहण' का नाम दिया गया है। इस घोड़े को संभवतः श्री एकलिंग जी के मन्दिर में दे दिया हो जैसाकि यहाँ 'दिवो' शब्द से स्पष्ट है। जिन रानियों के नाम इससे उपलब्ध होते हैं वे हैं—

बाई पना, बा. रणादे, बा. जानी, बा. हीरू, बा. दाना, बा. सेउलदे, बा. मलारदे, बा. सूभो, बा. रायलदे, बा. जेवता, बा. ह·······, बा. रोहण, बा. नारु, बा. श्रीतारा, बा. भगवती, बा. ब—ला। १७वीं रानी का नाम स्तम्भ के पहले पहलू से नष्ट हो गया है। डॉ. ओझा ने पृथ्वीराज के साथ सती होने वाली स्त्रियों की संख्या १६ दी है (उ. रा. इ. भा. १, पृ. ३४२) जो ठीक नहीं है। प्रस्तुत लेख से १७ रानियों का सती होना स्पष्ट है। उक्त छतरी के एक स्तम्भ पर 'श्री धराप पना' नाम भी अंकित है जो छतरी के बनाने वाला सूत्रधार हो सकता है।

जोधपुर में सुमतिनाथ एवं शीतलनाथ के बिंब के लेख[२१६] (१५०८ ई०)

इसमें एक लेख वि. १५६५ चैत्र सु. १५ का है और दूसरा वि. सं. १५६५ माह सुदि ८ रविवार का है। दोनों में वैश्य समाज में दो पत्नियों के होने का उल्लेख है। इसमें धार्मिक कार्यो में कुटुम्ब के सभी व्यक्तियों का सहयोग भी अंकित है। इनकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

(१)

"सं. १५६५ वर्षे चैत्र सु. १५ गुरौ उप. भण्डारी गोत्रे सा. नरा भा. नारिणदे पु. तोली भा लाछलदे पु. विजा रूपा कूणा विजा भा. वीझलदे पु. नाम्ना डामर द्वि. भा. वालादे पु. खेतसी जीवा स्वकुटुम्बेन पितृ निमित्तं श्री सुमतिनाथ बिंबं कारितं प्र. श्री संडेरगच्छे भ. श्री शाँतिसूरिभिः"

---

२१५. डॉ० गोपीनाथ शर्मा, कुंवर पृथ्वीराज और उनका स्मारक, कुम्भलगढ़, शोध-पत्रिका, भा० १०, मार्च-जून, १९५९।

२१६. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं० ५६६-५६७, पृ० १३९।

(२)

"सं. १५६५ वर्षे माह सुदि ८ रवौ श्री उपकेशवंशे त्रि. सांडा भार्या धम्माई सुत वीसा सूरा भार्या लाजी द्वि. भार्या अरधाई धर्म्म श्रेमसे श्री शीतलनाथ विंवं प्रति सिद्धान्तीगच्छे श्री देवसुन्दरसूरिभिः प्र."

नौगाँव की प्रशस्ति[217] (१५१४ ई०)

बांसवाड़ा जिले के नौगाँव के जैन मन्दिर की प्रशस्तियों में, जो वि. सं. १५७१ कार्तिक वदि २ शनिवार की है। नौगांव को नूतनपुर और इस प्रान्त के लिए 'वाग्वर देश' का प्रयोग किया गया है। यह लेख राउल उदयसिंह के राज्यकाल का है। इसकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

"संवत् १५७१ वर्षे कार्तिक वदि २ शनौ वाग्वरदेशे राजाधिराज राउल श्री उदयसिंह विजयराज्ये नूतनपुरे..........."

जैसलमेर के शांतिनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति[218] (१५२६ ई०)

इस प्रशस्ति में जयतसिंह के राज्यकाल संघ द्वारा धर्म स्थानों की यात्रा का वर्णन है तथा उसके उपलक्ष में लड्डू, शक्कर आदि की 'लहरण' देने का उल्लेख है। कल्पसिद्धान्त आदि धार्मिक 'ग्रन्थों' के लिखवाने और दान देने का भी इसमें वर्णन है। यह प्रशस्ति देवतिलक द्वारा लिखी गई थी और सूत्रधार पेता ने उसे खोदी थी। स्थानीय भाषा के स्वरूप को समझने में भी यह बड़ी सहायक है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १५८३ वर्षे मागसिर सुदि ११ दिने श्री जैसलमेरु महादुर्गे राउल श्री चाचिगदेव पट्टे राउल श्री देवकर्ण पट्टे महाराजाधिराज राउल श्री जयन्तसिंह विजयराज्ये कुमर श्री लूणकर्ण युवराज्ये श्री ऊकेशवंशे श्री संखवाल गोत्रे सं. अंबा पुत्र सं. कोचर हूया। जिणइ कोरंटई नगरि अनइ संखवाली गामाइ उत्तंग तोरण जैन प्रासाद कराव्या। आवूजी राजलइ श्री संघि सु' यात्रा कीधीदेहरा मडाव्या सं. सिवराज श्री जैसलमेर गढ ऊपर प्रासाद कराव्या। सं. पेतइ समस्त मारुवाडि माहि रुपानाणा सहितं समकित लाडू लह्या। सोना ने आपके श्री कल्पसिद्धान्त ना पोथां लिखाव्यां। सं. वीदइ श्री शत्रुंजय गिरनार आवू तीर्थे यात्रा कीधी। समकित मोदक-घृत खांड साकरनी लाहणि कीधी पांचमीना उजमणा कीना। श्री कल्पसिद्धान्त पुस्तक घणीवार वचाव्या। पांचवार लाप नवहार गुणी चारसा जोडी अल्लीनी लाहणी कीधी। सं. सहसमच घरे आव्या पछइ सं. वीदइ घर २ प्रतइ दस २ सेर घृत लाह्या। गाइ सहस १ जोडी घृत अन्न गुल रुत घणी वार पट्दरसन ब्राह्मणादिकानां दीधा। गउप करावी दस अवतार सहित लषमीनारायणनी मूर्ति गउपइ मंडावी। श्रीदेवतिलककोपाध्यायेन लिखिता चिर नंदतु। सूत्रधार मनसुप पुत्र सूत्रधार पेता केन

२१७. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १।

२१८. नाहर, जैन लेख, भा० ३. सं. २१५४, पृ० ३५–४०।

मुदकारि प्रशस्तिरेषा कोरीतं"

शांतिनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति, जैसलमेर[२१९] (१५२६ ई०)

यह प्रशस्ति जैसलमेर में शांतिनाथ के मन्दिर में लगाई गई थी। इसका समय वि. सं. १५८३ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ है। इसमें जैसलमेर के शासक राव चाचिगदेव, देवकर्ण, जयतसिंह और कुंवर लूणकर्ण की दुहाई दी गई है। इसमें वर्णित है कि उकेशवंश के संखवाल आंबा के पुत्र कोचर ने कोरंट नगर और संखवाली गाँव में ऊंचे तोरण वाले प्रासाद बनवाये और आबू की संघ के साथ यात्रा की। इसने अपने सब द्रव्य लोगों को देकर कर्ण का स्थान लिया। इसके वंशज आसराज ने शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा की। इसकी स्त्री तथा पुत्री ने गिरनार और आबू की यात्रा की। इसके पुत्र खेता ने १५११ में संघ समेत शत्रुंजय तीर्थयात्रा की। इसी तरह उसके एक वंशज पेता ने जैसलमेर के गढ़ पर अष्टापदतीर्थ प्रासाद का निर्माण वि. १५३६ में करवाया और २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। उसने समस्त मारवाड़ में रुपैयों के साथ लड्डू की 'लेण' दी और सुनहरी अक्षरों में कल्पसिद्धान्त की पुस्तकें लिखवाईं। उन दिनों जब मुद्रण व्यवस्था न थी धर्मनिष्ठ व्यक्ति धार्मिक पुस्तकों को लिखवाकर पुस्तक-भंडारों में रखवाते थे और विद्वानों को वितरण करते थे। यह प्रथा एक विद्या के विकास का साधन था और इसके द्वारा धन का सदुपयोग भी होता था। इसी तरह संघ मन्दिर निर्माण, यात्रा, लेण आदि भी ऐसी परम्पराएं थीं कि जिनसे धर्म की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता था और सामाजिक सम्पर्क स्थापित होता था। इन विषयों के अध्ययन के लिए इस प्रशस्ति का अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। प्रस्तुत प्रशस्ति में स्थानीय भाषा का प्रयोग किया गया है जो उस समय के भाषा के स्तर को जानने का अच्छा साधन है। उस समय की प्रचलित मुद्रा को 'नाणा' कहा जाता था जैसाकि इस प्रशस्ति में अंकित है। इसका कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है—

पंक्ति २२–२३ "सं. पेतइ समस्त मारुयाडि माहि रुपानाणा सहित समकित लाडू
लाह्या। सोनाने आपरे श्री कल्पसिद्धान्तना पोथां लिखाव्यां"

शत्रुञ्जय पर्वत लेख[२२०] (१५३१ ई०)

शत्रुञ्जय पहाड़ जो काठियावाड़ का बहुत बड़ा जैन तीर्थस्थान है, आदिदेव के मन्दिर का लेख बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व का है। यह सफेद संगमरमर के पत्थर पर, जिसका आकार ३०"×१८", में उत्कीर्ण है और उसमें ५४ पंक्तियाँ श्लोकबद्ध हैं। इसमें मन्दिर के सम्बन्ध में सातवें जीर्णोद्धार का वर्णन है जिसे ओसवाल जातीय

---

२१९. भंडारकर रिपोर्ट, १९०४–०५, १९०५–१९०६, संख्या ५४;
गा. ओ. सि. नं० २१, अपे. नं० ५;
जैन इन्स. भा० ३, पृ० ३९ (नं० २१५४);

२२०. भाव०, इन्स०, संख्या १०, पृ० १३४–१४०।

समृद्ध श्रेष्ठि कर्मा ने सम्पादन करवाया था। यह मेवाड़ के शासक/ रत्नसिंह और गुजरात के शासक बहादुरशाह का समकालीन था।"

प्रस्तुत लेख में मेवाड़ तथा चित्तौड़ की समृद्ध स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि वे उदार, समृद्ध तथा ईमानदार थे। इसमें दिये गये श्रेष्ठि परिवार के वर्णन में पोमा, गुवा, दशरथ के दो-दो स्त्रियों के होने का वर्णन है जिनमें उनके सच्चरित्र तथा सुखी जीवन की प्रशंसा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में समृद्ध परिवारों में बहु-विवाह की परम्परा थी और उसे सुखी जीवन का एक अंग माना जाता था। कर्मसिंह के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार ने उसको रत्नसिंह के समय का अच्छा व्यापारी तथा शासन अधिकारी बतलाया है। इसके द्वारा आयोजित जययात्रा के उत्सव का भी वर्णन है, जिसमें नृत्य तथा वादिन्त्रों का उपयोग किया गया था। इस प्रशस्ति में उल्लिखित है कि मन्दिर के जीर्णोद्धार में गुजरात और चित्तौड़ के कई शिल्पियों ने काम किया था। ऐसे शिल्पियों में नाथा, जेता, भीम, वेला, टीला, पोमा, गोरा, ढोला, देवा, गोविन्द, बच्छा, भान, छाभा, दामोदर, हरराज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस नामावली से उस समय के ऐसे शिल्पियों के परिवारों का बोध होता है जिनकी उपयोगिता मेवाड़ के बाहर के प्रान्तों में भी समझी जाती थी। इससे श्रमिकों का एक भाग से दूसरे भागों में आदान-प्रदान की व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। इस प्रशस्ति की रचना पं० समयरत्न के शिष्य पं० लावण्य ने की थी और उसे विवेकधीरगणि ने लिखा था। इसके अन्त में कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम दिये हैं जो इसके निर्माण से सम्बन्धित थे—जैसे ठा० हांसा, ठा० मूला, ठा० कुण्णा, ठा० कान्हा, ठा० हर्षा, सु० माधव, सू० वाद्व तथा लोहार सहज।

इसका एक श्लोक यहां उद्धृत किया जाता है—

"श्रीपाद लिप्तललतासर शुद्धदेशे सद्गन्ध मंगलमनोहरगीत नृत्यैः ॥
श्री कर्मराज सुविया जलपात्रिकायां चक्रे महोत्सववरः सुगुरुपदेशात् ॥२६॥"

एकलिंग जी के मठ की प्रशस्ति[221] (१५३५ ई०)

यह प्रशस्ति श्याम रंग के १५"×८" पत्थर पर स्पष्ट रूप से खुदी हुई है। इसके अक्षर शुद्ध और सुन्दर हैं। यह श्री एकलिंग शिवालय के गोस्वामी जी के मठ की तीसरी मंजिल की एक ताक में लगी हुई है। इसमें प्रयुक्त भाषा संस्कृत है। इसमें कुल ४ श्लोक और कुछ पद्यांश भी हैं तथा १० पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इसका समय वि० सं० १५९२ माघ शुक्ला अष्टमी है। प्रस्तुत प्रशस्ति में हारीत, ब्रह्मगिरी, पाशुपताचार्य श्री विश्वनाथ तथा नरहरि के नाम उल्लिखित हैं। श्री नरहरि के बारे में शिव धर्म में दीक्षित होना अंकित किया है जिन्होंने उक्त मठ का विस्तार करवाया था। मठ के विषय में बताया गया है कि इसमें गूढ़ मार्ग, तलखाने तथा बाहिर के

---

२२१. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

सुन्दर भवन हैं। प्रशस्तिकार दशोरा ज्ञातीय पुरुषोत्तम तथा निर्माण करने वाला सूत्रधार भीमसिंह था।

इसकी आदि तथा अन्त की पंक्तियों के अंश का अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"।।श्रीगणेशाय नमः ।। कल्याणानां कदंबानि करो भुजगतां सदा"

"दशपुर ज्ञातीय पंडित पुरुषोत्तम कृतेयं प्रशस्ति। सूत्रधार भीमसिंहः कारयिता मठी विस्तारस्य"

चित्तौड़ का शिलालेख[२२२] (१५३६ ई०)

चित्तौड़ के रामपोल के दरवाजे के बाहरी पार्श्व में वणवीर के समय का एक लेख उत्कीर्ण है, जिसका समय वि० सं० १५९३ फाल्गुन वदि २ है। यह लेख उस समय के पूर्ण ब्राह्मण, चारण, साधु आदि से ली जाने वाली चुंगी (दाण) का उल्लेख करता है और उसे भविष्य में न लिये जाने का इसमें आदेश है।

चींच गाँव का लेख[२२३] (१५३६ ई०)

बाँसवाड़ा जिले के चींच गाँव की ब्रह्मा की मूर्ति पर वि० सं० १५९३ वैशाख वदि १ गुरुवार का लेख है, जिसमें इस भाग के लिए 'वैयागड देशे' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह लेख राजश्री राउल जगमाल के समय का है। इसमें संस्कृत गद्य का प्रयोग किया गया है।

इसमें प्रयुक्त पंक्तियों का कुछ अंश इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री नृपविक्रमार्क्कसमयातीत संवत् १५९३ वर्षे वैशाख वदि १ गुरौ अनुराधानक्षत्रे शिवनामयोगे वैयागडदेशे राजश्री राउल जगमाल जी विजयराज्ये...."

सिवाना का लेख[२२४] (१५३७ ई०)

यह लेख राव मालदेव की सिवाना किले की विजय का सूचक है। इसमें विजय के उपरान्त किये जाने वाले प्रबन्ध का भी वर्णन मिलता है। इससे उस समय की स्थानीय भाषा का भी बोध होता है।

इसका अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्रे (श्री) गणेश प्रा (प्र) सादातु (तृ) समतु (संवत् १५९४ वर्षे आसा (षा) ढ वदि ८ दिने बुधवा (स) रे मह (हा) राज (जा) धिराज मह (हा) राय (ज) श्री मालदे (व) विजै (जय) राजे (राज्ये) गढसि वणे (वाणो) लिये (यो) गढरि (री) कु (कूं) चि मं (मां) गलिये देवे भादाउं तु (भदावत) रे हाथि (थ) दि (दी) नी गढ थं (स्तं) भेराज पंचा (चो) ली अचल गदाधरे (रा) तु रावले वहीदार लिप (खि) तं सूत्रधार करमचंद परलिय सूत्रधार केसव"

इसमें अष्टमी तिथि के बजाय सप्तमी होना चाहिये और इसे चैत्रादि संवत्

---

२२२. ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० ४०२।

२२३. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १।

२२४. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भा० १, पृ० १२२।

१५९५ मारवाड़ में प्रचलित श्रावणादि के विचार से लेना चाहिये।

नडुलाई का लेख[२२५] (१५४० ई.)

इस लेख में रायमल के समय में कु० पृथ्वीराज को महाकुमार की संज्ञा दी है, जो बड़े महत्त्व की है। इससे उसके मेवाड़ के पश्चिमी भाग पर शासकीय अधिकार रहने की सूचना प्राप्त होती है।

लेख का मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १५९७ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे पष्ठयां तिथौ शुक्रवासरे शान्ति सूरि वराणां विजय राज्ये। अथेह श्री मेदपाट देशे— श्री रायमल्ल विजयमान प्राज्य राज्ये तत्पुत्र महाकुमार श्री पृथ्वीराजानुशासनात् नंद कुलवत्यां पुर्या। इति लघु प्रशस्तिरियं लि. आचार्य श्री ईश्वरसूरिणा उत्कीर्णं सूत्रधार सोमाकेन।"

हीरावाड़ी (जोधपुर) का लेख[२२६] (१५४० ई०)

यह लेख राव मालदेव के समय का है। ऐसी प्रसिद्धि है कि जब रावजी की सेना ने नागोर विजय के उपरान्त इधर-उधर गांवों को लूटना आरंभ किया उस समय सेनापति जैता का मुकाम हीरावाडी नामक स्थान में था। उसके प्रभाव के कारण वहां शान्ति बनी रही। इससे प्रभावित होकर वहां के प्रमुख व्यक्तियों ने सेनापति को १५,००० रुपयों की थैली भेंट की। इस द्रव्य का उपयोग एक बावली बनवाने में किया गया जो रजलानी गाँव के निकट है। इस बावली में एक लेख लगाया गया जिसके पूर्व भाग में १७ श्लोक हैं। इनमें देवताओं आदि की स्तुति की गई। इन श्लोकों से उस समय की संस्कृत भाषा के स्वरूप का हमें अनुमान होता है। इस लेख का उत्तरार्ध बड़े महत्त्व का है जिसके कुछ अंश इस प्रकार है—

'इति श्री विक्रमायीत साके १४४० संवत् १५९७ व्रषे वदि १५ दिने रउवारे राजश्री मालदेवरा: राठड रावारा बावडी रा कमठण ऊधरता राजी श्री रिणमल राठवड गेत्ते (गोत्रे) तत् पुत्र राजी अखैराज सूतन राजश्री पंचायण पंचायण सूत न राजश्री जेताजी वावड रा कमट (ठा) ऊंधंता।" इस गद्यांश से उस समय की मिश्रित भाषा का भी पता चलता है एवं राजवंश के क्रम का भी ज्ञान होता है।

इस अंश के आगे जैता के कुटुम्बियों के नाम दिये हैं। इससे यह भी सूचना मिलती है कि उक्त बावली के बनवाने का कार्य वि० स० १५९४ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ रविवार को प्रारंभ किया गया था। इसके निर्माण कार्य में १५१ कारीगर एवं १७१ पुरुप एवं २२१ स्त्रियां मजदूर लगाये गये थे।

इस लेख से सम्पूर्ण कार्य में १,२१,१११ फदिए खर्च होना पाया जाता है। फदिये का मूल्य उन दिनों एक रुपये के ८ फदिए के बराबर थे अर्थात् दो आने के

---

२२५. नाहर–जैन लेख, भा० १, संख्या ८५२, पृ० २१५।

२२६ विश्वेश्वर नाथ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ११७–११८

बराबर मूल्य वाली मुद्रा को फदिया संज्ञा दी जाती थी।

इस लेख में बावन्नी बनाने में जो सामान लगा उसकी सूची भी दी गई है— जैसे १५ मन सूत, ५२० मन लोहा, ३२१ गाड़ियां, २५ मन घी, १२१ मन सन, २२१ मन पोस्त, ७२१ मन नमक, ११२१ मन घी, २५५५ मन गेहूँ ११,१२१ मन दूसरा नाज और मन अफीम (मजदूरों के लिए)।

उक्त सूची से प्रतीत होता है कि उन दिनों मजदूरी को मुद्राओं में देकर आवश्यक वस्तु के रूप में भी दिया जाता था।

वनेश्वर के पास विष्णु मन्दिर की प्रशस्ति[२२७] (१५६१ ई०)

यह लेख डूंगरपुर के वनेश्वर के पास के विष्णु-मन्दिर का आषाढ़ादि वि० सं० १६१७ (चैत्रादि १६१८) शाके १४८३ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सं० १५६१ ता० १७ मई) का है। इसमें प्रयुक्त भाषा संस्कृत तथा लिपि नागरी है। इसमें २५ श्लोक तथा पीछे की कुछ पंक्तियों में वागडी भाषा का प्रयोग किया गया है। इस प्रशस्ति से प्रकट है कि आसकरण की माता सज्जनाबाई सोलंकी ने डूंगरपुर में वनेश्वर के मन्दिर के पास उपर्युक्त विष्णु मन्दिर को बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा के समय स्वर्ण की तुला आदि दान किये। इससे यह भी ज्ञात होता है कि सज्जनाबाई से आसकरण और अक्षयराज नामक दो कुंवर और लाछाबाई नामक एक कुंवरी पैदा हुई थी। इस प्रशस्ति में गंगदास के सम्बन्ध में जो आसकरण के पहले तीसरी पीढ़ी में वागड का शासक था, लिखा है कि उसने ईडर के स्वामी भाण की १८,००० सेना के साथ युद्ध हुआ, जिसमें उसने भाण के सिर पर प्रहार किया और उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया। आसकरण के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि उसके सेवकों ने मेवाड़ के राजा को जीता। इस कथन की अन्यत्र पुष्टि नहीं होती। इसलिए यह कथन कहाँ तक ठीक है, कहा नहीं जा सकता। "यह संभव हो सकता है कि महाराणा उदयसिंह को लेकर धाय पन्ना प्रतापगढ़ से डूंगरपुर पहुंची, उस समय महारावल पृथ्वीराज ने उसे जैसी सहायता देनी चाहिये थी वैसी न दी, जिससे राज्य पाने के पश्चात् उदयसिंह ने डूंगरपुर सेना भेजी हो।" प्रशस्तिकार ने आसकरण को उदार शासक कहा है। उसने स्वयं स्वर्ण का तुलादान किया और विष्णु-मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय उसने अपनी माता को स्वर्ण की तुला कराई। इसमें उसके दादा उदयसिंह के द्वारा कल्पवृक्ष के दान देने का भी उल्लेख है। इसमें वागड के शासकों की नामावली दी गई है जिसकी संख्या ४५ है। यह नामावली विजयादित्य से आसकरण तक दी गई है, जिसमें प्रारम्भिक मेवाड़ वंशीय शासक सम्मिलित हैं। प्रशस्तिकार ने अंतिम श्लोक में वागड की साक्षरता पर प्रकाश डाला है जो स्थानीय विद्योन्नति का प्रमाण है।

---

२२७. वीरविनोद भा० २, प्रकरण ११, शेष संग्रह सं० ५, पृ० ११८६-६१। ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६६।

इसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

"तुलापुरुषदानस्य हेमसंपादितस्य च
गोसहस्रादिदानानां दात्री पात्रजनस्य या"
"कृष्ण कृष्ण इवापर क्षितितले श्री सज्जनाबा ततो
जाताकारि तया प्रसन्नमनसो प्रासाद एष स्थिर:"
"चिरंजीवतु बाई श्री सज्जनाबाई प्रासाद कराव्यूं छे"

वनेश्वर के मन्दिर का लेख[228] (१५६१ ई०)

यह लेख डूंगरपुर के वनेश्वर के मन्दिर का है। इसमें पद्य मय भाषा संस्कृत है। इसका समय वि. सं १६१७ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई. स. १५६१ ता. १७ मई) है। इसमें उल्लिखित है कि गंगदास का ईडर के स्वामी भाण के साथ युद्ध हुआ, जिसमें गंगदास ने उसके शत्रु की १८,००० सेना को तितर-बितर कर दिया और भाण के सिर पर प्रहार किया। इस सम्बन्ध का श्लोक इस प्रकार है—

"येनाष्टादशसाहस्त्रं बलं भग्नं महात्मना
इलादुर्गाधिपो भानुर्भाले गर्ज्जेन ताडित:"

द्वारिकानाथ का लेख[229] (१५६१ ई०)

यह लेख डूंगरपुर के वनेश्वर के पास के विष्णु मन्दिर (द्वारिकानाथ) का वि. सं. १६१७ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई. सं. १५६१ ता. १७ मई) का है। इसकी भाषा पद्यमय संस्कृत है। इस प्रशस्ति से प्रकट है कि पृथ्वीराज की एक राणी सज्जनाबाई वालणोत सोलंकी हरराज की पोती और किशनदास की पुत्री थी। उससे आसकरण और अक्षयराज नामक दो पुत्र और लाछबाई नामक पुत्री हुई। उक्त राणी ने इस विष्णु मन्दिर को बनवाया और प्रतिष्ठा के अवसर पर स्वर्ण तुलादि दान किए।

जोगेश्वर महादेव के मन्दिर का लेख[230] (१५६७ ई०)

यह लेख डूंगरपुर के जोगेश्वर महादेव के वि. सं. १६२४ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई. सं. १५६७ ता. ६ नवम्बर गुरुवार) का है। इस लेख तथा उसी मन्दिर के वि. सं० १६३४ की प्रशस्ति से विदित होता है कि उक्त मन्दिर का निर्माता मंत्री जगमाल खड़ायता था। यह प्रशस्ति उक्त मंत्री के वंश वर्णन के लिए बड़ी उपयोगी है।

वैराट के जैन मन्दिर का लेख[231] (शक संवत् १५०६ ई०)

यह लेख वैराट के जैन मन्दिर का है जिसमें ४० पंक्तियाँ हैं जो कई जगह खंडित हैं। लेख का आशय यह है कि इन्द्रराज ने तीन तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ बनवा

---

२२८. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७२।
२२९. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ८७–८८।
२३०. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ९९।
२३१. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, पृ० ४६।

कर विमलनाथ के प्रासाद में लगवाई। इनमें से एक चन्द्रप्रभ की मूर्ति पीतल की थी। इसकी स्थापना का कार्य हरविजय सूरि ने किया। इस कार्य का समय फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, शक संवत् १५०९ था। इस प्रशस्ति में अकबर को एक महान् शासक व विजेता बताया गया है जिसने हरविजय के उपदेश से अपने राज्य में वर्ष भर में १०६ दिन जीवहत्या का निषेध करवा दिया था। प्रशस्ति के एक भाग में इन्द्रराज तथा हरविजय के वंशक्रम का वर्णन मिलता है। इसमें यह भी वर्णित है कि हरविजय को बादशाह अकबर ने जगत्गुरू की उपाधि अर्पित की थी : इन घटनाओं की पुष्टि देवविमल गणि के हीरसौभाग्य काव्य से भी होती है।

आबू के अचलेश्वर के समीपवर्ती मानराव के मन्दिर की प्रशस्ति[२३२] (१५७६ ई०)

यह प्रशस्ति संस्कृत पद्य और गद्य में है, जिसमें ५ श्लोक और फिर गद्य में अन्तिम भाग है। इसका समय संवत् १६३३ ज्येष्ठ शुक्ला २ रवि है। इसमें चौहान मानसिंह के शौर्य और उपलब्धियों का वर्णन हैं। इससे यह भी मालूम होता है कि वह राम और शिव का भक्त था। धारबाई ने उसकी स्मृति में इस मन्दिर का निर्माण करवाया और मान की मूर्ति की स्थापना की।

इसकी एक पंक्ति यहां उद्धृत करते हैं—

"तस्येयं परभामूर्तिः पत्नीपंचक संयुता।
कारिता शिवसेवार्यं धारबाय्या शिवालये ॥"

उदासर चारणान के निकट छत्री के दो लेख[२३३] (१५७७ ई०)

ये दो लेख उदासर चारणान के समीप एक छत्री पर जो चूरू से लगभग २८ मील पश्चिम में है। प्रथम लेख १४×४ इंच के आकार का है जिसमें पांच पंक्तियां हैं और दूसरा १५×६ इंच के आकार में ८ पंक्तियों वाला है। इन लेखों से रामसिंह के सम्बन्ध की कई भ्रान्तियां स्पष्ट हो जाती हैं। इसके सम्बन्ध में एक यह भ्रान्ति है कि उसे महाराजा रायसिंह (बीकानेर) ने विष दिया था। इसके लिए यह भी कहा जाता है कि वह मुगलों से या जाटों से लड़कर मारा गया आदि। वास्तव में उसकी मृत्यु चूरू ठाकुर मालदेव के विरुद्ध लड़ते हुए हुई। जहाँ वह मारा गया वहाँ एक दुमंजिली छत्री बनी हुई है और उसी पर ये लेख अंकित हैं। इनसे यह भी ज्ञात होता है कि उसके शव के साथ उसकी दो पत्नियां कछवाही रुवमादे और भटियानी संतोषदे सती हुई—

दोनों लेखों के मूल पाठ निम्न हैं—

---

२३२. वीरविनोद, भा. २, प्र. ११. पृ. १२१४।

२३३. मरु-भारती, वर्ष १७, अंक २, जुलाई १९६९, पृ० ६६–७२; वैचारिकी, अक्टूबर, १९७१, पृष्ठ २८।

(१)

पं "१ संवत् १६३४ वर्ग आषाड मासे शुक्ल पक्ष तिथि १५
२ रविवासरे राजि श्री रामसिंघजी संगाम मृत्यु वहुजी श्री क
३ छवाही रुपमादे वहुजी श्री भटियाणी संतोपदे सहग
४ मण कृता राजि श्री रामसिंघजी महा सतीयां सहित
५ श्री वैंक [कु] ठे प्राप्ता सुभ भावतु कल्य [या] ण मस्त: [स्तु:]"

(२)

पं १ स्वस्ति श्री गणेसायनमः अ [थु] सवसरे अरमन् शुभविक्र
२ मादित्य राजे [शु:] संवत् १३३४ वर्षे शाके १४६६ प्रवतमाने महामां
३ गल्य आषाढ मासे शुक्ल पक्षे तिथि पूर्णिमा १५ रविवासर राजि
४ श्री रामसिंघजी संग्रामे मृत्यु: वहूजीकछवाही रुपमादे
५ ...... परम पवित्र पतिव्रता महासती सहगमण प्रा
६ प्ता वहू श्री भटियाणी संतोपदे सगभण कृता राजि श्री
७ रामसिंघजी महासतीया सहित भी वैकुण प्राप्त सुभ
८ भवतु कल्याणमस्तु: सिलावट वीरदास कृता जोसी हेमालिपतः

सारन का लेख[२३४] (१५८० ई०)

यह लेख सोजत प्रान्त के सारन नामक स्थान का है जहाँ रावचन्द्र सेन की दाहक्रिया की गई थी। इस स्थान में एक प्रतिमा बनी हुई है जो चन्द्रसेन जी की घोड़े पर सवार की है और उसके आगे ५ स्त्रियाँ खड़ी हैं जो उनके साथ सती हुई थीं। उसमें अंकित है—

"श्री गणेशाय नमः। संवत् १६३७ शाके १५ [०] २ माघ मासे सू (शु) क्ल पक्षे सतिव (सप्तमी) दिने राय श्री चन्द्रसेण जी देवीकुला सती पंच हुई।"

सूरखंड की प्रशस्ति[२३५] (१५८५ ई०)

इस प्रशस्ति की छाप उदयपुर संग्रहालय से प्राप्त हुई। इसमें महाराणा प्रताप द्वारा राठौड़ों को छप्पन क्षेत्र में हराकर संवत् १६४२ ई० में अपना राज्य स्थापित करने की सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त इसमें यह भी दर्ज है कि महाराणा का मानसिंह के साथ युद्ध हुआ था। प्रस्तुत लेख में रणछोड़ जी के मन्दिर के लिए पुण्यार्थ भूमि ४ हल की देने का पुजारी कुँवर का उल्लेख है। इसकी भाषा मिश्रित है जिसमें मेवाड़ी के साथ खड़ी बोली को प्रयुक्त किया गया है। उस समय के अन्य लेखों की भाषा व तरीके से तो यह सुरहलेख मेल नहीं खाता, परन्तु वि० सं०

---

२३४. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भा० १, पृ० १५६।

२३५. जी. एन. शर्मा, मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ० ११५-१६; जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसायटी, भा० ३०, १६५५, पृ० ७४-७५।

१६४२ में राठौड़ों को हराकर प्रताप का छप्पन प्रदेश पर अधिकार होना सर्वमान्य है। रहा भाषा का प्रश्न इस पर भी जब हम गहराई से देखते हैं तो यह भाषा युद्धकाल में चल पड़ी थी जैसा कई स्मारक लेखों से प्रमाणित होता है। यह भी संदेह हो सकता है कि सम्भवतः पुजारी ने पीछे से अपने अधिकार को पुष्ट करने के लिए यह सुरह लेख तैयार करवाया हो। परन्तु अक्षरों की बनावट तो १६वीं शताब्दी सी दीखती है और घटना या तिथिक्रम जो इसमें दिया गया है वह ठीक है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है जिसमें १६ पंक्तियाँ हैं—

"महाराणाधराज प्रतापसीगजी ने राठड का राज पराजित कर सिसोदियण का राज संवत् १६४२ में राज प्रतापत कीग्रा सुरषंड नगेर पर राज काद उस समे मुगल अकबर के विपात सेनापती रामानसेह को सात जुद था महाराणा जी असी वज पइ उ पुसी मे श्री रनसडजी का मदीरा डोरी थ उसका प्रमद कीग्रा लु बीहल ४ पुजारा कुवर को दा जेठ सुकल ११"

डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की प्रशस्ति[२३६] (१५८७ ई०)

यह प्रशस्ति डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की है। इसका समय वि० सं० १६४३ वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १५८७ ता० ३ अप्रैल) है। इस प्रशस्ति से हमें कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। इस बावड़ी का निर्माण महारावल आसकरण की राणी प्रेमलदेवी द्वारा करवाया गया था। वह बड़ी धर्मनिष्ठ थीं। उसने आबू, द्वारिका और एकलिगजी आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। वागड के चौहानों के इतिहास जानने के लिए भी इस प्रशस्ति का बडा उपयोग है, क्योंकि इसमें चौहान लाखण से लगाकर उक्त संवत् तक के वागड के चौहानों की वंशावली उपलब्ध है।

राणकपुर प्रशस्ति[२३७] (सभामण्डप) (१५०६ ई०)

इसमें प्राग्वाट् ज्ञाती के साह खेता नामक वर्द्धा पुत्र यशवंतादि ने ४८ सुवर्ण माणक प्रतोली के निमित्त अनुदान दिया।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १६४० वर्षे फाल्गुन मासे शुक्ल पक्षे पंचम्यां तिथौ गुरुवासरे श्री तपागच्छाधिराज पातसाह श्री अकबरदत्त जगद्गुरु विरुद्धारक भट्टारिक श्री श्री श्री ४ हीरविजयसूरीणामुपदेशेण चतुर्मुख श्री धरण विहारे प्राग्वाट् ज्ञातीय सुश्रावक सा खेता नायकेन वर्द्धा पुत्र पुत्र यशवंतादि कुटुम्बयुतेन अष्ट-चत्वारिंशत् (४८) प्रमाणानि सुवर्ण नाणकानि मुक्तानि पूर्व दिक्सत्प्रतोली निमित्तमिति श्री अहमदावाद पार्श्वे उसमा पुरतः ।।श्रीरस्तु।।"

---

२३६. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १०१–१०२।

२३७. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ७१४, पृ० १७०–१७१।

सूरपुर (डूंगरपुर) के माधवराय के मन्दिर की प्रशस्ति[२३८] (१५९१ ई०)

यह प्रशस्ति सूरपुर नामक डूंगरपुर जिले के माधवपुर के मन्दिर की आषाढ़ वि० १६४७, तदनुसार ई० सं० १५९१ ता० १७ मई सोमवार की है। इसकी अधिकांश भाषा संस्कृत है। प्रशस्ति को संस्कृत पद्य तथा वागडी गद्य में लिखा गया है। इसमें वागड देश की समृद्धि का वर्णन है जिसमें ३५०० गाँवों की संख्या बताई गई है। डूंगरपुर के वर्णन में भी बगीचों, बावड़ियों, सरोवर और कुंओं का वर्णन दिया गया है। इस नगर के वर्णन में शहर पनाह, दुकानें, मार्ग, मन्दिर आदि भी समावेशित हैं। प्रशस्ति से उस समय की शिक्षा पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है जिसमें वेद, पुराण और शास्त्र अध्ययन के मुख्य विषय हैं। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में इन विषयों के अध्ययन पर बल दिया गया है।

इस प्रशस्ति में वागड के शासकों का सम्बन्ध चित्तौड़ के गुहिल वंश से स्थापित किया गया है और उसे चित्तौड़ के सामन्तसिंह से जोड़ा गया है। इस क्रम में सामन्तसिंह, रत्नसिंह, रा० नरब्रह्म, रा० भालु, रा० केशरी, रा० सामन्तसिंह, रा० सिहडदे आदि हैं। राउल आसकर्ण के लिए इसमें अकबर से युद्ध करना लिखा है। इसी क्रम में उसके पुत्र महसमल की पट्टराणी सूरजदे द्वारा सूरिजपुर में संवत् १६४७ में मन्दिर बनाने का उल्लेख है। इसके द्वारा हमें सहस्रमल के कुँवर करमसी तथा कुमारी जसोदाबाई के नाम उपलब्ध होते हैं। प्रशस्तिकार ने नागर जाति के भाभल व्यास नामी प्रधान, मन्त्री गांधी सिघा, कोठारी कचरा तथा प्रासाद के निरीक्षक महेसदास, प्रशस्तिकार सोमनाथ, लेखक दीक्षित वेणीदास तथा साक्षी कंदोई कान्हा के नाम दिये हैं। इन नामों से उस समय की शासन व्यवस्था के संचालकों का बोध होता है। इस प्रशस्ति को सूत्रधार गोदा के पुत्र हरदास ने लिखी थी। यह प्रशस्ति वागड के शासकों तथा चित्तौड़ के गुहिलों के सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ी उपयोगी है। इससे उस समय की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"तत्रदेशा नृपादेशा कामं संति सहस्रशः
तथापि संप्रशंसंति गुणा वागड नामभिः।"

"पंचत्र्यंश शतान् ग्रामान् विविधाभूति भूतयः
बहुदबोलया यत्र यत्र पुण्य जनाश्रितः"

"आस्ते गिरिपुरं नाम नगरं नगरंजितं"

"यत्तदावितताेवानवापीकूपसरोवरैः
शुशुभे शुभपर्यन्तै वृहत्प्राकार गोपुरः।"

---

२३८. वीरविनोद, द्वि० भा० प्रकरण ११, पृ० ११७७–८१;
ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १०२।

बीकानेर की प्रशस्ति[२३९] (१५९४ ई०)

यह प्रशस्ति बीकानेर-दुर्ग के द्वार के एक पार्श्व में लगी हुई है जो महाराजा रायसिंह के समय की है। इसकी भाषा संस्कृत है। प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६४५ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १५८९ तारीख ३० जनवरी) बृहस्पतिवार को बीकानेर के वर्तमान किले के निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया और फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १५८९ तारीख १७ फरवरी) सोमवार को नींव रखी जाकर वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० सं० १५९४ तारीख १७ जनवरी) बृहस्पतिवार को गढ़ सम्पूर्ण हुआ। यह काम मन्त्री कर्मचन्द्र के निरीक्षण में सम्पन्न हुआ था। यह लेख महाराजा रायसिंह ने गढ़-निर्माण काल के समाप्त होने के अवसर पर लगाया गया था। विस्तार के विचार से तथा सुन्दरता की दृष्टि से यह लेख बड़े महत्त्व का है। इस लेख का उपयोग और अधिक बढ़ जाता है जब हमें इसमें बीका से रायसिंह तक के बीकानेर के शासकों की उपलब्धियों का परिचय मिलता है। इसमें ६०वीं पंक्ति से रायसिंह के कार्यों का उल्लेख आरम्भ होता है, जिसमें उसकी काबुलियों, सिन्धियों और कच्छियों पर विजयें मुख्य हैं। इसके सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि वह काव्य और साहित्य से भी बड़ा अनुराग रखता था। वह स्वयं अच्छा कवि और विद्याप्रेमी था और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसे हिन्दू धर्म के प्रति अगाढ़ आस्था थी, परन्तु वह दूसरे धर्मों को भी सम्मान की दृष्टि से देखता था। लेखक ने उसके गुजरात, काबुल, कन्दहार आदि की चढ़ाइयों के अवसर पर अद्भुत शौर्य की प्रशंसा की है। शिलालेख का रचयिता जइता नामक एक जैन मुनि था जो क्षेमरत्न का शिष्य था। यह लेख उस समय की संस्कृत भाषा की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है। इस लेख से रायसिंह की भवन निर्माण की रुचि का बोध होता है। इसकी कुछ पंक्तियों का अंश इस प्रकार है—

"अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराज महाराज श्री श्री श्री २ रायसिंहेन दुर्गाप्रतोली सम्पूर्णी कारिता सा च सुचिरस्थायिनी भवतु।"

सादड़ी लेख[२४०] (१५९७ ई०)

यह लेख सादड़ी स्थित एक बावड़ी के दाहिनी भाग के दीवार पर लगा हुआ

---

२३९. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल;
न्यू सीरीज १६, ई० स० १९२०, पृ० २७९;
ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० १७९;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, पृ० ११;
गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, भा० १, पृ० १३०।

२४०. भाव० इन्स० संख्या १२, पृ० १४३—४५;
सरस्वती, भाग १८, सं० २, पृ० ९७;
ओझा, उदयपुर, भाग १, पृ० ४३१।

है। जिस पत्थर पर इसे उत्कीर्ण किया गया है, उसका आकार १५"×८" है। इसमें २२ पंक्तियाँ हैं। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत गद्य तथा लिपि देवनागरी है। इसमें उल्लिखित है कि ओसवाल ज्ञाति के कावड़िया गोत्र के भारमल की स्त्री कपूरा ने अपने पुत्र ताराचन्द के पुण्य की स्मृति में इस तारावाव नामी तीर्थ का निर्माण किया और उसके पुत्र ने उसका विधिवत् उद्घाटन किया। ताराचन्द के साथ उसकी ११ स्त्रियाँ सती हुई। ताराचन्द गोडवाड का हाकिम था और उस समय सादड़ी में रहता था। ओझा जी के अनुसार "उसने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार औरतें, एक खवास, छः गायनें, एक गवैया और उस गवैये की औरत की मूर्तियाँ पत्थरों पर खुदी हुई हैं।" यह लेख संवत् १६५४ वैशाख कृष्णा द्वितीया बृहस्पतिवार का है। इस लेख के अनुसार इस बावड़ी का निर्माण ताराचन्द की माता कपूरा ने कराया था। प्रस्तुत लेख से तथा मूर्तियों से उस समय की प्रचलित सती प्रथा पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

"संवत् १६५४ वर्षे शाके १५२० प्रवर्तमाने महामांगल्यप्रदवैशाप मासे कृष्ण-पक्षे द्वितीयायां तिथौ बृहस्पतिवासरे श्रीसादडी नगरे। महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री अगरसींघजी विजयराज्ये उसवाली ज्ञातीय कावेडीय गोत्र श्रावकवरद विराजमान साह श्री भारमलतद्भार्या शीलालंकारधारिणी अनेकतुल्य पुण्यादयेम्यः महापुण्यकारणो नादेचा गोत्रगाय बीगंगाजल निर्मला भाई श्री कर्पूरनाम्नि तस्यः पुत्रस्य ताराचन्दस्य एकादशसतीसहित सपुण्यार्थ श्रेयार्थ श्रीतारावावि नामकं तीर्थ कारितं। तत्पुत्रेण साह सरताण (सुरताण) जीनाम केन प्रत (ति) पत्यमान विजयो-नाम् शुभं भवतुः।"

लाखेरी की बावड़ी का लेख[२४१] (१६०० ई०)

बूंदी से १ मील के अन्तर पर लाखेरी गांव है। यहां की एक बावड़ी में वि. सं. १६५७ वैशाख वदि १२ सोमवार का एक लेख उपलब्ध है। लेखाकार १३×१२ वर्ग इंच तथा अक्षराकार ०.६×०.१ वर्ग इंच है। इसमें २६ पंक्तियां हैं। लिपिकार संतदास का सेवक गंगादास है। लेख में व्यास संतदास के द्वारा एक बावड़ी के निर्माण का वर्णन है। इसी संदर्भ में व्यास गोपालदास, धनेश्वर आदि विद्वानों के नाम अंकित हैं जो रावराजा सुर्जन एवं राव भोज की सेवा में थे। इस लेख का उपयोग एतद् कालीन व्यास वंश की जानकारी तथा इस क्षेत्र की विद्योन्नति की जानकारी के लिए है। उदाहरण के लिए गोपाल के पांच पुत्र बड़े पंडित थे। इसी तरह दामोदर व्यास बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषी था। इसमें संस्कृत तथा बृजभाषा का प्रयोग किया गया है। इसका कुछ अंश यहां उद्धृत है—

---

२४१. वरदा; जुलाई १९७१. पृ० ५५, ६२, ६३।

"तद्गृहे व्यास श्री संतदास पूज्योजात: तेनेयं पुज्य जला वापिका कारिता"
"संतदास तिनि इह बावरी कराई"
"तीके पुत्र २ उपज्वा व्यास गोपाल के पुत्र पांच प्रतापवान पंडित हुवा तिनिके..............व्यास पीतांबर तिनिके पुत्र...............भये"

नाना गाँव का लेख[२४२] (१६०२ (ई०)

इस लेख में राणा अमरसिंह द्वारा नाना गांव मुहता नारायण को दिये जाने का उल्लेख है। इसी वंश के एक मुहता द्वारा सिवाने में मरने का वर्णन है। इस गाँव से नारायण ने एक रेंठ महावीर की पूजा के लिए अनुदान किया। लेख की भाषा मेवाड़ी है। इससे प्रमाणित है कि नाना गाँव (वाली-मारवाड़) उस समय मेवाड़ राज्य के अर्न्तगत था। इसमें मुसलमानों को सुअर की सौगन्द को अंकित किया गया है जो मुगल प्रभाव का द्योतक है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"अथ संवत्सरे नृपविक्रमादित संवत् १६५६ भाद्र पद मास शुक्ल पक्षा ७ तिथौ शनिवारे। श्री वंध गोचे। श्री सविया किण्णोत्रजा। मंत्रीश्वर त्रिभुव तत्पुत्र पूना तत्पुत्र मुहता चांदा तत्पुत्र मु-षेतसी तत्पुत्र मुहता नीसल १ चाइमल २ पीसन पुत्र मुहता श्री उरजन तत्पुत्र मुहता सिवाणे साको करी मज। पिता पुत्र मुहता श्री नारायण १ सादूल २ सूजा ३ सिधा ४ सहसा ५ मुहता नारायण नु'राणा श्री अमरसिंह जी मया करेने गांव नाणो दियो मुहतो नारायण अरहट १ श्री महावीर नु सतर भेट पूजा सारु केसर दीवेल सारु दीधो। हीदु'ना बरोस उत्थावे तियेनु गाईरो सुस। तुरक उत्थापे तियनु' सुयर री सु'स..............."

रेवास का लेख[२४३] (सीकर) (१६०४ ई०)

प्रस्तुत लेख वि० सं० १६६१ का है जिसमें अंकित है कि यशकीर्ति के उपदेश से खंडेलवाल श्री कुंभा ने रेवास में आदिनाथ मन्दिर में पद्मशिला की स्थापना की। इस समय कूर्मवंश के महाराज रायमल तथा मन्त्री देईदास थे। रेवास उस समय रायमल के अधिकार में होना पाया जाता है।

कोकिन्द के पार्श्वनाथ के मन्दिर का लेख[२४४] (१६०९ ई०)

इसमें महाराजा शूरसिंह तथा कुमार गजसिंह का उल्लेख है जिसमें जोधपुर राज्य की समृद्ध अवस्था का वर्णन है। प्रशस्तिकार लिखता है कि राज्य में चोरी, डकैती का भय नहीं था और न लोग अनावश्यक रूप से आखेट करते थे। आमिष और मद्यपान भी प्रचलित न था। वहां विजय कुशल, सहज सागर विनय जय सागर आदि

---

२४२. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं. ८९०, पृ० २३०।
२४३. रि० इ० ए० १९६२–६३, क्र० ३८६;
जैन–शिलालेख संग्रह, नं० २५१, पृ० ९३।
२४४. नाहर, जैनलेख, भा० १, नं० ८७४, पृ० २२५।

जैन विद्वान थे। इस लेख को तोडर सूत्रधार ने उत्कीर्ण किया था। प्रशस्तिकार उदयरुचि एवं लेखक जय साग.र थे। प्रशस्ति की भाषा संस्कृत है। इसके मूलपाठ का कुछ भाग इस प्रकार है—

"नायत्रवित्ताहरणं न चौरी नन्यासमेपोन च मेद्यपाने नाखेट को नान्य व शानिपे वे। त्यादि स्थिति शासति राज्य मस्मिन्"

नाकोडा का लेख[२४५] (१६१० ई०)

यह लेख कई सूत्रधारों के नाम की सूचना देता है। वे हैं सूत्रधार दामा तत्पुत्र मना धना एवं वरजांग।

आमेर का लेख[२४६] (१६१२ ई०)

यह लेख वि० सं० १६६९ फाल्गुन शुक्ला पंचमी रविवार का है। इसमें जहांगीर के राज्य की दुहाई दी गई है, जिससे आमेर और मुगलराज्य की निकटता का बोध होता है। इसमें कछवाह वंश को 'रघुवंशतिलक' कहकर सम्बोधित किया गया है तथा इसमें पृथ्वीराज, उसके पुत्र राजा भारमल, उसके पुत्र भगवंतदास और उसके पुत्र महाराजाधिराज मानसिंह के नाम क्रम से दिये हैं। इसमें मानसिंह द्वारा जमुआ रामगढ़ के प्राकार वाले दुर्ग तथा कुंआ और बाग के निर्माण का उल्लेख है। इसके प्रतिष्ठा कार्य के सम्बन्ध में पद्माकर पुरोहित के पुत्र पुरोहित पीताम्बर का नामोल्लेख है। इस कार्य के उत्सव पर अनेक भाग से राजकीय अधिकारी उपस्थित हुए थे। इस लेख से स्पष्ट है कि मानसिंह भगवंतदास का पुत्र था। प्रस्तुत लेख में 'निजाम' शब्द का प्रयोग एक प्रान्तीय विभाग के अर्थ में प्रयुक्त है जो मुगल प्रभाव का द्योतक है। इसमें संस्कृत गद्य तथा नागरी लिपि का प्रयोग किया गया है। इसकी कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं।

"श्री मज्जहांगीर साहि सलेम राज्ये वर्तमाने श्री रघुवंश तिलक कछवाहे कुल मंडन श्री राजा पृथ्वीराज तत्पुत्र श्री राजा भारमल्ल तत्पुत्र श्री राजा भगवंतदास तत्पुत्र श्री महाराजाधिराज मानसिंह नरेन्द्र कारितं रामगढ प्राकराख्यं दुर्ग कूपारामोप शोभितं तत्र परमपवित्र श्रीपद्माकर पुरोहित पुत्र श्री पुरोहित पीतांवरस्याधिकारे-सिद्धं ।। तत्र कार्जनियुक्ताशिल्पिना ।। एतद्देशीयनिजामश्च ।। अन्येत्र तन्मता-नुसारिणः।।"

मांडलगढ़ की जगन्नाथ कछवाह की छत्री का लेख[२४७] (१६१३ ई०)

भीलवाड़ा कस्बे से ६ मील उत्तर में मांडल नामका एक पुराना कस्बा है, जहां आबादी के पास ही मेजा गांव की तरफ जाने वाले रास्ते पर एक विशाल बत्तीस थंभों की छत्री बनी हुई है, जिसको कछवाहा जगन्नाथ की छत्री और सिंहेश्वर

---

२४५. नाहर, जैन लेख, प्रथम भाग संख्या ७२४, पृ० १७३।

२४६. मूल प्रशस्ति की छाप के आधार पर।

२४७. वीरविनोद, भा० २, पृ० २६७–२६८।

महादेव का मंदिर कहते हैं। इस पर वि० सं० १६७० मार्ग शीर्ष शुक्ला ११ शुक्रवार की एक प्रशस्ति लगी हुई है जो उक्त छत्री और शिवलिंग की स्थापना की द्योतक है। मेवाड़ आक्रमण से लौटते हुए कछवाह राजा जगन्नाथ का देहान्त मांडल में हुआ था जिसके स्मारक रूप में पीछे से यह छत्री बनाई गई और उसकी प्रतिष्ठा की गई। कछवाह राजा जगन्नाथ, आंबेर के राजा भारमल का एक पुत्र और भगवन्तदास का भाई था। इस छत्री की प्रतिष्ठा के समय, जो जहाँगीर के राज्यकाल में हुई थी, कई अधिकारी वहाँ उपस्थित थे जिनके नाम इसमें उनके पद के साथ दिये गये हैं जो शासकीय व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। ऐसे पदों में पोतदार, मुसरफी, खीजमतदार, पंडित आदि मुख्य हैं। लेख स्थानीय भाषा में है, जिसकी कुछ अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'मकाम मांडिल छत्री कराई तमाम राजा श्री आसानन्दजी पदम सुत वैसरज सुत पोतदार सहा धरमदास खंडेलवाल मुसरफी ठाकुर सीतलदास कायथ माथुर वासगढ रथथंभ सूत्रधार माधोगोविन्द रामदास गढ का आज्ञा उदयपुर सु पंडित टोडा का सुवाई खीजमतदार श्री शुभं भवतु श्री।"

साँभर लेख[२४८] (१६१५ ई०)

यह लेख एक साँभर की छत्री पर है जो संवत् १६७२ मास कार्तिक का है। यह जहाँगीर के राज्यकाल का है जिसमें वर्णन है कि उक्त छत्री को जुलिकर्ण, पुत्र सिकन्दर ने इसे बनवाया था। इसकी भाषा हिन्दी है जो इस प्रकार है—

"श्री सृष्टिपति सत्य ।।श्री।। संवत् १६७२ वर्षे कार्तिक मासे पातिसाहि श्री जहाँगीर आदिल विजयराज्ये मध्ये सिकन्दर सुत जुलिकर्ण (?) जी इह छत्री सृष्टि-पति की से बनाई ।।श्री:।।

इसकी कुछ ४ पंक्तियाँ हैं—

बड़ीपोल के दरवाजे की छत का लेख[२४९] (१६१६ ई०)

ये लेख उदयपुर के महलों की बड़ी पोल की छत पर खुदा हुआ है जो भाषा तथा फारसी में है। ऐसा अनुमान है कि महाराणा अमरसिंह तथा कुंवर कर्णसिंह के समय में इसे मुगलों से सन्धि होने पर द्वार को भविष्य में कोई आक्रमणकारी इसे न तोड़े, लिखवाया गया हो। इसे काजी जमाल ने तैयार किया था और सुथार मुकन्दराम के पुत्र ने इसे उत्कीर्ण किया था।

इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"सेवक सुतार मुकन्दराम को बेटो.......तूरकी ईश्वर, लिखा काजी मूला जमालखाँ"

---

२४८. डिपार्टमेन्ट ऑफ आर्कियॉलोजी एण्ड हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर (साँभर) पृ० १४।

२४९. वीरविनोद, पृ० ३१२।

"दर अमले राणा अमरसिंह व कुंवर वर्णसिंह, काजी मुल्ला जमाल" "तारीख २२ जिल्कार सन् १०२५ हिज्री"

नागावाड़ा का सति स्तम्भ लेख[२५०] (१६१८ ई०)

यह लेख बाँसवाड़ा के अन्तर्गत नागावाड़ा स्थान का है जिसका समय वि० सं० १६७५ ज्येष्ठ वदि १३ का है। इससे राठौड़ केशवदास सलीम के द्वारा भेजी गई फौजों से लड़कर काम आने की सूचना प्राप्त होती है। इस लेख की ऐतिहासिक उपयोगिता ही नहीं वरन् भाषा व सामाजिक अध्ययन की भी उपयोगिता है। संपूर्ण लेख में वागडी भाषा की प्रधानता है। राजस्थानी भाषा में गुजराती भाषा का प्रवेश इस भाग में किस सीमा तक होने पाया था, इसका यह लेख एक अच्छा उदाहरण है। सति-स्तम्भ पर जो घुड़सवार की तथा स्त्री की मूर्तियाँ खोदी गई हैं वे दक्षिणी राजस्थान के अवयव, आकार, वेश-भूषा आदि के अध्ययन के सुन्दर साधन हैं। घोड़े के तथा सवार के ठाट में मुगली संस्कृति की झलक दिखाई देती है। लेख इस प्रकार है—

"संवत् १६७५ वर्षे ज्येष्ठ वदि १३ दिने राजश्री राठोड मनोहरदास जी सुत राठोड़ राजश्री प्रेमजीए पातसाह जी सलेम साहजी फोजे लड्या राठोड केशवदासजी काम आव्या राठोडा ने फोजे भाजी जण १५ काम आव्या महाओल श्री समरसीजी नी पाति कागा आवाने काम आव्या"

चित्तौड़ की प्रशस्ति[२५१] (१६२१ ई०)

यह प्रशस्ति चित्तौड़गढ़ के रामपोल दरवाजे बाहर जाते हुए दाहिनी तरफ है जिसे संवत् १६७८ आसोज सुदि १५ को महाराणा कर्णसिंहजी की आज्ञा से लगाया गया था। इसमें बारहठ लखा को ग्रामदान देने का उल्लेख है। यह लेख मेवाड़ के कुछ परगनों का उल्लेख करता है—जैसे मांडलगढ़, फुल्यारो और भिणाय। इसका लिखने वाला पंचोली शवरदास रामदास था। प्रशस्ति का अक्षांतर इस प्रकार है—

"श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री कर्णसिंहजी आदेशातु वारहठ लखा कस्य पहिली श्री दिवाण, लखाजी है ग्राम ताँबापत्र करेदीधा, यां गांवारा पत्र गढ चित्र कोटरी पोले लिखायो, १ गाम मन्सवो मांडलगढरो, १ गांव थरावली फुल्यारो, १ गाम जडाणो भिणायरो, संवत् १६७८ वर्षे आसोज सुदि १५ गंगामस्तु धारि आलाक्षरां में सु कोई चोलण करे, श्री एकलिंगजी री आण लिखितं पंचोली शवरदास रामदास उपादेली लिखितं"

---

२५०. शोध-पत्रिका, मार्च १९५७, पृ० ३१-३७।

२५१. वीर विनोद, पृ० ३११।

डूंगरपुर के गोवर्धननाथ जी के मन्दिर की प्रशस्ति[२५२] (१६२३ ई०)

यह प्रशस्ति डूंगरपुर के गैवसागर तालाव पर के गोवर्धननाथ जी के मन्दिर की वि० सं० १६७६ वैशाख सुदि ६ तदनुसार ई० स० १६२३ तारीख २५ अप्रेल की है। इसमें १०१ श्लोक तथा नीचे का भाग वागडी भाषा में है। यह प्रशस्ति महारावल पुंजा के समय की है। प्रशस्ति के प्रारम्भिक आधे भाग में निरंजन से लेकर वापा आदि राजाओं की वंशावली दी हुई है और इसे सामन्तसिंह से फटने वाली शाखा में सीहड का नाम देकर डूंगरपुर के शासकों का वर्णन दिया है। रा० आसवर्ण के सम्बन्ध में इसमें लिखा है कि वह युद्धविद्या तथा राजनीति में बड़ा निपुण था। इसी प्रकार इसमें महारावल सैंरमल को विद्यानुरागी, कवि, वीर तथा शान्ति-प्रिय शासक बताया गया है। इसमें दिये गये महारावल कर्मसिंह के वर्णन से प्रकट होता है कि उसने माही नदी के तट पर बांसवाड़े के उग्रसेन से युद्ध किया और शत्रुओं को मारकर अपने पूर्ण पराक्रम का परिचय दिया। महारावल पुंजा के सम्बन्ध में इस प्रशस्ति से हमें कई सूचनाएं मिलती हैं। उसने पुंजपुर गांव बसा कर पुंजेला तालाब बनवाया एवं घाटड़ी गाँव में भी उसने एक तालाब बनवाया। उसने अपनी राजधानी डूंगरपुर में नौलखा नामक बाग लगवाया और गैवसागर तालाब की पाल पर गोवर्धननाथ का विशाल मन्दिर बनवा कर वि० सं० १६७६ में उसकी प्रतिष्ठा की। उसने मन्दिर के भोग-राग की व्यवस्था निमित्त उक्त देवालय को बसई गांव भेंट किया। इस प्रशस्ति से पुंजराज की १२ राणियों, ५ पुत्रों तथा उसके प्रधान मंत्री रामा के नाम ज्ञात होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महारावल ने ब्राह्मणों को वृत्ति दान देकर उन्हें अपने राज्य में बसाया। प्रशस्ति उस समय की शिक्षा प्रसार की स्थिति पर भी प्रकाश डालती है। वागड की समृद्धि और शान्ति तथा शासन व्यवस्था पर भी इससे प्रकाश पड़ता है। प्रशस्तिकार मेदपाट ज्ञाति का जोसी पुंजा सुत हरजी भ्राता हरिनाथ था और इसको सलावट भाणजी ने उत्कीर्ण किया था। इसमें चहुआण भीमाजी, वाघेला माधवदास जी, चहुआण कचरा, दोसी सव जी, अमर जी, वाघ जी आदि के नाम साक्षी के रूप में दिये गये हैं जिससे राजकीय तथा सार्वजनिक कार्यों में नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के योगदान का होना प्रकट होता है। इसका कुछ मूल इस प्रकार है—

"प्रासादवर्गोप्यमुना विधायि गोवर्धनोद्धार कृतो निवासे।
हेम्नस्तुलादानमकारियेन सुवर्णपृथ्वीमददाद् द्विजेभ्यः ॥"

"वासं तत्र विरोचयत् गिरिपुरे तद्राजधान्यां स्वयं।"

"प्रधानो रामजीनामा मुख्योन्येथाधिकारिणः।"

"अोग्रामा श्रीगोवर्धननाथ जी द्वारा धरमपाते आचन्द्रादिक तांबापत्रमुंकीछे ते

---

२५२. वीर विनोद, भा० २, प्रकरण ११, शेष संग्रह ५, पृ० ११८१–११६६; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११२।

अमारे वंशमाहे हुश्रेतेपाले नांपाले तथा नांपालावि तेनो श्रीनाथजी नी आण दुदा श्री स्वांप्रतदुवे साहांराम जी।"

जालोर का महावीरजी के मन्दिर का लेख[२५२अ] (१६२४ ई०)

इस लेख से विजयदेव सूरि का अकबर की उदार नीति पर प्रकाश पड़ता है जिसने शत्रुंजय से जजिया को छोड़ना, अहिंसा की स्थिति पैदा करना तथा हीरविजय सूरि को जगत् गुरु की उपाधि देना अंकित है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

> 'संवत् १६८१ वर्षे प्रथम चैत्र वदि ५ गुरौ महावीर बिंवे प्रतिष्ठितं। महा-लेच्छाधिपति पातशाह श्री अकबर प्रतिबोधक तद्दत्त जगत् गुरु विरुद्ध धारक श्री शत्रुंजयादि तीर्थ जीजीयादि करी मोचक षण्मास अभारि प्रवर्तक श्री हीरविजय सूरि सम्पत्ति विजयमान ६ विजयदेन सूरी श्वराणां मादेशेन"

खमणोर की एक छत्री का लेख[२५३ब] (१६२४ ई०)

खमणोर ग्राम से बाहर एक छतरी है जिसपर मेवाड़ी भाषा में उत्कीर्ण ६ पंक्तियों का एक लघु लेख है। यह छतरी ग्वालियर के राजा रामशाह के पुत्र शालिवाहन की है। इसको बनाने का श्रेय उदयपुर के राणा कर्णसिंह को है। इस छतरी का निर्माण काल १६८१ वि० संवत् है। इसके द्वारा हल्दीघाटी के अंतिम चरण के युद्धस्थल को समुचित रूप में निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिलती है। उक्त लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि प्रताप के पोते कर्णसिंह ने युद्ध में काम में आने वाले शालिवाहन के लिए छतरी बनाकर योद्धाओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

१ समत १६८१ वरषे (वर्षे)
२ रना (राणा) करणसीध जी
३ ने कराई छतरी
४ गलेरक (ग्वालियर) रज (राजा) की
५ रजरभस (राजारामशाह) वेटो
६ सलवहण (शालिवाहन) ज (जी) री
७ सीलवट (सिलावट)
८ जत (जाति) वतालीम ने
९ कम (काम) कीधो।

२५२अ. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं. ९०४, पृ० २४१।
२५३ब. शोधपत्रिका, आषाढ़ संवत् २०१३, पृ० ५३–५४।

जालौर के धर्मनाथ बिंब का लेख[२५४] (१६२६ ई०)

इस लेख में जालौर नगर एवं स्वर्णगिरि दुर्ग (जालौर दुर्ग) को अलग-अलग बतलाया गया है जिससे जालौर नगर की वस्ती उस युग में दुर्ग से अलग थी। इसमें भी मुहरणोत परिवार में दो पत्नियों का उल्लेख है।

लेख इस प्रकार है—

"संवत् १६८३ आषाड वदि गुरौ श्रवण नक्षत्र श्री जालोर नगरे स्वर्ण गिरि दुर्गे महाराजाधिराज महाराजा श्री गजसिंहजी विजय राज्ये महुणोत गोत्र दीपक मं. अचला पुत्र मं जेसा भार्या जेवेतदे पु० मं० श्री जयल्ला नाम्ना भा० स्वरूपदे द्वितीय सुहागदे पुत्र नयणसी सुन्दरदास आस करण नरसिंहदास प्रमुख कुटुम्ब युतेन स्वश्रेयसे श्री धर्मनाथ बिंबंकारितं प्रतिष्ठितं श्री तपागच्छ नायक भट्टारक श्री हीर विजय सूरि पट्टालंकार भट्टारक श्री विजय सेन।"

पाली के लेख[२५५] (१६२९ ई०)

इन लेख में जो महावीर के बिंब पर अंकित है, अकबर के द्वारा दिये गये जगत् गुरु का विरुद हरि विजय सूरि एवं विजय सेन सूरि का उल्लेख है—

"अकबर शाह प्रदत्त जगत् गुरु विरुद्ध धारक
तपागच्छाधिपति प्रतिष्ठिताचार्य श्री विजयसेन सूरि"
"जगत् गुरु विरुद्ध धारक हीर विजय सूरी"

नाडोल का लेख[२५६] (१६२९ ई०)

इस लेख में जहाँगीर के द्वारा सम्मानित विजयदेव सूरि का उल्लेख है—

"सं० १६८६ वदि ५ शुके राजाधिराज श्री गजसिंह प्रदत्त सकल राज्य जालोर नगरे प्रतिष्ठितं जहांगीर प्रदत्त महातपा विरुद्ध धारक श्री विजयदेव सूरिभिः"

नाडलाई का लेख[२५७] (१६२९ ई०)

यह लेख आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति पर ६ पंक्तियों में है। इसका समय वि० सं० १६८६ वैशाख शुक्ला ८ शनिवार है और महाराणा जगत्सिंह के काल का है। इस लेख में तपागच्छ के आचार्य हरिविजय, विजयसेन और विजयदेव सूरि का उल्लेख है।

लेख का मूल इस प्रकार है -

१. संवत् १६८६ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे शनि पुष्य योगे अष्टमी दिवसे महाराणा श्री जगत्सिंह जी विजय राज्ये जहांगीरी महातपा

---

२५४. नाहर जैन लेख, भा० १, नं० ९०५, पृ० २४२।

२५५. नाहर, जैन लेख, भा० १, २२९, ८२६, ८२७ आदि, पृ० २०३

२५६. नाहर, जैन लेख, भा० १, नं. ८३७, पृ० २०७।

२५७. मूल लेख की एक प्रति के आधार पर।

२. विरुद धारक भट्टारक श्री विजयदेवसूरीश्वरोपदेशकारित प्राक्प्रशस्ति पट्टिका ज्ञातराज श्री सम्प्रति निर्म्मापित श्री जेरपाल पर्वतस्या

३. जीर्ण्ण प्रासादोद्धारेण श्री नडलाई वास्तव्य समस्त संघेन स्वश्रेयसे श्री श्री आदिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं च पादशाह श्री मदकब्बर

४. शाह प्रदत्त जगद् गुरु विरुद धारक तपागच्छाधिराज भट्टारक श्री ५ हीर-विजयसूरीश्वर पट्टप्रभाकर भ० श्री विजयसेन सूरीश्व

५. र पट्टालंकर भट्टारक श्री विजयदेवसूरिभिः स्वपद प्रतिष्ठिताचार्य श्री विजयसिंह सूरि प्रमुख परिवार परिवृतैः श्री नडुलाई मंडन श्री

६. जेरवल पर्वतस्य प्रासाद मूलनायक श्री आदिनाथ बिंबं ।।श्री।।"

पाली के नौलखा के मन्दिर का लेख[२५८] (१६२९ ई०)

इस लेख में मेड़ता के सूत्रधार परिवार का परिचय मिलता है जिसने पाली में महावीर के बिंब को बनाकर प्रतिष्ठा की ।

इसका मूल इस प्रकार है—

"संवत् १६८६ वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे अति पुण्य योगे अष्टमी दिवसे मेडतानगर वास्तव्य सूत्रधार कुधरण पुत्र सूत्र ईसर हदाहस्त नामनि पुत्र लखा चोखा सुरताण ददा पुत्र नारयण हंसा पुत्र केशवादि परिवार परिवृतैः स्वश्रेयसे श्री महावीर बिंब कारित प्रतिष्ठापितंच"

जालोर का लेख[२५९] (१६२९ ई०)

इस लेख में जोधपुर के गजसिंह के समय में सम्पूर्ण राज्य के प्रमुख न्यायाधीश म० जेसा मु० जयमल्ल द्वारा चन्द्रप्रभु के बिंब की प्रतिष्ठा का उल्लेख है । जहांगीर के द्वारा दिये गये महातप के विरुद को धारण करने वाले विजयदेव सूरि के नेतृत्व में यह काम सम्पादित हुआ ।

इस संदर्भ की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"सं० १६८६ वदि ५ शुक्रे राजाधिराज श्री गजसिंह जी प्रदत्त सकल राज्य न्यायाधिकारेण मं० जेसा सुत जयमल्ल जी नाम्ना श्री चन्द्र प्रभु बिंब कारितं प्रतिष्ठापितं ।........जहांगीर प्रदत्त महातपा विरुद धारक श्री ५ श्री विजयदेव सूरिभिः"

सांभर का लेख[२६०] (१६३४ ई०)

यह लेख सांभर की एक सराय के दरवाजे पर उत्कीर्ण है जो अकबर के समय में बनाई गई थी । इसमें वर्णित है कि इस सराय का जीर्णोद्धार शाहजहां के काल में

२५८. नाहर, जैन लेख, भा० १, संख्या ८२६, पृ० २०३ ।

२५९. नाहर जैन लेख, भा० १, संख्या ८३७, पृ० २०७ ।

२६०. डिपार्टमेन्ट ऑफ आर्कियालोजी एण्ड हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर, (सांभर) पृ० १३–१४।

संवत् १६६१ में हुआ। इस लेख का बड़ा महत्त्व है, इस अर्थ में कि अजमेर हज जाने वाले यात्रियों के लिए मुगल काल में ऐसी संस्थाओं को व्यवस्थित रखा जाता था। लेख की भाषा हिन्दी है।

फलोदी का लेख[२६१] (१६३९ई०)

यह लेख फलोदी के कल्याणराय के मन्दिर के सामने एक पत्थर पर उत्कीर्ण है जिसमें वि० सं० १६९६ आषाढ़ सुदि २ (ई० स० १६३९ ता० २२ जून) का समय दिया हुआ है। यह लेख महाराजा जसवन्तसिंह के समय का है जिसमें उल्लिखित है कि मन्दिर के सामने जैमल के पुत्र नैणसी (प्रसिद्ध ख्यात लेखक) और नगर के सकल महाजनों एवं ब्राह्मणों ने रङ्गमंडप का निर्माण कराया। यह सार्वजनिक कार्यों में सहयोगी कार्य भावना का अच्छा उदाहरण है जिसमें सभी वर्ग के लोग सार्वजनिक कार्य में हाथ बंटाते थे।

धाय के मन्दिर की प्रशस्ति[२६२] (१६४३ ई०)

यह अरसीजी का धाय के मन्दिर की प्रशस्ति है जिसका समय संवत् १७०० माघ शुक्ला १२ गुरु है। इसमें प्रताप, अमरसिंह, जगत्‌सिंह और राजसिंह की उपलब्धियों का वर्णन है। इसमें २३ पद्य हैं जिनकी रचना कवि मथुरानाथ ने की और धर्मसिंह ने इसे लिखा। उक्त प्रशस्ति में रामेश्वर भगवान् की प्रशंसा की गई है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'तस्मादभूत् भोज समान दानी श्री कर्णसिंहो धरणीसतेजः"
"अरिसिंहस्य जननी जवादि तनया शुभा
रामीजी वसता माता भगद्‌भक्ति तत्परा"
"अरसीभूप निदेशाद्दुदयपुरे लेखिता कविना
मथुरानाभेनेयं प्रशस्ति निर्माणपटु मतिना"

ओंकारनाथ की प्रशस्ति [२६३] (१६४७ ई०)

यह प्रशस्ति ओंकारनाथ के मन्दिर के बाहर के भाग में लगी हुई है। इसका समय १७०४ आषाढ़ सुदि १५ मंगलवार है। इसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग है। प्रशस्ति में राणा शाखा के प्रमुख व्यक्तियों का तथा हमीर, लक्षसिंह, मोकल, कुंभकर्ण रायमल्ल, सांगा, उदयसिंह प्रताप, अमरसिंह, कर्णसिंह तथा जगत्‌सिंह के नामों तथा उपब्धियों का वर्णन है। इसमें महाराणा जगत्‌सिंह की ओंकारनाथ की यात्रा तथा वहां के सुवर्ण तुलादान आदि का उल्लेख है। प्रशस्ति का लेखक मुंकुदभूधर था और सुजरण का पुत्र कल्ला उस समय के प्रबन्धक थे। इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

---

२६१. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४३।
२६२. वीर विनोद, पृ० ६४२।
२६३. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

"राहप्पराणा भुवि तस्य वंशे राणेति शब्दं पृथयन् पृथिव्यां"
"मुक्ता रत्न सुवर्ण मिश्रित महा पूजां तुलां चा करोत् ।
कर्ण स्यात्मज एपवर्षे शतशोजीयान्निर्गता दशा ।।"
"प्रशस्ति क्रियतां चेयं तोरणे चतुर्लोद्भवे ।
भान्वाख्य सूत्रधारस्य मुकुंदेनच सूनुना ।।"

उदयपुर के धाय के मन्दिर की प्रशस्ति [२६४] (१६४७ ई०)

यह प्रशस्ति उदयपुर के प्रसिद्ध जगदीश के मन्दिर के पास वाले धाय के मन्दिर की वि० सं० १७०४ वैशाख शुक्ला ३ की है जिसमें मेवाड़ी भाषा प्रयुक्त की गई है। इसमें उक्त महाराणा की धाय नौजूबाई द्वारा इस मन्दिर के बनवाये जाने का उल्लेख है। उक्त मन्दिर में नवलश्याम जी की मूर्ति की स्थापना की गई थी। इसमें धाय के कुटुम्बियों के नाम तथा लाधुजी की दो भार्याओं के नाम भी अंकित हैं। इसके अंतिम भाग का अक्षान्तर इस प्रकार है—

"श्री उदयपुरनगरे राणा श्री जगत्सिंह जी नी धाय जो श्रीमाजी भाई पूराजी हेमाजी पुत्र लाधूजी धाय नोजूबाई प्रासाद कराव्यो नवलश्याम जी ने मुहूर्त प्रतिष्ठा की थी एकोतर शत कुल उधारणार्थाय ।। शुभंभवतु श्री लाधुजी भार्या बाई जगी सवाई राधां ।"

एकलिंग जी का लेख [२६५] (१६४८ ई०)

प्रस्तुत लेख वि० सं० १७०५ का महाराणा जगत्सिंह के समय का है। इसमें महाराणा जगत्सिंह द्वारा यहां किये गये तुलादान का उल्लेख मिलता है।

पाशुपत प्रशस्ति [२६६] (१६५१ ई०)

यह प्रशस्ति एकलिंग जी में प्रकाशानन्द जी की समाधि पर लगी हुई है जिसे काले पत्थर पर खोदा गया था। सम्पूर्ण प्रशस्ति श्लोकों में है। श्लोक ३३ में १७०८ वि० सं० में महाराणा जगत्सिंह द्वारा प्रशस्ति लगाने का उल्लेख है। श्लोक पांच में इसके रचयिता का नाम पुरुषोत्तम दिया गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति में लकुलीश सम्प्रदाय के कुछ आचार्यों के नाम दिये हैं जिनमें कुछएक काल्पनिक हैं। श्लोक १६ और २० में आचार्य रामनन्द के लिए महाराणा जगत्सिंह द्वारा ४ गांव देने का उल्लेख है। इसके उपरान्त योगीराज रामेश्वर और उनके शिष्य प्रकाशानन्द का वर्णन मिलता है। इस प्रशस्ति से श्री एकलिंग जी के मठ के आचार्यों की परम्परा की जानकारी होती है।

एकलिंग जी की प्रशस्ति [२६७] (१६५२ ई०)

ये प्रशस्ति खंडों में लकुलीश के मंदिर के निकट वाले चबूतरे से प्राप्त हुए

२६४. ओझा : उदयपुर, भा० २, पृ, ५०६
२६५. एक प्रतिलिपि के आधार पर।
२६६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।
२६७. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

थे। प्रस्तुत प्रशस्ति से महाराणा द्वारा किये गये तुलादान का वर्णन है। प्रशस्ति श्लोकबद्ध है।

जगन्नाथराय प्रशस्ति[२६८] (१६५२ ई०)

यह प्रशस्ति उदयपुर के जगन्नाथराय के मन्दिर के सभा-मण्डप में जाने वाले भाग के दोनों तरफ श्याम पत्थर पर उत्कीर्ण है। इसके प्रथम भाग में १२१ श्लोक, दूसरे भाग में ४५ और कुछ गद्य भाग तथा इसके अगले भाग में ४७ श्लोक तथा कुछ गद्य और पद्यांश दिया गया है। इसका समय वि० सं० १७०८ वैशाख शुक्ला १५ गुरुवार है (१३ मई, १६५२ ई०)

प्रस्तुत प्रशस्ति के पूर्वार्ध में बापा से लेकर साँगा तक के पूर्वजों की उपलब्धियो का वर्णन है जो अधिकांश ख्यातों या दन्त-कथाओं पर आधारित है। यत्र-तत्र वर्णन में अलबत्ता, प्रशस्तिकार ने पहिले की प्रशस्तियों का भी सहारा लिया है। साँगा के सम्बन्ध में गुर्जर तथा मालव के सुल्तानों के विरुद्ध लड़े गये युद्धों का संकेत यथार्थ है। प्रताप के समय लड़े गये हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन भी वास्तविकता लिये हुए है। कर्णसिंह के समय का सिरोज का विनाश तथा विजय का वर्णन उसकी उपलब्धियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

इसके आगे जगत्सिंह का वर्णन मिलता है जिसमें प्रशस्तिकार उसके सम्बन्ध में हमें कई नई सूचनाएं देता है। इसमें जगत्सिंह के राज्याभिषेक के उत्सव की तिथि वि० सं० १६८५ वैशाख शुक्ला ५ दी है। डूंगरपुर विजय के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार लिखता है कि महाराणा ने अपने मन्त्री अक्षयराज को सेना देकर रावल पुंजा पर भेजा। ज्योंही अक्षयराज वहां पहुँचा रावल पहाड़ो में चला गया और उसने शहर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तथा महलों के चन्दन के गवाक्ष को गिरा दिया।

जगत्सिंह के कई पुण्य कार्यो का भी इस प्रशस्ति में उल्लेख किया गया है। इन कार्यो में कल्पवृक्ष का दान प्रमुख है, जिसे उसने १७०५ भाद्रपद शुक्ला २ के दिन ब्राह्मणों को दिया। उक्त दान के सम्बन्ध में इसमें वर्णित है कि वह वृक्ष स्फटिक की वेदी पर खड़ा किया गया जिसका मूल नीलमणि, सिर वैडूर्यमणि, स्कन्ध हीरों, शारपातं मरकत मणि, पत्ते मूंगे, फूल मोतियों के गुच्छों और फल रत्नो के बनाये गये थे। इसमें कुल पाँच शाखाएं थीं और उसके नीचे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और कामदेव की मूर्तियाँ बनाई गई थीं। महाराणा विद्याप्रेमी था। उसने काशी के ब्राह्मणों के लिए बहुत-सा सुवर्ण भेजा। उसने अपनी जन्मगाँठ के दिन कृष्णभट्ट को चित्तौड़ के पास भैसड़ा गाँव दान मे दिया और मधुसूदन भट्ट को आहाड गाँव मे दो

२६८. ए० इ० भाग, २४; वीरविनोद, पृ० ३८४-३९९;
ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ५२६–५२९;
गोपीनाथ शर्मा—बिबलियोग्राफी, सं० ७६, पृ० १२।

हलवाह (१०० बीघा) भूमि दान दी। उसने वि० सं० १७०४ में महाकाल और ओंकारनाथ की यात्रा की और वहाँ ज्येष्ठ वदि अमावस्या को सूर्यग्रहण के समय सुवर्ण तुला-दान किया।

प्रशस्तिकार फिर आगे लिखता है कि महाराणा जगत्सिंह ने लाखों रुपये की लागत का राजमहलों के निकट जगन्नाथराय का, जिसे अब जगदीश कहते हैं, भव्य पंचायतन मन्दिर बनवाया। प्रशस्ति के अन्तिम भाग से हमें सूचना मिलती है कि यह मन्दिर गूणावत पंचोली कमल के पुत्र अर्जुन की निगरानी और भंगोरा गोत्र के सूत्रधार भाणा और उसके पुत्र मुकुन्द की अध्यक्षता में बना था। मन्दिर बनाने वाले इन सूत्रधारों को चित्तौड़ के पास एक गाँव तथा सोने और चाँदी के गज दिये गये। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े समारोह के साथ वि० सं० १७०६ (श्रावणादि १७०८) वैशाखी पूर्णिमा को सम्पन्न हुई और इस अवसर पर हजार गायें, अतुल सुवर्ण, कई घोड़े तथा ५ गाँव ब्राह्मणों को दिये गये। प्रशस्ति के अनुसार महाराणा ने पीछोला के तालाब में मोहन मन्दिर बनवाया और रूपसागर तालाब का निर्माण करवाया। प्रशस्तिकार इसमें यह भी उल्लिखित करता है कि राजमाता जांबुवती ने मथुरा और गोकुल की यात्रा की। उसके साथ उसकी दोहिती नन्दकुंवरी और कुंवर राजसिंह भी थे। वहाँ पर जांबूवती तथा नन्दकुंवरी ने चाँदी की तथा राजसिंह ने सोने की तुला की। वहां से लौटते हुए प्रयाग में जाम्बुवती ने चाँदी की तुला की। इन पुण्य कार्यों के वर्णन से उस समय की धार्मिक स्थिति तथा मुगलों से मेवाड़ के मधुर सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के इतिहास के लिये बड़ी उपयोगी है।

प्रशस्ति की द्वितीय शिला के अन्तिम भाग से स्पष्ट है कि इस प्रशस्ति की रचना कृष्णभट्ट लक्ष्मीनाथ ने की थी।

इसके कुछ श्लोकों के अंश इस प्रकार हैं—

"श्रीमत्कर्णमहीभृदात्मज जगत्सिंहः प्रभो
प्रभो राज्ञया प्रासादं किलमेरुजातक मिमं श्रीरत्नशीर्षाह्वयं ॥
भंगोराप्रथितान्वयौ गुणनिधी भानोस्ततूजोत्तमौ,
शील्पी शोसमुकुन्दभूवर इति ख्यातौ चिरं चक्रतुः ॥४४॥"
"लक्ष्मीनाथा परनाम बाबूभट्ट कृता प्रशस्ति सम्पूर्णा।"

रूपनारायण का लेख[२६६] (१६५२ ई०)

चारभुजा से अनुमान तीन मील पर सेवंत्री गाँव में रूपनारायण का प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर है। इसमें वि० सं० १७०६ (ई० सं० १६५२) का महाराणा जगत्सिंह प्रथम के समय का एक शिलालेख लगा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार मेड़तिया राठोड़ चांदा के पौत्र और रामदास के पुत्र जगत्सिंह

---

२६६. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

ने ५१००१ रुपये की लागत लगाकर करवाया। इसके निर्माण कार्य की देखरेख कोठारी कुम्भा ने की।

फलौधी का लेख[२७०] (१६५८ ई०)

यह लेख फलौधी के गढ़ के वाहर की दीवार पर खुदा हुआ है। इसमें महाराजा जसवन्तसिंह के साथ महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का भी नाम है। उक्त लेख से यह प्रमाणित होता है कि जैमल के पुत्र मुंहणोत सामकरण आदि ने उस गढ़ की दीवार का निर्माण कराया।

भवाणां गाँव की बावड़ी का लेख[२७१] (१६६० ई०)

उदयपुर के निकट भवाणां गाँव के दक्षिण की ओर एक वावड़ी है जिसमें वि० सं० १७१७ का एक लेख है। इसका आशय यह है कि महाराणा राजसिंह ने पारड़ा गाँव में सुन्दर बावड़ी बनवाने के उपलक्ष्य में वीसलनगरा नागर ब्राह्मण व्यास वलभद्र गोपाल के पुत्र गोविन्दराम व्यास को भवाणां गाँव में ७५ बीघा भूमि दान की। इससे महाराणा राजसिंह की उदार नीति तथा जनोपयोगी कार्यों की ओर रुचि प्रकट होती है।

वेड़वास गाँव की प्रशस्ति[२७२] (१६६८ ई०)

यह प्रशस्ति वेड़वास गाँव की सराय के पास वाली वावड़ी में सीढ़ियाँ उतरते हुए दाहिनी तरफ की ताक में लगी हुई महाराणा राजसिंह प्रथम के समय की है। इसका समय वि० सं० १७२५, वैशाख शुक्ला ६ सोमवार है। इसकी भापा मेवाड़ी और लिपि नागरी है। सम्पूर्ण प्रशस्ति में मेवाड़ी गद्य तथा अंत में भापा के पद्यों का प्रयोग किया गया है। यह प्रशस्ति वड़े ऐतिहासिक महत्त्व की है। इसके प्रारम्भ में भागचन्द तथा फतहचन्द भटनागर कायस्थ के पूर्वजों की नामावली दी गई है। भागचन्द भटनागर जाति का कायस्थ (पंचोली) लक्ष्मीदास का पौत्र और सदारंग का पुत्र था। महाराणा जगतसिंह ने उसको अपना प्रधानमन्त्री बनाया और उसे ऊंटाला आदि १० गाँव, १ गजराज हाथी, ५१ घोड़े, सिरोपाव आदि देकर सम्मानित किया। उसने द्वारिका और मांधाता जी की यात्रा की। जव वांसवाड़े का रावल समरसी वादशाही हिमायत के वल पर महाराणा की अधीनता की उपेक्षा करने लगा, तव महाराणा ने अपने प्रधान भागचन्द को उसके विरुद्ध भेजा। उसके भय से जव समरसी भाग गया तो वह ६ मास तक वहाँ रहा और नगर को लूटा। अन्त में समरसी फिर से लौटा और उसने दो लाख रुपये दण्ड देकर क्षमायाचना की और महाराणा की अधीनता स्वीकार की। इस विजय के अनन्तर भागचन्द ने एकलिंग जी

---

२७०. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् वंगाल, जि. १२, पृ० १०० ।

२७१. ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ५७६ ।

२७२. वीर विनोद, भाग २, शेप संग्रह. पृ० ३८१–३ ।

के वीमजमाता के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। इस अवसर पर उसने चाँदी का तुलादान ७२०० रुपये के मूल्य का किया और चार हजार रुपैया ब्राह्मणों को दान दिया। इस पर महाराणा इतने प्रसन्न थे कि वे उसके घर तीन वार गये और उसके लिए हवेली बनवादी। उसको इस अवसर पर दिये गये हाथियों के नाम भी इसमें उल्लिखित हैं—चंचलो, सारधार, जगत्सोया तथा हथणी सहेली।

उसका पुत्र फतहचन्द भी महाराणा राजसिंह का प्रधान रहा। महाराणा ने उसे भी १७१६ में बांसवाड़े के रावल के विरुद्ध ५ हजार सेना देकर भेजा। उसके साथ रघुनाथसिंह, मोहकमसिंह, माधवसिंह, जोधसिंह, रुक्माङ्गद चौहान, उदयकर्ण आदि सरदार थे। समरसिंह ने अन्त में एक लाख रुपया, दस गाँव, देशदाण, एक हाथी और हथनी देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार करली। इसी तरह महाराणा ने उसे देवलिया और मालपुर आदि स्थानों की विजय के लिए भेजा जिसमें वह विजयी रहा। देवलिया के कुंवर प्रतापसिंह ने पाँच हजार रुपया और एक हथणी देकर क्षमायाचना की। टोडा मालपुरा से भी उसे ३५ हजार दण्ड मिला। इन विजयों के वर्णन में 'देशदाण' और 'उमेदण्ड' का उल्लेख आता है। उस समय देश, नगर, गाँव आदि की सीमाओं पर चुंगी लगती थी जिसे देशदाण कहते थे। और लूट के समय उसी समय जो दण्ड वसूल किया जाता था उसे 'उभेदण्ड' कहते थे।

महाराणा तीन बार फतहचन्द के घर गये और उसे सम्मानित किया। उसने तीन वार यात्रा की। फतहचन्द ने वेड़वास में एक बावली, बाग तथा धर्मशाला बनाकर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग किया। वेड़वास ग्राम मार्ग पर जाते पड़ता था जहाँ महाराणा रुकते थे और बावली का पानी पीते थे। वैसे यह गाँव अन्य मार्गो के केन्द्र में भी था, जिससे कई यात्री यहां की धर्मशाला में ठहरते थे। इन निर्माण कार्यो से उस समय की आर्थिक स्थिति का बोध होता है। प्रशस्ति के एक पद्य में राम और रहमान का एक स्थान पर प्रयोग होना उस समय की सहिष्णुतापूर्ण नीति का द्योतक है। प्रशस्ति का लेखक सूत्रधार हम्मीरजी और प्रति तैयार करने वाला (?) भवानीशंकर तथा काम की अध्यक्षता करने वाले गजधर कमलाशंकर पुत्र दोलो तथा रुपो गजधर गौड़ जाति के थे।

इसके एक पद्य का अक्षान्तर इस प्रकार है—

'जिहां असमान धरतीयां जिहाँ रामरहमा न"
जिहां लग रहसी चन्द्र तन कीध फता कमठाण।"

देवारी के द्वार की प्रशस्ति[२७३] (१६७४ ई०)

यह प्रशस्ति देवारी के दरवाजे की उत्तरीय शाख पर उत्कीर्ण है। वैसे प्रशस्ति में केवल यही उल्लिखित है कि० स० १७३१ में देवारी के द्वार के किवाड़ लगाये गये, परन्तु इससे महाराणा राजसिंह द्वारा देवारी के नाकेबन्दी करने तथा

---

२७३. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

सामरिक तैयारी करने पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाजी श्रीराजसिंहजी आदेशात सावण सुद ५ सोमे संवत् १७३१ विषे पोलरा कमाड चढाव्या लिखतु जोसी गोरखदास साह पंचोली नाथू पंचोली"

नरवाली गाँव का लेख[२७४] (१६७४ ई०)

माही नदी के किनारे बाँसवाड़े के नरवाली गाँव की छत्रियों का यह लेख वि० सं० १७३० ज्येष्ठ वदि ७ का है। इसमें उल्लिखित है कि चौहान नारू महाराणा की सेना से लड़कर काम आया और उसके लड़के करणजी ने नारू के स्मारक का निर्माण करवाया इसका गद्यांश इस प्रकार है—

"संवत् १७३० वरीषे जेठ वदि ७ दीनेवार सुकरा सवण नरूजी राणाजी नी फोज काम आव्या"

रंगथोर गाँव के महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति[२७५] (१६७५ ई०)

यह प्रशस्ति डूंगरपुर जिले के रंगथोर गाँव के महादेव के मन्दिर की है जिसका समय वि० सं० १७३१ वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६७५ ता० २१ अप्रेल) है। इससे हमें वड़ी महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है कि चौवीसा जाति का जागेश्वर नामक ज्योतिषी था वह कई विद्याओं में पारंगत था। उसकी स्त्री ने उक्त शिवालय वनवाया। यह प्रशस्ति वागड़ प्रान्त के विद्वानों और प्रचलित विधाओं के अध्ययन के लिए वड़े काम की है।

त्रिमुखी वावड़ी की प्रशस्ति[२७६] (१६७५ ई०)

यह प्रशस्ति देवारी के पास त्रिमुखी बावड़ी में लगी हुई है। इसे महाराणा राजसिंह की राणी रामरसदे ने, जो अजमेर जिले के परमार रायसल की प्रपौत्री, जुझारसिंह की पौत्री और पृथ्वीसिंह की पुत्री थी, वि० सं० १७३२, माघ शुक्ला द्वितीया गुरुवार में देबारी के पास 'जया' नाम की वावड़ी वनवाई। इसको अब 'त्रिमुखी' वावड़ी कहते हैं। इस बावड़ी के वनवाने में धार्मिक भावना तो रही है, परन्तु इसमें देबारी के दरवाजे के किंवाड़ के वनवाने के उल्लेख से उसकी सैनिक उपयोगिता भी प्रमाणित होती है। इस वावड़ी के लगभग एक वर्ष पूर्व ही देवारी द्वार के किवाड़ लगाये गये थे जैसाकि उक्त द्वार के उत्तरी शाखा में खुदे हुए वि० सं० १७३१ श्रावण सुदि ५ के लेख से सिद्ध है। आगे होने वाले औरंगजेब के युद्ध से भी इस कल्पना की पुष्टि होती है। इसी द्वार पर महाराणा ने एक सेना रखी थी, जो वहाँ कई दिनों लड़ती रही। उस समय वावड़ी और द्वार के किवाड़ों ने सुरक्षा के

---

२७४. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११०।

२७५. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११६।

२७६, वीर विनोद, प्रकरण आठवाँ, शेष संग्रह, संख्या ८–६;
ओझा, उदयपुर, भा० १, पृ० ५७५, ५७६, ५७७।

साधन का काम किया।

प्रस्तुत प्रशस्ति में बापा से लेकर राजसिंह के समय तक के प्रमुख शासकों के नाम तथा उनकी उपलब्धियां संक्षेप में दी गई हैं। क्योंकि प्रशस्तिकार जगत्सिंह तथा राजसिंह का समकालीन रहा है वह उनके सम्बन्ध में अधिक सूचना देता है। जैसे जगत्सिंह के समय के रत्न और सुवर्ण तुलादान, मन्दिर निर्माण, श्वेताश्वदान, कल्पतरुदान, सप्तसागर दान आदि का इसमें वर्णन मिलता है। इसमें राजसिंह के समय में सर्वऋतुविलास नाम के बाग के बनाये जाने, मालपुरा की विजय और लूट, चारुमति का विवाह, डूंगरपुर विजय आदि का उल्लेख है। उक्त महाराणा के द्वारा दिए गये भूमिदान, ग्रामदान, तुलादान आदि की सूचना भी हमें इस प्रशस्ति से मिलती है। इसमें राज परिवार की कन्याओं के विवाह के अवसर पर अन्य कन्यादानों का भी उल्लेख है जो महाराणा की उदारता का द्योतक है। इसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर पुरोहित गरीबदास, व्यास जयदेव, हरिराम त्रिपाठी आदि को भूमिदान देने का उल्लेख है। इसमें एक हल भूमि की इकाई का जिक्र है जो ५० बीघा के बराबर होती थी। इसका प्रशस्तिकार रणछोड़ भट्ट तथा मुख्य शिल्पी नाथू गोड़ था। इसके निर्माणकार्य की देखरेख करने वाले लाला पोरवाड़ और धाभाई शतीदास थे। सम्पूर्ण प्रशस्ति में ६० श्लोक हैं और अन्त की पंक्तियों में संस्कृत गद्य और मेवाड़ी भाषा का मिलाजुला प्रयोग किया गया है।

इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

"हैमीकल्पलतावापी हिरण्याश्वंददौ तथा
पंचग्रामान् जगत्सिंहो रत्नधेनुं चदत्तवान्"

"दग्धंमालपुराभिख्यं नगरंव्यतनोदिह
दिनानांनवकांस्थित्वा लुंटनं समकारयत्"

"दहवारी महाघट्टे शालाखण्डे विशंकटे
जयावहा जयानाम्नी वापी पाप प्रणाशिनी"

"सहस्त्रै रुप्यमुद्राणां चतुर्विंशति संमितः
एकाग्रैः पूर्णतां प्राप्तंवापी कार्यं महाद्‌भुतं"

राज प्रशस्ति[२७७] (१६७६ ई०)

राज प्रशस्ति कुल २५ श्याम रंग के पाषाणों पर उत्कीर्ण है जो औसतन ३'×२½' के आकार में हैं। ये पाषाण पट्टिकाएं नौ चौकी की पाल के ताकों में लगी हुई हैं तथा अच्छी हालत में हैं। इनमें से एक संगमरमर की चौकी में लगी हुई है। इसमें प्रयुक्त भाषा संस्कृत है जिसे पद्यों में लिखा गया है। प्रशस्ति के अन्त में कुछ पंक्तियां

२७७. ए. इ., भा० २९-३०; रि. रा. म्यू; अजमेर, १९१७-१८, पृ० २-३; गोपीनाथ शर्मा, बिबलियोग्राफी, पृ० १२; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का का इतिहास, भा. १, पृ. १३१।

भाषा में खोदी गई हैं। प्रत्येक २४ पट्टिकाओं में प्रशस्ति का एक-एक सर्ग उत्कीर्ण है और इस तरह से इसकी संज्ञा महाकाव्य की दी गई है। अन्तिम पट्टिका में विविध कार्यकर्त्ताओं का परिचय अङ्कित है। इसका समय वि० सं० १७३२, माघ शुक्ला १५ है। इसमें कई स्थानीय तथा फारसी शब्दों को संस्कृत के रूप में परिणित कर दिया गया है जिससे इन भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव या संस्कृत पर इन भाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। सेरा (सेर–एक वजन), लत्ता (लात) सलाम आदि ऐसे उदाहरण हैं जो इसकी पुष्टि करते हैं। इस प्रशस्ति का रचयिता रणछोड़ भट्ट था जो तैलंग ब्राह्मण था और कठोंदी में पैदा हुआ था। इसकी माता का नाम वेणी मिलता है जो वैष्णव संप्रदाय की अनुयायी थी। संभवतः रणछोड़ भट्ट के नाना नाथद्वारा के आचार्यों के सम्बन्ध में थे। वैसे तो रायसिंह की आज्ञा से रणछोड़ भट्ट ने इस प्रशस्ति को राजसमुद्र के निर्माण की पूर्णाहुति के समय लगाने के लिए तैयार की थी, परन्तु जैसाकि वह लिखता है, इसका प्रयोग उसने अपने भाई व बच्चों के पढ़ाने के लिए भी किया था। प्रशस्ति से मालूम होता है कि राजसमुद्र का निर्माण दुष्काल के समय श्रमिकों के लिए काम निकालने के लिए कराया गया था और उसे बनाने में पूरे १४ वर्ष लगे थे। इस तालाब के बनजाने का अन्तिम महोत्सव वि. सं. १७३२ माघ शुक्ला पूर्णिमा को मनाया गया था जिसके अन्तर्गत यज्ञ, यात्रा, दान, पारितोषिक, तुलादान आदि कार्यों का आयोजन अलग-अलग अवसर पर आयोजित किया गया था। प्रशस्ति के उत्कीर्णक गजधर मुकुन्द, अर्जुन, सुखदेव, केशव, सुन्द लालो, लखो आदि थे जिन्होंने सुन्दर और शुद्ध रूप में उसे तैयार किया था। इसमें कार्य निरीक्षकों के नाम भी अन्त में दिये गये हैं।

प्रत्येक पट्टिका के प्रारम्भ के पद्यों में देवस्तुति दी गई है और फिर मेवाड़ राजवंश के शासकों की उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है। प्रारम्भिक सर्गों में दिये गये प्राचीन शासकों के नाम भाटों की वंशावलियों पर आधारित हैं जिनमें कई नाम काल्पनिक हैं। इसमें बापा, कुम्भा, साँगा, प्रताप आदि शासकों की उपलब्धियों तथा युद्धों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। बापा के लिए बाप्प शब्द का प्रयोग किया गया है और लिखा गया है कि वह ५० पल के सोने के कंकण पहिनता था। कुम्भा की विजय तथा साँगा के युद्धों का भी इसमें अच्छा चित्रण है। प्रताप के समय लड़े गये युद्ध और अमरसिंह के समय में की गई मुगलों की सन्धि का भी इसमें उल्लेख मिलता है। करणसिंह का गंगा पर किए गए तुलादान का तथा जगत्सिंह के दानों का इसमें वर्णन है इनके तीर्थयात्राओं के वर्णन भी बड़े रोचक हैं।

इस प्रशस्ति का ऐतिहासिक उपयोग जगत्सिंह तथा राजसिंह के समय के लिए अत्यधिक है, क्योंकि प्रशस्तिकार इनके समय में जीवित था और उसको इनके समय की घटनाओं से तथा उनके सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री से परिचय था। जगत्सिंह के समय के निर्माण कार्यों और उपलब्धियों के वर्णनों के अतिरिक्त रचनाकार ने राजसिंह की अजमेर, टोंक, लालसोट, साँभर, शाहपुरा, जहाजपुर आदि

स्थानों की विजयों का तथा राजसमुद्र झील की नौ चौकियों की सुन्दर तक्षण कला का अच्छा वर्णन किया है। इसके बनने में मजदूरों के पारिश्रमिक तथा कुशल कारीगरों के पारिश्रमिक पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। झील का उपयोग सिंचाई के लिए कितना था और उससे कितने गाँव प्रभावित थे इसका भी इसमें अच्छा व्योरा दिया गया है। उस समय के विवाह, खेल, शिक्षा, निर्माणकार्य, मुद्रा, सैनिक शिक्षा, पठन-पाठन, समृद्धि, नगर-योजना, उपवन, महल, वस्त्र और रत्नों की विशेषता धर्म, दान, व्यवसाय, निर्माणकार्य के साधन, भोजन के प्रकार, सिरोपाव आदि विविध विषयों पर प्रशस्तिकार प्रकाश डालता है। औरङ्गजेब के साथ के युद्ध और संधि तथा अन्य राज्यों से राजसिंह के सम्बन्ध आदि का भी इसमें अच्छा विवरण है, जिससे हम राजपूतों के युद्धकौशल तथा कूटनीति को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसमें राजसिंह के प्रथम विवाह की आयु १२ वर्ष दी है और इसमें रूपमति के विवाह का भी उल्लेख है। औरङ्गजेब के दरबार में भेजे गए व्यक्तियों के नाम भी इसमें दिये गये हैं। देश वर्णन में मेवाड़, डूंगरपुर, चित्तौड़, एकलिङ्ग जी, कुटिला तथा गोमती नदी का सुन्दर वर्णन है। राजसमुद्र के बनने के उपलक्ष में की गई पूर्णाहुति तथा उस अवसर पर वहाँ तथा बाहिर भेजे गए उपहारों से उस समय की समृद्धि झांकी जा सकती है। इस तालाब के बनाने के लिए, लाहौर, गुजरात, सूरत आदि स्थानों से भी कारीगर बुलाये गये थे। मुख्य शिल्पी को महाराणा ने २५,००० रु० दिये थे इसका इसमें उल्लेख है। इसके निर्माण कार्य में १०५०७६०८ रुपये व्यय हुए यह भी इससे विदित है।

इसके कुछ पद्यों को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"बाप्प: सूर्यान्वयी सर्गे सूर्यवंशं वदे ग्रिमे"

"गत्वात्रपीलियारवाल पर्रिवि पर्यकल्पयत्
स्वदेश सीमानमयं रत्नसिंहोथ राज्यकृत्"

"प्रतापसिंहोथ नृप: कच्छवाहेन मानिना
मानसिंहेन तस्यासीद्द मनस्यं भुजेविधौ"

"टोंकंच सांगरि ग्रामाल्लाल सोंटिच चाटसू
रानेन्द्र सुभटा जित्वा दंडयित्वा बभुर्भृशं"

"बडी ग्रामे तडागस्योत्सर्गं रूप्यतुलां व्यधात्
नामाकरोत्तडागस्य जनासागर इत्ययं"

"तडागेत्रागतानद्यो गोमती ताल्लनामयुक्
कैलावास्त नदीसिंधी गंगाद्या विविशुर्यया"

"ग्रामौघ दानं गजराजिदानं हयालिदानं घटतोप्रदानं
गोवृंददानं नृपति: प्रकल्प्य नानाविधं दानमथोतविष्ट"

"घानेरानगरे चक्रे नियुद्धं योधविक्रम:
बीकास्तोलंकि वीरोथ युद्धरक्षां रणेव्यधात्"

"काव्यं राजसमुद्र मिष्टजलधे सृष्टप्रतिष्टाविधे:
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं"

जनासागर की प्रशस्ति [२७८] (१६७७ ई०)

यह प्रशस्ति महाराणा राजसिंह के समय की है। इसमें दिया हुआ काल वि० सं० १७३४ वैशाख कृष्णा १३ है जो जनासागर के निर्माण का काल है। उक्त तालाब को महाराणा ने अपनी माता जनादे (कर्मेती) के, जो मेड़तिया राठौड़ राजसिंह की पुत्री थी, नाम से उदयपुर से पश्चिम के बडी गाँव के पास बनवाया था। इस तालाब को सिंचाई के काम में प्रयोग लिये जाने का था और यह कार्य महाराणा के समय की आगे आने वाली युद्ध-स्थिति के संबन्ध में था। उसकी जब प्रतिष्ठा की गई तो महाराणा ने चाँदी का तुलादान किया। इस अवसर पर पुरोहित गरीबदास को गलूंड और देवपुरा गाँव धर्मार्थ दिये गये थे। तालाब के धार्मिक कार्य में २६१००० रुपये व्यय हुए। प्रशस्तिकार ऐसे गहरे तालाब बनाने की गतिविधि के सम्बन्ध में वर्णन करता है कि पहले तालाब के पाल की नींव खोदी गई जिसको 'पाँव लेना' कहते थे। फिर उस पर सीसा ढ़ाला गया तथा नींव को शुद्ध किया गया फिर १५ गज का आसार उस पर बनाया गया। इसमें मेडता परिवार को हमेशा विष्णु के उपासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो मीरां के समय की कृष्ण भक्ति की परम्परा पर अच्छा प्रकाश डालता है। प्रस्तुत प्रशस्ति में ४१ श्लोक हैं। तालाब के वर्णन से उस स्थान की गहन वनस्पति का तथा प्राकृतिक स्थिति का बोध होता है। प्रशस्तिकार कृष्ण भट्ट का पुत्र लक्ष्मीनाथ तथा लेखक उसका भाई भास्कर भट्ट था। निर्माण कार्य का शिल्पी गजधर सुधार सगराम पुत्र नाथू था। इसमें गिलूंड गाँव को चित्तौड़ के निकट और देवपुरा को थामला के निकट होना उल्लिखित है जो चित्तौड़ और थामला शासन की इकाई के द्योतक हैं।

इसके कुछ पद्यांश इस प्रकार हैं –

"दात्रीदानव्रजस्या प्रियरिपु निधने पार्वती वोग्रभावा
दीने नित्यंदयालुर्नृपमु कट जगत्सिंह राणा प्रियासीत्"
"वडीग्रामस्य निकटे तत्कासारस्य राजत:
जना सागर इत्येवं प्रसिद्धि स्सभजायत"

इसका अंतिम भाग भाषा में इस प्रकार है–

"दोयलाखइगसठहजार रुपिया तलावरी प्रतिष्ठा हुई जदी रूपारी तुलां कीधी गाम गलूंड चित्तौड़ तिरा गाम देवपुर थामलातीरा प्रोहित श्री गरीवदासजी है आधार करे भथा किधो तलावरी पालरो पांवले ने रवाडा खोवा सीसोफेरे ने नीम

२७८. डा० ओझा ने इस प्रशस्ति का समय वि० सं० १७२५ दिया है और इसमें होने वाले व्यय को ६८८००० रुपये लिखा है, उदयपुर राज्य का इतिहास भा० २, पृ० ५७५।

सोधेन गज १५ आसार कीधा कमठाणारा गजधर सुतार सगराम सुत नाथू तेन कोठारी १७३५ वर्षे"

सुन्नणपुर गाँव का लेख[२७९] (१६८६ ई०)

यह लेख बांसवाड़ा के सुन्नणपुर गाँव का है। इसका समय वि० सं० १७४२ वैशाख शुक्ला २ है। इसमें उल्लेख है कि गोहिल मलक नामक व्यक्ति कुंवर अजबसिंह के नेतृत्व में महाराणा जयसिंह की सेना से युद्ध करता हुआ काम आया। इस शिलालेख में दी गई घटना से प्रतीत होता है कि उक्त महाराणा के समय में मेवाड़ और बांसवाड़ा का सम्बन्ध वैमनस्यपूर्ण था। मेवाड़ के इतिहास में इस युद्ध का कहीं उल्लेख नहीं मिलता जिससे इस शिलालेख का महत्त्व बढ़ जाता है।

"इसका गद्यांश इस प्रकार है—

संवत् १७४२ वर्षे वेसाक सुदि [५] दिने गोहिल मलकजी दिवाणजीरि फोज माहे काम आव्या कवर अजबसिंघजी आगल"

वैराट का लेख[२८०] (१६८६ ई०)

यह लेख बैराट की एक छत्री का है जिसका समय पोष शुक्ला पंचमी, संवत् १७४३ है इसमें वर्णित है कि पाण्डे छीतरमल, जो टोडरमल का पुत्र और धनिया का पोता था स्वर्ग सिधारा। उसकी मृत्यु पर उसकी स्त्री जमना जो मोहन की पुत्री थी उसके साथ सती हुई। मोहन जोडाला का मन्त्री था। छत्री का निर्माण छीतरमल के भतीजे सांवलदास ने करवाया। सांवलदास गौड़ ब्राह्मण था। इसको औरंगजेब ने सिंह की उपाधि दी थी और उसे पापड़ी गाँव जागीर में दिया गया था। इस लेख की भाषा ढूंढाड़ी है और इसमें १० पंक्तियां हैं जिन्हें यहां उद्धृत किया जाता है—

१. संवत् १७४३ वरष पोह सुदी
२. ५ पांडे छीतरमल टोडर को बेटो ध
३. णिया का पोता देवलोक पधरा
४. जीन के संग लाडी जमना मोहन
५. की पधान झोडाला की बेटी स
६. ती हुई : छतरी सावलदास पभ
७. राज कै बेटै छीतरमल कै [भ] ती जै
८. करी : जाती का बीरामण गोड : स
९. सन हरीतवाल उदरा जमीण
१०. वचै जहनै राम राम वचण

---

२७९. ओझा, बांसवाड़ा का इतिहास, पृ०-१११

२८०. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, पृ० ४६.

धुलेव के विष्णु मन्दिर की प्रशस्ति[२८१] (१६८८ ई०)

यह प्रशस्ति उदयपुर जिले के धुलेव गाँव के एक विष्णु मन्दिर की है जिसका समय वि० सं० १७४४ वैशाख सुदि ७ (ई० स० १६८८ ता० २६ अप्रैल) है। इसमें उल्लिखित है कि डूंगरपुर के शासक जसवन्तसिंह के राज्य का खडायता जाति के मनोहरदास द्वारा उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इससे यह भी सूचना मिलती है कि महारावल की पटरानी फूलकुंवरी तथा कुंवर खुंमाणसिंह थे।

गलियाकोट का लेख[२८२] (१६६४ ई०)

डूंगरपुर जिले के गलियाकोट के वि० सं० १७५१ मार्गशीर्ष वदि १ (ई० स० १६६४ ता० २२ नवम्बर) का लेख है जिसमें महारावल खुंमाण द्वारा खुंमाणपुर गाँव बसाने का उल्लेख है। इसमे महारावल का लोकोपकारी कार्य में रुचि लेना सिद्ध होता है।

बांसवाड़ा के सतीपोल का लेख[२८३] (१६६८ ई०)

यह लेख बांसवाड़ा के 'सतीपोल' नामक द्वार का वि० सं० १७५४ वैशाख वदि २ का है। इसमें उल्लिखित है कि नायक सरदार मेवाड़ की सेना से लड़कर काम आया। वागड़ी भाषा की विशेषता पर भी इस लेख से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसका गद्यांश इस प्रकार है—

> "संवत् १७५४ वरषे वइसाख वदि २ दिने नायक
> सरदारु काम आव्या दिवाणजा नी फोज आवीतारे"

देवसोमनाथ के एक स्तम्भ का लेख[२८४] (१६६९ ई०)

यह लेख वि० सं० १७५५ वैशाख सुदि ९ शुक्रवार का है जो देवसोमनाथ के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इस लेख में मेवाड़ के अमरसिंह द्वितीय के चाचा सूरतसिंह और प्रधान दामोदरदास का फौज लेकर डूंगरपुर के विरुद्ध पहुँचना और फिर देवसोमनाथ के दर्शनार्थ जाना उल्लिखित है। यह लेख कई राजनीतिक घटनाओं का पोषक होता है। जब अमरसिंह द्वितीय के गद्दीनशीनी के उत्सव पर डूंगरपुर का रावल टीका लेकर नहीं उपस्थित हुआ तो महाराणा ने अपनी

---

२८१. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११९।

२८२. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १२१।

२८३. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११३, ११५।

२८४. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११९–१२०; वजीर असदखां का अमरसिंह के नाम १० सफर सन् ४३ जुलूस (वि० सं० १७५६ श्रा. सु. १२=ई० स० १६९९ ता० २८ जुलाई) का पत्र; वीर विनोद, भा० २, पृ० ७३५, ७३६, ७५५, १००९।

एक फौज उक्त व्यक्तियों के साथ डूंगरपुर के विरुद्ध भेजी। सोमनदी पर लड़ाई हुई जिसमें दोनों तरफ के कई सैनिक काम आये। फिर देवगढ़ के रावत द्वारिकादास के प्रयत्न से ज्येष्ठ सु० ५ (ई० स० १६९९ ता० २३ मई) डूंगरपुर के रावल द्वारा १७५००० रु०, दो हाथी और मोतियों की माला महाराणा को देने की शर्तों पर सुलह हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्य-सम्पादन के उपरान्त चाचा और प्रधान देवसोमनाथ के दर्शनार्थ गये थे। और उस अवसर की स्मृति में स्तम्भ पर लेख उत्कीर्ण कराया गया था। ये सन्धि स्थाई न रह सकी, क्योंकि डूंगरपुर रावल ने महाराणा को शिकायत की, परन्तु औरंगजेब दक्षिण विजय में व्यस्त होने के कारण इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दे सका।

स्तम्भ लेख की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

> संवत् १७५५ वरष (वर्ष) वैशाख सुदि ६ शुक्रे महाराजा श्री सूरतसिंघ (ह) जी पंचोली श्री दामोदरदासजी डूंगरपुर फौज पधार्या जद (इतरी जात्रा सफल ....।"

इन्द्रगढ़ के एक कुंड का लेख[२८५] (१७०१ ई०)

इन्द्रगढ़ से लगभग १½ मील की दूरी पर कुछ भग्नावशेष हैं जिनमें एक जलाशय है। उसके दीवार पर वि० सं० १७५८ शक संवत् १६२३ वैशाख बुधवार का एक लेख है। लेखाकार १६ × १७ वर्ग इंच तथा अक्षराकार ०.५ × ०.१ वर्ग इंच है तथा पंक्तियों की कुल संख्या १९ है। इसमें वर्णित है कि चौहान राजा सिरदारसिंह के राज्यकाल में गौड़ ब्राह्मण राय रामचन्द्र द्वारा उक्त कुंड का निर्माण करवाया गया। इससे प्रमाणित है कि रामचन्द्र का पद प्रधान का था और वह राज्य कई परगनों में विभाजित था। यहाँ के शासकों को मुगलों द्वारा मनसब भी प्रदान की गई थी जैसाकि इसमें उल्लिखित है।

खडगदा गाँव के लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की प्रशस्ति[२८६] (१७०१ ई०)

यह लेख खडगदा गाँव के लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की वि० सं० १७५७ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १७०१ ता० २९ अप्रैल) का है। इसमें कुंवर रामसिंह को युवराज लिखा है जो उस समय की शासन व्यवस्था तथा युवराज पद के महत्व की ओर संकेत करता है।

इस लेख की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

> "...... ......अद्येह श्री गिरिपुरे रायरायां महाराजाधिराज महाराउल श्री खुमाणसिंघजी विजयराज्ये महाकुंअरजी श्री रामसिंघजी यौवराज्ये......।

---

२८५. वरदा, जुलाई १९७१, पृ० ५४, ६२।

२८६. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १२१।

मोटा गडा गाँव का लेख[२८७] (१७०१ ई०)

मोटा गडा गाँव के चार शिलालेखों की उपलब्धि हुई है जिनमें वि० सं० १७५८ श्रावण वदि २ का समय दिया गया है। इन शिलालेखों के समूह से पाया जाता है कि ठाकुर सरदारसिंह के सहायता कार्य में झाला वनराय, अजबसिंह, बाघेला राजसिंह और मादावत अखेराज काम आये।

बांसवाड़ा का एक स्मारक[२८८] (१७१२ई०)

इस लेख से महारावल भीमसिंह का मृत्यु काल १७६९ (वि०) विदित होता। इनके साथ ९ रानियां सती हुईं। इस छत्री की प्रतिष्ठा राणी पुरवणी रूपकुंवरी ने वि० सं० १८०० में करवाई।

इसका गद्यांश इस प्रकार है—

> "सं० १७६९ व० सावण शुद २ महाराओल श्री भीमसिंगजी देवलोक पधारा। सती ९ सहगमन कीधा। सं० १८०० व० जेठ शुद ९ राणी पुरवणी रूपकुंवरजीए छत्री प्रतिष्ठा कीधि"

देव सोमनाथ के मन्दिर के एक छवने का लेख[२८९] (१७१६ई०)

यह लेख देव सोमनाथ के मन्दिर के छवने पर वि० सं १७७३ द्वितीय ज्येष्ठ वदि १४ (ई० स० १७१६, मई) का है जिसमें महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के आदेश से पंचोली विहारीदास तथा काका भारतसिंह डूंगरपुर को अधीन करने के अभिप्राय सेससैन्य भेजे गये। उस समय महारावल रामसिंह ने १२६००० रु० देकर उनसे समझौता कर लिया क्योंकि डूंगरपुर में सरदारों की शक्ति बढ़ रही थी। यह लेख सामन्तों के अधिकार बढ़ाने के प्रयत्नों के सम्बन्ध में बड़े महत्त्व का है।

इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

> "सिध श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंघजी आदेशातु प्रतदुए पंचोली विहारी दासजी काका भारतसिंघजीं सं० १७७३ वर्षे दति जेठ [व] दी १४..........फोल..........''।

दक्षिणामूर्ति लेख[२९०] (१७१३ ई०)

यह लेख उदयपुर के राजप्रासाद के दक्षिण में स्थित राजराजेश्वर के शिव मन्दिर में लगा हुआ है। इस लेख में संस्कृत पद्यों में २९ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं जो

---

२८७. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११५।
२८८. ओझा, वांसवाड़ा का इतिहास, पृ० ११६।
२८९. वीर विनोद भा० २, पृ० १०१०;
ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १२४।
२९०. भाव० इन्स० संख्या, १५, पृ० १५५-१५७।
गोपीनाथ शर्मा, बिबलियोग्राफी, पृ० १३।

१६"×१३" के आयात को घेरे हुए है। इसमें प्रयुक्त लिपि देवनागरी है और इसका समय वि. सं. १७७० है।

यह लेख उस समय के विद्या के स्तर पर प्रभूत प्रकाश डालता है। श्री दक्षिणामूर्ति नामी प्रकाण्ड विद्वान् महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के गुरु थे जो उनके साथ रहते थे। वे वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, स्मृति, तंत्र आदि के विद्वान् थे। इनके द्वारा अनेकों विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। महाराणा ने इन्हीं गुरु की प्रेरणा से इस शिवालय और उसके निकट वाले कुण्ड का निर्माण करवाया। उस के प्रतिष्ठा के समारोह के समय सैंकड़ों वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया गया और स्वस्ति वाचन, यज्ञ आदि कार्यों का सम्पादन हुआ। इन ब्राह्मणों का नेतृत्व स्वयं श्री दक्षिणामूर्ति ने किया। इस लेख से उस समय के अध्ययन विषयों और गुरु शिष्य परंपरा की गति विधि का भी बोध होता है। इससे संग्रामसिंह की धार्मिक प्रवृत्ति, नीति कुशलता तथा लोकप्रियता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

'ब्राह्मणान् शतसंख्याकान् पूजाद्रव्याधलंकृतान्
नियोज्य पृथिवीपाल: स्वस्तिवाचन कर्मणि
प्राण प्रतिष्ठामकरोद्राजराजेश्वरस्य च"

मेतवाला गांव का लेख[२९१] (१७१४ ई.)

यह लेख मेतवाला गांव का वि. सं. १७७१ मार्ग शीर्ष सुदि १२ भौमवार का है। इसमें चौहान केशवदास का महाराणा की सेना से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है। इस लेख का उपयोग उस समय की भाषा के अध्ययन के लिए भी बड़े महत्त्व का है—

"संवत् १७७१ ना मगसर (मार्ग शीर्ष) सुद १२ भुमा (भोमे) सहुआण (चौहान) केसवदास जी काम आव्या। फोज श्री दीवाण जी नी आवी तारे कामा आव्या"

सांगवा गांव का लेख (१७२३ ई.)

वि. सं. १७७९ चैत्र सुदि ५ का सांगवा गांव का यह लेख वाघेला पूंजा के काम आने का उल्लेख करता है।

गुजर बावडी की प्रशस्ति[२९२] (१७१५ ई.)

वि. सं. १७७२ माघ सुदि १ की प्रशस्ति गुजर बावडी की प्रशस्ति के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी श्लोकवद्ध प्रशस्ति है। इसमें उल्लिखित है कि बापारावल मेवाड़ का बड़ा पराक्रमी शासक था जिसे एकलिंग जी की कृपा से एकछत्र राज्य प्राप्त हुआ था। इसी वंश के राजा जयसिंह ने इन्द्रसरोवर बनाया। इसके बाद

---

२९१. ओझा—बांसवाडा राज्य का इतिहास, पृ० १२४

२९२.—एक प्रतिलिपि के आधार पर।

इसमें संग्रामसिंह द्वितीय का वर्णन है जिसकी वहिन चन्द्रकुंवरी का विवाह ग्रामेर नरेश सवाई जयसिंह के साथ हुआ था। इसमें उसकी धाय का नाम भीला दिया हुआ है। इसकी वहिन खीमी भी संग्रामसिंह की धाय थी। श्लोक ७ से १४ तक इस धाय के परिवार का विस्तृत वर्णन है। इसमें उल्लिखित है कि भीला का विवाह केशवदास के साथ हुआ था। इनके पुत्र का नाम मानजी दिया हुआ है। भीला ने सदाशिव के मन्दिर का एवं एक वावड़ी का निर्माण करवाया। इनकी प्रतिष्ठा के समय में एक वड़े यज्ञ का अयोजन किया गया था। प्रस्तुत प्रशस्ति से साधारण समाज के व्यक्तियों द्वारा सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेना प्रमाणित होता है।

वेदला गाँव की सुरताण बावड़ी का लेख[२६३] (१७१७ ई०)

यह लेख वेदला गांव की सुरताण बावड़ी में अन्दर जाते हुए वाईं तरफ ताक में लगा हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १७७४ वैशाख सुदि १५ रविवार को हुई थी। यह बावड़ी वेदला के चौहान सबलसिंह के पुत्र राव सुरतानसिंह ने बनवाई थी। इसमें एक हरि मन्दिर तथा बाग के बनाये जाने का उल्लेख है। प्रशस्ति का लेखक मावट किरपा गजधर उदा सोमपुरा था। इस अवसर पर जो खर्च हुआ था उसका उल्लेख इस प्रकार है—

"ज्यागतत्र १३००१ बावडी तथा हरि मन्दिर कमठाणा लेखे ६०७७६ श्री दीवाण जी बाईराज की देव कुंवर बाई गोने पधारया, सो खरचाणा जणीरी वीगत २२६६६, घोडा ५६, खरच्मा ८६००, सीधो खरचाणो १५१३, गेणो खरचाणो ७०००, कपडा खरचाणा ७५००, रोकड खरचाणा जीरा रुपया ६०७७६ हुग्रा; कमठाणा बागरा हजार तेरा वीगेरा साव सर्व जमा रुपया ७३७८०"

वैद्यनाथ मन्दिर की प्रशस्ति [२६४] (१७१६ ई०)

यह प्रशस्ति उदयपुर के तालाब पीछोला के पश्चिमी तट पर बसे हुए सिसारमा गांव के वैद्यनाथ महादेव के मन्दिर में लगी हुई है और उसका समय वि० सं० १७७५ ज्येष्ठ कृष्णा ३ है। इस प्रशस्ति में १३६ श्लोक हैं तथा वे ५ प्रकरणों में विभक्त हैं सम्पूर्ण प्रशस्ति दो बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदी हुई है। इसमें बापा की हारीत ऋषि की अनुकंपा से राज्य प्राप्ति का उल्लेख है। इसमें बापा से लेकर प्रारंभिक राणा शाखा तथा चित्तौड़ के शासकों का संग्रामसिंह द्वि० तक का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसमें मातृभक्त संग्रामसिंह-द्वितीय द्वारा अपनी माता देवकुंवरी (वेदला के राव सबलसिंह की पुत्री) के कथनानुसार वैद्यनाथ के विशाल मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है। इसमें इसकी प्रतिष्ठा का समय वि० सं० १७७२

---

२६३. वीर विनोद, पृ० ११७६-११७७।

२६४. वीरविनोद, भाग २, प्रकरण ११, शेप संख्या ७; ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ६१२, ६१३, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३।

माघ शुक्ला १४ गुरुवार, तदनुसार ई० स० १७१६ ता० २६ जनवरी दिया गया है। इस अवसर पर राजमाता ने चांदी की तुला की और प्रतिष्ठा समारोह में लाखों रुपये व्यय हुए। इस अवसर पर कोटाधीश भीमसिंह और डूंगरपुर का रावल रामसिंह आदि अन्य राजा भी उपस्थित थे। महाराणा के सम्बन्ध में भी इसमें उल्लिखित है कि उसने दक्षिणामूर्ति नामक दक्षिणी विद्वान् ब्रह्मचारी को एक गांव और सिरोपाव, अपनी सभा के वैद्य मंगल को एक गांव, और काशीनिवासी शंभु के पुत्र पण्डित दिनकर को वि० सं० १७७० में सोना और घोड़े सहित एक गांव चन्द्रग्रहण के दिन, पंडित पुण्डरिक भट्ट घोड़े सहित गांव तथा यज्ञ के लिए १०००० रुपये, ब्राह्मण देवराम को एक पालकी तथा गांव ज्योतिषी कमलाकान्त भट्ट को तिलपर्वत सहित एक गांव और एकलिंगजी के मन्दिर को हाथी, घोड़े आदि भेंट किये। इस वर्णन से महाराणा का विद्यानुराग तथा धार्मिक वृत्ति का बोध होता है। इससे उस समय के विद्वानों का भी हमें परिचय मिलता है।

प्रस्तुत प्रशस्ति में महाराणा की सेना का रणबाजखां की सेना के साथ युद्ध होने का वर्णन है। यह युद्ध पुर-मांडल के परगनों के सम्बन्ध में था। दोनों सेनाओं का बांधनवाड़े के निकट घमासान युद्ध हुआ जिसमें राजपूतों की विजय हुई और रणबाजखां अपने भाई बेटों के सहित खेत रहा। मुगल सेना का बहुत सा सामान राजपूतों के हाथ लगा। इस अवसर पर रावत महासिंह और दौलतसिंह मारे गये। प्रशस्तिकार ने यहां युद्ध का अच्छा वर्णन दिया है जिससे राजपूत प्रणाली की सैनिक व्यवस्था, वेशभूषा आदि की हमें जानकारी मिलती है। इस प्रशस्ति का लेखक रूप भट्ट तथा लिपिकार गोवर्द्धन का पुत्र रूपजी था।

इसके कुछ पद्यांश इस प्रकार हैं।

"प्रतापसिंहोथ बभूव तस्माद्धनुधरो धैर्यवरो धरिण्यां" "विहारिदासे वरमंत्रि मुख्ये सर्वाधिकारेषु नियुज्यमाने विंशोपका विंशतिरेवलेख्या धर्मस्य सत्यस्य चशास्त्र विद्धिः" "तुलां तृतीयां विधिनाव्य कार्पीत्संग्रामसिंहस्य नृपस्यमाता" "श्रीवैद्यनाथ शिवसद्मभवां प्रतिष्ठां देवी चकार किल देव कुमारि काख्याः"

ब्रह्मपुरी उदयपुर की एक सुरह[२६५] (१७२४ ई०)

यह सुरह लेख उदयपुर की ब्रह्मपुरी (पीछोला तटवर्ती) के गोरवालों के मुहल्ले के शिव मन्दिर के पास लगी हुई है। इसकी भाषा मेवाड़ी है। यह सुरह संग्रामसिंह द्वितीय के समय के शासन सम्बन्धी विषयों पर कुछ प्रकाश डालती है। इसमें उल्लिखित है कि महाराणा ने ब्रह्मपुरी की बस्ती के सम्बन्ध में आदेश दिया था कि इसमें राय श्रीनिवास के भाग में कुछ ब्राह्मणों ने घर बनाये और उनको आपस में बेचना शुरु किया। इस बिकाव की जकात और लागत राज्य की थी। परन्तु संक्रान्ति के अवसर पर जकात और लागत लेने का अधिकार भट्ट देवराम को दे दिया गया।

---

२६५. वीर विनोद, द्वि० भा०, प्रकरण ग्यारहवां, शेष संग्रह पृ० १२१५।

इस सम्बन्ध में महाराणा ने यह भी आदेश दिया कि भविष्य में कोई कामदार या कोतवाल ब्रह्मपुरी में लागत और जकात वसूल न करे और न दिन में इस हलके में जावे। केवल मात्र रात को चौकीदार और कोतवाल ब्रह्मपुरी में चौकसी और हिफाजत के लिए जा सकते थे। इसमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि ब्रह्मपुरी में मकान बेचे जायें तो वे ब्राह्मणों को ही बेचे जायें और उसकी जकात भट्ट देवराम ही वसूल करे। सरकार के लिए इस भाग की जकात या लागत एक प्रकार से शिवनिर्माल्य घोषित किया गया। राय श्रीनिवास भाग की सीमा चाँदपोल की पुल से लेकर तालाब के पश्चिमी पाल तथा गोलेरे से अषाडे तक थी। इस सम्पूर्ण क्षेत्र की लागत मुआफ की गई थी।

प्रस्तुत सुरह से विदित होता है कि सम्पूर्ण शहर की भूमि खालसे में शुमार होती थी। और उसके बेचने पर सरकारी जकात लगती थी। वहां कई प्रकार की लागत भी लगती थीं। शहर विशेष रूप से जातिवार मुहल्लों में बँटा रहता था और ब्रह्मपुरी में ब्राह्मण रहते थे। इसीलिए आदेश था कि ब्रह्मपुरी में अन्य कोई जाति मकान नहीं ले सकती थी। इस मुहल्ले को विशेप प्रकार से समझा गया था, जहां रात के अतिरिक्त दिन में सरकारी अधिकारी या कोतवाल प्रवेश नहीं कर सकता था। जकात और कोतवाल, दरबार आदि शब्दों का प्रयोग मुगल प्रभाव का द्योतक है।

राज तालाब का लेख[२६६] (१७२७ ई.)

बांसवाड़ा के राज तालाब पर यह लेख वि० स० १७८४ मार्गशीर्ष सुदि ७ का है। इसमें सोलंकी सरदारसिंह का महारावल विष्णुसिंह की सेना में रह कर परमगति पाने का उल्लेख है।

झाला का गुढा का लेख[२६७] (१७२८ ई.)

यह लेख झाला का गुढा नामक गाँव में जो बांसवाड़ा जिले में है, वि० सं० १७८५ कार्तिक वदि १४ का है। इसमें उल्लिखित है कि झाला राजश्री सरूपसिंह के साथ कंठा की सेना में लड़कर चौहान धन्ना की मृत्यु हुई थी। इसमें 'कंठा' शब्द का प्रयोग मरहठे सेनापति सवाई कांटसिंह कदमराव से है जिसने उक्त संवत् में बांसवाड़ा पर आक्रमण किया था।

भंवरिया गाँव का लेख (१७२८ ई०)

पाराहेडा के भँवरिया गाँव (बांसवाड़ा) का यह लेख वि० सं० १७८५ कार्तिक वदि १४ भौमवार का है। इसमें उल्लिखित है कि मेड़तिया गोपीनाथ के पुत्र मेड़तिया बस्ता कंठा की फौज से लड़कर काम आया।

---

२६६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५।
२६७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५।
२६७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५।

अडोर गांव के लेख[२९८] (१७२८ ई०)

अडोर गाँव (बांसवाड़ा) में ११ लेख उपलब्ध हुए हैं। जिनका समय वि० सं० १७८५ कातिक वदि १६ भौमवार है। इसमें ठाकुर मोहकमसिंह के साथ में रह कर कंठा की फौज से लड़कर चौहान परवत, सीसोदिया भूमा, चौहाण मदन आदि राजपूत काम आये। सामन्तों की फौजों में भी अन्य शाखाओं और वंशों के राजपूत रहते थे और उनके लिए सैनिक सेवाएं देते थे ऐसा इस लेख से प्रमाणित होता है।

झाला का गुडा का लेख[२९९] (१७२८ ई.)

यह झाला के गुडा का लेख वि० सं० १७८५ मार्गशीर्ष सुदि ४ का है। इसमें दर्ज है कि झाला सरूपसिंह का सदीलाव मगरे के घेरे में तलवाड़ा गाँव में कातिक वदि १४ को कंठा की फौज से लड़कर मारा गया। इस लेख से मराठाओं की घेराव पद्धति से युद्ध लड़ने की प्रणाली पर काफी प्रकाश पड़ता है और यह भी प्रमाणित होता है। कि 'कंठा'—कार्टसिंह एक स्थान से दूसरे स्थान घेरे डालता रहा और पद-पद पर वांसवाडा के जागीरदारों ने अपने सहयोगियों की सहायता से इनका मुकावला किया तथा वीरोचित गति प्राप्त की।

अडोर गांव के लेख[३००] (१७२९ ई.)

वांसवाडा के अडोर गाँव के दो लेख जो वि० सं० १७८६ कातिक सुदि १४ के हैं 'कंठा' के घेरे सम्बन्धी सूचना देते हैं। इसमें उल्लिखित है कि मेड़तिया ठाकुर मोहकमसिंह और रावल सरूपसिंह के गनीम कंठा की सेना द्वारा घेरे जाने पर, शत्रु से लड़ते हुए उक्त तिथि को काम आये और उनके स्मारकों की प्रतिष्ठा उपर्युक्त दिन हुई।

कोलायत का शिला लेख[३०१] (१७२९ ई.)

यह लेख कोलायत के तीर्थस्थल से प्राप्त हुआ है जिसका समय संवत् १७८६ फाल्गुण कृष्णा सोमवार है। यह लेख क्रमांक ३७/२२२ से बीकानेर के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके द्वारा यह सूचना मिलती है कि उक्त समय में महाराजा सुजानसिंह ने कपिल तीर्थ पर घाट के निर्माण का प्रारंभ किया था। इसमें संस्कृत पद्यों में १२ पंक्तियां हैं। इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"दुर्लभं तं तीर्थप्रवरं नमामि वरदं त्रैलोक्य सपूजितं
महाराजधिराज श्री सुजानसिंहानां श्री कपिल तीर्थे
घाटस्थ प्रारंभ कृत: स चिरस्थायी भूयात्"

---

२९८. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५।

२९९. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५।

३००. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२५-१२६।

३०१. शिलालेख बीकानेर संग्रहालय क्रमांक ३७/२२२।

डूंगरपुर के मगनेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति[३०२] (१७३० ई०)

यह लेख डूंगरपुर नगर स्थित मगनेश्वर महादेव के मन्दिर की वि० सं० १७८६ माघ वदि ६ शुक्रवार (ई० स० १७३० ता० २६ जनवरी) की है। इससे प्रतीत होता है कि उक्त मन्दिर नागर जाति के पंचोली मगनेश्वर ने बनवाया था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि महारावल रामसिंह ने अपने पुत्र शिवसिंह को अपना युवराज बनाया जो ज्ञानकुंवर से जन्मा था। प्रशस्ति श्लोकबद्ध है और अन्तिम पंक्तियाँ संस्कृत गद्य में हैं—

"स्वस्ति श्री संवत् १७८६ वर्षे मासोत्तम माघ वदि ६ भृगौ अत्र दिने। अद्येह श्री गिरिपुरे महाराजाधिराज महाराओल श्री रामसिंहजी विजयराज्ये। कुमार श्रीशिवसिंहजी युवराज्य स्थिते"

हरनेवजी के खुरेवाले शिवालय का लेख[३०३] (१७३३ ई०)

यह लेख उदयपुर स्थित हरनेवजी के खुरे वाले शिवालय के मन्दिर वि० सं० १७६० वैशाख शुक्ला १३ का है। इसमें सनाढ्य ब्राह्मण हरिवंश के द्वारा शिवालय, बावड़ी और बाड़ी बनाने का उल्लेख है। प्रशस्ति में ३० श्लोक हैं जिनकी रचना रूपभट्ट के पुत्र रामकृष्ण ने की थी। प्रारम्भ में मेवाड़ के महाराणाओं की प्रशंसा और फिर हरिवंश के वश का वर्णन है। इस प्रशस्ति से स्थानीय जनसमुदाय की धार्मिक वृत्ति का बोध होता है। इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"शिवसौध: शिवावापी वाटिका हरिमन्दिर
अकारि हरिवंशेन चतुर्भद्रं चतुष्पथे"
"श्रीरूपभट्टजनुषा कविराड्वंदितांघ्रिणा
रामकृष्णेन रचिता प्रशस्ति रियमुत्तमा"
"संवत् १७६० वर्षे वैशाख शुद १३ दिन राणा श्री जगत्सिहजी विजयराज्ये शनावड जाति जोशी हरिवंश ताराचंदोत श्री हरिवंशेश्वरजी की तथा हरिमन्दिर री प्रतिष्ठा कीधी ने बाड़ी बावड़ी सुधी तयार कराये ने देवरे चढ़ाई"

माकरोरा (सिरोही) का लेख[३०४] (१७३३ ई०)

इस लेख में रत्नसूरी, कमलविजय गणिआदि साधु माकरोरा में वर्षाऋतु में रहे तब वहाँ के श्रावकों तथा श्राविकाओं ने साधुओं की भक्ति की यह अंकित है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"संवत् १७६० वरषे कमल कलसा गच्छे भट्टारिक श्रीमत रत्नसूरि पं०

---

३०२. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १२७।
३०३. वीरविनोद, पृ० १५१८–१६;
ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ. ६३६।
३०४. नाहर, जैन लेख, भा. १, नं० ६७०, पृ० २४६।

कमलविजय गणि वेठाणा ७ संधाति चौमासु रह्या। मुहता मोटा सा० धना मुदरनरथ कोठारी करमसी अमरा रणछोड देवा भगवान रामजीराज जोगा कल्याण सुजाण जोगा आसा बाई चांपी बाई जगी समस्य श्राविक श्राविकाइ सेवा भगति भलीरीति कीधी संघस्य कल्याणाय भवतु"

महारावल विष्णुसिंह का स्मारक का लेख[३०५] (१७३७ ई०)

यह लेख महारावल विष्णुसिंह (बांसवाड़ा) की स्मारक छत्री पर उत्कीर्ण है जिससे उक्त महारावल की मृत्यु वि० स० १७९३ चैत्र सुदि ७ को होना प्रमाणित होता है। कविराज श्यामलदास ने महारावल विष्णुसिंह का देहान्त वि० १७८९ के पूर्व होना माना है जो इस लेख के उल्लेख के प्रतिकूल है। उक्त महारावल के साथ एक पासवान रूपादाई का सती होना भी इससे प्रमाणित होता है। इस स्मारक की प्रतिष्ठा वि० सं० १८०० के जेठ शु० ९ को माताजी श्री पुरवणीजी रूपकुंवरी के द्वारा होना सिद्ध है।

इसका गद्यांश इस प्रकार है—

"सं १७९३ वर्षे चईत्र शुद ७ महाराओल श्री विष्णुसिहजी देवलोक पधारा शति १ पाशवान बाई रूपाए सहगमन कीधो सं. १८०० वर्षे जेठ शु. ९ माताजी श्री पुरवणीजी रूप कुंऐंरजी छत्री प्रतिष्ठा किधि"

वखतपुरा गांव का लेख[३०६] (१७३८ ई०)

अर्थूणा ठिकाने के वखतपुरा गांव का यह लेख बड़े महत्त्व का है। इससे, प्रमाणित होता हैं महारावल विष्णुसिंह (बांसवाड़ा) का कुटुम्बी भारतसिंह राजद्रोही होगया और उसने वि० सं० १७९४ और वि० सं० १७९५ में बांसवाड़ा राज्य की सेना से युद्ध किया। इस युद्ध में चौहान बहादुरसिंह, भारतसिंह के पक्ष से रहकर लड़ता हुआ मारा गया। इस लेख से सामन्तों का राज्य से विरोधी होने की घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। लेख की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"संवत् १७९५ वरषे मागसर सुदि ७ दने चहुआण श्री बादरसिगजी काम आवा सेती भारतसिघजी नी फोज महे काम आवा फोज म्हें"

गोवर्धन विलास में मानजी धाय भाई के कुंड की प्रशस्ति[३०७] (१७४२ ई०)

उदयपुर से दो मील की दूरी पर गोवर्धनविलास नामी गांव में माना धाय भाई के कुंड की वि० सं० १७९९ चैत्र सुदि १ की प्रशस्ति है। इसमें चन्द्रकुंवरी (जिसका विवाह सवाई जयसिंह के साथ हुआ था) की गूजर जाति की धाय भीला के पुत्र माना धाय भाई के द्वारा, कुंड और बाग बनाये जाने का उल्लेख है। प्रशस्ति में

३०५. ओझा, बांसवाड़ा का इतिहास, पृ० १२२।

३०६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १२९।

३०७. वीर विनोद, पृ० १५१९–१५२१;
ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ६३९–६४०।

३० श्लोक हैं जिनकी रचना भट्टमेवाडा जाति के कवि रामकृष्ण ने की थी। अंतिम भाग मेवाड़ी भाषा में है। उक्त प्रशस्ति में गूजर जाति के मानजी के वंश के व्यक्तियों की धर्मनिष्ठा तथा योग्यता का अच्छा वर्णन है। यह प्रशस्ति धाय भाइयों की समृद्धि तथा राजमान्यता के विकास पर अच्छा प्रकाश डालती है। इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"सम्मानिता मानजिता समस्ता समाजितस्तत्र सुरा नराश्च
जयस्वनैस्तुष्ठहृदोऽ मृमुच्चैरवाकिरन् पुष्पभरैरतीव"

"संवत् १७९५ वर्षे ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे ११ दिने गूजर ज्ञाति वास उदयपुर झांझाजी सुत नाथाजी तत्पुत्र तेजाजी तत्पुत्र केशवदास जी तत्पुत्र रिचंजीवी धाय भाई जी श्री मानजी कुंडवाडी तथा सारी जायगा बंधाई कुंडरी खुदाई कुमठाणों तथा व्याव वृद्धरा समस्त रुपीया ४५१०१ अखरे रुपीया पैंतालीस हजार एक सौ एक लगाया संवत् १७९९ वर्षे चैत्रमासे शुक्ल पक्षे १ दिने गुरु वासरे महाराजाधिराज महाराणा श्री जगत्सिंह जी विजय राज्ये मेदपाटज्ञाती भट्टरुप जी तत्पुत्र भट्टरामकृष्ण या प्रशस्ति बणाई छै"

पंचोलियों का मंदिर उदयपुर की प्रशस्ति[३०८] (१७४३ ई०)

यह प्रशस्ति उदयपुर में दिल्ली दर्वाजे के पास, वाईजी राज के कुंड के दर्वाजे के सामने पश्चिम दिशा में रास्ते पर पंचोलियों के मन्दिर की है। इसका समय वि. सं १८०० वैशाख सुदि ८ है। इसमें भटनागर कायस्थ देवजित् (देवजी, जो महाराणा का मंत्री था) के द्वारा विष्णु मन्दिर, शिवालय, बावड़ी और धर्मशाला बनाये जाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति में देवजित् के वंश का भी विस्तृत वर्णन है। उक्त प्रशस्ति में ५९ श्लोक हैं जिनकी रचना कवि नाथूराम ने की थी। इससे उस समय की उदारता, धर्मनिष्ठा तथा मन्त्रिगणों की लोकप्रियता और समाज की ब्राह्मणों के प्रति सत्कार की भावना का बोध होता है। इसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

"वाटिकां देवयोश्चै पूजार्थं सुमनोयुतां
मध्येप्रासादयोश्चक्रे नाना द्रुममनोहरां"

"कृत्वा पारायणं विप्रास्थ स्तथा मंत्र जपादिकं
सर्वे जपदशांशेन जुहुवुस्ते प्रथक् प्रथक्"

"श्री जगत्सिंह भूपस्य प्रीतिपात्रं महामति
सुपुत्री देवजिज्जीयाच्चिरं सर्वं सुखान्वितः"

"इति श्री कायस्थ वंशावतंसदेवजित्का रित प्रशस्तिः
संपूर्णा श्चटैषागोत्रजातेनसूत्रधारेण धीमता अमरारमेन रचित प्रासादः
त्तष्टसूनुना"

---

३०८. वीरविनोद, पृ० १५२१–१५२५;
ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ६४०।

महती जी के मन्दिर की सुरह[309] (१७४५ ई०)

यह लेख संवत् १८०२ कार्तिक शुक्ल २ का है जो मांडलगढ़ की भीतरी तल-हटी के बाजार वाली महतीजी के मन्दिर के निकट सुरह के रूप में उत्कीर्ण हैं। इस लेख का आशय यह कि मांडलगढ में अव्यवस्था फैलजाने से जो जन समुदाय कस्बे को छोड़ कर चले गये थे उन्हें फिर से बसाने का आग्रह स्थानीय पंचों को किया गया है। उन्हें यह भी बताया गया है कि कर देने वाले व्यक्तियों से दंड लेने की प्रथा हटा देना चाहिये। इसमें स्थानीय शासन सत्ता के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है। इसमें कर देने वालों के लिए 'देवाल' शब्द का प्रयोग किया गया है जो २० वीं शताब्दी के प्रारंभ तक यहां प्रचलित था। इसका मूल इस प्रकार है—

"सिद्ध श्री दिवाण जी आदेसातु प्रतदुवे महता देवी चंद जी कसबा मांडलगढ तलेटीरा समसत पंचा कस अपरंच थे जभापातर राषेर गामरी आवादान करज्यो, आसाम्या वारणे गई हे ज्यानो पाछी ल्यावज्यो, आदका देवालको अेक आसामी को हात पकड डंड करणो नहीं..........लिखता गोड सोलाल संयूरा सवत् १८०२ रा काती सुद ४ रवे"

बांसवाड़ा का उदयसिंह का स्मारक लेख[310] (१७४६ ई०)

यह लेख उदयसिंह के स्मारक का है जिसका समय वि० सं० १८०३ आश्विन वदि है। इससे उदयसिंह की मृत्यु के समय के निर्धारण में सहायता मिलती है। लेख से यह भी प्रतीत होता है कि स्मारक की मूर्ति खण्डित हो जाने से वि० सं० १८९३ जेष्ठ सुद १५ को दूसरी मूर्ति की स्थापना मारफत ठाकुर अर्जुनसिंह तथा जानी लखमीचंद के हुई। इसकी भाषा इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महारावल श्री उदेसंघजी देवलोक पधारा सं० १८०३ ना आसोज वद ते मुरती खंडित थई हती ते सं० १८९३ ना जेठ सुद १५ दीनो बीजी मुरती वेसारी मारफत ठाकर अरजणसिंघजी दसगत जानी लखमीचंद।"

अर्जुनसिंह चौहाण गढ़ी का स्वामी था और वि० सं० १८९३ (ई० स० १८३६) में बाँसवाड़ा राज्य का मुख्य कार्यकर्त्ता था।

गरखिया गाँव का लेख[311] (१७४६ ई०)

बांसवाड़ा के गरखिया गाँव के वि० सं० १८०३ पौष वदि १२ का यह लेख में सरदारसिंह का किसी की फौज से लड़कर काम आने का उल्लेख है।

---

३०९. वीर विनोद, पृ० १५२५।

३१०. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२८।

३११. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३७।

बीकानेर का एक स्मारक लेख[३१२] (१७४७ ई०)

यह लेख वेणीरोत सवाईसिंह की देवली पर है जिसका समय संवत् १८०४ शाके १६६९ श्रावण कृष्णा ३ सोमवार है। इसमें वेणीरोत सवाईसिंघ का जोधपुर की फौजों से लड़ते काम आने का उल्लेख है। इस समय का शासक गजसिंह था। लेख में १७ पंक्तियां राजस्थानी भाषा में हैं। लेख का कुछ अंश इस प्रकार है—

"बीकानेर मध्ये महाराजाधिराज महाराज श्री गजसिंहजी विजय राज्ये काश्यपगोत्र राठोड कांधल वंस वेणीरोत राजा श्री अजबसघजी तत्पुत्र मोहकमसघजी तस्यात्मज सवइसघजी जोधपुर री फौज भागी ताहीं रा काम आया।"

डडूका गाँव का लेख[३१३] १७४८ ई०)

यह लेख बांसवाड़ा के अन्तर्गत गढ़ी के पट्टे के गाँव डडूका का है। यह लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के पास खड़ा है जिसमें वि० सं० १८०४ चैत्र वदि ३ का समय दिया गया है। इसमें कुछ भूमि दान का उल्लेख है।

चितवा गाँव का लेख[३१४] (१७४९ ई०)

यह बांसवाड़ा के पट्टे कुंडला के चितवा गाँव का वि० सं० १८०५ माघ सुदि ५ का शिलालेख है। जिसमें राठौड़ नाथजी के किसी शत्रु सेना से लड़कर काम आने का उल्लेख है।

भटियाणीजी की सराय के मन्दिर की सुरह[३१५] (१७५० ई०)

वि० सं० १८०७ आषाढ़ वि० ४ का यह लेख भटियाणीजी की सराय के मन्दिर (उदयपुर) में लगा हुआ है। उक्त लेख में महाराणा जगत्सिंह द्वितीय की राणी भटियाणी के बनवाये हुए द्वारिकानाथ के मन्दिर के लिए भूमिदान का उल्लेख है। इस अनुदान से मन्दिर के राग-भोग तथा साधु-सन्तों के आतिथ्य की व्यवस्था की गई है। इसमें भूमि की किस्म पीवल, माल, मगरा तथा नाप हल आदि का उल्लेख किया गया। इसमें पंचोली हरकिसन साह पुसाल तथा गुलाबराय का भी जिक्र किया गया है जो महाराणा के समय के उच्च अधिकारी थे। इसका मूल इस प्रकार है—

"सिद्ध श्री ताबापत्र प्रमाणे सुरे श्री मन्महीमहेन्द्र महाराजाधिराज महाराणाजी श्री जगत्सिंहजी आदेशात् ठाकुरजी श्री द्वारिकानाथजी रो देवरो राणीजी भट्याणीजी करायो जींपर सादु सेवग रहैगा जीरा भाता सारु धरती हल १ एकरी आगे पेमारी सराय मांहे थी देवाणी थी, तीरे बदले भट्याणीजी री सराय मांहे थी

---

३१२. बीकानेर संग्रहालय क्रमांक १०/१९४।

३१३. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३७।

३१४. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३८।

३१५. वीर विनोद, पृ० १५२६;
ओझा, उदयपुर, भा० २, पृ० ६४०

धरती वीगा ३८।। साडा अडतीस मध्ये पीवल वीगा १८ अठारे माल मंगरारी वीगा २।। साडावीस देवाणी पेमारी सराय़री धरती हल १ री रो हासल भट्याणीजी री सराय मेलेसी पेली नांपा पत्र संवत् १८०२ रा काती विद ८ सोमेरो साह पुसालरे भंडार सूंप्यो लागत विलगत धर ठाम सुदी उदक आधार करे श्री रामार्पण कीधो.... प्रत दुवे पंचोली हरकिसन लिषतं पंचोली गुलाबराय कान्होत संवत् १८०७ वर्षे असाड विद ४ शने"

बांसवाड़े के राजतालाब का लेख[३१६] (१७५५ ई०)

बांसवाड़े के राज तालाब पर वि० सं० १८१२ भाद्रपद सुदि १३ का एक शिलालेख है जिसमें स्थानीय लोगों द्वारा सार्वजनिक कल्याण कार्य में हाथ बँटाने का उल्लेख है। इसमें उल्लिखित है कि आभ्यन्तर नागर ज्ञाति के पंडया उत्तमेन्द्र ने रुद्रेश्वर का शिवालय और सन्मुख ने बांसवाड़े के राजतालाब पर एक घाट का निर्माण करवाया।

बांसवाड़ा के राजतालाब का लेख[३१७] (१७५५ ई०)

बांसवाड़ा के राजतालाब के वि० सं० १८१२ आश्विन वदि ८ के लेख में नागर जाति के जानी रंगेश्वर ने ५०१ रुपये व्यय कर राजतालाब पर एक घाट बनाने का उल्लेख है। इससे स्थानीय जनता के व्यक्तियों द्वारा सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेना प्रमाणित होता है। केवल ५०१ रु० में घाट का निर्माण होना उस समय की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालता है।

डूंगरपुर के शिव ज्ञानेश्वर महादेव की प्रशस्ति[३१८] (१७५६ ई०)

यह प्रशस्ति डूंगरपुर के गैब सागर तालाब के तट पर शिवज्ञानेश्वर शिवालय में लगा हुआ है जिसे रावल शिवसिंह ने अपनी माता की स्मृति में बनवाया था। लेख का समय वि० सं० १८१३ माघ सुदि ५ (ई० स० १७५७ ता० २४ जनवरी) है। उपर्युक्त प्रशस्ति से उस समय की डूंगरपुर राज्य की सम्पन्नता तथा विद्योन्नति का पता चलता है। महारावल के विद्यानुराग तथा राज्य और नगर की सम्पन्न अवस्था पर भी इस प्रशस्ति से अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस प्रशस्ति में महारावल के लिए 'महाराजाधिराज', 'रायरायां', 'महारावल' तथा 'महिमहेन्द्र' की उपाधियों का प्रयोग मिलता है। प्रशस्ति से स्पष्ट है कि शिवसिंह वीर, बुद्धिमान, राजनीतिज्ञ और उदार था। उसमें प्रजाहित सम्पादन की भावना थी और वह कुशल शासक था।

नवागांव का लेख[३१९] (१७५६ ई०)

बांसवाड़ा राज्य के नवागांव के वि० सं० १८१३ मार्गशीर्ष सुदि ८ के लेख में

---

३१६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३८।

३१७. ओझा, बांसवाडा राज्य का इतिहास, पृ० १३८।

३१८. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १३०-१३१।

३१९. ओझा, बांसवाड़ा, पृ० १३५।

बांसवाड़ा और लूणावाड़ा के बीच युद्ध होने का उल्लेख है। इस युद्ध में कुंवर उदयराम मारा गया था। यह लेख भी उस समय की आन्तरिक स्थिति तथा पड़ोसी राज्यों से सीमा सम्बन्धी झगड़ों पर प्रकाश डालता है। लेख की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"संवत् १८१३ वरषे मागसर सुद ८ दने कोग्रर (कुंग्रर) श्री उदेरामजी काम आव्या सूंथवाला नी फोज लूणावाडा......झगडो......।

कोनिया गाँव का लेख[320] (१७५६ ई०)

बांसवाड़ा के कोनिया गाँव का वि० सं० १८१५ माघ वदि ६ का यह शिला-लेख डोली वजा का युद्ध में काम आना उल्लिखित करता है। युद्ध में राजपूतों के अतिरिक्त अन्य जातियां भी सहयोग देती थीं इसका यह लेख अच्छा प्रमाण है।

कोनिया गाँव का लेख[321] (१७५८ ई०)

बांसवाड़ा के कोनिया गांव का वि. सं. १८१५ पौष सुदि १ का यह लेख राठौड़ बाघसिंह का युद्ध में काम आना उल्लिखित करता है।

कोनिया गांव के लेख[322] (१७५६ ई०)

बांसवाड़ा के कोनिया गांव के तालाब पर वि. सं. १८१५ माघ वदि १ के दो लेख हैं जिनके द्वारा कुंवर दुलहसिंह व राठौड़ सामंतसिंह का युद्ध में काम आना प्रमाणित होता है।

सरवाणिया गांव का लेख[323] (१७६३ ई०)

बांसवाड़ा जिला के सरवाणिया गांव के वि. सं. १८२० कार्तिक वदि १ का यह लेख चौहान उदयसिंह के नेतृत्व में लड़े गये युद्ध के अवसर पर पटेल प्रेमा सुत शेखा शत्रु से लड़कर काम आने का उल्लेख करता है।

उभेदगढ़ी का लेख[324] (१७६८ ई०)

यह लेख बांसवाडा जिले के उभेदगढ़ी का है जिसका समय वि. सं. १८२४ ज्येष्ठ सुदि १५ है। इसमें राठौड़ उदयसिंह का रणक्षेत्र में काम आने का उल्लेख है।

बांसवाड़ा में एक सती लेख[325] (१७७४ ई०)

इस लेख में उपपत्नि के सती होने का उल्लेख है। इसकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

---

३२०. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३८।
३२१. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३८।
३२२. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३८–१३६।
३२३. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३६।
३२४. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३६।
३२५. बांसवाड़ा माफी दफ्तर से प्रतिलिपि प्राप्त।

"स्वस्ति श्री संवत १८३१ वर्षे कार्तिक वदि ८ वार शनौ चौश्राणजी श्री उदयसिंघजी देवलोक पामा पाशवान वाई जीवी सती हुश्रा''

गोनेर के जगदीश के मन्दिर का लेख[३२६] (१७७६ ई०)

जयपुर से टोंक के राष्ट्रीय मार्ग के १२ मील के पत्थर से ५ मील दूर पूर्व में स्थित गोनेर गांव (जयपुर) के समीप एक छोटा सा तीर्थ स्थान है। यहां एक जगदीश का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर के सामने वाले चौक की दीवार पर वि. सं. १८३३ भाद्रपद वदि १४ मंगलवार का एक लेख है। लेखाकार १०×१८ वर्ग इंच है जिसमें कुल ६ पंक्तियां हैं। इसमें वर्णित है कि मन्दिर के निमित्त दरबार ने मापा, जंढा, सैंहण और वलाही जो स्थानीय कर थे माफ कर दिये। यह माफी का हुक्म श्री जीवनराम एवं तपदास के द्वारा दिया गया। इससे यह भी बतलाया गया कि इसके उल्लंघन करने वाले हिन्दू को गऊ की और मुसलमानों को सुग्रर की सौगंध है। इस लेख से सिद्ध है कि उस समय राज्याज्ञाओं का सम्बोधन सैल, पटवारी, महाजन, पंच, चोकायत सेहणा आदि को किया जाता था जबकि स्थानीय करों को बंद करने या लगाने का प्रश्न अथवा अन्य ऐसी कोई स्थानीय परिस्थिति पैदा होती थी। इसका गद्यांश इस प्रकार है—

"श्री दीवान वचनात मो० कसबा गोनोर का सैल पटवारी पंच माहाजन श्री जी चोकायत सैहणा वलाही कोई छै मापा ऊंद्राभा दाम लागै छै सो साही दरवार सूं माफ करी हयंदु ले तो गउ की सोगन मुसलमान लै तो सुग्रर की सोगन। माप हुई मारफत जीवनराम तपदास स्योजी राम कीया नई साल की मीति भादवा बुदी १४ मंगलवार संवत १८३३ का"

रोणियां गांव का लेख[३२७] (१७८४ ई०)

बांसवाड़ा जिले के रोणियां गांव के वि० स० १८४० फाल्गुन वदि ७ के इस लेख में राठोड़ केसरी का संभाजी की फौज से लड़ते हुए काम आने का उल्लेख है।

बांसवाड़ा के पृथ्वीविलास वाग के निकट का लेख[३२८] (१७८६ ई०)

बांसवाड़ा के पृथ्वीविलास बाग में सतियों के सामने के मन्दिर का वि. सं. १८४५ माघ सुदि ६ का शिलालेख है जिसमें उल्लिखित है कि राठोड़ कनीराम की स्त्री ने उपर्युक्त मन्दिर का निर्माण कराया। इस लेख से उस समय की धार्मिक प्रवृत्ति का बोध होता है।

---

३२६. वरदा, वर्ष १४ अंक ४, अक्टूबर-दिसम्बर, १९७१, पृ० ७, १६।

३२७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४०।

३२८. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४७।

श्री एकलिंग जी का एक लेख [३२९] (१७९६ ई०)

यहां का एक और वि० सं० १८५३ का महत्त्वपूर्ण लेख है। इस लेख में उल्लिखित है कि छोटे राठौड़जी राणीजी के पुत्र उत्पन्न हुआ जिस समय 'बोलमा' के अनुसार सभी सरदारों के सहित महाराणा भीमसिंह ने एकलिंग जी तक पैदल यात्रा की। वहां उन्होंने वैशाख शुक्ला १५ को इष्टदेव का पूजन किया और चारण, भाट और छन्यानी ब्राह्मणों के कई कर माफ किये। उस समय कई शक्तावत तथा चूंडावत सरदार महाराणा के साथ थे जिनकी नामावली भी इस लेख में दी गई है। प्रस्तुत लेख में कई करों का भी उल्लेख किया गया है जो उस समय लिए जाते थे। वे ये थे— देश विराड, खरच विराड, डंड, दुमालो, फोज विराड, टिलोर, नूंतो, चोथ दस्तूर, रखवाली, पालो, मपत्री, घरगणती. धूंध विराड, परगना चोतरा री लागत आदि।

पारोदा गांव का स्मारक लेख [३३०] (१७९७ ई०)

वांसवाड़ा राज्य के पारोदा गांव के इस स्मारक लेख में, जो वि० सं० १८५४ वैशाख सुदि ४ का है, मेवाड़ राज्य की सेना और वांसवाड़ा राज्य की सेना के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में हटीसिंह काम आया। संभवतः महाराणा भीमसिंह ने ईडर से लौटते समय वांसवाड़ा को घेरा और वहां से दंड वसूल किया। यहां से वह प्रतापगढ़ की ओर गया।

"संवत् १८५४ वर्षे वइसाख सुदी ४ दनो हटीसिंघ फोज दीवाणजी री आवी तारे काम आवा"

वांसवाड़ा के सिद्धनाथ के चबूतरे के लेख [३३१] (१७९९ ई०)

ये दो लेख वांसवाड़ा के सिद्धनाथ महादेव के समीवर्ती चबूतरे के हैं जिनका समय वि० सं० १८५५ चैत्र वदि १२ बुधवार है। इन लेखों का महत्त्व इस दृष्टि से अधिक है कि इसमें कसारा रणछोड़, ओमा, दोला आदि जन साधारण के व्यक्तियों का महारावल विजयसिंह की सैन्य में काम आने का उल्लेख है।

सागडोदा की वावली का लेख [३३२] (१८०१ ई०)

बांसवाड़ा जिले के सागडोदा की वावली का वि० सं० १८५८ आपाढ़ सुदि २ का यह लेख जनसाधारण द्वारा सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेने के सम्बन्ध में है। इसमें वर्णित है कि कोठारी नाथ जी, अमरजी, शोभाचन्द्र और उम्मेदवाई ने उपर्युक्त वावली का निर्माण कराया।

---

३२९. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

३३०. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४२।

३३१. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४७।

३३२. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४७।

श्री एकलिंगजी का एक सुरहलेख [333] (१८०३ ई०)

वि० सं० १८६० का एक सुरह लेख बड़े महत्त्व का है। इसमें जसवन्तराव होल्कर के मेवाड़ आक्रमण का उल्लेख है जो वि० सं० १८६० में हुआ था। इस लेख में उल्लिखित है कि जब जसवन्तराव होल्कर का आक्रमण हुआ तब उदयपुर की प्रजा को अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन्हें डंड के रूप में धन भी देना पड़ा। इसलिए नगरसेठ साधुदास बापना ने इस सुरह को लगाकर यह आदेश दिया कि यदि भविष्य में मराठों का वेरा हो तो ढोलीराव प्रजा से शादी के अवसर पर ली जाने वाली लाग बाग के लिए अपने यजमानों को तंग न करें। जितना भी वे प्रसन्नता से देदें उसे स्वीकार करलें। इसमें यह भी अंकित किया गया कि 'घर गणति' बराड आदि सरकार द्वारा नहीं लिये जायेंगे क्योंकि मराठा आक्रमण से चारों ओर बर्बादी के चिह्न दिखाई दे रहे थे।

श्रीनाथजी की हवेली उदयपुर का लेख [334]

यह लेख सुरह के रूप में श्रीनाथजी की हवेली उदयपुप के बाहर लगा हुआ है। इस लेख में भी यशवन्तराव होल्कर के मेवाड़ आक्रमण का वर्णन है। इसमें यह भी उल्लिखित है कि श्रीनाथजी की मूर्ति उदयपुर पधराई गई थी और मूर्ति लाने के लिए श्री एकलिंगदास बोलिया को नियुक्त किया गया था। अतएव प्रतिमा को माह वि० १० को उदयपुर लाया गया।

फतेपुर की बावली का लेख [33] (१८०४ई०)

बांसवाड़ा जिले के फतेपुरे की बावली का वि० सं० १८६० वैशाख वदि ६ का यह लेख अंकित करता है कि बड-नगरा जाति के नागर ब्राह्मण पंचोली प्रभाकरण ने उपर्युक्त बावली को बनवाया।

बरोडा गांव का स्मारक लेख [336] (१८०५ ई०)

बांसवाड़ा राज्य के बरोडा गांव के वि० सं० १८६२ कार्तिक सुदि १२ के लेख से ज्ञात होता है कि उक्त संवत् में भी वहाँ मेवाड़ की सेना आई थी और उसने बांसवाड़ा की फौज से युद्ध किया था। इस युद्ध में आडा भोपजी काम आया। इसके स्मारक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

"संवत् १८६२ ना कातक सुदि १२ आडा भोपजी
काम आवा राणाजी नी फोज आवी तारे काम आवा....."

---

३३३. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

३३४. एक प्रतिलिपि के आधार पर।

३३५. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४८।

३३६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४२।

बांसवाड़ा की विजयवाव की प्रशस्ति[३३७] (१८०६ ई०)

वांसवाड़ा की विजयवाव की वि० स० १८६३ आषाढ़ सुदि ३ गुरुवार की प्रशस्ति में उल्लेख है कि महारावल विजयसिंह ने उपर्युक्त वावली का निर्माण करवाया।

डूंगरपुर के रणछोड़ राय के मन्दिर की आघाट,[३३८] (१८०८ ई०)

यह सुरह बड़े महत्त्व की है जिसमें डूंगरपुर के महारावल जसवन्तसिंहजी ने नगर में यह आदेश कर दिया था कि जब शत्रुओं का आक्रमण हो तब कोई व्यक्ति गौओं को न सतावे और स्त्रियों से दुर्व्यवहार न करे। इस तरह का आदेश नागरिकों के नैतिक स्तर को बनाये रखने में बड़ा सहायक रह सकता है और इससे महारावल की जनकल्याण के प्रति उदार भावना प्रकट होती है।

इसका मूल भाग वागडी भाषा में है—

> "रायराये महाराजाधिराज महाराओल श्री जसवन्तसंघ जी लखावीतांग जत श्री दरबार मे आ करी ने श्री डूंगरपुर तथा धरती मध्ये केने रोकणाथाओ तो बईराने रोकवा नहे तथा फोजफांटो सडे तो गाओनो वारणवार वी नही तथा आगदी मरडी ने भारम रस लेवो नहीं।...... ......होकम हजूरनो संवत् १८६५ नाफगण सु० ५ प्रवानगी साहा जवेर चंदनी त्रवाडी रखवजी आघाट लोये तेने गदेडे गार छे"

डडूका गाँव का लेख[३३९] (१८०८ ई०)

वांसवाड़ा जिले के डडूका गाँव (पट्टगढ़ी) का वि० सं० १८६८ वैशाख सुदि ७ के स्मारक लेख में परमार जयसिंह की बसी गाँव टूटते समय काम आने का उल्लेख है।

गरखियां गाँव का एक स्मारक लेख[३४०] (१८१२ई०)

बांसवाड़ा जिले का गरखियां गाँव का वि० सं० १८६८ वैशाख सुदि ७ का स्मारक लेख सीसोदिया देवीसिंह के युद्ध में काम आने का उल्लेख है।

तलवाडा गांव का स्मारक लेख[३४१] (१८१४ ई०)

बांसवाड़ा राज्य के तलवाडा गांव के वि० सं० १८७० का फाल्गुन वदि ५ के लेख से स्पष्ट है कि पेडतिया शेरसिंह सिंधी शाहजादे की फौज से लड़कर काम आया।

इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

---

३३७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४८।
३३८. डूंगरपुर राजपत्र, सितम्बर ५, १९४७।
३३९. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४८।
३४०. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४८।
३४१. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४५।

"संवत् १८७० दीनो राज श्री मेडतीग्रा सेरसिंघजी काम ग्राव्या फागणवदी ६ दीने……" फोज शाहेजादा शेदीया ने फोज में खोडने वेले काम ग्राव्या ।

तलवाडा गांव का स्मारक लेख[342] (१८१५ई०)

वांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गाँव के वि० सं० १८७२ कार्तिक सुदि १४ के एक स्मारक लेख से स्पष्ट है कि जव होल्कर के सेनापति रामदीन ने वांसवाड़ा राज्य में लूटमार करना ग्रारम्भ किया, इस उपद्रव के ग्रवसर पर खडिया शक्ता का पुत्र हमीरसिंह ग्रमरेई गाँव में काम ग्राया । इसकी मुठभेड़ रामदीन से ग्रमरेइ गाँव में हुई ।

इसकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'संवत् १८७२ ना कारतक सुदी १४ दिने खडिग्रा सकताजी सुत हमीरसिंघजी काम ग्राव्या तेनो चीरो रोप्यो छे गाम ग्रमरइ उपर काम ग्राव्या रामदीन नी फ़ोज ग्रावी तारे"

वूडवा गांव का लेख[343] (१८१७ई०)

वांसवाड़ा जिले के ग्रारीगांवा पट्टे के वूडवा गाँव के वि० सं० १८७४ वैशाख वदि १० शनिवार के लेख से प्रमाणित है कि करीमखाँ पिंडारी के ग्राक्रमण के दौरान चौहान उदयसिंह काम ग्राया । इस लेख तथा सूरपुर गाँव के लेख से पिंडारियों का वांसवाड़ा राज्य में उपद्रव होने का पता चलता है । इससे यह भी प्रमाणित होता है कि जागीरदार के ग्राश्रित राजपूत ग्राक्रमणों का मुकावला करते थे ग्रौर ग्रवसर ग्राने पर ग्रपने प्राण को न्योछावर कर देते थे ।

सूरपुर गांव का लेख[344] (१८१७ई०)

यह लेख सूरपुर गाँव (वांसवाड़ा) का वि० सं० १८७३ वैशाख सुदि १२ का है जिससे प्रमाणित होता है कि नवाव करीमखां पिंडारी वांसवाड़ा राज्य में ग्रा पहुंचा ग्रौर वहाँ लूटमार ग्रारम्भ की । उसकी सेना ने युद्ध करते हुए उस ग्रवसर पर तंवर नाहरसिंह मारा गया ।

"संवत् १८७३ वैशाख सुद १२ दने तंवर नाहरसिंघ जी काम ग्राव्या नवाव करमखां नी फोज ग्रावी……"

सूरपुर गांव का स्मारक लेख[345] (१८२० ई०)

सूरपुर गाँव (वांसवाड़ा) का वि० सं० १८७७ कार्तिक वदि १४ के स्मारक लेख से तंवर वहादुरसिंह की मदथला नामक पहाड़ पर मृत्यु होने की सूचना

---

३४२. ग्रोझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४६ ।

३४३. ग्रोझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १५५ ।

३४४. ग्रोझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १४६–१५० ।

३४५. ग्रोझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १६६ ।

मिलती है। इसकी मृत्यु कोई आन्तरिक विग्रह में हुई हो ऐसा अनुमानित किया जाता है।

भवरिया गांव के लेख[३४६] (१८२३ई०)

ये लेख वि० सं० १८७९ चैत्र वदि ४ के हैं जिनमें मेडतिया राठौड़ कल्याणसिंह तथा रूपसिंह के काम आने के उल्लेख हैं। इससे प्रमाणित होता है कि अंग्रेजों के साथ संधि हो जाने पर भी देशी राज्यों में ऐसे कई आन्तरिक झगड़े चलते रहते थे जिनमें कई वीरगति को प्राप्त होते थे।

भँवरिया गांव का लेख[३४७] (१८२३ई०)

भंवरिया गांव (बांसवाड़ा) का वि० सं० १८७९ चैत्र सुदि ४ के स्मारक लेख से केसरीसिंह का लेंबडिया गाँव में काम आने का उल्लेख है। इसकी मृत्यु किसी आन्तरिक बखेड़े में होना अनुमानित किया जाता है।

जैसलमेर के बापरण हिम्मतरामजी के मन्दिर की प्रशस्ति[३४८] (१८३४ ई०)

इस लेख में संघ की यात्रा, लहरण देना, यात्रा के साधन तथा धर्मशालाओं के बनवाने का उल्लेख है जिसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत १८९१ आषाढ़ सु० ५ जैसलमेर नगरे बापना गुमानचंद संघ कढायो जिणरी विगत जैसलमेर-उदयपुर कोटा सु कुंकुम पत्र्यां सर्वदेसावरा में दीवी। च्यार जीमण कीया नालेर दिया पछे संग पाली भेलो हुओ। जठे ४ जीमण कीया। श्री पंचतीर्थजी, बंभाणवाडजी, आबूजी, गिरनारजी, जीरावलजी, तारगोजी, संखसरोजी, पंचासरोजी, सिद्धगिरि, अढाई लाख जात्री भेरो हुओ, पूरब मारवाड, मेवाड, गुजरात, ढूंढाड, हाडोती, कच्छभुज, मालवो, दक्षरण सिंध, पंजाब देशरा उठे लहरण १) सेर, १ मिश्री धर दीठ दी वी। आहार पाणी गाडियांरो भाडो तंबू चीवरो ठांणे दीठ ४) रुपीया दीया नगद सेवग ५०० छा जिणानै जर्णं दीठ २१) इक्कीस रोप्या खरच न्यारो मोजा पहरण रा ओखद खरची सारु रुपया चाहिया जिणाने दिया। पछै सर्व महेसरी वगैरै छत्तीस कोम न लुगाया समेत पांच पकवान सू जीमाया। ब्राह्मणा ने जर्णं दीठ एक रुपयो दिपणारो दीयो। सिरपेच मोत्यांरी कंठी कडा मोती दुसाला नगदी हाथी घोडा पालखी नीजर किया रावजी हे। ५१००) लागा त्रगडो सोना रुपैया २ जिणरा १००००) लागा महररा सुनैरी रुपैरी वारुणा रा १५०००) लागा। दूजा फुटकर सरजांभा में लाख एक रुपया लागा। हमै संघ में जापतो हो निणरी विगत। तोपां ४ पलटण रा लोग ४००० असवार १५० नगारा निसण समेत उदैपुररा राणेजीरा असवार ५०० नागारै निसाण समेत कोटेरा महारावजी रा असवार १०० नगारे निसाण समेत जोधपुर रै राजाजी रा असवार ५० नगारै

---

३४६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १६७।

३४७. ओझा बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १६७।

३४८. नाहर, जैन लेख, भा० ३ संख्या, २५३०, पृ० १४३–१५०।

निसाण समेत पाला १०० जैसलमेर रा रावजीरा असवार २०० टूंक रै नवाव रा असवार ४०० फुटकर असवार २०० घरू और अङ्गरेजी जापतो चपरासी तिलंगा सोनेरी रूपैरी धोरेवाला जायगा २ परवाना वोलावा एवं पालख्या ७ हाथी ४ म्याना ५१ रथ १०० गाड़ियाँ ४०० ऊंट १५०० इतातो संघव्यांरा घरू संघ री गाड्या ऊंट प्रमुख न्यारा। सर्व खरचरा तेरे लाख रुपया लागा। उदयपुर कोटा धर्मशाला कराई जैसलमेरू में अमरसागर में वाग करायो लुद्रवैजी में धर्मशाला कराई श्री पूज्यजीरा चौमासा जायगा २ कराया पुस्तकां रा भंडार कराया कोठो में दोय लाख रुपया देने वंदीखानों छुड़ायो वीज पांचम आठम इग्यारस चउदसरा जजमरण किया। रचना रची केसरीचंद।"

जैसलमेर लेख[३४९] (१८४० ई०)

यह लेख जिनमहेन्द्रसूरि के जैसलमेर जाने से और समझाने से दो वास के संघ में दो दल हो गए थे वे पुनः मिल गये। इसमें साधुश्री को वड़ा यश मिला। वे वहां एक मास तक रहे। लेख उस समय की धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था पर प्रकाश डालता है जिसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"संवत् १८९७ वर्षे चै० व० ८ दिने जिनमहेन्द्रसूरि पधारया। तठे श्री संघरै माहोमांही दोनों ही वासरे धड़ा था सु अेकमेक किया वडो जश हुवो मास १ रह्या"

वेणेश्वर का लेख[३५०] (१८६६ ई०)

डूंगरपुर से लगभग ५० मील दूर वेणेश्वर का एक शिव-मन्दिर है, जो महारावल आसकरण के समय का माना जाता है। इस मन्दिर के सम्वन्ध में डूंगरपुर और वांसवाड़ा राज्यों के वीच झगड़ा चला था। अन्त में इस मन्दिर को डूंगरपुर राज्य की सीमा में माना गया। यहां इस आशय का वि० स० १९२२ माघ सुदि (१५ ई० स० १८६६ ता. ३० जनवरी) का एक शिला लेख लगा हुआ है। इस पर मेजर एम. एम. मैकेंजी पोलिटिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट हिली ट्रैक्ट्स के अङ्ग्रेजी में हस्ताक्षर हैं। सीमा निर्धारण के सम्वन्ध में इस लेख का ऐतिहासिक महत्त्व है।

नैनवा (बूंदी) के गढ़ के फाटक का लेख[३५१] (१८७४ ई.)

नैनवा के गढ़ के द्वार पर वि. सं. १९३१ वैशाख शुक्ल तृतीय का एक लेख है। इसका आशय यह है कि गढ़ के भीतर अथवा पास में कोई वृक्ष या मकान अथवा चवूतरी नहीं वनायेगा क्योंकि तोपों को इधर-उधर ले जाने मे असुविधा होती है। तोपों के साथ दोनों ओर दो आदमियों के चलने की सुविधा भी चाही गई है। इसकी सुविधा के लिए आसपास की चवूतरियों को गिराने का भी आदेश इसमें अङ्कित

---

३४९. नाहर, जैन लेख, भा. ३, नं. २५७६, पृ. १८६।

३५०. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. १९।

३५१. वरदा, वर्ष १४, अंक ४, अक्टूबर-दिसम्बर १९७१, पृ. १७, ३०।

है जिससे ४।। गज का रास्ता बन सके। इस लेख से उस समय की नगर योजना का आभास होता है। लेख का अंश इस प्रकार है—

"रंगनाथ जयति।

ई किला का कोट वे भीतर जतरी छेटी में तोप फिर जावे और तोप का दोनों पावां के साथ दोय मनुष्य सुख सू चाल सकै जतरी छेटी कै भीतर हल मकान चोतरा वगरन रहै ही तो गिराया जावे ई छे। टीको प्रमाण ४।। साढा चार गज संगत राकी छै और मरेलां के मरैला कीना लावे और परकोट के भीतर वृक्ष वगर रहै ही नहीं मिति वैशाख शुक्ल ३ तृतीय शनिवार संवत् १९३१ सिरकारी"

डूंगरपुर की उदयवाव का लेख[३५२] (१८८० ई०)

यह लेख डूंगरपुर की उदयवाव नामक वापी के सम्बन्ध का है, जिसका समय वि. सं. १९३६ माघ सुदि ३ (ई० स० १८८० ता १३ फरवरी) शुक्रवार है। इस लेख में महारावल उदयसिंह द्वारा वापी बनाने और उसकी दानशीलता, विद्याप्रेम आदि गुणों का वर्णन है।

डूंगरपुर के राधेविहारी के मन्दिर का लेख[३५३] (१८८० ई०)

यह लेख डूंगरपुर के राधेविहारी के मन्दिर का वि. सं. १९३६ माघ सुदि १० (ई० स० १८८० ता २० फरवरी) का है। इसमें महारावल उदयसिंह द्वारा उक्त मन्दिर के बनाने का उल्लेख है। इस प्रशस्ति में महारावल के स्वर्णतुला, यात्रा, धार्मिकता, सिंहों की शिकार, न्यायपरायणता आदि का भी वर्णन दिया गया है।

(ब) फारसी भाषा के लेख

फारसी भाषा के लेख राजस्थान में प्रचुरमात्रा में मिलते हैं जिन्हें मस्जिदों, दर्गाहों, कब्रों, राजप्रासादों, सरायों, बावलियों, तालाबों के घाटों एवं चबूतरों पर पत्थर में उत्कीर्ण कर लगवाया गया था। इनमें कुछ लेख ऐसे भी हैं जो फारसी एवं स्थानीय भाषा में भी उपलब्ध हैं। इन लेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। सर्वप्रथम इनके द्वारा हम तुर्की एवं मुगली विजयों एवं राजनीतिक प्रभाव क्षेत्रों का समुचित अध्ययन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें दी गई सूचनाएं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर प्रभूत प्रकाश डालती हैं। ये लेख सांभर, नागौर, जालोर, साचोर, जयपुर, अलवर, तिजारा, अजमेर, मेड़ता, टोंक, कोटा आदि क्षेत्रों में अधिक मिलते हैं क्योंकि इन स्थानों पर मुस्लिम सत्ता का प्रभाव

---

३५२. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १८१।

३५३. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १८१।

या शासन रहा । यहां के हाकिमों ने समय-समय पर मस्जिदें, दर्गाह आदि यहां बनवाये और कभी-कभी इनके निर्माण में प्राचीन मन्दिरों की सामग्री का भी उपयोग किया । प्रसंगवश इन लेखों में शासन की इकाईयों—इवता, परगने, शिक, कस्बे आदि की सूचना प्राप्त होती है । इसी प्रकार मुक्ति, आमिल, हवालदार, हाकिम, नाजिम, नायब हाकिम, रसालदार आदि पदाधिकारियों के नाम भी मिलते हैं जो शासन व्यवस्था की जानकारी के लिए उपयोगी हैं । कहीं-कहीं प्रसंगवश मुस्लिम अधिकारियों की नामावली के साथ उनकी प्रारंभिक जाति का भी उल्लेख आता है जिससे प्रमाणित होता है कि वे पहले चौहान, गहलौत आदि वर्ग के थे । संभवत: परिस्थिति-वश उन्हें धर्म परिवर्तन करना पड़ा । कई लेखों से शिल्पियों, लेखकों, विद्वानों, सन्तों आदि के नाम का भी हमें बोध होता है । कहीं-कहीं ऐसे लेख भी यहां पाये जाते है जिससे स्थानीय शासकों एवं सुलतानों तथा मुगल सम्राटों की उदार नीति पर प्रकाश पड़ता है । कई नए एवं पुराने करों की जानकारी भी हमें इन लेखों से प्राप्त होती है । अब हम इन कतिपय लेखों के सारांश को यहां उद्धृत करते हैं जिनके अध्ययन में हमें रिसर्चर अंक १० व ११ से बड़ी सहायता मिली है ।

अजमेर का लेख [1] (१२०० ई०)

यह लेख ढाई दिन के झोंपड़े के दूसरे गुंबज की दीवार के पीछे है । इसमें अबू-बक्र नामी व्यक्ति का जिक्र है जिसके निर्देशन में मस्जिद का काम कराया गया था । लेख से स्पष्ट है कि अजमेर विजय के साथ इमारतों को परिवर्तन का काम आरंभ कर दिया गया था । इसी इमारत में इल्तुतमिश के समय के अल अमीत, अली अहमद आदि व्यक्तियों के नाम अलग-अलग समय के भी हैं जिन्होंने इसके बनाने या जीर्णोद्धार के काम का निर्देशन किया था ।

बड़ी खाटू का लेख [2] (जि० नागौर) (१२०३ ई०)

इसके द्वारा यहां एक इमारत बनने का बोध होता है । यह लेख ठाकुर घोकलसिंह की हवेली में एक मस्जिद के खण्डहर के केन्द्रीय मिहराब पर है । इससे १३वीं सदी के प्रारंभ में इस भाग पर तुर्की प्रभाव पर प्रकाश पड़ता है । यहां मगरिवशाह की दर्गाह (१२३२ ई०), (१२६८ ई०) कसाई मोहल्ला की मस्जिद, कनाती मस्जिद (१३०१) तथा सैद्दीनी की मस्जिद (१३०२–०३ ई०) आदि से भी तुर्की प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है ।

गोकुलचन्द्र जी के मन्दिर का लेख [3] (१२७१ ई०)

यह लेख प्रारंभ में उक्त मंदिर में लगा था जहां से हटाकर इसे सरकारी संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है । इस लेख में एक तरफ संस्कृत में लेख है

---

१. एपिग्राफिया इण्डो मोस्लेमिका, १९११–१२, पृ० १५, ३०, ३३ आदि ।

२. रिसर्चर १९७०–७१, खण्ड १०–११, नं० ८६–९०, पृ० २८–२९ ।

३. एपि० इण्डो मोस्लेमिका, १९३७–३८, पृ० ५–६ ।

ओर दूसरी ओर फारसी में। जब मंदिर तोड़े जाते थे तो उसके कुछ भागों का प्रयोग मस्जिदें आदि बनाने में होता था। इसके फारसी लेख में दर्ज है कि यहां एक खण्डित बावली थी जिसको किसी मुक्ति ने ठीक नहीं करवाया। परन्तु खानेआजम की हाकमी के समय नसरत खां मुक्ति ने इसे ठीक करवाया। इस कार्य को इब्राहीम अबूबक्र के निर्देशन में करवाया गया।

बयाना की काजी मस्जिद का लेख[४] (१३०५ ई०)

इस लेख में मस्जिद के पुनः बनाने और दुरुस्त करने का श्रेय अब्दुल मलिक को दिया गया है जिसका पिता अबूबक्र अलबुखारी था, जो इस जिले का हाकिम था।

ईदगाह (जालौर) का लेख[५] (१३१८ ई०)

इस लेख से जो उत्तरी मिहराब पर अंकित है यह जाहिर होता है कि ईदगाह को गुर्ग के वंशज होशंग ने बनवाया था। इसको नसरत के निरीक्षण में बनवाया गया था जो रुस्तम का पुत्र था। इसको अस-शामसी ने लिखा था।

लेख जालियाबास की मस्जिद का[६] (जि० नागौर), (१३२० ई०)

केन्द्रीय महराब के लेख में अंकित है कि यहां की मस्जिद को ऊमर के पुत्र मुजफ्फर ने बनवाई जबकि ताजउद्दीन दौलत दारूल-खैर (अजमेर) के अन्तर्गत मुक्ति था। इससे तुर्की प्रभाव क्षेत्र का अच्छा अनुमान होता है।

चितौड़ का सुलतान गयासुद्दीन का लेख[७] (१३२१-१३२५ ई०)

यह फारसी लेख चित्तौड़ में है जिसका समय १३२१ से १३२५ ई० के लगभग किसी वर्ष का होना चाहिए। इसमें तीन पंक्तियां हैं और इनमें तीन शेर खुदे थे। लेख का दाहिनी ओर का चौथा हिस्सा टूट गया जिससे प्रत्येक शेर का प्रथम चरण जाता रहा है। जो भी अंश बचा है उसका आशय यह है—

"तुगलकशाह बादशाह सुलैमान के समान मुल्क का स्वामी ताज और तख्त का मालिक, दुनिया के प्रकाशित करने वाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान, बादशाहों में सबसे बड़ा और अपने वक्त का एक ही है········बादशाह का फरमान उसकी राय से सुशोभित रहे। असदुद्दीन अर्सलां दाताओं का दाता तथा देश की रक्षा करने वाला है और उससे न्याय तथा इन्साफ की नींव दृढ़ है····ता० ३ जमादि उल् अव्वल। परमेश्वर इस शुभ कार्य को स्वीकार करे और इस एक नेक काम के बदले में उसे हजार गुना देवे।"

इस लेख को डा० ओझा ने चित्तौड़ से लाकर विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित

---

४. एपिग्राफिया इण्डो मोस्लेमिका, १९१७-१८, पृ० २०।

५. एन्यु० रि० इण्डि० एपि०, १९६६-६७, नं० डी, १९४।

६. एन्यु० रि० इण्डि० एपि०, १९६९-७०, नं० डी, १५७।

७. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १९७।

किया था। यहां से अब यह राजकीय संग्रहालय की नई इमारत, उदयपुर में सुरक्षित किया गया है।

घाईबी पीर की दर्गाह का लेख[8] (१३२५ ई०)

चित्तौड़ में इसमें सुल्तान सराय के बनाये जाने का उल्लेख है जिसे मलिक ग्रासुद्दीन ने बनवाया था, जो वहाँ का गवर्नर था। इसमें चित्तौड़ को खिज्रबाद अंकित किया गया है। इस लेख से मुहम्मद बिन तुगलक के प्रभाव क्षेत्र का अनुमान होता है।

हिन्डौन की एक कब्र एवं दर्गाह का लेख[9] (हिण्डौन जि० सवाई माधोपुर), (१३२९)

यह लेख २३ दिसम्बर, १३२९ ई० का मुहम्मद बिन तुगलक शाह के समय का है जिसमें अंकित है कि मन्डू अफगान की पुत्री समरू ने अपने पति गाजी तमन मुहम्मद अफगान बागी की यादगार में कब्र एवं दर्गाह का निर्माण कराया। इस लेख से तुगलकों के राजस्थान में विकास का अनुमान लगाया जा सकता है।

महमूद कत्ताल शहीद की दर्गाह का लेख[10] (नागौर), (१३३३ ई०)

यह दर्गाह एक पहाड़ी पर है जो मुहम्मद तुगलक शाह के समय की है। इसमें अन्य अधिकारियों के नाम हैं, जैसे मलिकउल-उमरा मुक्ति था, अजमेर का सैफूदौलत अखूरबेग-ए-मेसेरा था एवं सीराज मुहर्रिर था।

नागौर किला का लेख[11] तुगलक कालीन

इसमें समय का अंकन जाता रहा है, परन्तु इससे बोध होता है कि यहां एक फीरोज सागर का निर्माण मलिक-उल-उमरा-फीरोज के गवर्नरी काल में हुआ था। मलिक पाएगा-ए-खासा-ए कादिम का प्रमुख अधिकारी था और मुक्ति का पुत्र था। इसमें खलफुल-मुल्क ताज-उद-दौलत के नाम भी अंकित हैं।

सांभर ग्रामेर की बावली का लेख[12] (१३६३ ई०)

यह लेख पुरातत्त्व विभाग, ग्रामेर के संग्रहालय में सुरक्षित है जो प्रारम्भ में सांभर के बाहर एक बावली पर लगा हुआ था। इसमें दो भाषाओं का प्रयोग किया गया है—एक स्थानीय और दूसरी फ़ारसी। इसमें वर्णित है कि कमालुद्दीन अहमद खुर्रम की गवर्नरी में वामदेव, पुत्र नाथु, पुत्र गंगादेव के प्रयत्न से उक्त बावड़ी का

---

८. एपिग्राफिया इण्डिका अरेबिक और पर्शियन (सप्लिमेन्ट), १९५५–५६ पृष्ठ ७०।

९. एन्यु० रि० इण्डि० एपि०, १९५५–५६, नं० डी. १६३

१०. एन्यु० रि० इण्डि० एन्टि०, १९६२, नं० डी १९८

११. एन्यु० रि० इण्डि० एन्टि०, १९६२–६३, नं० डी, १९४

१२० ए० इ० १९५५–५६, पृ० ५७–५८।

निर्माण करवाया गया। इस बावड़ी की व्यवस्था के लिए सांभर में पैदा होने वाले कुछ नमक का अनुदान अंकित है। यह लेख फीरोजशाह के समय का है जिससे उस समय तुगलक अधिकार-क्षेत्र का पता चलता है। इसी प्रकार निर्माता के लिए मुतीउल-इस्लाम' का प्रयोग करना शासन व्यवस्था की स्थिति पर प्रकाश डालता है। इसमें दो भाषाओं का प्रयोग करना भी तुगलकों की विस्तार नीति व शासन नीति का द्योतक है।

लाडनू के उमराव शाह घासी की दर्गाह का लेख[13] (१३७१ ई०)

इसमें वर्णित है कि नष्टप्राय जामी मस्जिद को पुनः निर्मित किया गया जबकि मलिक मुलुकी की हाकमी तथा मलिकू शाह की नायब-हाकमी तथा मुहम्मद की सिपहसालारी थी।

कुतबुद्दीन नाजिम की कब्र का लेख[14] (नागौर), (१३८९ ई०)

यह लेख मलिक कुतबुद्दीन नाजिम की कब्र का है जो नागौर और जालौर शिक का नायब था। उसके लिए इसमें उल्लिखित है कि वह मध्याह्न की नमाज़ के बाद मुस्लिम फौज में लड़ते हुए शहीदी को प्राप्त हुआ। इसका समय १९ जनवरी, १३८९ का है।

विजयमनदुर्ग का लेख[15](१४०० ई०)

ये लेख उक्त दुर्ग की फाटक चोर दरवाजे पर लगा हुआ है जो तीन प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। इसमें तैमूर के आक्रमण से होने वाली अव्यवस्था का वर्णन है जिसमें लोग घरबारों को छोड़ इस दुर्ग में शरण के लिए आये। इसके अनन्तर इकबालखाँ ने पुनः शान्ति स्थापित की और मस्जिद आदि का पुनः निर्माण करवाया। ये लेख तुगलकवंशीय महमूदशाह के काल का है।

तलेटी मस्जिद बयाना का लेख[16](१४२० ई०)

इस मस्जिद का निर्माण मलिक मौज्जम द्वारा करवाया गया था। उसके निर्माण में व्यय निजी धन से दिया गया था। ये औढखाँ नामी स्थानीय शासक के काल का था जो बयाना के औढी वंश का था।

गौरीशंकर ताल नरायना का लेख[17](जि. जयपुर), (१४३७ ई०)

यह लेख प्रमुख तालाब के घाट की दीवार का है जिसका समय ३० जून १४३७ ई० है। इसमें वर्णित है कि वाजिहुलमुल्य के पुत्र शम्सखां और उसके पुत्र

---

१३. एन्यु० रि० इण्डि० एपिग्रा०, १९६८-६९, नं० डी।

१४. एन्यु० रि० इण्डि० एन्टि०, १९६९-७०, नं० डी १६७।

१५. एन्यु० रि० इण्डि० एन्टि०, १९६३-६४, नं० डी ३०९।

१६. आ० सर्वे० आफ इण्डि० रिपोर्ट, खण्ड २०, पृ० ८३।

१७. एपि० इण्डो० मोस्ले०, १९२३-२४, पृ० १५।

मुजहिदखां ने डीडवाना, सांभर और नरायना को विजित किया और वहाँ किलों तथा मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने शाही युद्धस्थल के स्थान पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों की अभ्यर्थना पर एक तालाब बनवाया। यह लेख इस क्षेत्र की विजय और तदुपरान्त वहाँ की शासकीय व्यवस्था प्रणाली पर प्रकाश डालता है। इस तालाब का नाम मुस्तफासर रखा गया।

बहरोर का लेख[१८] (जि० अलवर) (१४३६ ई०)

इसमें वर्णित है कि यहाँ एक बावली, अबुल लेथनस द्वारा जो मुगिथ-अल-लाहोरी का पुत्र था, बनवाई गई थी। इस कार्य को मुबारकखां के समय में सम्पादित करवाया गया था। अल-लाहोरी हजरत मखदूम शेख फदुल्लाखां बुखारी का सेवक था। इस लेख से १५वीं शताब्दी में (१४३६-४२ ई० नवम्बर, दिसम्बर में) तुर्की सत्ता का प्रभाव इस क्षेत्र में प्रकट होता है।

विजयमन्दिर गढ़ की मीनार का लेख[१९] (१४५६-५७ ई०)

यह लेख प्रारम्भ में द्वार पर लगा हुआ था जो मीनार के पास पड़ा हुआ प्राप्त हुआ। इसमें वर्णित है कि मुहम्मदखाँ के पुत्र मसनद-ए-अली-आजम हुमायूं दाऊदखां द्वारा उक्त मीनार का निर्माण कराया गया था।

किला लाडनू का लेख[२०] (१४८२ ई०)

इसमें किले तथा कस्बे की फाटक के निर्माण का वर्णन है और इसमें फौजदार तथा हाकिम के नाम भी अंकित हैं।

खानजादों की मस्जिद का लेख[२१] (नागौर किला) (१४८२ ई०)

यह लेख मजस्दि के केन्द्रीय मिहराब पर है। इसमें स्थानीय मुक्ति मलिक उल-उमरा तथा ताजउद्दीन आदि के नाम अंकित हैं और फीरोजखां का पूरा वंशक्रम दिया है।

नौगाँवा, अलवर का लेख[२२] (१४८३ ई०)

यह लेख अलवर संग्रहालय में सुरक्षित है जिसको नौगांवा के एक मेयो के घर से प्राप्त किया गया। यह लेख खण्डित है। इसमें वर्णित है कि नौगांवा के कस्बे का किला एवं द्वार का—जो जर्जरित अवस्था में थे—पुनर्निर्माण मसनद-ए-अली अलावल खां के अधिकार के समय एक जलाल के द्वारा, जो जकारिया का पुत्र था, करवाया गया।

---

१८. एन्यु. रि. इण्डि. एपिग्राफी, १९६५-६६ नं० डी, ३०९।
१९. एन्यु. रि. इण्डि. एपि. १९५५-५६, डी, १२२।
२०. एन्यु. रि. इण्डि. एपिग्रा. १९६९-७०, नं० डी, १६०।
२१. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टि., १९६२-६३, नं० डी, १९५।
२२. ए. इ. १९५५-५६ पृ० ५३।

जामी मस्जिद का लेख सांचोर[२३] (१५०६ ई०)

इस लेख में हवलुलमुल्क के पुत्र बुद्ध को उक्त मस्जिद बनाने के आदेश की सूचना है। यह व्यक्ति जालोर के शिक का तथा महमूदाबाद (सांचोर) का मुक्ति था। इस लेख का समय २४ मई, १५०६ है, जबकि मुहम्मदशाह प्रथम यहां का शासक था।

विजय मन्दिर की उत्तरी फाटक का लेख[२४] (बाबरकालीन)

ये लेख खण्डित अवस्था में है। इसमें वर्णित है कि जब लोहे की फाटक को उड़ाने के कार्य में यहां सुरंग लगाई गई तब एक अरब युवक की, जो नफ्दार था, मृत्यु हो गई। इससे बाबर के तोपखाने के व्यवस्थित प्रयोग पर प्रकाश पड़ता है।

नागौर का लेख[२५] (१५५२ ई०)

यह शिलालेख नागौर से लाकर जोधपुर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। लेख द्विभाषी है। इसमें वर्णित है कि भट्टारक कीर्तिचन्द्र की 'पोशाल' (पाठशाला) जो पहले बन्द कर दी गई थी उसे पुनः आरम्भ किया गया। इसमें शेख सुलेमान ने मध्यस्थता की और उसे आरम्भ करने की आज्ञा युसुफ अली ने प्रदान की। इस लेख से मुग़ल सम्राट के शासन की उदारता प्रकट होती है।

शाहीजामी मस्जिद का लेख[२६] (नागौर किला) (१५६१ ई०)

इस मस्जिद के केन्द्रीय मेहराब में अकबरकालीन लेख है जिसमें वर्णित है कि उक्त मस्जिद का जीर्णोद्धार इस्लामबेग के द्वारा करवाया गया था। ये काम रोडजी नामक शिल्पी को सुपुर्द किया गया। इससे स्पष्ट है कि स्थानीय शिल्पियों का उपयोग हर प्रकार के भवनों को बनाने में किया जाता था।

गीसूखाँ की मस्जिद का लेख[२७] (१५६८-६९ ई०)

यह लेख केन्द्रीय मेहराब में लगा हुआ है जो अजमेर में है। इसमें गेसूखाँ, पुत्र इमराम द्वारा जलाशय (सक्का) बनाने का उल्लेख है। इस लेख को दरवेश मुहम्मद-अल-हाजी ने लिखा था।

आंबेर का लेख[२८] (जि० जयपुर) (१५६९-७०ई०)

यह लेख आंबेर की जामे मस्जिद की उत्तरी दीवार की एक तांग में लगा

---

२३. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टि., १९६६-६७, नं० डी, १९७।

२४. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९५५-५६, नं० डी, १२५।

२५. एन्यु. रि. इण्डि., १९५२-५३, नं० सी, १०७।

२६. एन्यु. रि इण्डि. एन्टि, १९६२-६३, नं० डी, १९६.

२७. एपिग्राफिया इण्डिका, १९५७, ५८, पृ० ४५।

२८. ए. इ. अरेबिक और फारसी का सहायक अंक १९५५-५६ नं० डी, ३६।

हुआ है। इसकी अवस्था टूटी-फूटी और खण्ड रूप में है। इसमें वर्णित है कि उक्त मस्जिद को आमेर में एक हाजी तवाचीवाशी ने बनवाया था। इससे प्रमाणित होता है कि अकबर काल में मुग़ली अफसर यहाँ रहता था या उसे आंबेर में मस्जिद बनाने का आदेश दिया गया था। इस लेख से आंबेर राज्य के एवं मुग़ल राज्य के सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

तारागढ़ का सैय्यद हुसेनखां की दर्गाह् का लेख[२६] (१५७० ई०)

इस लेख में इस्माइल कुलीखाँ द्वारा वृहद् द्वार बनाने का उल्लेख है। इसका लेखक भी दरवेश मुहम्मद-अल-हाजी था।

गंज-ए शहीदान तारागढ़ का लेख[३०] (१५७१ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि शाह कुलीखाँ ने गंज-ए शहीदान के दर्शन किये और उसे पुनर्निमित करवाया। इस लेख को मुहम्मद वाकी ने लिखा।

हज़रत हमीउद्दीन की दर्गाह्[३१] (गागरौन) (१५८०-१५८३ ई०)

ये लेख द्विभाषी है, जिसमें मियाईशा द्वारा पुत्र अलावलखाँ, जो थानेश्वर का निवासी था, यहां दर्वाजा बनाने का उल्लेख है। यह निर्माण कार्य सुलतान राठौड़ के अमल (गर्वनर) काल में सम्पादित हुआ था। सुलतान राठौड़ राय कल्याणमल, बीकानेर का पुत्र था।

नौगाँवा के वाव (अलवर) का लेख[३२] (१५८१ ई०)

इस लेख को नौगाँवा के एक वाव से प्राप्त कर राजकीय संग्रहालय अलवर में सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें वर्णित है कि नौगाँवा कस्बे में एक वावली शाह-बाजखां एवं सरदारखाँ करोड़ी के द्वारा बनवाई गई थी। ये व्यक्ति नाथू धूसर के पुत्र थे। इससे प्रमाणित होता है कि इस प्रान्त में करोड़ी की इकाई का आरम्भ हो गया था एवं इन दोनों अधिकारियों ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था, क्योंकि इनका पिता नाथू धूसर बनिया था।

फकीरों के तकिया (जयसलमेर) का लेख[३३] (१५९९ ई०)

यह लेख इस आशय का है कि जब सम्राट् अकबर ने मीर सफाई तिरमिज़ी के पुत्र मीर मुहम्मद मासूम नामी बक्कारी को कंधार की तैनाती से बुलाया तो उसने यहाँ मुकाम करने के दौरान में उक्त तकिये का निर्माण करवाया। इस लेख को मीर बुजुर्ग के पुत्र नामी ने उत्कीर्ण किया। इससे जयसलमेर में सम्राट् की प्रभुता पर

---

२९. ए. आ. इ., १९५७-५८, पृ० ४६-४७।

३०. एन्युल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी, १९५३-५४, नं० सी. २१।

३१. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., नं. डी, ३२८।

३२. ए. इ., १९५५-१९५६, पृ० ५४-५५।

३३. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६१-६२, नं० डी, २३१।

प्रकाश पड़ता है।

दर्गाह मगरिबशाह का लेख [३४] (१६००–०५) (नागौर)

एक लेख उत्तरी दीवार पर १६०० का है और उस पर अंकित है कि मीर बुजुर्ग अपने पिता नवाब अमीर मुहम्मद मासूम के साथ इसको देखने के लिए आया। इसी तरह मुख्य द्वार पर दूसरा लेख १६०१–०२ का अंकित है जिसमें लिखा है कि सम्राट अकबर ने भक्कर के मुहम्मद मासूम को ईरान एलची बनकर जाने की आज्ञा दी। दीवार के उत्तरी छोर में उसी मीर बुजुर्ग का पुन: दर्गाह आने का हवाला है जब मुहम्मद मासूम ईरान से लौट आया था।

सूफी साहिब की दर्गाह का लेख [३५] (नगौर) (१६०१)

इसमें लेख है कि लेखक मीरबुर्ज नागौर में नवाब अमीर मुहम्मद मासूम के साथ ईरान से लौटकर आया और अपनी पुस्तक से यहां कुछ पद्य लिखे। इसमें पांच पुस्तकों के नाम भी दिये गये हैं—मादानू अफकार, हुस्नीनाज, राय सूरत, अकबरनामा और खम्साए मुध्यारा।

फकीरों के तकिये का लेख[३६] (जयसलमेर), (१६०१-०३ ई०) व (१६०५-०६ ई०)

इसमें वर्णित है कि सम्राट् अकबर ने मीर मुहम्मद मासूम बक्कारी को ईराक का एलची नियुक्त किया। वह बक्कर के लिए जयलमेर से गुजरा। नामी ने इसे लिखा।

इसी में दूसरा लेख इस आशय का है कि मीरबुजुर्ग का पिता नवाब अमीर मुहम्मद मासूम का रावल जीऊ (जयसलमेर के रावल) से घनिष्ट सम्बन्ध था। वह उसके आग्रह से यहां दस दिन रुका। इस लेख से भी मुगल सत्ता का जयसल पर प्रभाव प्रगट होता है।

यहीं पर एक लेख १६०५–०६ का है जिसमें उसी नवाब सैय्यद अमीर का नाम है और अंकित है कि यह इमारात जयसलमेर में आम रैयत की आसाइश के लिए बनवाई गई थी।

तिजारे का लेख [३७] (१६०४–०५ ई.)

यह लेख प्रारंभ में तिजारे में था। यहां से उसे लाकर राजकीय संग्रहालय में रख लिया गया है। इसमें वर्णित है कि एक इस्कन्धार इसावी ने यहां एक हम्माम का निर्माण करवाया और इस लेख की रचना धुबारी के द्वारा की गई। प्रस्तुत लेख से राजस्थान के स्थापत्य के विकास पर प्रकाश पड़ता है।

---

३४. रिसर्चर, १९७०–७१, खण्ड, १०–११, नं० ११०–११२, पृ० ३५-३६

३५. एपिग्राफिया इण्डो–मोस्लेमिका, १९४४–५०, पृ० ४२।

३६. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६१–६२, नं० डी, २२७।

३७. ए इ. अरेबिक एवं फारसी सहायक अंक, १९५५, पृ० ५५।

पर्वतसर (जि. नागौर) का लेख,[३८] (१६०४–०५ ई०)

प्रस्तुत लेख में मुहम्मद मासूम का ईराक से राजदूत के काम से निपटकर पर्वतसर पहूँचने की सूचना है। इससे प्रतीत होता है कि यह स्थान पश्चिमोत्तर भाग में जाने के मार्ग में था। इसमें यह भी दर्ज है कि इसमें उत्कीर्ण पद्य स्वयं मु० मासूम द्वारा बनाये गये थे। इससे स्पष्ट है कि अकबर के काल में ऐसे उत्तरदायी कार्यों के लिए आलिम व्यक्तियों का चयन किया जाता था।

अजबगढ़ का लेख,[३९] (१६०५)

यह लेख सोमसागर के पास एक दिवाल में अजबगढ़ जिला अलवर में है। यह दो भाषा में लिखा गया है जिसका आशय यह है कि यहां कोई मछली आदि को न पकड़े। यह आदेश अकबरकालीन शासन के समय में माधोसिंह के द्वारा दिया गया था। दो भाषाओं में शिलालेख लिखवाना मुग़ल प्रभाव का द्योतक है।

बरंवद (बयाना के निकट, जि. भरतपुर) का लेख[४०] (१६१३–१४ ई०)

यह बरंवद गाँव की एक दिवाल पर है जिसमें वर्णित है कि अकबर की पत्नी मरयुम जमानी की आज्ञा से यहां एक बाग एवं बावली का निर्माण करवाया गया। इसका निर्माण काल जहाँगीर के राज्यकाल का है। इससे स्पष्ट है कि उक्त राजपूत महिला ने अपनी भारतीय पद्धति से बावली एवं उपवन के निर्माण में रुचि ली।

मुहर्रम पोल (जालोर) का लेख,[४१] (१६०८ ई०)

इस पर अंकित है कि इस इमारत को कस्बा जालोर में नवाब गजनवी के आधिपत्य के काल में बनवाया गया था और इसका निरीक्षण सैय्यद मुहम्मद ने किया था।

चश्मा हाफिज जमान, अजमेर का लेख,[४२] (१६१५ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि जहांगीर यहां वसंत ऋतु में आया और प्रस्तुत चश्मे को चश्मे-नूर का नाम दिया तथा उसके किनारे एक महल बनाने का आदेश दिया। इस लेख को अब्दुल्ला ने लिखा था।

पुष्कर के जहाँगीरी महल का लेख,[४३] (१६१५ ई०)

प्रस्तुत लेख में राणा अमरसिंह के राज्य पर की गई विजय का उल्लेख है और सम्राट जहाँगीर द्वारा पुष्कर में राजप्रासाद बनाये जाने के आदेश हैं। ये प्रासाद अनीराय सिंघदलन के निरीक्षण में बनाये गये।

---

३८. एन्यु. रि. एन्टि., इण्डि. १९६६–६७, नं० डी० २३४।

३९. एन्यु. रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी, नं० डी, ३१३।

४०. प्रोसि. ऑफ एशि०-सोसा० बंगाल, १८७३, पृ० १५९।

४१. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६६–६७, नं० डी, १८४।

४२ एपिग्राफिया इण्डिका, १९५७–५८, पृ० ५६।

४३ एपि. इण्डो मोस्लेम०, १९२३–२४, पृ० २२

तारागढ़ की सैय्यद हुसैन की दर्गाह का लेख,[४४] (१६१५ ई०)

यह लेख दक्षिणी कटहरे पर अंकित है जिसमें वर्णित है कि इतबारखां ने उक्त दर्गाह के लिए कटहरा तैयार करवाया जबकि सम्राट् जहांगीर सुवर्ण सिंहासन पर (अजमेर मुकाम) बैठा था और उसे राणा (महाराणा अमरसिंह) पर विजय प्राप्त करने की प्रसन्नता थी।

ह० मुइन्नुद्दीन चिश्ती की दर्गाह का लेख,[४५] (१६२८ ई०)

यह लेख चिल्ला-ए-चिश्त के प्रवेश में अंकित है जिसको तालिबि ने बनाया था। इसमें वर्णित है कि जब महाबतखां को (खानेखानन) अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया था तब शिकदर दौलतखां ने अमीन की हैसियत से, उसके उपलक्ष्य में, चिल्ला-ए-चिश्त का निर्माण करवाया।

नागौर का लेख,[४६] (१६३० ई०)

यह लेख भी नागौर से लाकर सरदार संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें ताजेब द्वारा एक मस्जिद बनाने का उल्लेख है। इसके निर्माण काल में वहां का अधिकारी सिपहसालार खान-ए-खानन महाबतखां था।

शाहजहानी-मसजिद, अजमेर का लेख,[४७] (१६३७ ई०)

इस लेख में अंकित है कि जब खुर्रम राणा पर विजय प्राप्त कर यहां आया तो उसने अजमेर में एक मस्जिद बनाने की बाधा ली थी। बादशाह बनने पर उसने इसको पूरा किया। इसमें मसजिद की सुन्दरता का अच्छा वर्णन है।

समनशाह की दर्गाह (नागौर) का लेख[४८] (१६०४, १६३६ ई०)

इस दर्गाह पर दो प्रमुख लेख हैं जिनमें एक में फारसी में पद्य अंकित हैं। इसकी रचना अमीर मुहम्मद मासूम नामी ने की थी। इसके द्वारा यह अभ्यर्थना की गई थी कि मृत आत्मा के लिए प्रार्थना की जाय। दूसरे लेख में वर्णित है कि यहां एक मस्जिद नाहिरशाह की आज्ञा से बनी जो मीयाँशाह संगतराश का पुत्र था।

कनाती मस्जिद (नागौर) का लेख[४९] (१६४१ ई०)

इसमें जमालशाह द्वारा मस्जिद के निर्माण का उल्लेख है। जमालशाह जुमीशाह का प्रपौत्र था और जुमीशाह चौहान वंशीय था। इसका लेखक कादिर अब्दुर्रहीम था। इससे चौहानों से मुस्लिम बनाने की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

---

४४. ए. इ., १९५७-५८, पृ० ५४।

४५. ए. इ., १९५७-५८, पृ० ६१।

४६. रिसर्चर।

४७. ए. इ, १९५७-५८, पृ० ६३-६४।

४८. एन्यु. रिपो. इण्डि. एन्टि, १९६६-६७, नं० डी, १९९, २०१।

४९. एन्यु. रि. इ. एन्टि., १९६६-६७, नं० डी, २०४।

इसी में एक दूसरे लेख में जुमीशाह को भी चौहान कहा गया है।

एक मिनार मस्जिद जोधपुर का लेख,[५०] (१६४६–५० ई०)

यह लेख टूटी अवस्था में है जिसमें वर्णित है कि निर्माणकर्ता ने मस्जिद की व्यवस्था के लिए ६ दुकानों का अनुदान किया।

मकराना की बावली का लेख[५१] (१६५१ ई०)

इसमें उल्लिखित है कि मुर्जाअली बेग ने यह सूचना इस लेख के द्वारा दी कि ऊंची कौम के लोगों के साथ निम्न वर्ग के लोग कुएं से पानी न खींचे। इसके विरुद्ध काम करने वाले को दण्ड देने का भी भय अंकित किया गया था।

दर्गाह बाजार की मस्जिद, अजमेर का लेख [५२] (१६५२ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि मियाँ तानसेन कलावन्त की पुत्री बाई तिलोकदी ने इस मस्जिद का निर्माण १६५२ में करवाया। इसमें निर्माणकर्ता का नाम बाई के नाम से सम्बोधित है।

शाहजहानी दर्वाजा, दर्गाह अजमेर का लेख [५३] (१६५४ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि इस समय तक अर्थात् १६५४ ई० तक शाहजहां ने मूर्तिपूजा के अंधकार को समाप्त कर दिया। इससे शाहजहां की कट्टर नीति प्रमाणित होती है।

ईदगाह का लेख, मेड़ता का लेख [५४] (१६५५ ई०)

यह लेख केन्द्रीय मिहराब पर है और खण्डित दशा में है। इसमें वर्णित है कि फराश्त खाँ एवं मिस्त्री ने ईदगाह को बनवाया जिसमें जसवन्तसिंह महाराज की अनुकम्पा का योगदान रहा। फराश्तखाँ ने इसके मूल को लिखा। लेख के किनारे सैय्यद मुहम्मद सत्तार, पुत्र पीर मुहम्मद खजानची, मारवाड़ के राठौड़ों के दरोगा का भी नाम अंकित है। प्रस्तुत लेख से महाराजा जसवन्तसिंह की उदार नीति का बोध होता है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि मारवाड़ में शासन कार्य के लिए मुस्लिम अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

अमरपुर (जि० नागौर का लेख) [५५] (१६५५ ई०)

यह लेख एक मस्जिद की मिहराब पर उत्कीर्ण है। इसमें वर्णित है कि दीनजावास के मउडा गाँव में मुहम्मद के द्वारा एक मस्जिद बनवाई गई। यह मुहम्मद उथमान चौहान का लड़का था। राजस्थान में चौहानों के धर्म परिवर्तन

---

५०. एन्यु. रि. इण्डि. एपिग्रा., १९५५–५६, नं० डी १५३।

५१. एन्यु. रि. इण्डि. एपिग्रा., १९६२–६३, नं० डी २३९।

५२. ए. इ. १९५७–५८, पृ. ६९।

५३. ए. इ. १९५७–५८, पृ. ६८।

५४. एन्यु. रि. एन्टि. १९६४–६५, नं० सी० ३३५।

५५. एन्यु रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी, १९६१–६२, डी २४०

होने के अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिनमें यह भी एक है। इसके अतिरिक्त नागौर और आसपास के गाँवों में सत्रहवीं शताब्दी तक (शाहजहां के समय में) इस्लाम का प्रभाव बढ़ चुका था इसकी पुष्टि इस लेख से होती है।

गादीतान की मस्जिद का लेख[५६] (मेड़ता) (१६५६ ई०)

इसमें अलावल के पुत्र फीरोजशाह के द्वारा मस्जिद बनाने का उल्लेख है। अलावल के नाम को उर्फ राठौड़ भी अंकित किया गया है जिससे प्रमाणित होता है कि अलावल राठौड़ था जिसका धर्म परिवर्तन हो गया। इस लेख को काजी मुहम्मद ने लिखा था।

जामी मस्जिद, मेड़ता का लेख[५७] (शाहजहाँ कालीन)

यह लेख मस्जिद के मिहराब पर है और खण्डित हालत में है। इसमें वर्णित है कि राजा सूरजसिंह की मृत्यु पर मेड़ता परगना शाही जागीर के अधीन हो गया और उसे अबू मुहम्मद के अधिकार में दे दिया गया। इसने उक्त मस्जिद को बनवाया। इस समय इसके साथ शेख ताज मजधूब था।

कचहरी मस्जिद का लेख[५८] (हिन्डोन) (१६५६-६० ई०)

इसमें उल्लिखित है कि आका कमाल ने शाहजफर की दर्गाह में एक मस्जिद बनवाई। शाहजफर मक्का से यहां तशरीफ लाए थे और उनको यहीं दीक्षा प्राप्त हुई थी। इस लेख से प्रमाणित है कि जहाँ-जहाँ मुस्लिम सत्ता की स्थापना होती थी वहाँ इस्लाम के बन्दे भी प्रचारार्थ पहुँच जाते थे।

बाराखंभा का लेख[५९] (हिण्डोन) (१६६३ ई०)

यहां कब्र के कटहरे पर दर्ज है कि १०७३ हि० रजब को यहां आका कमाल नामी सन्त का देहावसान हुआ। यह शाहजफर के शिष्य परम्परा में थे।

जामी मस्जिद, मेड़ता का लेख[६०] (१६६५ ई०)

इस मस्जिद को हाजी मुहम्मद सुलतान, पुत्र पायन्दा मुहम्मद बुखारी ने बनवाई। बुखारी जोधपुर सरकार का मुतावल्ली तथा मुहत्सिब था। इसमें खोजा शाह अली और उस्ताद नूर मुहम्मद शिल्पी का नाम भी दर्ज है। इस लेख को मुहम्मद-दीया ने लिखा था।

---

५६. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टि. १९६४-६५, नं० डी० ३३८

५७. इन्यु. रि. इण्डि. एन्टि. १९६२-६३, नं० डी० २१०।

५८. एन्यु. रि. इण्डि. एपि. १९५५-५६, नं. डी. १५८।

५९. एन्यु. रि. इण्डि. एपि. १९५५-५६, नं० डी. १५७; सफरनामा, पृ० २१०।

६०. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टी, १९६२-६३, नं. डी. २११

गाजी मस्जिद का लेख[६१] (१६६५ ई०)

यह मस्जिद जीनानी तालाव पर है जिसकी छत पर यह लेख है। यह लेख द्विभाषी है। इसमें एक दरवाजे के वनाने का उल्लेख है जो दर्वाजा-ए-इस्लाम के नाम से ज्ञात है। इसको राजा रायसिंह, जो अमरसिंह का लड़का था, के समय में वनवाया गया। इसको वनवाने में कोटवाल डूंगरसिंह का, जो गहलोत राजपूत था, हाथ था। इस लेख को काजी दोस्त ने लिखा था।

लोहारों की मस्जिद का लेख[६२] (डीडवाना) (१६६५-६६ ई०)

यह एक लोहारों की मस्जिद का लेख है जो नूरा, ईदू एवं फीरोज लुहारों द्वारा वनाई गई थी। उस समय का गवर्नर मिर्जा मुहम्मद आरिफ था और यह लेख हाफिज अब्दुल्ला अन्सारी नागौरी द्वारा लिखा गया था।

वकालिया का लेख[६३] (जि० नागौर, सन् १६७०)

यह वकालिया के केन्द्रीय महाराव पर है और खण्डित अवस्था में है। इसमें वर्णित है कि यहाँ एक मस्जिद, एक वावली और एक ताल हमीद की पुत्री किलोल वाई ने वनवाई थी। यह हम्मीद संगीतज्ञ गोपाल का लड़का था। इसमें निर्माता को दरवारी सेवक अंकित किया गया है। इस लेख का महत्त्व इस अर्थ में है कि नागौर जिले में औरंगजेव का प्रभाव था एवं उस काल में धर्म परिवर्तन एक साधारण घटना वन गयी थी।

निर्मलवालकृष्ण का मकान नागौर से प्राप्त लेख[६४] (१६७० ई०)

इस लेख में दर्ज है कि डूंगरसिंह गहलोत ने रायसिंह के शासनकाल में हवेली के साथ एक दरवाजा का निर्माण करवाया। डूंगरसिंह नारायणदास का पुत्र था। इस लेख को शेखजा ने लिखा।

आंवेर का लेख[६५] (१६७२ ई०)

यह लेख आमेर से उपलब्ध हुआ जिसे वहां के संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें वर्णित है कि ख्वाजा सरा मुहम्मद दानिश ने महाराजा रामसिंह के समय में मुहम्मद ताज के निरीक्षण में एक वावली का निर्माण कराया। इस लेख की रचना मुहम्मद जमाल ने की और इसे मुहम्मद शरीफ ने लिखा। इस लेख से प्रमाणित है कि २५ जुलाई सन् १६७२ में औरंगजेव का प्रभाव इस क्षेत्र में था।

---

६१. एपि. इण्डो. मोस., १६४६-५०, पृ० ४७।

६२. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १६६६-७०, नं. डी. १५२।

६३. एन्यु. रि. इन्डि. एपि, १६६८-६६ डी, ४१०

६४. एन्यु. रि. इण्डि एन्टि, १६६१-६२, नं. डी. २५०।

६५. ए. इ. अरेविक एवं फारसी का सहायक अंक १६६ एवं ५६, पृ० ५६।

शेखों की मस्जिद का लेख[६६] (डीडवाना) (१६७५ ई०)

यह मस्जिद फीरोज, जहान नामी स्त्री एवं मिय्यांशा की निगरानी व मालिकाना अधिकार में बनवाई गई थी। ये व्यक्ति तेली वर्ग के थे।

जुन्जाला के तालाब के स्तम्भ का लेख[६७] (१६७९ ई०)

यह लेख हि० सं० १०८९ हिज अव्वल का तदनुसार ४ जनवरी, १६७९ ई० का है। इसके द्वारा यह सूचना दी जाती है कि रायसिंह के लड़के राव इन्द्रसिंह के जागीरी काल में तथा डूंगरसिंह गहलोत के सक्रिय प्रयास से यह निर्धारित किया गया कि उक्त तालाब की आय, जो नागौर परगने में है, अन्य किसी कार्य में न लगाई जाय सिवाय इसके कि तालाब की मरम्मत हो। यह लेख कादिर मुहम्मद के लड़के शाह मुहम्मद ने लिखा।

शाहबाद (जि० कोटा) का लेख[६८] (१६७९ ई०)

यह लेख प्रारम्भ में कोतवाली के निकटस्थ एक चबूतरे में मिला जिसे तहसील के दफ्तर में सुरक्षित कर दिया गया। यह लेख द्विभाषी है और खण्डित अवस्था में है। इसमें वर्णित है कि कस्बे के महाजन, व्यापारी और ब्राह्मणों ने शाही दरबार में उपस्थित हो यह फर्याद की कि उनसे अपनी अचल सम्पत्ति पर सायर की वसूली की जा रही है। इस अभ्यर्थना पर औरंगजेब ने यह तगदीर जारी की कि इस प्रकार का सायर लेना अनुचित है अतएव वह उनसे न लिया जाय। इस हुक्म के तहत जागीरदार रंधुल्लाखां ने मुत्तसद्दियों को यह आदेश दिया कि वे इस प्रकार की सायर वसूल न करें। इसका फल यह हुआ कि आधी रकम जकात, वटाई, खूत तलाई, कोतवाली आदि से वसूल की गई और आधी रकम देने वाले की मरजी पर छोड़ दिया गया जिसे वे या तो न दें या जमा करावें। परन्तु पैदाइश, विवाह आदि पर लिये जाने वाले करों को मुआफ कर दिया गया। अन्त में उन लोगों को (हिन्दु एवं मुसलमान) राम तथा अल्लाह का श्राप का भाजन बतलाया गया जो इसकी तामील नही करेंगे। ये लेख स्थानीय करों की व्यवस्था पर तथा मुग़लों की समयोचित नीति पर प्रकाश डालता है।

बरन का लेख[६९] (जि० कोटा) (१६८० ई०)

यह लेख एक मस्जिद पर है जिसमें विक्रमी एवं हिजरी काल अंकित है जिसके अनुसार २५ जून, १६८० ई. होता है। इसमें मुहम्मद शफी माजन्दरानी द्वारा एक मस्जिद बनाने का उल्लेख है, जबकि सैय्यद मुहम्मद वासी अमीन के पद पर था। इससे प्रकट है कि इस भाग पर औरंगजेब के अधिकारी नियुक्त थे।

---

६६. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६९-७०, नं. डी. १३९

६७. एन्यु. रि. इण्डि. एपिग्रा., १९६६-६७, नं. डी. २१५

६८. एपि. इण्डि. अरेबिक एण्ड पर्शियन सप्लीमेन्ट, १९६८, पृ० ७०

६९. रिसर्चर, १९७०-७१, खण्ड १०-११, नं ८४, पृ० २७-२८

दीन दर्वाजा का लेख[७०] (डीडवाना) (१६८१ ई०)

उक्त नाम के दर्वाजे को दीनारखाँ के निरीक्षण में बनवाया गया था जो औरंगजेब के शाही दरबार का मान्यता प्राप्त व्यक्ति था। इस लेख को मीर मुहम्मद मुराद ने लिखा था।

तिपोलिया दरवाजा का लेख[७१] (डि० जयपुर) (१६८४ ई०)

यह लेख द्विभाषी है। इसमें दर्ज है कि बालनाथ के लड़के पारसनाथ और उसके लड़के शिवनाथ ने यहाँ के तालाब, दीवार और द्वार को महाराजा रामसिंह के राज्यकाल में बनवाया। इसमें जीरमदास शामिल तथा उसके साथ आने वाले महाजनों के नाम अंकित हैं। इसमें मीर जलालउद्दीन की जागीर का भी उल्लेख किया गया है।

मोचियों की मस्जिद का लेख[७२] (डीडवाना) (१६८६ ई०)

यह मस्जिद दरिया मोची के निरीक्षण में बनी थी। इस लेख में पीरू, बिल्लू एवं ईदू मोची के नाम भी अंकित हैं।

फलौदी मस्जिद का लेख[७३] (१६८६ ई०)

प्रस्तुत लेख मस्जिद की दीवार पर है जिसमें वर्णित है कि उक्त मस्जिद का निर्माण महाराजा जसवन्तसिंह के राज्यकाल में हुआ था। इसमें भंडारी अभयराज, पितामेर, दाम्रो और इशानमेर के नाम अंकित हैं। उक्त लेख को लादू के पुत्र अल्लाह बख्श ने लिखा था।

मस्जिद हजरत मिठ्ठे शाह की दर्गाह के भीतर का लेख[७४] (गागरौन) (१६९४–९५ ई०)

यह लेख जामी मस्जिद का है जो हजरत मिठ्ठे शाह की दर्गाह के अन्दर है। उक्त मस्जिद को नवाब आजमखां के पौत्र इरादतखां ने बनवाई थी और उसने पांच बहलोली इसके खर्चे के लिए अनुदान के रूप में दिये थे। इनमें से तीन इमाम के लिए, एक मेहतर के लिए व आधे-आधे पानी व रोशनी के खर्चे के थे। इसमें यह भी दर्ज था कि जो भी हजरशाह की खिदमत करेगा उसकी मुरादें पूरी होंगी। इसमें शेख फीरोज का नाम है जिसके निरीक्षण में यह कार्य हुआ था और जो इस किले के अधिकारी पद पर नियुक्त था।

---

७०. एन्यु. रि. इण्डि एपि., १९६९–७० नं० डी, १२०

७१. इन्यु. रि. इण्डि. एन्टी, १९६२–६३, नं डी. १९१।

७२. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६९–७०, नं डी, १४१

७३. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टि., १९५९–६०, नं डी., १७४

७४. एपि. इण्डि, अरेबिक व पार्शियन (सप्लिमेन्ट), १९६८, पृ० ७५–७६

दर्गाह हजरत मिठु शाह का लेख[७५] (गागरौन) (१६९४-९५)

उक्त दर्गाह की फाटक के मिहराब में लेख अंकित है कि इरादत खां जो सरकारी सेवक था उसने चौकिया (गाँव?) का लगान वार्षिक उर्स के लिए अर्पित किया और यह भी उल्लिखित किया कि इस सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप न करे।

सांभर की मस्जिद का लेख[७६] (१६९७-९८ ई०)

यह लेख एक कब्र के पास पड़ा मिला जिसे वहां से उठवा कर विश्रान्तिगृह में रखवाया गया। इस लेख में अंकित है कि औरंगजेब के राज्यकाल में यह मस्जिद एक मंदिर के स्थान पर शाह सब्जअली द्वारा बनवाई गई थी।

अब्दुल्ला खाँ की दर्गाह के पीछे वाली मस्जिद का लेख[७७] (अजमेर का लेख) (१७०३ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि दानिश के निर्देशन में यहां एक मस्जिद और एक बाग का निर्माण करवाया गया।

शाह छांगी महारी मस्जिद का लेख[७८] (डीडवाना) (१७११)

यह लेख मस्जिद की मिहराब पर अंकित है। इसमें उल्लिखित है कि इसका निर्माण शाह छांगी मदारी के निरीक्षण में कराया गया था। इसमें शाहआलम प्रथम के लिए सुलतान मुहम्मद मुअज्जम शाह बहादुर आलमगीर द्वि० अंकित किया गया है।

गुदड़ी बाजार मस्जिद का लेख[७९] (डीडवाना) (१७४१ ई०)

यह लेख केन्द्रीय मिहराब में अंकित है जिसका आशय यह है कि उक्त मस्जिद को शाह बक्शअली ने बनवाया था। यह शाह शाहशाकिरअली का शिष्य था जो शाह मदार का अनुयायी था। इससे सन्त परम्परा का बोध होता है।

सांभर का एक लेख[८०] (१७७० ई०)

यह लेख ६ अक्टूबर, १७७० ई० का है जो शामलात की कचहरी के पास लगा हुआ है। यह द्विभाषी है। इसमें महाराजा की आज्ञा का उल्लेख है कि जैन, वैष्णव, ब्राह्मण, काजी व उनके भाई, गरीब एवं विदेशियों के ठाकुरद्वारों को पैमाइश व नाप से मुक्त किया जाता है। इस प्रथा का जयपुर में प्रारंभ इस काल के पूर्व हो चुका था यह ध्वनि भी इस लेख से निकलती है।

---

७५. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६५-६६ नं डी. ३२४

७६. एन्यु. रि. इन्डि. एण्टि. १९५५-५६, नं० डी. १४३

७७. ए. इ. १९५९-६०, पृ. ४६।

७८. एन्यु. रि. इण्डि. एपि० १९६९-७०, नं० डी, ११४

७९. एन्यु. रि. एपि०, १९६९-७०, नं० डी, १४६

८०. एन्यु. रि. इण्डि इन्टि. १९५५-५६, नं० डी, १४८, १९५६-५७, ० बी० ४७८

ईदगाह, अजमेर का लेख [८१] (१७७३-७४ ई०)

इस लेख में ईदगाह का निर्माण चमन बेग द्वारा कराया जाना अंकित है। इसमें ख्वाजा मुईन्नुद्दीन चिश्ती तथा उनके अनुयायी फकरुद्दीन तथा शामशुद्दीन की प्रशंसा की गई है। इससे सन्त परम्परा पर प्रकाश पड़ता है।

वैराट (जि० जयपुर) का लेख, [८२] (१७७६ ई०)

यह प्रार्थना कक्ष के केन्द्रीय मेहराव में है। इसमें वर्णित है कि सैय्यद अली फौजी ने यहां एक मस्जिद का निर्माण कराया। इसका समय शाहआलम के काल का पढ़ा गया है जो सन्देहात्मक है। वैराट के उत्खनन की रिपोर्ट, पृ० १५ से स्पष्ट है कि यह लेख ८९५ हिज्री का है और इसका समय अलाउद्दीन आलमशाह का है। यदि शाहआलम के काल में इसे रखते हैं तो इसका समय ११८९ पढ़ा गया प्रतीत होता है। समय का अंकन या पढ़ा जाना सन्देहात्मक है।

कर्नाटकी दालान अजमेर का लेख, [८३] (१७९३ ई०)

यह लेख ह० ख्याजा मुइन्नुदीन की दर्गाह के कर्नाटकी दालान के वृत्त के मध्य में अंकित है। इसमें वर्णित है उक्त दर्गाह के अन्दर नवाब मुहम्मद अली खां ने, जो कर्नाटक का नवाब था, अपने कर्मचारी मुहम्मद जफर खां, कादिरयार खां एवं अली मुहम्मद खां की निगरानी में कर्नाटकी दालान का निर्माण करवाया। इस लेख से कर्नाटक के तथा अजमेरी हुकूमत के अच्छे सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है।

तारागढ़ की सैय्यद हुसैन की दर्गाह का लेख, [८४] (१८०७-०८ ई०)

इस लेख में वर्णित है कि राव वाला इंगनिया ने यहां एक दालान का निर्माण सैय्यद हुसैन रिंग सवार नामी सन्त के स्वप्न के आदेश से करवाया।

जामी मस्जिद का लेख, [८५] मेड़ता (१८०७-०८ ई०)

उक्त मस्जिद के दालान में घुसते हुए यह लेख मिलता है जिसमें दर्ज है कि यह मस्जिद औरंगजेब द्वारा बनवाई गई थी। बंद पड़ी रहने से इसकी हालत खराब हो रही थी, अतएव मारवाड़ के राजा ढोकलसिंह ने इसकी मरम्मत करवाई और यह आदेश दिया कि भविष्य में कोई राजा इसमें हस्तक्षेप न करे और इसके दुकानों के भाड़े का जो मस्जिद के लिये हैं दुरुपयोग न करें। यहां ढोकलसिंह के रहने का भी संकेत इस लेख से मिलता है।

---

८१. ए. ई. १९५९-६० पृ. ५०

८२. रिसर्चर, खण्ड १०-११, १९७०-७१, नं० ८०, पृ० ३६

८३. ए. इ., १९५९-६०, पृ० ५१।

८४. ए. इ., १९५९-६०, पृ० ५३-५४।

८५. इन्यु. रि. इण्डि. एन्टी, १९६२-६३, नं० डी. २१२।

तारागढ़ की सैय्यद हुसैन की दर्गाह का लेख,[८६] (१८१३ ई०)

इसमें वर्णित है कि हिजरी सन् १२२७ से १२२९ में शाह रिवंग सवार की दर्गाह में राव गुमान जी सिंधिया ने दालान का निर्माण करवाया। इससे मराठों की धर्म सहिष्णु नीति पर प्रकाश पड़ता है।

जालन्धर जी का मकान का लेख,[८७] (निवाई) (१८१३ ई०)

इसमें प्रवेश होते ही यह लेख है जिसमें मुहम्मद शाह खां बहादुर द्वारा इजरा किये जाने वाले फर्मान का उल्लेख है। इसमें वर्णित है कि स्थानीय सेना के रिसालदार एवं जमादार उदक भूमि, जो पलाई में है और जहां पुराना जलन्धरनाथ जी का मन्दिर है की इज्जत करें और उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। मुहम्मद शाह खां का पूरा नाम नवावुल मुल्क मुख्तियारुद्दोला मुहम्मद शाह खां बहादुरजंग इसमें अंकित है। इस लेख से सहिष्णुपूर्ण नीति पर प्रकाश पड़ता है।

जामी मस्जिद का लेख,[८८] (१८४५ ई०)

इस मस्जिद वाले लेख में दर्ज है कि बृजमहाराज बलवन्तसिंह ने आदेश दिया कि नगर में मस्जिद बनवाई जाय। इस आदेश से भरतपुर की मुस्लिम प्रजा तथा सैनिकों ने अपने चंदे से यहां एक मस्जिद बनवाई। इससे भरतपुर के शासकों की सहिष्णुपूर्ण नीति पर प्रकाश पड़ता है।

जामी मस्जिद का लेख,[८९] (डीडवाना), (१८५५--५६ ई०)

इनमें से एक लेख द्विभाषी है जिसमें अंकित है कि कुछ दुकानें सुलतान महमूद पीर पहाड़ी की दर्गाह की है। इनके सम्बन्ध में अंकित है कि इनको गिरवी नहीं रखा जा सकता। यह शर्त बहुधा सभी मुआफी की जायदाद के सम्बन्ध में दर्ज रहती थी। ऐसे ही दूसरे लेख में दुकान का किराया नहीं देना या उसका दुरुपयोग करना गुनाह बतलाया गया है।

जालोर में फैद्दुल्ला खाँ की छत्री का लेख,[९०] (१८९४-९५ ई०)

यह लेख द्विभाषी है। इसमें वर्णित है कि खैबर का निवासी फतहशाह जो बीबी जम-जम का शिष्य था और वह मिठ्ठाघा की शिष्या थी, की मृत्यु जालौर में हुई तब उसके शिष्य अनवर अली ने ९० रुपये लगाकर अपने मालिक की स्मृति में दर्गाह बनवाई। इस लेख में रहमत खां, मीर अफजल खां, आजम खां, शेरसिंह, गुलाब खां, दोदयाल काकनूर आदि के साक्षी होने का उल्लेख है। इसका बनाने वाला शिल्पी

---

८६. ए. इ. १९५९--६०, पृ० ५४।

८७. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टि., १९६२--६३, नं० डी. २४२

८८. सफरनामा, पृ० २१०--११

८९. एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६९--७० नं० डी. १२०, १२१

९०. एन्यु. रि. इण्डि. एन्टी., १९६६-६७, नं० डी. १९३

सलावत ग्रहमद था और लेखक फकीर मुहम्मद शामशुद्दीन था। इसमें दिये गये मुस्लिम गुरु-शिष्य परंपरा एवं शिष्य आदि के नाम उपयोगी हैं।

डीडवाना का लेख,[९१] (१२१०, १६११ ई०)

इसमें दी गई प्रथम तिथि का सम्बन्ध इमाम रशिउद्दीन भाका से है जो बड़ा आपिभ था और ख्वाजा जी, का (जिसे मारगीर (सपेरा) कहते थे) प्रपौत्र था। पीछे से १६११ में वहां उसकी एक दर्गाह बनाई गई और पिछली तिथि अंकित की गई।

---

९१ एन्यु. रि. इण्डि. एपि., १९६८--६९, नं० डी. ४११

दान-पत्र

दान-पत्रों का ऐतिहासिक साधनों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । ये दान-पत्र ताम्र-पत्र भी कहे जाते है क्योकि इनके लिए ताम्बे की चद्दरों को काम में लाया जाता था । कागज का वैसे प्रयोग पूर्व मध्यकालीन काल से हो चुका था, परन्तु स्थाई अनुदानों का अंकन ताम्बे की चद्दरों पर उत्कीर्ण कर दिया जाता था जिससे उसके नष्ट होने का कम भय रहता था । ऐसी चदरे तांबे को गाल कर और फिर उसे कूट-कर बनाई जाती थी । उसको उसी आकार में तथा मोटाई में कूटकर बनाया जाता था जितना अंकन उसमें करना होता था । प्रायः ये ताम्र-पत्र लगभग ८"×६" या १२"×८" आदि लम्बाई चौड़ाई के होते थे, जिन पर पहिले काली स्याही से प्रमाणित लेखक, जो एक विशेप अधिकारी होता था उस पर इबारत लिख देता था और फिर उसको दस्तकार द्वारा उस पर उत्कीर्ण करा लिया जाता था । ये ताम्र-पत्र संस्कृत एवं स्थानीय भाषा में होते थे । पूर्व मध्यकालीन युग के पहले काल मे संस्कृत का प्रयोग दान-पत्रों मे किया जाता था परन्तु इस काल के द्वितीय चरण तथा उत्तर-मध्यकाल मे इनमे स्थानीय भाषा काम में ली जाती थी । इनमें प्रयुक्त की गई लिपि प्रथम चरण में कुटिल होती थी, परन्तु ज्यों-ज्यों स्थानीय भाषा का प्रयोग बढ़ता गया महाजनी लिपि का प्रयोग होने लगा । भाषा के सम्बन्ध में अशुद्धियां इन ताम्र-पत्रों में अधिक रहती थी । विराम, चन्द्राकार, अर्ध विराम, अनुस्वार आदि का प्रयोग बहुत कम होता था । कभी-कभी सन्दर्भ में विभिन्नता लाने के लिए एक लम्बी रेखा खीच ली जाती थी या दो खड़े विराम के चिह्न लगा दिये जाते थे ।

ताम्र-पत्रों को राज्य परिवार के इष्टदेव के नाम से शुरू किया जाता था जैसे 'श्री गणेषायनमः,' 'रामोजयति,' 'श्री एकलिंगजी,' 'श्री सीतारामजी,' 'श्री लक्ष्मीनारायणजी,' 'श्री माताजी,' 'श्री महादेवजी' आदि । मेवाड़ में प्रयुक्त किये गये इष्ट देवों में 'श्री इकलिंगजी प्रसादात् तथा 'श्री रामोजयति' विशेष रूप से प्रयुक्त होता था । इसके बाद मेवाड़ के दान-पत्रों पर चुंडा के भाले का चिह्न और पीछे उस पर 'सही के कारखाने' की सही उत्कीर्ण रहती थी । मूल पाठ में राजाओं के नाम, अनुदान पाने वाले का नाम, अनुदान देने का कारण, अनुदान का विवरण, भूमि का नाम तथा समय आदि होता था । इसके अन्त में आज्ञा के वाहक एवं प्रधान के नाम भी उनमें दिये जाते थे ।

इस प्रकार के दान-पत्रों का ऐतिहासिक उपयोग बहुत है, क्योंकि इनके द्वारा

कई राजनीतिक घटनाओं, आर्थिक व्यवस्था तथा व्यक्ति विशेषों की हमें जानकारी होती है। समसामयिक विषयों पर इनके द्वारा प्रभूत प्रकाश पड़ता है। इनके द्वारा अनुदान देने वाले की धर्म परायणता का बोध होता है और अनुदान लेने वाले की क्षमता का भी संकेत मिलता है। किसी भी समय के ताम्र-पत्र से भूमि सम्बन्धी सूचनाएँ मिलती हैं क्योंकि विशेष रूप से अनुदानों में भूमिदान का ही महत्त्व अधिक रहा है। इनसे वंशक्रम को निर्धारित करने तथा शासन-अधिकारियों के नामों को क्रमबद्ध जानने में भी इनका उपयोग है। भूमि के नाप में 'बीघा' तथा 'हल' शब्दों का प्रयोग होता है, जो छोटे तथा बड़े नाप होते थे। एक हल में ५० बीघा का प्रमाण होता था और बीघा साधारणतः २५ से ४० बांस तक आंका जाता था। भूमि की किस्मों में पीवल, मगरो, पड़त, गलत-हास, चरणोत, रांखड, बीडो, बाडी, कांकड, तलाई, गोरमो, आदि शब्द प्रयुक्त होते थे। फसलों को सीयालू एवं ऊनालू और फिर रबी व खरीफ में बांटा जाता था। खेतों के भी नाम तथा पड़ोस इनमें बतलाया जाता था और इसी प्रकार कुओं के भी नाम होते थे। पीपल के वृक्ष वाला कुँआ, पीपलीवारो कुँओ, तथा वट वृक्ष वाला खेत, 'बडलावालो खेत' आदि नामों से सम्बोधित होते थे।

अनुदान विशेष रूप से पर्वो पर, धार्मिक कार्यो पर, यात्रा के अवसर पर, मृत्यु पर अथवा विजय के उपलक्ष आदि मौके पर दिये जाते थे। कभी-कभी चारण-भाटों, ब्राह्मणों आदि के भरण-पोषण के लिए तथा ठाकुर की पूजा-प्रतिष्ठा के लिए दान दिये जाते थे। विशेष उपलब्धियों पर योद्धाओं को भी दान-पत्र देकर सम्मानित किया जाता था। परन्तु कभी-कभी अव्यवस्थाकाल में नकली दान-पत्र भी भूमि पर अधिकार रखने के लिए बना लिये जाते थे जिन्हें पहिचानना कठिन हो जाता है। सच्चे व गलत दान-पत्रों के जांचने के लिए व्यक्तियों, तिथियों और लिपियों का ज्ञान विशेष रूप से आवश्यक हो जाता है।

जहाँ तक दान-पत्रों की संख्या का प्रश्न है वे लाखों की तादाद में हैं जिनका थोड़ा-थोड़ा भी परिचय इस अध्याय में देना कठिन है। केवल इन दान-पत्रों की विशेषता जानने के लिए हम कुछएक चुने हुए ही दानपत्र (राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित) देंगे जिनसे उनकी संज्ञा एवं सन्दर्भ का हमें आंशिक बोध हो सके। इन थोड़े से दान-पत्रों के परिचय के साथ-साथ यथा साध्य उनके मूल पाठ को या उसके अंश को भी दे दिया गया है जिससे उनके महत्त्व को भलीभाँति समझा जा सके।

धूलेव का दानपत्र[1], (६७९ ई०)

इस दान-पत्र की एवं अपराजित के लेख (६६१ ई०) की लिपि में साम्यता है। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत है और उसे तांबे को कूटकर तैयार की गई चद्दर पर खोदा गया है। इसको ऋषभदेव के एक ब्राह्मण के पास देखा गया था। इसमें

---

१. एन्युल रिपोर्ट राजपूताना म्यूजियम, ३१ मार्च, १९३३, पृ० २

वर्णित है कि किष्किन्धा (कल्याणपुर) के महाराज भेटी ने अपने महामात्र आदि अधिकारियों को आज्ञा देकर अवगत कराया कि उसने महाराज वप्पदत्ति के श्रेयार्थ तथा धर्मार्थ उब्बरक नामक गाँव को भट्टिनाग नामी ब्राह्मण को अनुदान के रूप में दिया। इसका समय २३वां वर्ष अर्थात् हर्ष संवत् है जो ६७६ ई० के लगभग अनुमानित किया जाता है। इसमें दिये गये संवत् को 'अश्वाभुज संवत्सर' कहा गया है। इसमें महाराज भेटी एवं भट्टिवाड के हस्ताक्षर का चिह्न अंकित है। इस दान-पत्र को आंबापाली नामक डेरे से इजरा किया गया था। इसमें यज्ञदत्त दूतक का नाम दिया गया है। इसमें प्रयुक्त किये गये महाराज शब्द से भेटी की राजनीतिक स्थिति का पता चलता है। महामात्र एवं दूतकादि अधिकारियों का इसके नेतृत्व में होना म० भट्टि की शासकीय स्थिति को बतलाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड़ के दक्षिणी भाग का वह शक्तिसम्पन्न शासक था। इसमें प्रयुक्त किये गये 'वप्पदत्ति' शब्द से संभवतः इसका सम्बन्ध बापा से होना अनुमानित किया जा सकता है या इस शब्द का प्रचलित प्रयोग दिखाई देता है। यदि ऐसा है तो बापा का काल इस शताब्दी के लगभग आता है। फिर भी इस विषय में अधिक शोध की आवश्यकता है। इस दान-पत्र का उपयोग सातवीं शताब्दी की धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति की जानकारी के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मथनदेव का ताम्र-पत्र[२], (६५६ ई०)

यह ताम्र-पत्र मथनदेव का है जिसका समय सं० १०१६ माघ सुदि १३ शनिवार है। इसमें समस्त राजपुरुष एवं गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष देवालय के निमित्त भूमिदान की व्यवस्था अंकित है। इसमें प्रति दुकानों से वस्तुएं तथा घाणी से तेल देने का भी उल्लेख है। इस दान-पत्र को हरि ने खोदा था। इसमें प्रयुक्त की गई भाषा संस्कृत है। इसका मूलपाठ का कुछ अंश इस प्रकार है—

"ॐ स्वस्ति" परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री क्षितिपालदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विजयपाल देवानामभिप्रवर्धमान कल्याण विजय राज्ये संवत्सर शतेषु दशसु षोडशोत्तरकेषु माघमाससितपक्ष त्रयोदश्यां शनियुक्तायामेव १०१६ माघ सुदि १३ शनावद्य श्री राज्यपुरावस्थितो महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मथनदेवो............सर्वानेवराजपुरुषान्नियोगस्थान क्रमागमिकान्नियुक्त कानियुक्तकांस्तन्निवासिमहत्तरमहत्तमवणिक्प्रवणि प्रमुखजनपदाश्च... ....व्यघ्रवाटक ग्रामः स्वसीमातृणं युतिगोचरपर्यन्तः............... ....। शासनं कृतवान्देवो लिखितं तस्य सूनुना। व्यक्तं सूर प्रस्तादेन उत्कीर्णं हरिणाततः...............।। प्रतिहट्टव्यावहारिकवि २ घटककूपकं प्रतिघृतस्य तैलकस्य च पलिके द्वे २ वीथीं प्रतिमासि २ विं २ तथा वहि प्रविष्ठ चोल्लिकां प्रतिपर्णानां ५० एतद्देवस्य कृतमिति ।। श्रीमथनः ।।"

---

२. वीरविनोद, भा० ४, पृ० १५३१–१५३२

रोपी ताम्र-पत्र[3] (१००२ ई०)

भीनमाल से ६ मील की दूरी पर रोपी गाँव है वहां का यह ताम्रपत्र है। इसका आकार ९" × ८" है और इसके दो भाग हैं जिन्हें दो छंदों में कड़ी के द्वारा जोड़ा गया है। एक पत्र में ११ पंक्तियां और दूसरे में १२ पंक्तियां हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। इसके अन्त में अनुदानकर्त्ता के हस्ताक्षर हैं। इसमें भीनमाल नगर के बाहर एक क्षेत्र आऊरकाचार्य को देवराज के द्वारा चन्द्रग्रहण के अवसर पर दिये जाने का उल्लेख है। भूमि के पड़ौस में वामन, पूरणचन्द्र, श्रीधर आदि व्यक्तियों के खेत हैं। इसका लेखन व्यास के पुत्र सूर्यरवि के द्वारा किया गया था। इसमें देवराज के गुरु मत्वाक का नाम साक्षी के रूप में दिया है। इसमें उल्लिखित देवराज परमार वंशीय होना चाहिये जिसे महीपाल भी कहते थे और जो आबू का शासक था, इसी ने सोलंकी कुमारपाल की सामन्ती स्वीकार की थी। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

प्रथम पट्टिका

१. सिद्धम् ॐ नमः शिवाय ।। संवत् १[०]५९ मा
२. घ शु(सु)दि १५ अस्यां संवत्सर मासपक्षदि
३. वसपूर्व्वायां श्री २ मालावस्थित महाराजा
४. धिराज श्री देवराजः स्वभुज्यमान विषये
५. वर्म्मदायेन क्षेत्रशासन (नं) प्रयच्छति ।। यदि है
६. व श्री २ मालीय कोट्टाद्दक्षिणदिग्भागे क्षेत्रं
७. यस्याघाटनानि ।। पूर्व्वतो गोविन्द ब्राह्मण
८. सत्काभूसीमा । दक्षिणतो वामनदुर्ल्लभसु-
९. तसत्का भूसीमा । पश्चिमतो महासामन्त श्री
१०. पूर्णचण्डसत्क [श्रा]मेण सह भूसीमा
११. उत्तरतः श्रीधरब्रा (ब्रा)ह्मण क्षे[त्रे]ण भूसीमा

द्वितीय पट्टिका

१२. एवमेतच्चतुराघ(घा)ट नाम्यंतरक्षेत्रं ।
१३. अस्माभिः सोमग्रहणे स्नात्वा त्रिलोकी गुरुं शंकर-
१४. मभ्यर्च्च्य मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धंय(ये)
१५. शासनेतो(नो)दकपूर्व्वमाचंद्रार्क्क कालीनतया प्रति
१६. पादितं[श्रा] उरकाचार्याय । चण्डशिवाचार्यपुत्रा
१७. य..........श्री सिद्धेश्वरदेवस्थानाधीशाय
१८. प्रदत्तं न केनापि परिपंथनीयं ।। अस्मद्वंशजैरन्यै
१९. श्च भाविभोक्तृभिः अत्रसाक्षी श्रीदेवराजगुरुम्मत्वा
२०. कः । अत्र साक्षी श्रीपूर्णचण्डः लिखितं सूर्यरवि-

३. एपिग्राफिका इण्डिका, भा० २२, पृ० १९६–१९८ ।

२१. णा न्याससुतेन । यो यः पृथिव्यां राजाहि ममा
२२. तोर्द्धं भविष्यति । तस्याहं करलानस्तु शासनं सा (मा)
२३. व्यतिक्रामेत् । स्वहस्त श्रीदेवराजस्य ।"

आबू के परमार राजा धारावर्ष का ताम्र-पत्र[४] (११८० ई०)

यह ताम्रपत्र परमार राजा धारावर्ष के समय का है । इसकी भाषा संस्कृत पद्य एवं गद्य है । इसकी प्राप्ति सिरोही जिले के हाथल गाँव के एक शुक्ल ब्राह्मण के पास से हुई थी । इस ताम्र शासन के दो पत्र हैं जिसमें दो स्थलों पर अक्षर स्पष्ट नहीं हैं । इसमें प्रयुक्त शब्द 'हल' भूमि के नाप, 'ग्रास' एक प्रकार की भूमि तथा 'गोचर' चरागाह के द्योतक हैं । इसका समय वि० सं० १२३७ है । इस समय का मंत्री कोवीदास था । यह अनुदान देवोत्थापनी एकादशी का था जिसमें शिवधर्म के आचार्य के लिए साहिलवाड़ा तथा गोचर भूमि की सुविधा दी गई । भूमिदान में दो हल भूमि का उल्लेख है । इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

प्रथम पत्र

"संवत् १२३७ वर्षे कार्तिक सुदि ११ गुरावद्येह चाज्ञापनं ।। समस्त राजा वली समलंकृत श्रीमदर्बुदाधिपति श्री धूमराजदेवकुल कमलोद्योतनमार्तंडमांडलिकेपु चरंतु श्रीधारावर्षदेवकल्याणविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविन महं-श्रीकोविदा समस्तमुद्राव्यापारान्परिपंथयतीत्येवं कालेप्रवर्तमाने शासनाक्षराणि लिख्यते यथा उदये संजाते दैवा·······का············महापक्षीणनलिनीदलगतजललवतरलतरंजीवितव्यासिद-विधाय परमाप्तैवाचार्य भट्टारकवीसलउग्रदमके

द्वितीय पत्र

—साहिलवाड़ाग्रामे ग्रह—मुक्ति ।। तथा एतदीय धरणीगोचरे चरणीया तथा कुंभारनुलीग्रामे सुरभिमर्यादापर्यन्त भूमिदत्ताहल २ हलद्वयभूमिशासनेनोदक पूर्वप्रदत्ता ।। द्यूतोत्रमहंश्रीकोविदासजी जाल्हणी ।। मतं ।। श्री ।। बहुभिर्वसुधामुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।। यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्यतदाफलम् ।।१।। स्वदत्तांपरदत्तांवा योहरेत वसुंधरां ।। षष्ठिवर्षसहस्त्राणि विष्टायां जायतेकृमि ।।२।। ममवंशक्षयेक्षीणे अन्योह नृपतिर्भवेत् तस्याहं करलग्नोस्मि ममदत्तं न लोपयेत् ।।३।। शुभंभवतु ।। मागडीग्राम ग्रासभूमिदत्ता दातड़लीग्रामग्रासभूमिदत्ता ।।

वीरपुर का दान-पत्र[५] (११८५ ई०)

यह दान-पत्र जयसमुद्र के बांध के निकटवर्ती वीरपुर (गातोड़) गाँव का है । इसका समय वि० सं० १२४२ कार्तिक सुदि १५ (ई० सं० ११८५ ता० ९ नवम्बर) रविवार का है । यह भीमदेव (दूसरे) के सामंत महाराजाधिराज अमृतपाल का है,

---

४. इण्डि० एन्टी० भा० वर्ष १९४१, पृ० १९३–१९४;
वीरविनोद, भा० २, प्रकरण ११, शेष संग्रह ११, पृ० १२०६ ।

५. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४९–५० ।

जिसमें लिखा है कि 'उस (भीमदेव) के कृपापात्र सामंत एवं वागड के वटपद्रक (वड़ोदा) मंडल (जिले) पर राज्य करने वाले महाराजाधिराज गुहिलदत्तवंशी विजयपाल के पुत्र महाराजाधिराज अमृतपालदेव ने भारद्वाज गोत्र के रायकवाल ब्राह्मण ठा. मदना को, जो यज्ञकर्ता था, छप्पन प्रदेश के गातोड गाँव में ल्हिसाडिया नाम का एक अरहट और दो हल की भूमि दान की'

'इस दान-पत्र से पाया जाता है कि गुजरात वालों ने सामन्तसिंह से वागड का राज्य छीनकर गुहिलवंशीय विजयपाल या उसके पुत्र अमृतपाल को दिया।' इससे यह भी प्रमाणित होता है कि वि० सं० १२४२ में वड़ौदे का स्वामी अमृतपाल था और सोमेश्वरदेव महाकुमार था। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं है कि अमृतपाल का सामन्तसिंह से क्या सम्बन्ध था। परन्तु इतना स्पष्ट है कि वह उसी वंश का था। इसमें प्रयुक्त किए गए मंडल शब्द से जिले की इकाई का बोध होता है। इससे यह भी पता चलता है कि जहाँ महाराजा के हस्ताक्षर होते थे वहां महाकुमार के भी हस्ताक्षर होते थे और वह शासन में प्रमुख स्थान रखता था। हल शब्द का प्रयोग जो इस पत्र में किया गया है वह ५० वीघा नाप का सूचक है। ब्राह्मणों के नाम के आगे भी ठक्कुर शब्द का प्रयोग उनके प्रतिष्ठा का सूचक है। उन दिनों रहटों और भूमि के लिए विशेष नामों का प्रयोग किया जाता था, जैसाकि इस ताम्रपत्र में किया गया है। यहां अमृतपाल के लिए 'अस्य च परमप्रभोः प्रसादपत्रलायां भुज्यमान' प्रयोग उसकी सामन्तस्थिति पर प्रकाश डालता है। यहां ताम्रपत्र का आवश्यक अंश उद्धृत किया जाता है—

"......संवत् १२४२ वर्षे कार्तिक सूदि १५ रवावद्येह श्रीमदणहिल पाटकाधिष्ठित......भीमदेव कल्याणराज्ये...... वागड वटपद्रक मंडले महाराजाधिराज श्रीअमृतपालदेव विजयराज्ये शासनपत्र अभिलिख्यते यथा"......यदस्याभिः..........मातापित्रोरात्मनश्च श्रेयसे ......भारद्वाजगोत्राय रायकवाल जातीय व्रा(ब्रा)......सुत ठकु मदनाज।(या)जकाय पट्पंचाशन्मंडले गतउड़ग्रामे ल्हिसाडियाभिधान मरघट्टमेकं तथा वा(ब्रा)ह्मभूमो हलद्वय समन्विता ...... शासनपूर्वका उदकेन प्रदत्ता।......स्वहस्तोयं महाराजाधिराज श्रीअमृतपालदेवस्य ।। स्वहस्तोयं महाकुमार श्रीसोमेश्वर देवस्य ।।"

वीरपुर का दान-पत्र[६] (११८५ ई०)

यह दान-पत्र वि० सं० १२४२ का है जो जयसमुद्र के निकटवर्ती वीरपुर गाँव से प्राप्त हुआ था। इसमें गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) राजा भीमदेव (दूसरा, भोला भीम) के सामन्त वागड के गुहिलवंशीय राजा अमृतपालदेव के सूर्यपर्व पर भूमिदान

---

६. भारतीय विद्या, वम्बई (त्रै०), द्वितीय भाग द्वि० अङ्क।

यह दान-पत्र नं० ५ वाला ही है परन्तु इसमें मूलपाठ अधिक होने से पुनः दे दिया गया है।

देने का उल्लेख है। इसके दो पत्र हैं जो संस्कृत गद्य एवं पद्य में हैं। इसमें कुल ४२ पंक्तियां हैं। इसमें दिये गये शब्द 'अरघट्ट' रहट के लिए 'ग्राम' गाँव के लिए, 'हल' भूमि के नाप के लिए, 'नायक' एक विशिष्ट पद के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार इसमें 'सामंत' एवं 'ठक्कुर' शब्दों का प्रयोग भी सामंत प्रथा के द्योतक हैं। इसमें वागड को वटपद्रक मंडल में सम्मिलित किया है। इसमें केल्हण आदि व्यक्तियों को पंचकुल से सम्बन्धित बतलाया है। आमात्य शब्द का प्रयोग भी उस समय की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। वागड के शासकों का चालुक्यों एवं गुहिलों से सम्बन्ध भी इससे निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिलती है। अनुदान में दिये गये खेतों की सीमा निर्धारित करने एवं साक्षियों का उल्लेख करने आदि के सम्बन्ध में इसमें उपयोगी सूचना हमें मिलती है जिसमें नदी, गाँव, वृक्ष, खेत, अरहट आदि को सम्मिलित किया जाता था तथा साक्षी रूप में गाँव के सयाने लोगों को रखा जाता था। इसके कुछ अक्षांतर के अंश को यहां उद्धृत किया जाता है यथा—

पं. १. ।।ॐ।। स्वस्तिश्री नृप विक्रमकालातीत संवत्सरद्वादश शतेषु द्विचत्वारिंशद-
धिकेषु अंकातोपि"

पं. २. 'संवत् १२४२ वर्षेकार्तिकसुदि १५ रवावद्येह श्रीदणहिलपाटका[धिष्ठि]
तपरमेश्वर परमभट्टा-'

पं. ३. 'रक श्रीउमापतिवरलब्धप्रासादराज्यराजलक्ष्मीस्वयंवरप्रौढप्रताप श्री चौलुक्य-
कुलोद्या-'

पं. ४. 'नि मार्त्तंड अभिनवसिद्धराज श्री महाराजाधिराज श्रीमद्भीमदेवीय' कल्याण
विजयरा-

पं. ५. 'ज्येतत्पादपद्मोजीवित महामात्य श्रीदेवधरि श्रीकरणादि'

पं. ७. 'वागडवटपद्रकमंडले महाराजाधिराज श्री अमृतपालदेवीयराज्ये तन्नियुक्त-
महं।।'

पं. ८. 'केल्हणप्रभृति पंचकुल प्रतिपत्तौ'

पं. १३. 'देवनायक जोहड़ नायक वागड़सीह नायक'

पं. १४. 'द्रंगी सहजा उ. द्रंगि साढा मच्छिद्रहग्रामी'

पं. १६. 'ठाकुर वासुदेव सु. ठक्कु भालण ......वृद्धामात्यदींश्चसमा'

पं. १७. 'हूय। यदस्माभिः सूर्य्यपर्वणि'

पं. २०. 'मात्रपित्रो रात्मनश्च श्रेयसे'

पं. २१. ' ......प्रवराय भरद्वाजगो[त्रा]

पं. २२. 'य राय[क]वाला[ज्ञा]तीय ब्रा[ह्मण]ठकु. सोभा
सुत ठकु. मदन जाजकायाः पट्पंचाशन्मंडले

पं. २३. 'गातउडाग्रामे ल्हिसाडियाभिनाले अरघट्टमेक तथा ब्राह्मभूमी हल द्व(यसम)
न्विता चतुराघाट

पं. २४. 'सीमासमन्विता सकेदाराः शासनपूर्वकाः उदकेन प्रदत्ता। अस्याः घाटाः।

पूर्वस्यां सीमा ऊंवरऊग्रा

पं. २५. 'ग्ररघट्ट। दक्षिणायां ग्रामेण सीमा। पश्चिमायां ढीकोलरघट्टसीमा। उत्त-
रायां गोमती नदी सीमा

पं. २६. एतदरघट्टं तथा भूमींच संतिण्टमान चतुसीमापर्यंतं सवृक्षमाला कुलंसोद्रं
सपरिकरं सकाण्टत्

पं. २७. 'णोदकोपेतं नवविधानसहितं ग्रस्मद्वंसजैरन्येरपिच पालनीयं।

पं. ४१. 'स्वहस्तोयं महाराजाधिराज श्रीग्रमृतपालदेवस्य ।। स्वहस्तोऽयं महाकुमार
श्रीसोमेश्वर देवस्य

पं. ४२. स्वहस्तोयं पुरो. पाल्हा पालापकस्य ।। शुभंभवतु"

कदमाल गाँव का दान-पत्र, (११९४ ई०)

यह ताम्र-पत्र ७"×६" के तांवे के टुकड़े पर खुदा हुआ है, जिसका नीचे का भाग एक तरफ से टूटा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी तांवे की चद्दर कूट कर बनाई गई हो। इसके सिरे पर एक गोलाकार छेद बना हुआ है, जो एक कड़ी में पिरोकर दूसरे ताम्र-पत्र के साथ रखे जाने के लिए है। इस ताम्र-पत्र की भाषा संस्कृत मिश्रित स्थानीय भाषा है। लिपि उस समय की लिपि के अनुसार स्पष्ट है, परन्तु खोदने वाले ने इसमें कई अशुद्धियां रख दी हैं। मूल ताम्रपत्र में १२ पंक्तियां हैं। मूल ताम्रपत्र को मैंने १९४८ ई० में श्री लेहरूलाल छोटा पालीवाल के पास देखा था और तभी इसकी प्रतिलिपि तैयार कर ली गई थी।

मेवाड़ के गुहिल वंशीय नरेश पद्मसिंह का यह पहला ताम्रपत्र है। इसमें सोमपर्व के अवसर पर शिवगुण को कदमाल में भूमि के अनुदान देने का उल्लेख है। इस ताम्रपत्र से यह भी स्पष्ट है कि ऐसे अनुदानों में स्थानीय वणिक, ब्राह्मण तथा शासक वर्ग के राजपूतों की साक्षी रहती थी क्योंकि स्थानीय शासन व्यवस्था के वे अंग होते थे। शासन में मंत्री का भी प्रमुख स्थान होता था, जैसाकि इस ताम्रपत्र से स्पष्ट है।

इसका अक्षान्तर इस प्रकार है—

पं. १. ॐ ।। स्वस्ति श्री सं० १२५१ वर्षे महाराज धिराज

पं. २. श्री पदमस्यंहदेव: मंत्रि जगस्यंह वर्तमाने। चाहू

पं. ३. हाण रा. वाहड सुत रा. मोकलस्य सकल राज्ये।

पं. ४. चैत्र सुदि पौर्णिमास्यां सोमपर्वे: ग्रारावर सु (सु)

पं. ५. त सि (शि) वगुणस्य हस्ते उदकपूर्वकं। शविलर भूम्यां

पं. ६. कर्दम्वालग्रामे गाजणरहटं मध्यवृति सं

पं. ७. जुक्ता प्रदत्तः भाग्य काल्हण साक्षि: वणिक्काल

पं. ८. उ साक्षि मेहरू रामूणसाक्षि: सीलंकिउ वी

पं. ९. ल्हण साक्षि: ऽश्वमेघ सहस्त्राणि वाजपेय सता (शता)

पं. १०. [निचगवां कोटि] प्रदानेन भूमिहर्तान सुध्यति (शुद्धति)

पं. ११. ·····················लयतिःऽहं पुण्य पवित्रता

पं. १२. ···· ··············स्यदोषं ऽअस्तिः सुभम् (शुभम्) ।

आहाड का ताम्रपत्र[७], (१२०६ ई०)

यह ताम्रपत्र गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे, भोलाभीम) का (आपढ़ादि) वि० सं० १२६३ श्रावण सुदि २ (ई० स० १२०६ ता० ६ जुलाई) रविवार का है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें मूलराज से लेकर भीमदेव दूसरे तक की वंशावली दी गई है। इसके पश्चात् इसमें लिखा है कि 'परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, अभिनव सिद्धराज श्री भीमदेव ने अपने अधीन के मेदपाट (मेवाड़) मंडल (जिले) के आहाड में एक अरहट उससे सम्बन्ध रखने वाली भूमि तथा कडवा के अधिकार वाला क्षेत्र एवं उसके निकट का मकान नौलीगाँव के रहने वाले कृष्णात्रिय गोत्र के रायकवाल ज्ञाति के ब्राह्मण वीहड के पुत्र रविदेव को दान दिया। इस दान-पत्र से कई ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस दान-पत्र से निश्चित है कि वि० सं० १२६३ (ई० स० १२०६) तक मेवाड़ पर गुजरात के राजाओं का अधिकार था। इसमें मंडल शब्द का प्रयोग जिले की इकाई के लिए प्रयुक्त किया गया है जिससे प्रमाणित होता है कि आहड मेवाड़ का एक मंडल (जिला) था।

इसका कुछ मूलपाठ यहां उद्धृत किया जाता है—

"ॐ स्वस्ति····समस्त राजावली विराजितपरम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मूलराज देव पादानुध्यात···परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराभिनवसिद्धराज श्री मद्भीमदेवः स्वभुज्यमान मेदपाट मंडलांतः पातिनः समस्त राज पुरुषान्········· बो (बो) धयन्यस्तुवः संविदितं यथा। श्री मद्विक्रमादित्योत्पादित संवत्सरशतेषु द्वादशेसु (षु) त्रिषष्ठि उत्तरेषु लौ. श्राम्व (व) ण मास शुक्लपक्ष द्वितीयायां रविवारेऽत्रांकतोपि संवत् १२६३ श्राम्व (व) ण शुदि २ रवावस्यां··········श्री मदाहाडतल·············· [वमाउवा] नामारघट्टस्तत्रति व (व) द्धवा (वा) ह्यभूमिकडवासत्कक्षेत्रसमं श्रीमदाहाडमध्ये अस्य स···········गृहान्वितः·······नवलीग्राम वास्त० कृष्णा त्रिगोत्रे (त्रेयगोत्राय) रायकवालज्ञाति० ब्रा (ब्रा)० वीहडसुत रविदेवाय शासनोदकपूर्व्वमस्माभिः प्रदत्तः···········

कदमाल का ताम्रपत्र, (१२५९ई०)

यह ताम्रपत्र ७"×६" के आकार के तांबे के टुकड़े पर खुदा हुआ है जिसके ऊपर के भाग में एक छेद है जो कड़ी के द्वारा दूसरे ताम्रपत्र को इसके साथ रखे जाने के लिए है। इसकी चद्दर प्रतीत होता है कि कूटकर बनाई गई हो। इसकी

७. इण्डियन ओरियन्टल कॉन्फ्रेन्स, दिसम्बर १९३३;

ओझा डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४८-४९।

ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६-३७, ६१।

भाषा संस्कृत मिश्रित स्थानीय भाषा है और उसमें प्राकृत की छाया है। लिपि उस समय की लिपि के अनुसार सुवाच्य है, परन्तु लेखक अथवा खोदने वाले ने इसमें अशुद्धियाँ रख दी हैं, विशेष रूप से 'श' के स्थान पर 'स' का खूब प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त ताम्र-पत्र मुझे १६४८ में श्री लेहरूलाल, छोटा पालीवाल के पास देखने को मिला। इसकी प्रतिलिपि उसी समय तैयार कर ली गई थी। इसमें कुल १३ पंक्तियां हैं।

मेवाड़ के गुहिल वंशीय नरेश तेजसिंह के समय का यह प्रथम ताम्रपत्र है जिसमें सूर्य-पर्व में शिवगुण के पुत्र त्रिकंब को तेजपाल द्वारा कदमाल गाँव में भूमि दान देने का उल्लेख है। इस अनुदान में वहाँ के शिष्ट व्यक्तियों की साक्षी है जो उस समय की परम्परा का द्योतक है। इसी तरह मन्त्री की भी प्रमुखता इससे स्पष्ट होती है।

इसका अक्षांतर इस प्रकार है।

पं. १. "ॐ" स्वस्तिश्री, सं० १३१६ वर्षे महाराजाधिराज
पं. २. श्री तेजसिंहदेव: रा० ललतपालस्य मन्त्रि संमंधरस्य:
पं. ३. वर्तमाने। चहुआण: रा० सीहा सुत रा० चौदस सक-
पं. ४. ल राज्ये कद्दम्वाल ग्रामस्थिते: ब्राह्मण सि (शि) वगुण
पं. ५. सुत तीकम्ब हस्ते: उदक पूर्वकं। वैशाख वदि ० (मे)
पं. ६. सूर्य पर्वे ऽरहट ग्राजण मध्ये शविलरभूम्यां। प्रदत्त:
पं. ७. भाई विजीयउ साक्षि:। ब्राह्मणभालउ नालउ साक्षि: मं
पं. ८. त्रि चांदउ साक्षि: वणिक् वइरउ वील्हण चाह० वाघ
पं. ९. रणसीह साक्षि: मेहरउ वइजउ चाव: मोरि उलवउ: क
पं. १०. भा: धांधल: ऽश्वमेध सहश्राणि वाजपेय सतानि च:
पं. ११. गवां कोटि प्रदानेन। भूमिहर्तानि सुध्यति: ऽस्मतवंसे
पं. १२. समंकेने ऽग्रनोराजा भविष्यति। तस्याहं करे लग्नोनलो
पं. १३. पं ममसासनं ऽग्रस्य सासन परिपालयति: सुभं

वीरसिंह देव का ताम्रपत्र* (१२८७ ई०)

यह ताम्रपत्र वीरसिंह देव का है जिसका समय (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४३ (चैत्रादि १३४४) वैशाख वदि १५ (अमावास्या, ई० सं० १२८७ ता० १३ अप्रेल) रविवार का है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें देवपाल देव के श्रेय के निमित्त भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण वैजा के पुत्र ताल्हा को कतिज (कतियोर) पथक (परगने) के माल गांव में डेढ़ हल भूमिदान करने का उल्लेख है। इसमें आगे पीछे की भूमि सहित एक घर देने को भी अंकित किया गया गया है। इस ताम्रपत्र से वागड के राजाओं के वंशक्रम को निर्धारित करने में सहायता मिलती है, यथा वीरसिंह के पहले देवपाल

*ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, ३६–३७, ६१

देव यहां का शासक था और उनकी राजधानी वटपद्रक (बड़ौदा) थी। इस दान-पत्र के साक्षीरूप में कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम दिये हैं। जिनमें श्री नूलदेवी (राजमाता), मंत्री वामण, खेतल, पुरोहित मोकल, व्यास सोमादित्य, राजगुरु सूदा, सेठ पारस, भीमा, श्रोत्रिय वावण और पंडित ताल्हा आदि मुख्य हैं। इन साक्षियों के नाम से यह प्रमाणित है कि उस समय शासन व्यवस्था में राजमाता, मन्त्री, राजगुरु, पंडित आदि का हाथ था और स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी ऐसे कार्यों में सम्मिलित कर लिया जाता था। इससे यह भी स्पष्ट है कि १३वीं सदी के वागड को मंडल में विभाजित किया गया था और मंडलों के नीचे पथक (परगने) एवं ग्राम थे। इसमें उस समय के कतिज नाम के पथक का उल्लेख है। इसके मूलपाठ का कुछ अंश इस प्रकार है—

"ॐ।। संवत् १३४३ वैशाख अ (=असित) १५ रवावद्येह वागड वटपद्रके महाराज कुल श्री वीरसिंह देव कल्याण विजय राज्ये........इहैव........महाराज कुल श्री देवपालदेव श्रेयसे भारद्वाज गोत्राय दोडी ब्राहम वयजापुत्राय ब्रा० तल्हा शर्मणे कतिज पथ के माल ग्रामे भूमिहल १½ हलैकस्य भूमि गृह १........एतद् शासनोदक पूर्व धर्मेण संप्रदत्त"।

नादिया गांव का ताम्रपत्र[८] (१४३७ ई०)

यह ताम्रपत्र नादियाग्राम, सिरोही से उपलब्ध हुआ था जिसे डा० ओझा ने राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में सुरक्षित किया। इसका समय वि० सं० १४९४ आषाढ़ वदि है। इसमें अजाहरी (अजारी) परगने के चूरडी (चवरली) गांव में दवे परमा को भूमि दान करने का उल्लेख है। इससे प्रमाणित है कि आबू का प्रदेश महाराणा कुंभा द्वारा उक्त संवत् के पूर्व अपने अधिकार में किया गया होगा। यह समय देवड़ा सैंसमल का होना चाहिये जब आबू कुंभा के अधीन हो चुका था। इस ताम्र-पत्र का उपयोग १४वीं शताब्दी की स्थानीय भाषा के अध्ययन के लिए भी है। इसमें प्रयुक्त 'प्रगणं' शब्द बड़े महत्त्व का है जिसका रूपान्तर परगना है इसका कुछ मूलपाठ इस प्रकार है।

"स्वस्ति राणा श्री कुंभा आदेशता ।। दवे परमा जोग्य अजाहरी प्रगणं चुरडीए ढीवड्डु नाम गणासू षे (खे) त्र वडनां नाम गोलीयावउ। बाई श्री पूरबाई नइ अनामि दीधउ........।। संवत् १४९४ वर्षे आषाढ वदि ।।...."

खेरोदा का ताम्रपत्र[९] (१४३७ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा कुंभा के समय का है जिसमें वर्णित है कि उक्त महाराणा ने श्री एकलिंगजी के मन्दिर में प्रायश्चित कर दस हल भूमि का दान उपाध्याय जोशी जाना को दिया। इस दान में खेरोदा गांव के अलग-अलग स्थानों के खेतों को

---

८. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० २८४

९. ओल्ड डिपो. रेकार्ड नं० २५८

दिया गया था जिनका पड़ौस एवं नाम इसमें दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उन खेतों के पास से जाने वाले मार्गों को भी दिया गया है जो 'भटेवर की वाट', 'माहोली री वाट' 'निवाण्यारी वाट' और 'वगडी री वाटी' के नामों से प्रसिद्ध थे। इससे खेरोदा की केन्द्रीय स्थिति का बोध होता है जहाँ से कई व्यापारिक मार्ग जाते थे। इसमें शंभू को ४०० टका के दान का भी उल्लेख है जो उस समय की प्रचलित मुद्रा थी। इस दान के साक्षीरूप खेरोदा के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम भी उल्लिखित हैं जो कि स्थानीय परम्परा का बोध कराते हैं। यह लेख वि. सं. १४९४ माह सुदी ११ गुरु का है जो कुंभाकालीन आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसमें एकलिंगजी में राणा द्वारा प्रायश्चित करने का जो उल्लेख है वह बड़े महत्त्व का है। उक्त महाराणा का १४३३-१४३९ का काल विजयों का काल है। संभवत: १४३७ में किसी विजय के अनन्तर धर्मस्थान में प्रायश्चित कर इस अनुदान द्वारा उसने पुण्य कार्य सम्पादन किया हो। ऐसी विजयों में जो इस अवधि में की गई थीं वे सारंगपुर, नागौर, गागरोन, अजमेर, नरायणा, मण्डोर, आदि की थीं, इन्हीं किन्हीं विजयों के उपलक्ष में परम्परा के अनुसार प्रायश्चित के अनन्तर यह धार्मिक कार्य सम्पादित किया गया था। इसका मूल पाठ जो उस समय की स्थानीय भाषा में है इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री एकलिंग प्रसादातु महाराजाधिराज महाराणा श्री कुंभकर्ण आदेशात् षेरोदा ग्राम मध्ये हलां दशां १० मुं. भटेउर री वाटी खेत गूजरारा रहटे वाली पीपली सुद्धां भटेवररी वाटी नीचां छापर आगे सुद्धां खेत १ मेललागोढि माहोलीरी वाटी वहोडीरो येडो खेत १ तलारे उटे निवाण्या री वाटी षेत १ गोइरारू वाटी वगडिरी वाटी खेत १ अनलाई तलाई आगोरी खेडेखरसाणे रो एवं भुंइ हल १० री राणे श्री कुंभकर्ण उपाध्याय जोशी जाना सुत हरी थी टका शत ४०० उपाध्याय श्रुंभट दीवी सही दीवी प्रोहित मोखा इत साह॰साहण तीरा विद्यमान दिवाडी गामरा गामहटा श्रु दिवाडी देव श्री एकलिकमाहे सर्वप्रायश्चित करे दीवी सही "संवत् १४९४ वर्षे माह शुद्धि ११ गुरु दिनो। खेरादारी भुइरूंपत्र "शुमंभवतु" कल्याण भूयात्" ॥

करेडा गांव का ताम्रपत्र [10], (१४६० ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा कुंभा के समय का है जिसमें ओझा कलु को करेडा ग्राम में ३ हल भूमि चन्द्रपर्व के समय पुण्यार्थ देने का उल्लेख है। इसका मूल इस प्रकार है—

"स्वस्ति राणा श्री कुंभा आदेशात् ॥ ओजा कलु योग्यं करेडा ग्राम मध्ये क्षेत्र हलवा ३ उदक दीधऊं चन्द्रपर्व मध्ये दत्ता। संवत् १५१७ वर्षे पोष सुदी १५ णने लिषतं दुअ श्रीमुख प्रतिदुए रावनरसिंघ"

---

१०. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं. १३९१

पारसोली का ताम्रपत्र [11], (१४७३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा रायमल के समय का है। इसमें उल्लिखित है कि उक्त महाराणा ने गणेशराय चोबीसा ब्राह्मण को पारसोली गाँव में, जो परगना वारा में था, तीसरे हिस्से की जमीन पुण्यार्थ दी। इस ताम्रपत्र में भूमि की किस्मों पर प्रकाश पड़ता है जो पीवल, गोरमो, माल, मगरा आदि नामों से जानी जाती थी। इस भूमि को समस्त लागों से भी मुक्त कर दिया गया था जो उस समय प्रचलित थीं। ये दान चन्द्रपर्व के समय किया गया था। इस दान-पत्र को पंचोली रायरणछोड़ टीकमदासोत ने लिखा था। पारसोली गांव में अनुदान की व्यवस्था बड़े महत्त्व की है। उदा से राज्य छीनने के समय रायमल इसी मार्ग से चित्तौड़ गया था। संभवतः गणेशराय चोबीसा उसका सहयोगी रहा हो। ये दान-पत्र भी उसके राज्यारोहण के निकट काल का ही है जिससे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है।

चीकली ताम्र-पत्र [12], (१४८३ ई०)

इस ताम्र-पत्र की भाषा १५वीं शताब्दी की वागडी है जिसमें खेतों के टुकड़ों को कटकों में बाँटने की पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। इसमें उस समय लिए जाने वाली लागतों का उल्लेख है। इसमें पटेल, सुथार एवं ब्राह्मणों द्वारा खेती की जाने का वर्णन है। प्रस्तुत ताम्रपत्र में रावल गंगदास द्वारा जोशी वेणा को भूमि का अनुदान देना अंकित है। इसका मूल इस प्रकार है—

"संवत् १५४० वर्षे फागण वदि ७ सनौ अद्येह श्री गिरिपुरे राउल श्री गंगादास आदेसात जोसी वेणानइ आचन्द्रार्क आघाटे श्री शलाए ने उलहणी श्री देहासिरि उदक करी आविऊं छई ते मुई भाडुला आगड माही आयु छई तथा लहुडो चीखली माहि घकुड़ी नु काढछई तथा वडीआ खेत्रना कटका २ तथा खलालू भाठी डो श्री सहित गाव माही धाती आपूछई अपरं हल ३त्रणी भूमि गिरिआता ग्राम माहि आपी भूमि छई तथा आंबा तत्र आगला राजश्री पई छई ने ते भूमि नी व्यही हल भुमि २ पटेल रावुसेलु खेडि छई तेऊ वरुज अरहट खान सहित सुतहार लखमण वेडई छइ तेहनी स्वस्या कुंणि न करवी स्वस्या करइ तेहन राउल गियानी आण छइ। दुई श्री स्वयं प्रति दुए परमार विह महे लखमणसी तिवाडी"

रायमल का ताम्रपत्र [13], (१४८७ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा रायमल का है जिसमें जोशी कडुआ को वरवाडे में एक रहट व खेत देने का उल्लेख है जो सरकारी भूमि से दिया गया है। इसकी भाषा कई जगह अस्पष्ट है। इसका मूलपाठ इस प्रकार पढ़ा गया है—

"स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री रायमल आदेशात्॥ जोसी

---

११. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० १७७

१२. डूंगरपुर राज-पत्र

१३. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० १२८६

कडुग्रा योग्य ।। रहट एक हुडत्ता वरवाडा मध्ये·······हुते तु कडुग्रा हे ग्रावाटल छे दत्ता रहट एक वडला ग्रनइ ग्रथमज पेत्र जोसी कडुग्राती रहहुता तु खेत्र रावलाती ग्रापी करण नाही करे ।। संवत १५४४ वर्षे जेठ सु. ५ बुए श्री मुखे"

मेनाल का ताम्रपत्र[14], (१४८८ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा रायमल्ल के समय का है जिसमें राजि नामक मेनारिया ब्राह्मण को सौ टंका प्रतिवर्ष का अनुदान के उल्लेख है। यह अनुदान उक्त महाराणा ने अपने पिता कुंभा एवं अपनी माता अपूर्व देवी के श्रेयार्थ चित्तौड़ के समाधीश्वर के समक्ष किया। इस ताम्रपत्र में १५ वीं शताब्दी की प्रचलित भाषा का रूप है जिसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री रायमल्ल ग्रादेशाती गाम महणार टंका सो १०० ऽ ग्रंके टंका सो एक श्री राजि वरस करव ग्रापता तु श्री राजि महिणार्‌या ब्राह्मण लोगां उदक करे पाम्या संवत १५४५ वर्षे मार्ग वदि ३० ग्रमावस्या सोमेदेव श्री समाधीश्वर संनिध्य ने टंका सो १०० ऽ एक वरस कर्‌या उदक कीयू पूजा राणा श्री कुंभकर्ण राणी श्री ग्रपूरवदे प्रीती उदक कर्‌या"।

ग्रांवांगाम का ताम्रपत्र[15] (१५०० ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा रायमल के समय का है जिसमें उल्लिखित है कि महाराणा ने पंड्या रामदास को ग्रांवां गांव में सात हल भूमि का दान किया। इसकी ग्राज्ञा पंचोली हीरा के द्वारा दी गई। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री रायमलजी ग्रादेशात् ।। पंड्या रामदास योग्यं गाम ग्रांवो माहे हल ७ तुइ ग्राघाट उदकि करे दई संवत् १५५७ वर्षे माह सुदि १५ पर्वणी दुवै श्रीमुखि प्रति दुवै पंचोली हामण····"

तलोडी का ताम्रपत्र[16] (१५३३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा विक्रमादित्य के समय का है जिसमें व्यास शंकर को तलोडी गांव सूर्यपर्व पर पुण्यार्थ देने का उल्लेख है। इसकी ग्राज्ञा शाह ग्राशा द्वारा दी गई थी ग्रौर उसे पंचोली विनायक ने लिखा था। ये ग्रनुदान बहादुरशाह के चित्तौड़ ग्राक्रमण की सम्भावना के समय किया गया प्रतीत होता है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री विक्रमादीत ग्रादेसातु व्यास····भरत साकर योग्य १ गाम थने तलोडी मया कीधी उदकी ग्राघाटि दती सवत् १५८६ वरषे भावदा-वदी ३० सूर्य परव मव्यदत्ता दुए साह मावा लिपतं पंचोली विनायक स्वदत्तां····"

---

१४. ग्रोल्ड डिपो० रेकार्ड नं० ६२५

१५. ग्रोल्डडिपोजिट रेकार्ड, बिना नंबर

१६. ग्रोल्ड डिपो० रेकार्ड जागीर मिसल २६/४७ सं० ६५

पुर का ताम्रपत्र[१७], (१५३५ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा श्री विक्रमादित्य के समय का हैं जिसमें हाडी कर्मेती द्वारा जौहर में प्रवेश करते समय तिवाडी करण को पुर में एक हल भूमि दान देने का उल्लेख है। इसका समय संवत् १५९२ चैत्रवदि ११ है। इस ताम्रपत्र का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। ये वह समय था जब बहादुरशाह के चित्तौड़ के दूसरे घेरे के समय सभी राजपूतों ने उक्त गढ़ की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया था और राजपूत वीराङ्गनाओं ने जौहरव्रत द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा की थी। इस ताम्रपत्र से जौहर की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है तथा चित्तौड़ के द्वितीय शाके का ठीक समय निर्धारित होता है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री विक्रमादित जी बाइ श्री करमती हाडी जी जौहर पैठता हल १ एक उदक दीधी तिवाडी करनौ जाति गुजरगोड""नै दीधो दुवाई पंचोली जेस्यंघ प्रतिदुवे श्री राणी करमैती वाई श्री हजूरी धरती हल १ एकरी पुरमाहे दीधी""संवत् १५९२ वरषे चैत्र मासे कृष्णपक्षे एकादसी बुधवारे चित्रकोट माहे दीये सुभं भवतु.॥"

धनवाडा का ताम्रपत्र[१८], (१५२१ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा साँगा के समय का है जबकि वह गुजरात आदि स्थानों की विजयों से निश्चिन्त हो बाबर के आक्रमण के पूर्व अपने राज्य की व्यवस्था में संलग्न था। इसमें उल्लिखित है कि उसने पुरोहित दामोदर को, जो पल्लिवाल जाति का ब्राह्मण था, अनुदान देकर सन्तुष्ट किया। इसमें दिया हुआ समय वि० सं० १५७८ जेठ वि० ३० शुक्र है।

गाँव बटेरी का ताम्रपत्र[१९], (१५२५ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा सांगा के समय का है जिसमें श्रीधर को बटेरी गांव पुण्यार्थ दिया जबकि उसके द्वारा दूसरे राजाओं से कर आदि संग्रह का काम लिया। इसका लेखन साह गिरधर ने किया। इस ताम्रपत्र का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है जिसमें राणा की राजनीतिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसके समय में अनेक राजा कर, लीक आदि देते थे यह भी इसमें उल्लिखित है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री सागा आदेसातु" धाम बटेरी कस्य श्रीधर योगा आघाट सरत्र इते दुजा (रजा) दण्ड कर लीक देता पहुंचा व्यामि महे आघाट दत्ता संवत् १५८२ वर्षे वैसाक वदि १ सुक्र श्रीमुषे लिषत साह गरधर पंचोली घालारा स्वदत्त परदत्त वा यो हरति वसुधरा षष्टि वर्षे सहसाणि विष्टाया जायते क्रम।"

---

१७. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं० १४९८

१८. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, उदयपुर की प्रतिलिपि के आधार पर

१९. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं. २६/१४४

संग्रामसिंह का ताम्रपत्र[२०] (१५२६ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा संग्रामसिंह के समय का है जिसमें श्रीधर को सूर्यपर्व में एक गांव पुण्यार्थ देने का उल्लेख है। यह पुण्य खनवा के युद्ध के पूर्व चित्तौड़ दुर्ग से दिया गया था जबकि बाबर पानीपत के युद्ध को जीत चुका था। उन दिनों युद्धारम्भ के पूर्व तथा पश्चात् अनुदान देते थे ऐसी परम्परा थी। इसका मूल पाठ, जो कई जगह अस्पष्ट है, इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री चित्रकूट गढ महादुर्गात् महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्राम आदेसात् ।। गांव १ मिह प्राप्तगा ग्रामे भट्ट कडुआ विद्याधर योग्यं सूर्यपर्व उदक आधार करे दीध संवत १५८३ आपाड विदि ७ "

जालिया गांव (मेवाड़) का ताम्रपत्र [२१], (१५३२)

यह ताम्रपत्र महाराणा विक्रमादित्य का है जिसने संवत् १५८६ में पुरोहित जानाशंकर को जालिया ग्राम बाई लपा से विवाह करते समय मांडलगढ़ में पुण्यार्थ दिया। इस ताम्रपत्र से सिद्ध है कि उक्त संवत् के पूर्व महाराणा गद्दी बैठ गये थे। कर्नल टॉड ने संवत् १५६१ में महाराणा का गद्दी बैठना लिखा है वह ठीक नहीं है। अमरकाव्य में तथा ख्यालों में भी विक्रमादित्य का गद्दी पर बैठना संवत् १५८७ में माना है। मिराते सिकन्दरी तथा वंशभास्कर से भी इस संवत् की पुष्टि होती है। ताम्रपत्र का मूलपाठ इस प्रकार है—

"स्वस्त श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री विक्रमादित आदेसातु प्रोहीत जानासकर हो ग्राम १ जाली मयाकरे आघाटी रामदतु करी दिधो श्री नाइण प्रीतीं करे दिवो श्रीराजी माडलगढी पारणीवा पधार्‌या बाई लपा परणवा आया तिरो चौड़ी मधे उदक किधो रा श्री रावत भवानीदासजी हाडा अरजन विदमान सहस्रारा बहु भीर वसुधा मुक्ताराम भी सगरादिभी —स्याजसजदाभुमी तस्या तस्यतदाल स्वदत परदत वाजो हरंती वसुंधरा पस्ट वर्ष सहस्राणा वीष्टायां—जाइते क्रमी १ संवत् १५८६ वषे वैसाप सुदि ११ लीपत पंचोली महेस छोजी"

विजन गांव का ताम्रपत्र [२२], (१५३६ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के समय का है जबकि उसने अपने राज्यारोहण काल के उपरान्त चित्तौड़ के आसपास पुनः नई व्यवस्था स्थापित करना आरंभ किया था। उसके राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों की उपलब्धियों में इससे काफी प्रकाश पड़ता है। इसमें दिया गया समय वि० सं० १५६६, पौष सुदी १५ है।

---

२०. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० ६२६,

२१. वीर विनोद, भा० २, पृ० २५, ५५।

२२. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, उदयपुर की प्रतिलिपि के आधार पर।

देवथडा गांव का ताम्रपत्र [२३], (१५४३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के काल का है जिसमें उल्लिखित है कि उसने केशवनाथ ब्राह्मण को देवंथडा गाँव में अगणवे रहट का वाड सहित अनुदान किया। इसकी आज्ञा साह हीराचंद के द्वारा दी गई थी। यह ताम्रपत्र भी उसी संधि काल का है जब मेवाड़ शेरशाह के आक्रमण की संभावना की परिस्थिति से गुजर रहा था। इसका समय वि. सं. १६०० माघ वदि अमावस्या है। इसमें प्रयुक्त किये गये शब्द रहटि, वाड्या आदि उस समय की भूमि व्यवस्था के अध्ययन के लिए उपयोगी हैं।

पलासिया गांव का ताम्रपत्र [२४], (१५४३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के समय का है जिसमें व्यास शंकर को पलासिया गांव, परगने मांडलगढ़, का ग्रास पुण्यार्थ दिये जाने का उल्लेख है। इसकी आज्ञा भवन्तदास तथा साह आशा के द्वारा दी गई। इसका भी समय शेरशाह के चित्तौड़ आक्रमण की परिस्थिति के लगभग का है इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री उदेसिंघ आदेशातु व्यास संकरकस्य ग्रास ममाकीधो १ ग्राम पलास्यो पडीगाने माँडलगढ़ रे मया कीधा आघाट उदक करे मया कीधो दुए श्रीमुख प्रति दुवे राजत भवान्तदास साह आसो स्वदत्तं·······संवत १६०० वरषे मगसर सुदी ४ गुरु।

घोडच का ताम्रपत्र [२५], (१५४३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के समय का है। इसमें घोडच गांव के केशव-नाथ को एक रहट तथा बीड़े की भूमि देने का उल्लेख है। यह ताम्रपत्र बड़े महत्त्व का है क्योंकि यह भूमिदान भी उस समय का है जबकि संभवतः महाराणा शेरशाह के आक्रमण की संभावना के काल से गुजर रहा था। उस समय पुण्यादि कार्यों को परम्परा के अनुसार सम्पादित किया जाता था। इसका ठीक समय वि० सं० १६०० माघ वदि अमावस्या है।

गांव महदी का ताम्रपत्र [२६], (१५४४ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के समय का है जिसमें व्यास ब्रह्मदास को ग्राम महदी का पुण्यार्थ देना अंकित है। इस समय साह आसा प्रधान पद पर था। इसका समय वि० सं० १६०१, माह सुदि १२ है। संभवतः शेरशाह के आक्रमण की संभावना से निश्चिन्त अवस्था में ऐसा अनुदान किया गया हो। जोधपुर की विजय के बाद (१५४३ ई०) शेरशाह चित्तौड़ की ओर आ रहा था कि उसके जहाजपुर के

---

२३. ओल्ड डि० रेकार्ड नं० २५६।

२४. ओल्ड डि० बिना नंबर।

२५. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं० २५८।

२६. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० ७५६।

खीमे पर राणा ने किले की कुंजियाँ उसके पास भेज दीं और सुलह कर उसे लौटा दिया। इस अर्थ में इस दान-पत्र का बड़ा महत्त्व है जिसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री उदेसिंघ आदेसातु व्यास ब्रह्मदास कस्य गाम १ महदी आधार उदके कर मया कीधो संवत् १६०१ वर्षे माह सुदि १२ दुए श्रीमुखे प्रतिदुए साह आसो..........."

गाँव पाडीव (सिरोही) का ताम्रपत्र[२७] (१५४६ ई०)

इस ताम्रपत्र में अरिसिंहजी दुर्जणसाल द्वारा जोसी रामा को भूमि दान देने का उल्लेख है। इसमें ढीवडुं तथा खेत्र एवं ग्रास शब्दों का प्रयोग उस समय के सिंचाई तथा खेतों की व्यवस्था के लिए प्रयोग किया गया है। ये अनुदान चन्द्रग्रहण के समय किया गया था।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराव श्री अरिसिंहजी दुर्जणसालजी व चनातु गांव पाडीव माहे ढीवडुं १ खेत्र नीचे १३ वांणिहे भा मोकाम डावला जोसी रामानी उदाकं आकारि मया कीर्ध्यं हैमा समविज हाजी वरसाली ग्रास सर्वलाल हाली उघरथा हरस मेति जोसी रामानु दीधु संवत १६०३ वर्षे काती सुदी १५ श्रुक्रो चन्द्र-ग्रहण उदक कीध्म स्वदेतं परदतांवा सोहरे वसुंधरां पष्टिवष सहश्राणि विष्टया जायता क्रमि श्रीरस्तु"

भीमगढ गाँव का ताम्रपत्र[२८] (१७५६ ई०)

भीमगढ गांव (वांसवाडा) का एक ताम्रपत्र महारावल पृथ्वीसिंह के समय का है जिसमें वि० सं० १८१३ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० सं० १७५६ ता० २६ नवम्बर) को लूणावाडा के स्वामी सखतसिंह से युद्ध होने का उल्लेख है। इस अवसर पर उसके (सखतसिंह) काका उदयसिंह का मारा जाना और शत्रुओं से फतहजंग नामक नक्कारे का महारावल के हाथ आना अंकित है। इस युद्ध में राणा भागा, उसकी फौज नष्ट हुई, केवल मात्र एक घोड़ी वच गई। इस विजय के उपलक्ष में नगारची मामथ (महम्मद) को गाँव भीमगढ इनाम के रूप में देने का वर्णन है। उपर्युक्त ताम्रपत्र में सखतसिंह नाम भूल से उत्कीर्ण हुआ हो या प्रतिलिपित हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि लूणावाडा में इस नाम का कोई राणा नहीं हुआ। इस समय वहाँ का शासक वख्तसिंह था और यह युद्ध भी उसी के साथ हुआ था।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"रायांराय महाराजाधिराज महारावल श्री पृथ्वीसिंघजी विजेराज्ये नगाराजोडी सूंतरी फतेजंग गांव लूणावाडे राणा सखतसिंहजी सूं कजीयो हुओ तारी आवी छे। सं० १८१३ ना मगसर सुदि ५ दने श्री राउल जी ने फत्ते हुई।

---

२७. सिरोही रेकार्डस से प्राप्त अपेन्डिक्स 'बी'।

२८. ओझा, वांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३४–१३५।

राणा नाठा, फौज मराणी, राणानो काको उदेसिंघजी मारा गया............
फौज सर्व मारी गई घोड़ी १ वेरी आवी छे इस इनाम में नगारची मामय (महम्मद) ने गाम भीमगढ आप्यु छे तेतुं खुशी थी वापरजे जुगो जुग"।

दामाखेड़ी का ताम्रपत्र[29] (१५६४ई०)

यह ताम्रपत्र दामाखेड़ी गाँव को पुरोहित दामा को सूर्यग्रहण पर दान देने का उल्लेख है। इसका आकार ८.७"×५" है। इसमें सूर्यपर्व पर दिये जाने अनुदान और अन्य करों के न लिये जाने की व्यवस्था दी है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"श्री महारावत जी श्री तेजसिंह जी वचनातु आगे बरामण परोत दामाजी जोग्य थने श्री कृष्णार्पण सूरजपरव माहे गाम दामाखेड़ी नीमसीम सुदा जी माहे जमीन वीघा ११०० अगारे से या चन्द्रार्क यावत् उदक आघाट कर सारी लागट व लगट, टकी दुसी सहित नीरदोस करी आपी जणीरी मारा-वंशरो थई ने चोलण करेगा नहीं चोलण करे जणीने चीत्तोड़ भाग्यानु पाप छे। स्वदत्तां आदि............दुवे श्री मुख हर संवत् १६२१ रा वर्षे भादवा सुदी ११ दीने श्रीरस्तु"।

इसको चन्द्र-ग्रहण पर न देकर सनद पीछे से बनाया जाना प्रमाणित होता है क्योंकि सूर्य ग्रहण आषाढ़ वदि ३० सं० १६२१ को था।

मुलेलागाँव का ताम्रपत्र[30] (१५६९ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह का है जिसमें शिव को मुलेला गांव में एक रहट देने का उल्लेख है। इसकी आज्ञा शाह जस्स के द्वारा दी गई थी। इसका समय वि० सं० १६२६ भाद्रपद शुक्ला १५ है। लगभग वि० सं० १६१६ से १६२६ तक के काल के इस प्रकार के सैकड़ों ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह के मिलते हैं जिनको गिरवा जिले को बसाने के उपलक्ष में दिये गये थे। चित्तौड़ छोड़ने के बाद नई उदयसिंह की व्यवस्था पर प्रकाश डालने में ऐसे ताम्रपत्र बड़े उपयोगी हैं। यह ताम्रपत्र भी उनमें एक है।

ढोल का ताम्रपत्र[31] (१५७४ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा प्रताप के समय का है जबकि उसने ढोल नामक गाँव में सैनिक चौकी का प्रबन्ध किया था और उसी के प्रबन्धक जोशी पुनो को ढोल में भूमि का अनुदान दिया था। हल्दीघाटी के युद्ध के पूर्व किये गये प्रबन्ध का यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था जिस पर उक्त महाराणा ने पूरा ध्यान दिया। इसका

---

२९. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १०१

३०. ओल्डडिपो० रेकार्ड, नं० ६९०; जी० एन शर्मा मेवाड़ एण्ड मुगल, पृ० ५७; जी० एन शर्मा, बिबलियोग्राफी, पृ० १४

३१. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, उदयपुर, नं० २१४

आकार ६"×४" है और मूल पाठ में ८ पंक्तियां हैं।
जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाजी प्रतापसिंघ जी आदेशातु जोसी पुनो कस्य गाम ढोल माहे चोकीरा खत्रा माहे सवारारी मुरचा घाटे रार वखतां [राखी] .... मया कीधा संवत् १६३१ वरषे काती सुदी १५ श्री मुख प्रति हुकम धणीरा माफिक पंचोली गोवर्धन"

गाँव पीपली (मेवाड़) का ताम्रपत्र [३२] (१५७६ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा प्रतापसिंह जी के समय का है। इसमें महाराणा द्वारा आचार्य बालाजी को पीपली मया करने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि हल्दीघाटी के युद्ध के बाद केन्द्रीय मेवाड़ के क्षेत्र में प्रजा को पुन: बसाने का काम महाराणा ने आरंभ कर दिया था। जिन्हें युद्ध के समय में हानि उठानी पड़ी थीं उनकी सामयिक सहायता की गई थी। इस समय भामा प्रधान के कार्य को करने लगा था और रामा भी राज्य के किसी कार्य भार को उठाये हुआ था। इसका मूलपाठ का अंश इस प्रकार है।

"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्य आदेशातु आचार्य बाला जीवा कीस्नदास वलभद्र कस्य गांव १ पीपली मया कीधो उदक आघाटे दत्ता कुंभलमेर मध्ये संवत् १६३३ वर्ष भाद्रवा सुदी ५ रीवो दुरा [श्री मुषे प्रति दुए रामजी] साह भाभो पहला पतर बले गुयो लुटे गयो सु नवो करे मया कीवो"

ओडा गाँव का ताम्रपत्र [३३] (१५७७ ई०)

यह ताम्रपत्र वि० सं० १६३४ मार्गशीर्ष वदि ३ का है। इसका आशय यह है कि महाराणा प्रताप ने ओडा गांव (मेवाड़) पुरोहित रामभगवान काशी को पुण्यार्थ दिया। यह गांव पहले महाराणा उदयसिंह ने दान किया था, परन्तु गोगुन्दे की लड़ाई के दिनों में पुराना ताम्रपत्र खो गया, जिससे यह नया कर दिया गया। इसकी आज्ञा भामाशाह के द्वारा दी गई थी और पंचोली जेता ने इसे लिखा था। राम जाति से सनाढ्य ब्राह्मण था और कोठारिया ठिकाने के चौहानों का पुरोहित था। वणवीर के समय उदयसिंह को कुंभलगढ़ में गद्दी बिठाने वाले सरदारों में रावत खान (कोठारिया) ने प्रमुख भाग लिया था। उस पर पूर्ण विश्वास होने के कारण महाराणा ने अपने भरोसे के सेवक उसी से लिये थे, जिनमें पुरोहित राम भी था। उसी समय से राम के वंशज उदयपुर में रहने लगे थे।

इस दानपत्र से महाराणा की व्यवस्था नीति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। हल्दी घाटी के युद्ध से जो अव्यवस्था हो गई थी उसको ठीक करने का काम प्रताप ने शीघ्र आरंभ कर दिया था। इससे यह भी स्पष्ट है कि राज्य में ओसवालों और

---

३२. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, जागीर मि० नं० ६५ फाइल नं० २६/१३३

३३. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४६२

पंचोलियों की प्रमुखता बढ़ गई थी।

मृगेश्वर गाँव ताम्रपत्र [३४] (१५८२ ई०)

यह ताम्रपत्र वि० सं० १६३६ फाल्गुन सुदि ५ का है, जिसका आशय यह है कि महाराजाधिराज महाराणा प्रतापसिंह ने चारण कान्हा को मीरघेसर (मृगेश्वर) गाँव, जो गोडवाड में था, भामाशाह की उपस्थिति में दिया।

इस ताम्रपत्र को मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती में 'दन्ताल-पत्र' सहित प्रकाशित किया है (चारण लोग ताम्रपत्र के आशय को कविता बद्ध कर लिया करते थे जिसे दन्ताल-पत्र कहते हैं।)

इस दानपत्र का ऐतिहासिक महत्त्व है। इससे प्रमाणित होता है कि गोडवाड का भाग महाराणा प्रताप के अधिकार में था।

गाँव पंडेर का ताम्रपत्र [३५], (१५८८ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा प्रतापसिंह के समय का है जिसमें पंडेर में राणा द्वारा त्रिवाडी सादुलनाथ को पुनः भूमिदान करने का उल्लेख है। इस ताम्रपत्र का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसके द्वारा महाराणा की पुनः विजय बनास के कोठे वाले पंडेर गांव तक हो जाना प्रमाणित है। इससे यह भी सिद्ध है कि कर्नल टॉड द्वारा वर्णित महाराणा की दयनीय स्थिति विशेष रूप से काल्पनिक है। इस ताम्र-पत्र से महाराणा की व्यवस्था नीति पर प्रकाश पड़ता है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"सिद्धश्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री प्रतापसिंघजी आदेशातु तिवाडी सादुल नाथण भवान काना गोपाल टीला धरती उदक आगे राणाजी श्रीजी तावा पत्र करावे दीधो थो प्रगणे जाजपुर रा गाम पडेर महे धरती बीगा ११ करे दीधी श्रीमुप हुकम हुओ साह भाभा संवत् १६४५ काती सुद १५।

"महाराणाजी श्री उदेसिंघजी रो दत्त"

प्रतापगढ़ का ताम्रपत्र [३६], (१५६५ ई०)

यह ताम्रपत्र वि० सं० १६५२ आषाढ़ सुदि १ का भानुसिंह द्वारा दिया गया जोशी नारायण के नाम का है। इसमें महारावत तेजसिंह के अन्तिम समय में अमलावदा गाँव में संकल्प की हुई पैंतीस बीघा भूमि दान करने का उल्लेख है। इसके द्वारा सूचना प्राप्त होती है कि आज्ञा की सूचना देने वाला कोठारी शामल एवं इसका लेखक पंचोली नेता था। इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"महाराज श्री रावत भानजी वचनातु जोशी नराणजी जोग आप्रच। भु

---

३४. सरस्वती, भाग १८, संख्या २, पृ० ६५–६८
ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४६२

३५. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं. ३६८

३६. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० ११७

वीगा ३५) आके पैंतीस रावतु श्री तेजसीजी रे आतर सम्यरा उदक करी थी, ज्या गाम अमलावदा मांहे "उदक आघाट तांबा पत्र करे दीधी (दुओ कोठारी शामल लिखु पंचोली नेता) समत १६५२ वरषे आषाड सुद १"

प्रतापगढ का ताम्रपत्र[३७], (१६२२ ई०)

यह ताम्रपत्र वि.सं. १६७६ कार्तिक सुदि ११ सोमवार का जोशी ईसरदास के नाम का है जिसमें वहु राठौड़ तथा वहुराणी खानण का ३१ बीघा भूमि सूर्य-ग्रहण के अवसर पर दान करने का उल्लेख है। इससे उस समम की धार्मिक स्थिति का पता चलता है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराज श्रीरावत सीगाजी (सिहा) वचनातु जोसी इसरदास योग्य अप्रंच खेत वीगा ३१ अंके अकतीस दीदा जेरी खेत वीगा ११ वहुजी राठोड-कमल्या महे दीदा खेत वीगा २० वहुजी रणी षानण महे घर षेती, रु भडा सो दीदो अणी वगते वीगा ३१ सुरजपरब महे दीदा उदक अघट कर दीदा मारा वंसरो, कोही कद करसी नहीं स्वदत आदि संवत १६७६ वरषे काती सुद ११ वार चोम दीने"

भांवरिया गाँव का दानपत्र[३८], (१६१८ ई०)

यह दानपत्र भांवरिया गाँव (बाँसवाड़ा) का है। इसका समय वि०सं० १६७५ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १६१८ ता. २१ नवम्बर) है। इसमें उल्लिखित है कि जब महारावल समरसी उज्जैन तथा मालवा से पीछे लौटे तो इनकी माता श्यामबाई ने उत्सव किया और उस समय भांवरिया गाँव का दान किया।

ठीकर्‌या गाँव (मेवाड़) का ताम्रपत्र[३९], (१६२८ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जगतसिंह के समय का है जिसमें गढवी खीमराज दधिवाड़्या को गांव ठीकर्‌या उदक देने का उल्लेख है। इसको साह अखेराज के प्रतिदुवे से पंचोली केसवदास द्वारा लिखा गया। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधीराज महाराणा श्री जगत्‌सिघजी आदेशातु गढवी खीमराज जात षधवाड़्या कस्य १ गांव ठीकर्‌यो वडो उदक आघाट करे मयाकीधो, दुवे श्रीमुख प्रतदुवे साह अखेराज लीपतं पंचोली केसोदास स्वदत्तं परदतं जे हरंत वीसंधरा षस्ट वरस से हसराणां वीस्टा अंजाईते क्रम संवत् १६८५ व्रषे आसाड वदी ३ सुक्रे"

पीपलूआ गाँव का दानपत्र[४०], (१६३७ ई०)

यह ताम्र पत्र महारावल समरसी (बाँसवाड़ा) के समय का है जिसका समय वि० सं० १६६३ माघ सुदि १५ (ई० स० १६३७ ता. ३० जनवरी) सोमवार है। इसको

---

३७. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १२६

३८. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १००

३९. वीरविनोद, भा० ३, पृ० ३८०

४०. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १०१

देवीदास मुकुन्द को दान देने का उल्लेख है।

मणुआरा खेड़ा का ताम्रपत्र[४१] (१६४१ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जगतसिंह प्रथम के समय का है जिसमें जोशी सुखदेव को २५ वीघा भूमि मणुआके खेडे में देने का उल्लेख है। इस भूमि में २० वीघा सीयालू के साख की और ५वीघा उन्हालू के साख की थी।। यह भूमि पहिले महाराणा कर्णसिंह जी की राणी कवरदेकोर ने द्वारिका की यात्रा के समय दी थी। इस सम्बन्ध की जव प्रार्थना की गई तो उसे पुनः जगतसिंह ने पुण्यार्थ करदी। इसका समय संवत् १६६८ पौष सुदि १५ वुध है। इससे स्पष्ट है कि महाराणा कर्णसिंह के समय में मुगलसंधि का पूरा उपयोग किया गया था, जव कि राजपरिवार की स्त्रीएँ मेवाड़ के वाहर यात्रा के लिए जा सकती थीं।

इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज जगतसिहजी आदेशातु जोसी सुखदेवकस्य गाँव मणुआरा खेडा माहे धरती वीघा २५ अंके धरती वीघा पचीस उदक आघाट करे रामा अरपण कीधी वीघा २० अंके धरती वीघा वीस सीआली वीघा ५ अंके धरती वीघा पाच उन्हाली राणाश्री करणसिंघजी री वहु कअरदेकोर दुआरकाजी गया था उठे वामण हे दे आया था सुवीनतीकरे दीवाडी दुवे श्री मुख स्वदतं परदतं जे हरंती वीसंधरा पस्ट वरस सेहसराण वीस्टाया जाईते क्रम संवत् १६६८ व्रषे पोस सुदी १५ वुधे लपतं पंचोली केसोदास"

जोथल (बाँसवाड़ा) का दान पत्र[४२] (१६४१ ई०)

इस ताम्रपत्र में खेत के लिए टुकड़े का प्रयोग किया गया है जो वाटीराम को उदक रूप में दिया गया था इसकी भाषा वागडी है। इसका आकार ११.५" × ७" है।

इसका मूल इस प्रकार है—

"महारावल श्री ५ समरसिंह जी वसनात वाटीरामजी जोगमहा उधारी ने गाम जोथल महा पसाह आपु अघोट आवद्राक जावत् आंवा ने पत्रे आपु छे तजपोर नु पाणी टुकडे आपा छि ते टुकडा लेवा पावे नहीं ते सही छ चहा परतर प्रेम कुवर वेणी पर वाणगवण अंग संवत् १६६८ वरपे अओ वद ७ सनऊ"

मचलाणा गाँव का ताम्रपत्र[४३] (१६४२ ई०)

यह ताम्रपत्र मचलाणा गाँव का है जिसमें वावा हंसपुरी का नाम है। इसका समय १६६९ पोष सुदि ११ है। इसको जोशी हरजी के दुए से पंचोली

---

४१. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं. १४६६

४२. वांसवाडा के लेखागार की प्रति से

४३. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १४५

गोविन्द ने लिखा था। इसका ऐतिहासिक महत्व यह है कि उक्त संवत् में महारावल हरिसिंह का देवलिया पर अधिकार था और उसने उपर्युक्त गाँव दान किया। संभव है कि इसके पहले ही वह अपने साथ शाही सेना लाया हो और इस भाग पर अधिकार करने में सफल हुआ हो। यह ताम्रपत्र इस समय अप्राप्य है। पंडित जगन्नाथ शास्त्री ने इस ताम्रपत्र की प्रतिलिपि ओझाजी को भेजी थी।

वेडवास गाँव का दानपत्र[४४] (१६४३ ई०)

यह दानपत्र समरसिंह (बाँसवाड़ा) के काल का है। इसमें वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १६४३ ता० ८ नवम्बर) बुधवार को वेडवास गाँव में एक हल भूमि दान करने का उल्लेख है।

ठीकरा गांव का ताम्र पत्र[४५] (१४६४ ई०)

देवलिया राज्य से मेवाड़ की सेना का उत्पात मिटाने के पीछे महारावत हरिसिंह प्रायः शाही दरबार में आता-जाता था। वि० सं० १७०१ में इस ताम्रपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि वह पुनः शाही दरबार में गया और आगरे रहते समय वि० सं० १७०१ चैत्र सुदि ५ को उसने ठीकरा गाँव दुवे जगन्नाथ और इंदर को प्रदान किया। इसमें इस प्रान्त में लगने वाले वेठ (वेगार) और वराड का जिक्र है। गाँव के लिए यहाँ 'मौजा' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराज श्री रावत श्री हरीसंघ जी वचनातु आगे दुवे जगनाथ दुवे इदरजी जोग थांग्रे गांम १ मोजे ठीकरो मया करे आवापत्रे आचंद्रारक दीदो वेठ वराड माफ आगरा मांहे दीदो श्रीमुख हजूर संवत् १७०१ चेत सुदि ५"

सांचोर का ताम्रपत्र[४६] (१६४६ ई०)

यह ताम्रपत्र ६"×५" है। इसका तोल लगभग १½ पाव के है और थोड़ा सा दाहिनी ओर टूटा हुआ है। इसको रामनारायण व्यास, सांचोर के पास देखा गया था। इसमें स्थानीय शासक बलभद्र द्वारा व्यास रामाजी को डोहली देने का उल्लेख है। डोहली के पड़ौस का तथा साक्षियों का इसमें उल्लेख दिया गया है। स्थानीय भाषा के, जो उस समय प्रचलित थी, अध्ययन के लिए इसका उपयोग है। इसका अक्षरान्तर इस प्रकार है—

"सिध श्री महाराजाधिराज महाराज जी श्री वलभदजी महाराज कुंवर श्री वणीदासजी वचन तो व्यास रामाजीनु डोहली १ दीधा वग्ती वीघा २०१ अपरे वीघा दोइसाई का मो. सीधसर माहे पेत १ भागरता पाटडी मोः उसला गांग वसरा कंकड छे। सुदीव छे। सहर १ पाः चोहया रो सेहर १ मु. राजधरारोः सेहरा १ मो उलररो सेहरी नीलडी सीवसरा रा महाराज कुंवर श्री

४४. ओझा, बाँसवाडा राज्य का इतिहास, पृ० १०१.

४५. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १४६

४६. लेखक की प्रतिलिपि से

वणीदासजी उदक कर दीधा छे..........श्री सांचोर माहे पटा लीप दीधा छे स० १७०३ श्रीवण सुद ७ ली मु. दुदा ली मु. सुजा.

डीगरोल गाँव का ताम्रपत्र [४७] (१६४८ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जगतसिंह के काल का है जिसमें गढवी मोहनदास को डीगरोल गांव, जो परगना आगरिया में था, पुण्यार्थ दिया गया था। उक्त महाराणा प्रतिवर्ष एक चाँदी की तुलादान करता था। वि. सं. १७०४ से तो उसने प्रतिवर्ष स्वर्ण की तुला करने और भूमिदान करने की भी व्यवस्था की थी। यह भूमिदान भी इसी श्रंखला में है। इस दानपत्र का महत्त्व इस अर्थ में भी है कि जगतसिंह के काल से मिलने वाले अन्य दानपत्रों में गांवों को परगनों के साथ जोड़कर अंकित किया जाता था और इस काल तक मेवाड़ में कई परगने बना दिये गये थे, जिनमें अगरिया भी एक था। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंघजी आदेशात् गढवी मोहणदास जात वोकसाकस्य गांग १ डीगरोल पडगने आगर्यारे उदक आघाट करे मया कीधो दुवे श्रीमुष स्वदत्तं परदतं आदि.......प्रतदुवे दोसी लषु लीखतं पंचोली केसोदास गोरावत संवत १७०४ वरषे मगसीर सुदी ६ गुरे"

कीटखेडी (प्रतापगढ़) का ताम्रपत्र [४८], (१६५० ई०)

यह दानपत्र कीटखेडी गांव का भट्ट विश्वनाथ को दान देने के सम्बन्ध का है। इसे राजमाता चौहन द्वारा बनवाये गये गोवर्धननाथजी के मंदिर की प्रतिष्ठा के समय दिया गया था। यह ताम्रपत्र शाहवर्पा के कहने से लिखा गया था और उसे सुनार केशव ने खोदा था। इसकी भाषा स्थानीय है परन्तु अन्त में दो श्लोक दिये गये हैं जिसमें विश्वनाथ को 'दीक्षागुरु' कहा गया है। अन्य उल्लेखों से ज्ञात है कि शाह वर्षा हूंबड़ जाति का वैश्य था और विश्वनाथ त्रिवाड़ी मेवाड़ी ब्राह्मण था। कवि गंगाराम ने उसे व्याकरण, न्याय, मीमांसा, दर्शन आदि शास्त्रों का ज्ञाता वतलाया है। इससे सिद्ध है कि हरीसिंह के समय में विद्योन्नति अच्छी होने पाई थी और उसको विद्वानों के प्रति रुचि थी। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराज रावत श्री हरिसिहजी वचनात् भट विश्वनाथ योग्य मोटो प्रसाद कीधो। मया करेने गाम १ मोजे कीटखेडी दीधो उदक आघाट तांवा पत्र करे दीधो देवल प्रतिष्ठा हुई जदी माताजी चहुआन रे देहरे दीधो आप दत्तेपु परदत्तेपु ये लुम्वन्ति वसुन्धाम ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्र दिवा करो। अणी गांव री कदी कपीत कर लागट व राड कोई करवान पावे। संवत् १७०७ वरषे मास वैसाख सुदि १५ पुनम दिने गुरु लखतं स्वहसो दुवे साह वर्पा। आचंद्रार्क यावत् श्री गोविन्द रे पट्टे पीढी री पीढी दीधो खोद्यो सोनी केशव'

---

४७. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० २७५

४८. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १६८–१६६

श्रीसिंहरावतसुतो यशवन्तसिंह
स्तत्संभवो विजयते हरिसिंहदेवः ।
तेन व्यधायि सुरसद्मम‌हा प्रतिष्ठा
श्री देवमुर्गपुरिमालवराजधान्याम् ।। १ ।।
तदा सो उदात् कीटखेडी ग्राम ब्रह्मस्पदं चयत्'
विश्वनाथाय विदुषे दत्व दीक्षागुरोः पद्म् ।।२।।

इसमें दिया गया संवत् १७०७ न होकर १७०५ होना चाहिये क्योंकि १७०५ को गुरुवार था। संभवतः ताम्र-पत्र की प्रतिलिपि के समय १७०५ के स्थान पर १७०७ लिखा गया है।

रंगीली ग्राम (मेवाड़) का ताम्रपत्र [४९] (१६५६ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा राजसिंह के समय का है जबकि उसने गंधर्व मोहन को रंगीला नाम का गांव उदक किया। इसके साथ गांव में लगने वाली खड, लाकड और टका की लागत को भी छोड़ा गया। इसको पंचोली राघोदास ने सुन्दर पवासण के प्रतिदुवे से लिखा। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसिंहजी आदेशातु गंधर्व मोहण कस्य, ग्राम १ रंगीली भरख तीरली उदक आघाट करे श्री रामाअर्पण कीधी, खड लाकड गाम टको मया करे छोड्यो, दुऐ श्रीमुख प्रत दुऐ पवासण सुन्दर लीखतं पंचोली राघोदास गोरावत स्वदत्तां परदत्तां वाजहेरंति वसुन्धरा षष्ट वर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते क्रमी संवत १७१३ वरखे जेठ वदी १० सोमे"

कडियावद का ताम्रपत्र[५०], (१६६३ ई०)

कडियावद प्रतापगढ़ से ७ मील की दूरी पर है। प्रस्तुत ताम्रपत्र श्री मनोहरसिंहजी के पास है जिससे इसकी प्रतिलिपि उपलब्ध हुई है। इसका आकार १४ २" × ६·३" है। इसमें वाटीराम को 'नेग' वसूल कर देने की अनुज्ञा रावत हरिसिंहजी के द्वारा दी गई है जिसे कई राज्य के सर्दारों ने भी स्वीकार किया है। 'नेग' वसूल करने का अधिकार चारणों को सुरजमल के समय से था इसकी पुष्टि इस ताम्रपत्र से होती हैं। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजा श्री राउत श्री हरिसिंघजी वचनातु वाटीरामजी जोग। थाने गांव १ मोजे कडियावाद महा तांबापत्र आघाट करी दीदो पग्रलामेश्रो करी नेगा करी दीदो मोटो नेग करी दीधो रारीत श्री सुरजमलतना पटेनु नेग करी दीधो वेठ वराड माफ दुवे श्री मुख हजूर कामा साह श्री वरखाजी सीवता १७२० फागण वदी १०

राजाश्री मनासिंघजी सीसोदिआ
जोगीदासजी सीसोदिया अरक

---

४९. वीर विनोद भा० ३, पृ० ५७७।

५०. श्री मनोहरसिंहजी की प्रतिलिपि से

दासजी सीसोदिय भोगीदासजी
सीसोदिग्रा सरलुदासजी सीसोदिग्रा
कहनजी सीसोदिग्रा रणछोडदासजी
सीसोदिग्रा ग्रचल दासजी सीसोदिग्रा
चंदर भानजी सीसोदिग्रा संवत् १७२० वरपे फागरण वीदी १०

बडासालिग्रा का दानपत्र[५१], (१६६५ ई०)

यह दानपत्र महारावल कुशलसिंह (बाँसवाड़ा) के समय का है जिसमें वर्णित है कि (आपाडादि) वि.सं. १७२१ (चैत्रादि १७२२, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई०स० १६६५ ता० २४ अप्रैल) को जोशी केशवा, पूंजा आदि को एक हल भूमि सूर्यग्रहण के अवसर पर दान दी गई। इससे उस समय की धार्मिक प्रवृत्ति का बोध होता है।

सरवाणिया गाँव का दानपत्र[५२], (१६६७ ई०)

यह दानपत्र कुशलसिंह (बाँसवाड़ा) के समय का है जिसमें उल्लिखित है कि महारावल की रानी अनूपकुंवरी ने (तंवर) चन्द्रग्रहण के अवसर पर सरवाणिया गांव में दवे लाला को भूमिदान किया। इससे उस समय की धार्मिक प्रवृत्ति का बोध होता है।

बांसवाड़ा का दानपत्र, [५३] (१६७१ ई०)

यह दानपत्र बाँसवाड़ा के महारावल कुशलसिंह के समय का है जब कि महारावल की माता ग्रानंदकुंवरी ने गंगाजी वि. सं. १७२७ माघ सुदि ५ (ई० स० १६७१ ता० ५ जनवरी) महोत्सव के अवसर पर भूमि दान किया। इस महोत्सव का वागड प्रान्त में तथा राजस्थान के ग्रामीण भागों में वड़ा महत्त्व है।

पाटण्या गाँव के ताम्रपत्र,[५४] (१६७६ ई०)

यह ताम्रपत्र संस्कृत में है जो देवलिया के महारावल प्रतापसिंह के समय का है। इसमें इस वंश के शासकों के नाम हैं जो चित्तौड़ के शासकों के भाई खेमा के पुत्र सूर्यमल से सम्वन्धित थे। इससे यह भी स्पष्ट है कि देवलिया को संस्कृत साहित्य में देव दुर्ग कहते थे। इसका सम्वन्धित पाठ इस प्रकार है—

"अत्युग्रधामा जगदेकनामा तस्मादभूच्छ्रीहरिसिंहदेवः।
श्रीदेवदुर्गस्य विराजमाने सिंहासने राजति तत्तनूजः॥"

पारणपुर दानपत्र,[५५] (१६७६ ई०)

यह ताम्रपत्र श्री मेहता नाथूलाल जी (प्रतापगढ़) के पास देखा गया जिसका

५१. ग्रोझा. बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ १०९
५२. ग्रोझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ०–१०९
५३ ग्रोझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११०
५४. ग्रोझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १६।
५५. मूल महता नाथूलाल जी के पास है।

आकार ६"×५.५" एवं वजन लगभग पोना सेर के है। इसमें उस समय के पठित वर्ग के तथा शासक वर्ग के नामों का एवं धार्मिक उद्यापन करने की परंपरा का बोध होता है। स्थानीय भाषा के अध्ययन के लिए भी यह उपयोगी है। इसमें टकी, लाग एवं रखवाली आदि करों का उल्लेख है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजा श्री रावत प्रतापसिंघ वचनातु विधाराय जी जोग्य मोटो प्रसाद किधो मया करे गाम १ मोजे पारणपुर दिधो उदक आघाट करे दिधां आर चद्रार्क जावत दीधा उन्या अेकादसी उद्यापन करे दीधो अणारी टकी लाग रपोती सुधी अणीरी कथ कावल करे जणी हे चित्तौड रो पाप छे पीडी पीडी दीधा कृष्णार्पण दीधो। सवदत्तांपरदत्तां वा जो लोपंती वसुंधरा ते नरा नरकं जावती जावत चदर दीवाकर ॥१॥ खासा दसकत छे दूवे साह वर्धमान उदेभाण संवत् १७३३ वरषे माघ सुद दुआदसी १२ रवुते राजा रे पंडत भट वेसमनाथ विद्याराय भगवान हरदेव मामा भीम जी कूलावत घासी नाम छं जणी समै हुकम श्री खेत दीधा जणीरी वीगत काके जी मानसिंह जी मोहणपुरा मघे कराया भ. रणछोड जी खेडी मध्ये खेत विघा १५ दीधा परसी घण्।

पाटण्या गांव का दानपत्र[५६], (१६७७ ई०)

इस दानपत्र में पाटण्या गाँव महारावत प्रतापसिंह (प्रतापगढ़) द्वारा महता जयदेव को दान करने का उल्लेख है। दानपत्र की भाषा गद्यमय संस्कृत है। यह इतिहास के लिए बड़ा उपयोगी है क्योंकि इसके प्रारंभ की पंक्तियों में गुहिल से लगा कर भर्तृभट्ट तक के गुहिल राजाओं के नाम दिये हैं और फिर क्षेमकर्ण से लगाकर हरिसिंह तक प्रतापगढ़ के नरेशों का क्रमबद्ध वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें महारावत की माता, पट्टराज्ञी, राजकुमारों, भाइयों, सरदारों, राजगुरु, राजकवियों, मंत्रियों आदि के नाम भी मिलते है। इसको सोनी हीरा ने खोदा था। इसमें उस समय की धार्मिक प्रवृत्ति एवं कर व्यवस्था का उल्लेख है। इस ताम्रपत्र का समय वि० सं० १७३३ माघ सुदि १५ है। इसका मूल का कुछ भाग इस प्रकार है—

"महेन्द्रसमेन श्री महाराजाधिराजमहाराजरावत श्री प्रतापसिंहदेवेना लोच्येदमुक्तं..................एकादशीव्रतोद्यापनेद्यमाघशुक्लैकादश्यां मया प्रतापसिंहनृपेण महत्तरजयदेवद्विजाय.................पाटणपुराख्यो ग्रामः स्वसीमावृक्षपर्वतजलाशयकार्पुकहल [इमं] राजामात्यादि सर्वलागटस्वीयपरकीयटकीचतुराघाटैः सह..........स्वस्तिपत्रेण....... दानवाक्येनन दत्त..................संवत् १७३३ माघ सुदि पूर्णिमास्यां लिखितमिदम्। सोनी हीरो।

बांसवाड़ा का दानपत्र,[५७] (१६७७ ई०)

यह दानपत्र महारावल कुशलसिंह के समय का है जिसमे व्यास उद्धव को

---

५६ ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १६२–१६३।

५७. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११०।

कुशाल बाग की तरफ का एक कुंआ वैशाखी पूर्णिमा पर चन्द्रग्रहण पर दान किया गया। इसमें दिया गया समय वि सं १७३४ आषाढ़ सुदि ५ (ई० सं० १६७७ ता० २५ जून) है। ऐसे दानों को वैशाखी पूर्णिमा के उपलक्ष में करना बड़ा धार्मिक कार्य माना जाता था।

गांव पंचाइणपुरा,[५८] (१६७७ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा राजसिंह के समय का है जिसमें गडवी गंगदास चारण को पंचाइणपुरा गाँव देने का उल्लेख है। यह गाँव राव वेरीसाल के पट्टे से उसके अर्ज करने पर पुण्यार्थ दिया गया। इसकी आज्ञा-भीपु के द्वारा दी गई और उसे पंचोली चत्रभुज राघोदासोत ने लिखा। इसमें राव वेरीसाल की जागीर से दी गई भूमि का महाराणा द्वारा स्वीकृति रूप से ताम्रपत्र दिया गया था जो बड़े महत्त्व का है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाश्री राजसिंघजी आदेशातु गडवी गांगदास चारण-कस्य गांव पंचाइणापुरा पडगने बीजोल्या रे राव वेरीसाल रा पटा भी है छै सुराव वेरीसाल अरजकरे दीवाडा सु आघाट करे मया कीधो दुएश्री मुख प्रतदुए श्री भीपु लीखतं पंचोली चत्रभुज राघोदासोत स्वदत्तं..................संवत् १७३४ व्रपे जेठ वदी २ रीवो"

राजसिंह का ताम्रपत्र,[५९] (१६७८ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा राजसिंह के समय का है जिसमें वेणा नागदा को दो गाँवों में तीन हल की भूमि राणी बडी पँवार के राजसमुद्र पर तुलादान के उपलक्ष में पुण्यार्थ दिये जाने का उल्लेख है। ये तुलादान राणी द्वारा १७३२ माघ सुदि १५ को किया गया था और दानपत्र १७३५ श्रावण सुदि ५ को दोसी भीपु के द्वारा आज्ञा दिये जाने पर पंचोली चत्रभुज ने लिखा था। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसिंघ जी आदेशातु जोसी वेणा नागदा-कस्य ग्राम दोय पडगने ऊंटालारे तीमाह् हल ३ आके तीन री धरती १५० आंके बीघा डोड से राणी बडी पँवार—तुला राजसमंद पे संवत् १७३२ वर्षे माह सुदी १५ कीधी जदी हल ३ री धरती उदक आघाट करे श्री रामा अरपण की घी वीगत बीघा—

८०) आंक बीघा ग्राम नवाण्या मांहे

७०) आंके बीघा सीतर ग्राम की कांकण भाटे

१५०) आंके बीघा डोडसे

दुए श्री मुख प्रतदुए दोसी भीखु लीपतं पंचोली चुत्रभुज राघोदासोत स्वदत्त

---

५८. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं १४८६।

५९. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० ६५१

.... संवत् १७३५ वर्षे श्रावण सुदी ५ रीवु"

तलवाड़ा गांव का दानपत्र,[६०] (१६७९ ई०)

महारावल कुशलसिंह का तलवाडा (बांसवाड़ा) गांव का दानपत्र वि० स० १७३६ भाद्रपद सुदि १ (ई० स० १६७९ ता० २७ अगस्त) का है। इसमें पंडा सुखा, सवा आदि को भूमिदान करने को अंकित किया गया है।

उनी गांव का ताम्रपत्र, [६१] (१६८२ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जयसिंह का है जिसमें वर्णित है कि आयस सज्जन को उनीगांव में १०० बीघा भूमि का दान उक्त महाराणा ने किया। इससे प्रतीत होता है कि उस समय भूमि को दो मौसम की उपज की क्षमता पर बाँटा जाता था और उसके अन्तर्गत उनका विभाजन पहाड़ी जमीन या उपजाऊ भूमि के विचार से भी होता था। इसका मूल इस प्रकार है–

"महाराजाधिराज महाराणा श्री जैसिंघजी आदेशातु आइस सुजीण रावल कस्य गाम उनी पडगने मदारारे जीणी माहे अती बीघा १०० आंके एक सो सीसोदा दुवारकादास अरज करे आसण साळ धरम खाते दीवाणी तीरी विगत-

८०) अंके बीघा असी मगरा सीआलू

२०) अंके बीघा बीस उनालू

१००) अंके बीघा एकसो हुए श्रीमुख जतहुए दोसी भीमु लीखतं पंचोली

चत्रभुज रायो दासोत.......संवत् १७३९ वर्षे जठ सुदी ७ सोमु"

पिंगयली का दानपत्र,[६२] (१६८६ ई०)

यह दानपत्र पिंगयली के उदक का है जिसका मूल श्री नाथूलालजी (प्रतापगढ़) के पास है। इसका आकार १०"×५.७" तथा तौल सेर दो के लगभग है। इसमें श्री प्रतापसिंह (प्रतापगढ़) के राज्यकाल के शासन के अधिकारी साह वर्धमान तथा महता हरिदेव का उल्लेख मिलता है। इसके द्वारा उस समय की स्थानीय भाषा पर प्रकाश पड़ता है। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराज रावत श्री प्रतापसिंहजी वचनातु पं० रंगदेवजी गोपालजी जोग्य यत् कुंवर कीर्तिसिंह मांजे गाम पिंगयली मध्ये खेत बीघा २९ अंके ओगण तीस आचन्द्राकं यावत् उदक आघाट करी दीधा ते अंमे पाली दीधा अथ कावल रहित दीधां श्रीकृष्णार्पणे करी दीधां जेनी वीगत खेतदेव नगु गारव नाम नावाला जोमने दिधा १९ रंगदेवनो बाकी बीघा १० बालगोपाल देव ने आपा पूर्वकार २९ दीधां हुए साह वर्धमान ॥ "स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरा षष्टी वर्ष सहस्राणी विष्टायां जायते कृमि" संवत् १७४३ वर्षे मगसर वदी १३ लिखतं मेता हरिदेव"

---

६०. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११०

६१. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० ३२५

६२. लेखक की प्रतिलिपि से

जवाखेड़ा का ताम्रपत्र[६३] (१६६२ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जयसिंह के समय का है जिसमें ब्राह्मण जयदेव को जवाखेडे में एक हल भूमि देने का उल्लेख है। यह भूमिदान वि० सं० १७४७ जेठ सुदि ५ को किया गया था जब राणी बडी हाडी ने जसनगर में तुलादान किया था। इसकी आज्ञा साह रामसिंघ द्वारा दी गई थी और इसे पंचोली इन्द्रभाण ने लिखा था। ताम्रपत्र देने का समय संवत् १७४६ भादवा वदि ६ गुरुवार है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री जैसिघजी आदेसातु बामण जैदेव.......ग्राम मया कीधो गाम जवाखेडा मा धरती हल एक अेकरी राणी बडी हाडी जसनगर माहै तुला कीधी उदक आघाट करे रामा अरपण कीधी १७४७ जेठ सुदी ५ जमे हल १ मदे वीगत वीघा ५० पचास साआलू—

प्रतदुए साह रामासिघ लीषतं पंचोली इन्द्रभाण दआऩदासोत संवत् १७४६ वीषे भादवा वदी ६ गुरै"

कालोडा का ताम्रपत्र[६४] (१६६४ ई.)

यह ताम्रपत्र महाराणा जयसिंह के समय का है जिसमें दवे रामदत्त को कालोडा गांव, परगना मगरा में दो हल भूमि दान दी गई थी। इस ताम्रपत्र में स्पष्ट रूप से दो हल भूमि का नाप १०० वीघा दिया गया है जिसके अनुसार एक हल भूमि ५० वीघा के बराबर मानी जाती थी ऐसा सिद्ध है। इसमें भूमि का विभाजन 'उनालू' तथा 'सीयालू' की उपज के आधार पर किया गया है—अर्थात् २० वीघा भूमि केवल 'उनालू' की थी और ८० वीघा 'सीयालू' की उपज के लिये थी।

इसका मूलपाठ इस प्रकार—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री जैसिघजी आदेशातु दवे रामदत्त कस्य ग्राम कालोडो पडगने मगरारे तीमाहे धरती हल २ दोईरी वीघा १००) उदक आघाट करे श्री रामा अरपण कीधी वीगत वीघा—

२०) वीघा वीस उनालू थी अर ८० वीघा अससी सीयालू माल मगरा

१००) अंके वीघा एक सो दुए श्री मुख लीपतं पंचोली हरनाथ मोहणोत स्वदत्त (आदि) संवत् १७५१ व्रपे प्रथम असाड सुदी १० भोमे"

मुकनपुरा का दानपत्र[६५] (१६६४ ई०)

महारावल अजबसिंह (बाँसवाड़ा) के समय का यह दानपत्र है जिसमें (आषाडादि) वि० सं १७५० (चैत्रादि१७५१) चैत्र सुदि १ (ई० स० १६६४ ता० १६ मार्च) को डोलिया धोमण्ट को बडी पडार गांव में तालाब की भूमि देने का उल्लेख

---

६३. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० १४७२

६४. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० ४७१

६५. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११४

है । तालाब की भूमि बड़ी उपजाऊ मानी जाती थी जिसे विशेष कृपा होने पर दिया जाता था ।

सेवाना गाँव का दानपत्र[६६] (१६९५ ई०)

यह दानपत्र वि० सं० १७५२ (अमांत) कार्तिक पूर्णिमांत (मार्गशीर्ष) वदि (ई०स० १६९५ नवम्बर) है का जो अजबसिंह (बांसवाड़ा) के काल का है । इसमें सादड़ी के निकट का सेवाना गाँव जोशी रतना के पुत्र राधानाथ और रामकिशन को सूर्यग्रहण के अवसर पर दान करने का उल्लेख है ।

वाघेल्या गाँव का ताम्रपत्र[६७] (१६९६ ई०)

यह ताम्रपत्र कुंअर अमरसिंह दूसरे का है जिसमें उल्लिखित है कि चारण खीमा को वाघेल्या गाँव में, जो करेडा परगने में था, दो हल भूमि (१०० बीघा) पुण्यार्थ दी गई है। इसकी आज्ञा रायसी द्वारा दी गई और इसे गोरधन दास पंचोली ने राजनगर में लिखा । इस समय भी भूमि का विभाजन सीयालू एवं उनालू की उपज की क्षमता पर तथा पीवल के आधार पर किया जाता था ।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजकुंअर अमरसिंहजी आदेशातु चारण खीमा नाथुरा जात मैहडुकस्य ग्राम वाघेल्यो पडगने करेडारै जणीमाहे हल २ दोयरी धरती बीघा १०० एक सौ आघाट करे मया कीधी बीगत बीघा २० बीस पीवल ८० बीधा असी सीयाली दुवे श्री मुख प्रतदुअे रायसी लीखतं पंचोली गोरधनो संवत १७५३ बीषे वैसाख वदी ३० रीऊ राजनगर माहे लीख्यो

बाँसवाड़ा का दानपत्र[६८] (१६९९ ई०)

यह बाँसवाड़ा के गांवट सवा के नाम का (आषाडादि) वि० सं० १७५५ (चैत्रादि १७५६) ज्येष्ठ सुदि २ (ई० सं० १६९९ ता० २० मई) का दानपत्र है, जिसमें उल्लिखित है कि उपर्युक्त ब्राह्मण को सूर्यग्रहण के अवसर पर बाँसवाड़े के बोरेरा तालाब का आज्ञा हिस्सा महाराज कुमार भीमसिंह द्वारा दान किया गया था ।

सुन्दरछो गाँव का ताम्रपत्र[६९] (१७०३ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा अमरसिंह द्वितीय के समय का है जिसमें जोशी चत्र-भुज एवं समस्त नागदा ब्राह्मणों को सुन्दर गाँव तथा अन्य धरती, जो खालसे हुए थे पुनः पुण्यार्थ देने का उल्लेख है । इसकी आज्ञा पंचोली दामोदरदास के द्वारा दी गई ।

---

६६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११४

६७. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० ६४०.

६८. बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० ११५

६९. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० ५०२

और पंचोली कान्हां ने इसे लिखा (इसका समय संवत् १७६०, आसोज सुदि १३ भोम है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंघ जी आदेशातु ग्राम सुन्दर छा रा जोसो चुत्रभुज कान्हा प्रषोत्तम सोभारामा तथा समसत न्यात नागद्राकस्य थांरा ग्राम सुन्दरछो खालसै हुओ थो सो पाछो मया कीधो नै पेहली धरती तांबापत्र है जठा उपरांत गायलारी धरती थी सो खालसे हुई थी जणीरा रुपया ८००० आठ हजार करे चांमोचांम उदक आघाट करे श्री रामापरण कीधी दुअै श्री मुख..............प्रतदुअै पंचोली दामोदरदास लीषतं पचोली कान्ह छीतरोत संवत् १७६० वोषे आसोज सुदि १३ भोमे"

कोघाखेडी गाँव का दानपत्र[७०] (१७१३ई०)

यह दानपत्र श्रावणादि वि० सं० १७७० (चैत्रादि १७७१) द्वितीय आषाढ़ सुदि १२ मंगलवार का है। इसमें महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय में दिनकर भट्ट को कोघाखेडी गाँव के दान करने का उल्लेख है। इससे महाराणा की दानशीलता पर प्रकाश पड़ता है और प्रमाणित होता है कि दिनकर भट्ट उस समय का एक अच्छा विद्वान था।

गांव भुवाणे का ताम्रपत्र[७१] (१७१३ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा संग्रामसिंह जी द्वितीय के समय का है जिसमें ठाकुर सीतारामजी वेदला को भुवाणा गांव में दो हल भूमि भेंट करने का उल्लेख है। इसकी आज्ञा बिहारी दास के द्वारा दी गई थी और मूलतः यह भेंट बाईजीराज ने की थी जिसकी स्वीकृति का ताम्रपत्र उक्त महाराणा के नाम का है।

इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंघ जी आदेशातु ठाकुर श्री सीताराम जी गाँव वेदले विराजे सेवग भगवत लछमणदास सेवा करे जणी हरिमंदिर पूजा सारू ग्राम भवाणो पडगने गिरवारे जणीमाहे धरती हल दोयरी वीघा १०० एक सौ तीमघे वीघा २० वीस पीवल उन्हाली ने वीघा ८० असी सीयाली माल श्री वाईजीराज चढाई तांवापत्र करे दीवाणो दुअे श्री मुख स्वदत्तां..........प्रतदुअे पंचोली बिहारीदास लीपतं पंचोली लखमण छीतरोत संवत् १७७० वरषे प्रथम आसाड सुदी ६ गुरे"

कोघाखेडी (मेवाड़) का ताम्रपत्र[७२] (१७१३ ई०)

यह ताम्रपत्र कोघाखेडी गाँव का है जिसको महाराणा संग्रामसिंह दूसरे ने दिन-

---

७०. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० २, पृ० ६२२

७१. ओल्ड डिपो० रेकार्ड नं० ८२४

७२. वीरविनोद, भा० ४, पृ० ११७५

कर भट्ट को हिरण्याश्वदान में दिया था। ये गाँव भरख परगने के अन्तर्गत था जहाँ कई प्रकार की लागतें, जैसे खड, लाखड, गाँवटका, केलूखूंट आदि ली जाती थीं। महाराणा ने इन सब लागतों को उसके लिए माफ कर दी थी। इस ताम्रपत्र को पंचोली लक्ष्मण ने विहारीदास पंचोली के प्रतिदुवे से लिखा था।
इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंह जी आदेशातु, भट्ट दिनकर महादेवरा न्यात महाराष्ट्र कस्य ग्राम कोघाखेडी पडगने भरखरे पेहली धारे पटे थो सो हिरण्याश्व महादान जेठ सुदि १५ भोमरे दिन दीवो, जदी दक्षिणारो लागत खडलाकड गामटका केलुखूंट तथा सर्वसूधी ऊदक आघाट करे श्री रामार्पण कीधो दुवे श्री मुख..............प्रतदुवे पंचोली विहारीदास लिखतं पंचोली लखमण छीतरोत सं० १७७० वर्षे द्रुती आसाढ सुदी १२ भोमे"

गांव आसोट्या का ताम्रपत्र[७३] (१७१४ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय का है जिसमें उक्त महाराणा द्वारा आसोट्या गाँव को द्वारकाधीश को भेंट किये जाने का उल्लेख है। इसको सभी राजकीय कर से भी मुक्त किये जाने का अंकन है। यहाँ कांकरोली गाँव में गरीबदास पुरोहित के भाग का भी जिक्र है जो गरीबदास की जागीर में था। ये अनुदान महाराणा ने यहाँ दर्शनार्थ आने के समय किया जिसकी आज्ञा पंचोली विहारी दास द्वारा दी गई और उसे पंचोली लक्ष्मण छीतरोत ने लिखा।
इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंघजी आदेशातु गुसाईं गिरधारलाल जी कस्य ग्राम कांकडोली पडगने राजनगर रे जणीमांहे प्रोहितजी रो वंट थो सो तागीर गरीबदास जगनाथ थी गांम टका तथा लागत सरबसुधी गांम आसोट्यो श्री द्वारकानाथजी रे दरसण मागसेर वदि ११ दीन हजूर पधारा जदी उदक आघाट कर श्री रामार्पण कीधो दुत्रे श्री मुख स्वदत्तां .... प्रतदुए पचोली बीहारीदास लीपतं पंचोली लछमण छीतरोत संवत् १७७१ वर्षे चेत सुदी ७ बुधे"

वेगूं का ताम्रपत्र[७४] (१७१५ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा संग्रामसिंह के समय का है जिसमें प्रहलाद को वेगूं में एक रहट व भूमि पीवल, मांल, बाग आदि के देने का उल्लेख है। यह अनुदान भूमि के सभी वृक्ष, कुए, नीवाण समेत किया गया था। यहां का दाण राज्य का रहेगा ऐसा भी उल्लेख है। इसकी आज्ञा पंचोली विहारीदास द्वारा दी गई थी। इसमें खेतों के अलग-अलग नाम दिये गये हैं जो उस समय की भूमि विभाजन की प्रथा

७३. ओल्ड डिपो० मिसल जागीर सं० ६५, २६/४०६. बी०
७४. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं० १४७१

पर प्रकाश डालते हैं। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज श्री संग्रामसिंघजी आदेसातु पेलाद जात सीसोदराकस्य गाम वेगम म्हे रेहट १ वडलारो कुडो ध्रती वीगा १५ पीवल माल वीगा २० वागरी ध्रती वीगा ४ घोड़ीराखेत १ वीगा ६ तोहे रावत देवीसीध श्री दरबार अरज करे दीवाणी उदक आधाट श्रीरामाअरपण करे दीदी लागत वीलगत रुष वरप कुडा नीवाण सरवसुदी करे दीदी सोथारा वेटा पोता सपूत-कपूत खाया जासी दाण आश्री (जी) को वाजसी रुपीआ हजार सात ७००० माहे सो आधाट दुए रावत देवसीध प्रतदुए पचोली वीहारीदास लपता पचोली लषमणरा संवत् १७७२ वरष आसोज सुद १०।

सखेडी का ताम्रपत्र[७५] (१७१६ ई०)

यह ताम्रपत्र महारावत गोपालसिंहजी का है जिसमें गुंसाई गंगागिरजी को नीथूखेडी के एवज गाँव सेखडी को अनुदान के रूप में देने का उल्लेख है। इसमें कथकावल नामक कर का उल्लेख लागत-विलगत के साथ दिया गया है जो एक स्थानीय कर प्रतीत होता है। इस ताम्रपत्र का ऐतिहासिक महत्त्व है। रावत गोपाल सिंह रावत उम्मेदसिंह का भाई था। वह अपने भाई की मृत्यु के बाद प्रतापगढ़ का राजा बन बैठा। उसे भय था कि संभवतः कुछ सर्दार उम्मेदसिंह के अल्पवयस्क पुत्र सालिमसिंह का पक्ष लें और उसके राज्याधिकार पर आपत्ति उठावें। इस भय को टालने के लिए जिस वर्ष राज्य का स्वामी बना उसी वर्ष उदयपुर जाकर उसने वहां के राणा संग्रामसिंह (दूसरे) से मुलाकात की तथा अपनी गद्दीनशीनी की रस्म को सुदृढ़ कर लिया। इस अनुदान को भी उदयपुर रहते किया गया था जिससे उसका पक्ष प्रवल रहे। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"श्री महाराजाधिराज महारावतजी श्री गोपालसींघजी वचनातु गुंसाई श्री गंगागिरजी जोग्य यत् मोजे गाम १ सेखडी गांव भूमिहरा तथा टकरावद तीरेकी गाम नाथूखेडी पहेली रावत श्री पृथ्वीसिंघजी संवत् १७७३ रा जेठ सुदि १५ रे दिन चढावी जीरे वदले रावत श्री गोपालसिंघजी उदेपुर पधार्‌या मठे जदो गाम सखेडी कथकावल रहित लागट विलगट रहित उदक आघाट करे दीधी। मारा वंशरो कोई चोलण करसी नहीं। स्वदत्तं परदत्तं वाये हरन्ति वसुन्धरा पष्टि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। दुए शाह चंद्रभाणजी प्रेरक ठाकर फतेसिंघजी, लिखावत राव रिणछोड़दासजी मामा रामचंदजी उदेपुर मांहे हुकम थी लिखायो। संवत् १७७८ सावण सुदि १३ बुधे"

ओवरी गांव का ताम्रपत्र[७६] (१७१६ ई०)

ओवरी गांव डूंगरपुर जिले में है जिसका एक ताम्रपत्र वि. सं. १७७२ (चैत्रादि १७७३, अमांत ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ़) वदि १० (ई. सं. १७१६ ता. ४

---

७५. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. २१८

७६. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. ५७

डून) का जोशी सहदेव के नाम का है। इसमें गाँव के समस्त लोगों को सम्बोधित किया गया है जो उस समय की परम्परा और स्थानीय मान्यता का द्योतक है। इसके मूल लेख में वख्तसिंह को, जो महारावल रामसिंह का दूसरा पुत्र था, महाकुंवरजी उल्लिखित किया है जो उसके शासकीय पद और अधिकार का द्योतक है। इसके मूलपाठ की एक पंक्ति इस प्रकार है—

"स्वस्त (स्ति) श्री डूंगरपोर शुभस्थाने माहाकुंअरजी श्री वखतसंघजी....।"

अमलावदे के दो ताम्रपत्र[७७] (१७१९ ई०)

ये ताम्रपत्र संग्रामसिंह (प्रतापगढ़) के समय के हैं जिनमें अमलावदे में भूमि-दान का उल्लेख है। इनमें भी उस समय लिये जाने वाले करों को दानभूमि के सम्बन्ध में माफ किया गया है। इनमें चन्द्रग्रहण में दान देने का तथा गौतमेश्वर नामी तीर्थस्थान में दान देने का उल्लेख है। इनका मूलपाठ इस प्रकार है—

(१)

"श्रीमन्महाराजाधिराज महारावतजी श्री संग्रामसिंहजी वचनातु जोशी रोडा जी सुखरामजी योग्य यत् खेत वीवा ९१ एकाणु श्रीपृथ्वीसिंहजी तथा पहाड़सिंह दीवाछै मे आ चद्रार्क यावत उदक आवाटे पाले दीवी। जेरा विगत वीघा ६० वर मंडल अरवोदये चन्द्रग्रहणे दीधा वीघा ३१ अमलावदे पहाडजी निमित्त जोमले ९१ वीघा जेम दीवी। दुवा साह जीवराज मेता द्वारिकादास लिपितं विद्या शिरोमणि राय संवत् १७७६ वर्षे.......अपाड वदि २"

(२)

"महारावतेन्द्र श्री संग्रामसिंहजी वचनातु जोसी रोडाजी सुपरामजी जोग्य यत् गाम अमलावद माँहे गोहरा वालु पेत वीगा १३ अंके तेरा मा झलीजी थानो दीदू गोतमजी माहे दीदु जे मे आ चन्द्रार्कयावत कृष्णार्पण दीदु जी टकी लागत वलत माफ करे दीदाजी.......लिखिते विद्याशिरोमणि रायजी दुए सा जीवराज मेहता द्वारकादासजी संवत् १७७६ वर्षे अपाड वदि ९ दीनो"

गाँव गडवोड का ताम्रपत्र (१७१९ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा श्री संग्रामसिंहजी के समय का है जिसमें १९०० रु० की आय का गांव चारभुजा के मंदिर में सदाव्रत के लिए वाईजीराज तथा कुँवर जगतसिंह ने वहां दर्शनार्थ आने के समय पुण्यार्थ किया। इस गांव की भूमि सोलंकियों के जागीर में थी उनसे लेकर सदाव्रत के खाते की गई, परन्तु यहाँ की डोलियाँ जो ब्राह्मणों के पास थीं उन्हें बिना हासिल की रखी गई। इसकी आज्ञा बिहारीदास द्वारा दी गई और इसे पंचोली लक्ष्मण ने लिखा। इस ताम्रपत्र में उल्लिखित वाईजीराज या तो सर्वकुंवर या रूपकुंवर अथवा व्रजकुंवर होना चाहिए, जो महाराणा संग्रामसिंह की तीनों पुत्रियां थीं। मंदिरों के साथ सदाव्रत का प्रबन्ध होने और

---

७७. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. २१४

डोलियों का विगर हासिल होने के इसके उल्लेख महत्त्वपूर्ण हैं। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाश्री संग्रामसिंघजी आदेशातु ग्राम १ ऐक उपत रुपया १९००) एक हजार नव सो रा ठाकुर श्री चत्रभुजजी गडवोर वीराजे जठे श्री वाईजीराज ने कुअर जगतसिंघजी दरसण पधार्‌या सो धर्मखाते सदाव्रत सारू चढाया सो सदाव्रत मांहे चुक पडेगा नहीं सो रामारपण कीधा वीगत रुपया............ १९०० गाम गडवोर पडगने वसारट रे तागीर सोलंकी सावलदास सोभावत थी सो पहेली इणीगांम महे खेत चढाया है तथा बामणां रे डोहली तांबापत्र हे जणी वीगर हासल हे सो सो सदाव्रतरेवीलो............दुए श्री मुख... ...प्रतदुअे पंचोली वीहारीदास लीषतं पचोली लपमण छीतरोत संवत १७७६ वरषे जेठ वदी ८ बुधे"

प्रतापगढ़ का एक ताम्र-पत्र,[७८] (१७२० ई०)

यह ताम्रपत्र भी नेग के सम्बन्ध में अनुदान का उल्लेख करता है जो ढोली सुन्दर को दिया गया था। इसका मूल इस प्रकार है—

"श्री महाराजाधिराज महारावतजी श्री गोपालसिंहजी वचनातु ढोली सुन्दर भोपा मारच्य राजड अप्रंच गाम मोजा प्रतापगढ मध्ये सतु मुणारा नेग खेत मघेडी विगा २५ अडाज विगा ७ तावांपत्र कर दिधो लगर वलगर रहत दिधा दुअे साह चन्द्रभाणजी संवत १७७८, भाद्रवा सुदी १५ लिखेत विद्या शिरोमणी रायेजी प्रतदूवा माधोलालजी।

गाँव वाडी का ताम्रपत्र, (१७२७ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय का है जिसमें उल्लिखित है कि महाराणा ने जोशी हरवंस सनाढ्य को गांव वाडी में, परगना ऊंटाला, दो हल भूमि पुण्यार्थ दी। इसमें कुछ भूमि कम पड़ती थी तो उसकी पूर्ति गाँव डबोक से तथा खालसा भूमि से की गई। इस ताम्रपत्र से भूमि का विभाजन माल, मगरा, खालसा आदि के विचार से भी किया जाना प्रमाणित है। इसकी आज्ञा धावाई नगा के द्वारा दी गई और उसे पंचोली लक्ष्मण ने लिखा। धायभाई नगा उस समय बड़ा प्रभावशील व्यक्ति हो गया था। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाजी संग्रामसिंघजी आदेशातु जोसी हरवंश तारा रा न्यात सनावडकस्य ग्राम वाडी पडगनो ऊंटालारे जणी मांहे धरती हल दोयरी सांपलारामदास री थी सो धरती सरीनी मवे धरती वीघा १६ सोले घटी सो ग्राम डवोक पडगने ऊंटाला रे जापी मांहै ब्राह्मण ने तारी धरती सरे देता घटे सो माल मगरो पालसा मांहे थी दीवायगी सो उदक आघाट करे श्रीरामारपण कीधी दुअे श्रीमुख प्रतदुअे धायभाई नगा लीपतं पंचोली लपमाण शीवरोत संवत् १७८४ वर्षे जेठ वदी ११ सीनु"

---

७८. इसकी प्रतिलिपि श्री छगनलालजी दमामी से प्राप्त।

धनेसरी का ताम्रपत्र[७९], (१७२६ ई०)

"वि०सं० १७८३ आषाढ़ सुदि १३ (ई०स० १७२६ ता. १ जुलाई) का नाथद्वारे में श्रीनाथजी के मंदिर को गाँव धनेसरी भेंट करने का ताम्रपत्र; जिसमें उक्त महारावत का विवाह के लिए घाणेराव जाते समय उपर्युक्त गाँव श्री नाथजी को भेंट करने का उल्लेख है। इसमें दुए शाह चन्द्रभाण तथा लेखक का नाम विद्याशिरोमणि राय दिया है और अन्त में धनेसरी गाँव के बदले में गाँव जेठ्याखेडी चढ़ाने का उल्लेख होकर ये पंक्तियाँ शाह चन्द्रभाण और सुन्दर द्वारा लिखी जाने का भी उल्लेख है।"

बाँसवाड़ा का दानपत्र[८०] (१७३३ ई०)

यह दानपत्र महारावल विष्णुसिंह के समय का है जिसका समय वि०सं० १७९० आश्विन सुदि १३ (ई० स० १७३३ ता० ११ अक्टूबर) है। इसमें विनेकुंवरी राठौड़ द्वारा गुरु वख्तराम तख्तराम को गोत्रिरात्र व्रत के उद्यापन के समय सुनारिया नाम के एक रहँट को दान करने का उल्लेख है। इससे रानी की धार्मिक वृत्ति का बोध होता है।

गाँव सिहाड का ताम्रपत्र[८१], (१७३६ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जगतसिंह के समय का है जिसमें सिहाड गाँव ठाकुर गोवर्धननाथ जी के भेंट करने का उल्लेख है। इसमें सभी प्रकार के करों को माफ किए जाने एवं उस पर पाटवी गोस्वामी के अधिकार होने का आदेश है। इसमें कुवेरचन्द द्वारा आज्ञा दिए जाने एवं पंचोली लक्ष्मण द्वारा इसे लिखा जाना अंकित है। इसका समय वि०स० १७९३ वैशाख सुदि ११ शुक्रवार है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंहजी आदेशात् ग्राम स्याहड पडगने मगरारे ऊपत रुपया १०००) एक हजार रो ठाकुर श्री गोवर्धननाथजी ग्राम स्याहड विराजे जठे प्रवांना प्रमाणे चडायो थो सो लागत सर्वमुंची उदक आघाट करे श्री रामारपण कीधो सो इणी गामरी पाटवी गुसांई व्हे जे अमल करेगा स्वदत्त ......प्रत दुअे पचोली कुवेरचंद लीखतं पंचोली लखमण छीतरोत संवत १७९३ वर्षे वैसाख सुदी ११ सुके"

जगत्सिंह का ताम्रपत्र[८२], (१७३७ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा जगत्सिंह द्वितीय के समय का है जिसमें उल्लिखित है कि तीन जागीरदारों की सीमा के बीच बदनौर परगने में आयस गुलाबराय का आसन स्थापित किया जिसमें प्रत्येक के गाँव से कुछ बीघा भूमि लेकर उसके लिए ७०१ बीघा

७९. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० २४३

८०. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२६

८१ ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० मिसल १४०, ९१

८२. ओल्ड डिपो० रेकार्ड, नं० ३४८

जमीन का प्रावधान किया गया और उसे सभी प्रकार की लागत के अधिकार सहित दिया। इससे जागीर के गाँवों से महाराणा का जमीन लेकर अनुदान देने के अधिकार की पुष्टि होती है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाजी श्री जगतसिंघजी आदेशातु आयस गुलाबराय-कस्य धरती बीघा ७०१ सातसे एक ग्राम ३ तीन पडगने बधनोर रे जणारी सीम वीचे आसण बंधायो सो नीमघे धरती वीघा ३०१ तो गाम गागाडामाहे थी तागीर राठौड जोगी रामजस करणोत थी ने धरती वीघा २२५ ग्राम लाँवा मांहे थी तागीर सीदया जोरावर सीघ प्रताप सींघोत थी ने धरती वीघा १७५ ग्राम तीसवासा माँहे थी तागीर राठोड शिवसीघ साहिब सींघोत थी लागत सरवसुधी उदक आघाट करे श्री रामारपण कीधी·······प्रतदुए पंचोली कुबेरचंद लीपतं पंचोली लषमण छीत्रोत संवत् १७९४ वरषे पोस वदी ९ सोमे"

सिदसरा का दानपत्र[८३], (१७३८ ई०)

यह दानपत्र प्रतापगढ़ के रावत गोपालसिंहजी के काल का है जिसमें टकी, टुसी, लागर, वलगर आदि का उदक सम्बन्धी दान के उपलक्ष में छोड़ा गया है। इसका मूल इस प्रकार है—

"श्री महाराजाधिराज रावत श्री गोपालसिंघजी वचनातु मेता आनन्दराय योग्य यत् तु थाहे दोलतसिंघजी ऐ दरबार रा हुकम थी चन्द्रपर्व मध्ये अडाण वीघा ४ अंके चार गाम मोजे सिद्धसरा मध्ये कृष्णार्पण दीधु योमे थाहे पाले दिधु टकी टुसी लागत वलगर सहित कृष्णार्पण दिधु। हवे अणा अडारा री चोलण मारा वंश कोई करे नही करे जणे चित्तौड भागीरू पाप छै·······दुए साख हजूर लिखता मेला गोविन्द जी संवत् १७९५ वर्षे पोष सुदी १५ शनी।"

वरखेडी का ताम्रपत्र,[८४] (१७३९ ई०)

यह ताम्रपत्र महारावत गोपालसिंह के समय का है जिसमें वि० सं० १७९६ ज्येष्ठ वदि ३ (ई०स० १७३९ ता० १४ मई) को दसूंदी (भाट) कान्हा को लाख पसाव में वरखेडी गाँव और लखणा की लागत देने का उल्लेख है। इसमें लेखक का नाम मेहता गोविन्द दिया है। इसमें दिये गये लाख पसाव तथा लखणा की लागत बड़े महत्त्व के हैं। लाख पसाव एक सम्मानपूर्वक दिये गये इनाम से है जो कवीश्वरों तथा विद्वद्जनों को दिया जाता था। इसी तरह लखणा की लागत भी एक प्रतिष्ठासूचक लागत लेने का विशेष अधिकार था।

ईसरवास गाँव का दानपत्र,[८५] (१७३९ ई०)

यह ताम्रपत्र महारावल उदयसिंह (बाँसवाड़ा) के काल का है जिसमें वि० सं०

८३. मूल श्री महता नाथूलालजी के पास है।

८४. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० २४४।

८५. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १२९।

१७९६ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १७३९ ता० ३० अक्टूबर) भौमवार अंकित है। इसमें राजमाता विनयकुंवरी के वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर ईसरीवास गाँव में जोशी दलता को ३ हल भूमि दान दिये जाने का उल्लेख है। विनयकुंवरी महारावल विष्णुसिंह की राठौड़ राणी थी और वह कुशलगढ के ठाकुर की पुत्री थी।

बाँसवाड़ा के दो दानपत्र,[८९] (१७४७ ई० तथा १७५० ई०)

ये दो दानपत्र महारावल पृथ्वीसिंह के समय के हैं। एक का समय वि० स० १८०४ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ९ (ई०स० १७४७ ता० १६ अक्टूबर) शुक्रवार का है। इसमें महारावल का उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर जानी वसीहा को १ रहँट दान करने का उल्लेख है। दानपत्र में रहँट के पड़ौस तथा उसकी स्थिति का भी वर्णन अंकित है।

दूसरा दानपत्र वि० स० १८०६ (चैत्रादि १८०७ अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि (ई०स० १७५० मई) का पाठक गोपाल के सम्बन्ध में है। इसमें गोदावरी तीर्थ में स्नान करते समय उसे महारावल द्वारा गाँव छोटी पाडी के भूमि दान का उल्लेख है।

ये दोनों दानपत्र ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। जब जसवंतराय पँवार की सेना ने आकर बाँसवाड़ा को घेर लिया तब वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में महारावल सितारा गया और राजा शाहू से मिला और वहाँ प्रतिवर्ष नियमित रूप से खिराज देने का इकरार कर आया। इस पर मेघश्याम बापूजी ने आकर इस मामले की जाँच की और मराठों का घेरा उठाया गया। सितारा से लौटते समय महारावल ने गोदावरी तीर्थ में स्नान करते समय वि० सं० १८०६ (ई० स० १७५० मई) गोपाल पाठक को भूमिदान किया और पुनः बाँसवाड़ा लौट आया। वागडी भाषा के अठाहरवी शताब्दी के स्वरूप को समझने में भी ये दोनों दानपत्र बड़े उपयोगी हैं। इनके मूल के कुछ अंश इस प्रकार हैं —

(१)

"स्वस्ति श्री वांसवाला शुभस्थाने महाराजाधिराज महारावल श्री पृथ्वीसिंहजी विजयराज्ये जानी वसीहा सुत भास्कर रूंट (रहँट) १ चणा खारा माहे सेवक केसववालो श्रीरामार्पणे आप्यो श्री उजेण मध्ये सीप्राजी माहे आप्यो छे नदीना ढावा थी मांडीने मशीत की वाट सूवी पाटीयु छे जाना नाथा रायेना रूटनी लागतो थो.... संवत् १८०४ वरषे आसोज वदि ९ शुक्रवासरे।"

(२)

"महाराजाधिराज महाराओल श्री पृथ्वीसिंहजी आदेशात् पाठक गोपालजी.... गाम पाडी छोटी स्वस्ती पत्रे आपी छे...... दक्षिण सतारा री मुंभ (मुहीम) करी पाछा आवते श्री गोदावरी गंगा मध्ये सवत १८०६ ना वैसाख वद...... तीरथ मध्ये

---

८९. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ० १३१

स्नान करीनो श्रीरामार्पण तुलसीपत्रेदत्ते.......स्वस्ती भणावीछे.......संवत् १८०७ मास माघ सुदी ६ वार चन्द्रे.......।"

गोवर्धनपुर का ताम्रपत्र[८७], (१७५४ ई०)

इस ताम्रपत्र में उल्लिखित है कि महारावत गोपालसिंह अपने कुंवर सालिमसिंह के साथ नाथद्वारे गये जहाँ गोस्वामी गोवर्धन की गद्दीनशीनी पर गोवर्धनपुर नामक गाँव उन्हें भेंट किया। इस ताम्रपत्र से महारावत का वैष्णव धर्म के प्रति निष्ठा का बोध होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि उनका मेवाड़ से अच्छा सम्बन्ध था।

बाँसवाड़ा के ताम्रपत्र[८८], (१७५६-१७७९ ई०)

महारावल पृथ्वीसिंह के समय के कई दानपत्र उपलब्ध हैं जिनमें ब्राह्मणों व चारणों को भूमिदान किये जाने के उल्लेख हैं। इससे प्रमाणित होता है कि महारावल काव्य-प्रेमी था और विद्वानों को भूमि देकर अपने राज्य में आश्रय देता था। उसमें एक धार्मिक भावना भी थी जिससे वह ब्राह्मणों के लिए जीविका के साधन जुटाकर उन्हें सन्तुष्ट रखता था। ऐसे दानों में कुछ एक दान इस प्रकार थे—

(१) सेरागांव के एक भाग को बारहट गोर्धनदास को वि०सं० १८१२ (अमात) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ४ (ई०स० १७५६ ता २० मार्च) देने का उल्लेख है।

(२) टेकलागाँव वि०सं० १८१३ (अमांत) भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि ४ (ई०स० १७५६ ता. १२ सितम्बर) को मेहडू मयानाथ को दिया गया।

(३) वि०सं० १८१५ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १७५८ ता० ११ नवम्बर) का ताम्रपत्र तरवाडी मोरली (मुरली) सुत अमरा अदरिया के नाम का जिसमें रहँट व दुकानें दान देने का उल्लेख है।

(४) तलीगाँव का (आपादादि) वि०सं० १८१६ (चैत्रादि १८१७) चैत्र सुदि १ (ई०स० १७६० ता० १८ मार्च) मंगलवार का दानपत्र जिसे सौदा चारण समरथ को दिया गया था।

(५) बारहट मनोहरदास के नाम वि० सं० १८१७ माघ सुदि ५ (ई० स० १७६१ ता. १० फरवरी) का ताम्रपत्र उवहरडी गाँव के अनुदान सम्बन्धी।

(६) आहोर गाँव वि० सं० १८२५ आश्विन सुदी ७ (ई०स० १७६८ ता० ७ अक्टूबर) संढायच गोविन्ददास के नाम।

(७) बारठ जीवणा वदनसिंह श्यामलदास के नाम का वि० सं० १८२८ पौष सुदि १३ (ई०स० १७७२ ता० १८ जनवरी) का माखिया गाँव का ताम्रपत्र।

(८) रणीटीखेडा का वि०सं० १८३६ आश्विन सुदी १ (ई०स० १७७८ ता० १० अक्टूबर) का ताम्रपत्र भट नरसिंह, देवकृष्ण और देवदत्त के नाम।

---

८७. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० २४४

८८. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १३८-१४०

महाराणा भीमसिंह का ताम्रपत्र[८९]. (१७८५ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा भीमसिंह के समय का है जिसमें आचार्य सदास्वरूप को पाँच हल की भूमि के दान के ताम्रपत्र को पुनः पुण्यार्थ कर नया बनवा देने का उल्लेख है। यह भूमिदान महाराणा जगत्सिंह की माता जाम्बूवती के द्वारा संवत् १७०९ में किया गया था। मूल ताम्रपत्र मुगलकालीन व मराठों के आक्रमणों में खो गया और भूमि पर से भी उसका कब्जा हट गया, अतएव इसे पुनः नया बना दिया गया। इसको पंचोली वल्लभदास गिरधरोत ने लिखा था। इसका बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें जगत्सिंह की माता जांबुवती ने अपनी दोहिती नंदकुंवर के साथ तीर्थयात्रा की थी। इससे स्पष्ट है कि तब तक मेवाड़ मुगल सम्बन्ध अच्छे थे और इसीलिए राजपरिवार का यात्रा करना सम्भव था। इसका मूल इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री भीमसीघजी आदेशातु आचारज सदास्वरूप तरो वेणा खेमारो जात दायमाकस्य श्री बाई जावोती वमदे श्री राणा जगतसिंघजी री माता सवत् १७०९ में तीरथ पधारा जठे हल पांचरी धरती भाग दोय में उदक करे दीदी जीरी कवज जाती रही जीने निरधार करे पाछी आज भी उदक आघाट श्री राम अरपण की दी लीपता पंचोली वल्लभदास गीरधरोत संवत् १८४२ रा सावण सुदी ८ सनो"

गढे गाँव का दानपत्र[९०] (१७९५ ई०)

यह दानपत्र महारावल विजयसिंह के समय का है जिसमें वि० सं० १८५२ आश्विन सुदि १ (ई० स० १७९५ ता० १३ अक्टूबर) मंगलवार का है जिसमें भाट भवानीशंकर सुत दोलिया को उपर्युक्त गाँव पुण्यार्थ देने का उल्लेख है।

शामपुरे गाँव का दानपत्र, (१७९६ ई०)

महारावल विजयसिंह के समय का वि० सं० १८५२ माघ सुदि ५ (ई० स० १७९६ ता. १३ फरवरी) का ताम्रपत्र खवास जयशंकर की पुत्री फतेबाई और उसके पति रत्नेश्वर के नाम का ताम्रपत्र है। इसमें उपर्युक्त गाँव को फतेबाई के विवाह के अवसर पर कन्यादान में देने का उल्लेख है।

जानावाली गाँव का दानपत्र,[९१] (१७९९ ई०)

यह ताम्रपत्र वि०सं० १८५२ वैशाख सुदि ४ (ई०स० १७९७ ता० ४ अप्रैल) का है जिसे गोरनाथजी को उपर्युक्त गाँव महारावल पृथ्वीसिंह के गया श्राद्ध के उपलक्ष में दिया गया था।

---

८९. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, बिना नम्बर

९०. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, १४३

९१. ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४३

सबली (सिरोही) का ताम्रपत्र,[६२] (१८०१ ई०)

इसमें उदयसिंह द्वारा दिये गये भूमि दान का उल्लेख है जो 'सारनेश्वर' के निमित्त किया गया था। इसमें इसको लोपने वाले को गधे की गाल का भागी ठहराया गया है। इस समय तक सिरोही राज्य में खालसा भूमि का विभाजन और हासिल की जमाबन्दी की व्यवस्था हो चुकी थी, जैसाकि इस ताम्रपत्र से स्पष्ट है। भूमि कर के अलावा अन्य कर भी यहाँ प्रचलित थे जैसा इसमें उल्लिखित है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

"महाराजे श्री उदेयसिंहजी वचनाग्रेतां वांटी खालसा री लीखत परगने खारल रो गाम सवली श्री महादेवजी श्री सारनेश्वरजी नु चढावीई सो इण गाम रो हासिल लागत वलगत पेदायश सरवेत श्री सारनेश्वरजी कोठार लेसी गाम श्री सारनेश्वरजी रो छे सो कोई लोपे नहीं लोपे जणे गदोतरे गाल छे दुअे श्री मुख हुकम सु सिरायाला लालारी वेही चढी संवत् १८५८ रा महा सुद ६ रवी"

पारडा गाँव का ताम्रपत्र[६३] (१८०१) ई०)

यह ताम्रपत्र लापडी के पारडा गाँव (बाँसवाड़ा) के सम्बन्ध का वि० सं० १८५७ (चैत्रादि १८५८ अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि १२ (ई० स० १८०१ ता० १० अप्रैल) का है। इससे प्रगट है कि आनन्दराव की बाँसवाड़ा पर १८०१ में चढ़ाई हुई थी जिसमें प्रभावजी काम आया, आनन्दराव (दूसरा) ई० स० १७८० से १८०७ तक धार का स्वामी रहा। यह गाँव भूंपोल को दिया गया।

इसका मूल इस प्रकार है—

"राया राया महाराजाधिराजा माहारावल श्री विजयसिंघजी आदेशात्''''जोग जत मया ओधारी ने गाम पारडो लापडी नो पुआंर आनन्दरावजी नी फोज वांसवाडे आवी तारे कजीयो थयो तारे प्रभावजी आ ओधार काम आव्या ते गाम पाडलो भूंपेली नो आल्यो''' संवत् १८५७ ना चईत्रवद १२ दने दुआ श्रोत महतो अमरजी।"

अहीरावास का ताम्रपत्र[६४] (१८०२ ई०)

यह ताम्रपत्र महाराणा भीमसिंह के समय का है जिसमें व्यास केसरीराम को अहीरावास, परगने वदनौर में दो हल भूमि देने का उल्लेख है। इस भूमि का मूल में अनुदान राजसिंह द्वारा किया गया था। परन्तु शत्रुओं से युद्ध के समय ताम्रपत्र नष्ट होगया, अतएव इसे नया बनवा कर दिया। यहाँ जो 'राड' का उल्लेख किया है वह मराठों के आक्रमण से सम्बन्धित प्रतीत होता है क्यों कि वि० सं० १८४३, १८४४, १८५६ आदि समय में मेवाड़ पर मराठों के हमले हुये थे जिनसे जनजीवन अस्त-व्यस्त हुआ था। ऐसी स्थिति में ताम्रपत्र का नष्ट होना स्वाभाविक

---

६२. सिरोही रेकार्डस से प्राप्त अपेन्डिक्स, स

६३. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४४

६४. ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड, नं. ७३०

था। इसका समय वि०सं० १८५९ जेष्ठ सुदि-११ है। इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"महाराजाधिराज महाराणाजी भीमसिंघजी आदेशातु व्यास केसीराम गुणपत कासीराम रा जात श्रीदीचीकस्य गाम अहीरावास प्रगने बदनोररे जणामहे धरती हल २ दोयेरी महाराणा श्री राजसिंजी चन्दपरव महे उदक आघाट श्री राम अरपण करे दीदी सो तावापत्र थो सौ राड महे जातो रयो सो यो तांबा पत्र करे दीवाणो""संवत् १८५९ जेठ सुदी ११"

अमलावद का ताम्रपत्र, [६५] (१८०३ ई०)

यह ताम्रपत्र महारावत सामन्तसिंह के समय का है जिसमें ब्राह्मण वेणीराम को अमलावद में १० बीघा भूमि पुण्यार्थ देने का उल्लेख है। ये अनुदान रघुनाथ द्वारे की प्रतिष्ठा के अवसर पर किया गया था। इसका समय वि. सं. १८५९ माघ सुदि ११ का है।

वाडिया गाँव का ताम्रपत्र, [६६] (१८१३ ई०)

महारावल विजयसिंह (बाँसवाड़ा) के समय का वि० सं० १८७० आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १८१३ ता० २ जुलाई) के ताम्रपत्र में शिवनाथ के पंवार आनन्दराव की सेना से लड़ कर काले पत्थरों की पहाड़ी पर काम आने का तथा उसके पुत्र खवास शंकरनाथ को (पीछे से) वडिया गाँव तथा एक बावली दिये जाने का उल्लेख है। यह ताम्रपत्र दौलतराव सिंधिया और धार की सम्मिलित सेना के बाँसवाड़े के आक्रमण सम्बन्धी है जो पहिले हो चुका था। इस समय तीन महीने तक लगातार लड़ाई होती रही और अंत में मरहटा सेना बाँसवाड़ा में घुस कर लूट-पाट करती रही। इसी अवसर पर शिवनाथ खवास ब्राह्मण भी खेत रहा। यहाँ खवास शब्द विशेष पद का सूचक है न कि जातिविशेष 'नाई' के लिए। खवास शब्द नाई, उपपत्नि तथा पद विशेष का सूचक है। ऐसे संदर्भ में उसका प्रयोग पद विशेष के लिये होता है और ऐसे पदाधिकारी ब्राह्मण दर्जी आदि भी होते थे।

इसका मूलपाठ इस प्रकार है—

"रामा राय महाराजाधिराज महारावलजी श्री वजेसिंघजी आदेशात् खवास शंकरनाथ जोग्य जत मया ओधारी ने गाम वाडीयु तथा दोसी जदारी वाव जायगा सुवी खवास शिवनाथजी कारा भाटारी डोंगरो ऊपर पुंआर आणंद रावरी फौज में मराणा ते मूंडकटी में यावत् चन्द्रार्क तनो दीदो दस्तखत जानी दत्त रामना संवत् १८७० आषाढ़ सुदि ५.......।"

चाचाखेडी का ताम्रपत्र[६७] (१८१६ ई०)

यह ताम्रपत्र वि० सं० १८७३ ज्येष्ठ सुदि ४ (ई० स० १८१६ ता० ३० मई)

---

६५. ओझा प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. २७७

६६. ओझा, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. १४३

६७. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० २७७

सोमवार का है। इसमें द्वारिका के लक्ष्मी, सत्यभामा और राधिका के मंदिर के पुजारी बालकृष्ण, जयदेव और भंडारी जगन्नाथ का उल्लेख है जिनको महारावत सामन्तसिंह को द्वारिका यात्रा के समय चौहाण पूरवणी राणी ने अपनी जागीर का चाचाखेडी गाँव उक्त मंदिरों की भोग सामग्री के लिए भेंट किया। उक्त ताम्रपत्र को कुँवर दीपसिंह के कहने से किया गया।

सावली का ताम्र पत्र,[९८] (१८१६ ई०)

इस ताम्र पत्र से उस समय बोली जाने वाली सिरोही की भाषा का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें सोडेश्वर के मन्दिर के लिए सावली गाँव पुण्यार्थ देने उल्लेख है।

बीकानेर का दानपत्र (१८१६ ई०)

इसका समय वि० सं० १८७३ वैशाख सुदि ९ है। इसमें जो भाषा प्रयुक्त की गई है उसमें पंजाबी का भी प्रभाव दिखाई देता है।

प्रतापगढ़ का ताम्रपत्र,[९९] (१८१७ ई०)

यह ताम्रपत्र महारावत सामन्तसिंह के समय का है। जिसमें वि० सं० १८७४ द्वितीय श्रावण सुदि ११ (ई० स० १८१७ ता० २६ अगस्त) भौमवार को ज्येष्ठ वदि ३० के सूर्य पर्व के उपलक्ष में राज्य में लगने वाली ब्राह्मणों पर 'टंकी' को हटाने का उल्लेख है। यह 'टंकी' एक कर था जो प्रति रुपया एक आना के हिसाब से लगता था। इस कर से ब्राह्मणों को मुक्त करने का संकल्प महारावत ने शंखोद्धार तीर्थ में किया और उस संकल्प का पानी अमलावद के पंडित तारा के नाम छोड़ा गया। इसमें रावत की द्वारिका यात्रा की भी सूचना मिलती है। इस ताम्रपत्र को मेहता बेचरलाल ने महारावत के कुंवर दीपसिंह की आज्ञा से लिखा। इसका मूल इस प्रकार है।

"श्री मन्महाराजाधिराज महारावत जी श्री सामन्तसिंघ जी बचनात् कांठल देश ना समस्त ब्राह्मणां जोग्य अप्रंच श्री द्वारिका नाथजी नी जात्रा कीदी जदी श्रीबेट शंखोद्धार में ज्येष्ठ विदि ३० अमावस्यारे दिन सूर्य पर्व मध्ये आम्वा पत्रिक सर्व ब्राह्मण ने टंकी लागती हती ते गाम अमलावद नो पंडित तारा साथे हतो तेने हाथे श्री कृष्णार्पण करी दीधी आचन्द्रार्क यावत् उदक अघाट करी सारी लागट वलगट सहित निर्दोष करे दीधी जेनी हमारा वंसनो थई ने ब्राह्मणां थी चोलण करे नहीं चोलण करे जणीने चित्तोड नो पाप छे। अत्र दान वाक्य भूमि दत्वा भाविनो भूमिपालान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः। सामान्योऽयं दानधर्मो नृपाणां स्वे स्वे कालो पालनीयो भवद्भिः। ॥१॥ स्वदत्तांपर दत्तां वा यो हरेत वसुन्धरान्

---

९८. ओल्ड डि० रेकार्ड, नं० २१०६

९९. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. २७७-२७८।

षष्टि वर्ष सहस्त्राणि विष्टायां जायते कृमिः ।।२।। हुकम श्री हजूरनो डुवे महाराज कुंवर जी श्री दीपसिंघजी लिखितं येता वेचरलाल संवत् १८७४ रा वर्षे मास द्वितीय श्रावण सुदि १५ भौमवासरे ।"

भाचूंडला, पिपरोड का खेडा और माता खेडी का ताम्रपत्र,[१००] (१८२५ ई०)

यह ताम्रपत्र प्रतापगढ़ राज्य के पिपरोड का खेडा और माता खेडी के गांव के अनुदान सम्बन्धी है जिसका समय वि० सं० १८८२ प्रथम श्रावण सुदि १५ (ई० स० १८२५ ता० २९ जुलाई) है। इन तीनों गाँवों को द्वारिका में सदाव्रत के लिए कृष्णार्पण करने का उल्लेख है।

सेमलखेडी का ताम्रपत्र,[१०१] (१८३५ ई०)

यह वि० सं० १८९२ आषाढ़ सुदि २ तदनुसार ई० स० १८३५ ता० २६ जून चन्द्रवार का सेमलखेडी गाँव का ताम्रपत्र है, जिसमें राणी मेडतणी के बनवाये हुए मंदिर को गाँव सेमलखेडी भेंट करने का वर्णन है।

खेडा समोर गाँव का ताम्रपत्र,[१०२] (१८६३ ई०)

यह ताम्रपत्र डूंगरपुर के खेडा समोर गाँव का है जिसका समय वि० सं० १९१८ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ३ (ई० स० १८६३ ता० ८ मार्च) रविवार है। इसमें शाह निहालचन्द को वि० सं० १९१६ में कामदार नियत करने पर उक्त गाँव देने का उल्लेख है तथा उसकी सेवाओं का भी वर्णन है। यह ताम्रपत्र महारावल उदयसिंह के समय का है। इसमें वागडी भाषा प्रयुक्त की गई है।

मोरडी गाँव का ताम्रपत्र,[१०३] (१८७३ ई०)

यह ताम्रपत्र डूंगरपुर के मोरडी गाँव का है जिसका समय (आषाढ़ादि) वि० सं० १९२९ (चैत्रादि १९३०) चैत्र सुदि ८ (ई० स० १८७३ ता० ५ अप्रैल) शनिवार है। इसमें निहालचन्द की अच्छी सेवाओं के उपलक्ष में मोरडी गाँव देने का उल्लेख है। ताम्रपत्र महारावल उदयसिंह के समय में दिया गया था, इसमें वागडी भाषा का प्रयोग है।

---

१००. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. २७८

१०१. ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ २७८

१०२. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. १८०

१०३. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ १८१

सहायक ग्रन्थों की सूची

(अ) (अप्रकाशित सामग्री)

ओल्ड डिपोजिट रेकार्डस्
,, ,, फाइलें
,, ,, फोटो प्लेट
बीकानेर अभिलेखागार से प्रतिलिपियाँ
प्राइवेट कलेक्शन रेकार्डस्

(ब) (प्रकाशित पुस्तकें)

आर्कियोलोजिकल रिमेन्स, मोनुमेन्ट्स एण्ड म्यूजियम
आर्कियोलोजिकल एण्ड हिस्टोरिकल रिसर्च (सांभर)
ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० १–२
इण्डियन आर्कियोलोजी, १९६२–६३
ओझा, डूँगरपुर राज्य का इतिहास
,, जोधपुर राज्य का इतिहास भा० १–२
,, बीकानेर राज्य का इतिहास भा० १–२
,, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास
,, सिरोही राज्य का इतिहास
,, राजपूताने का इतिहास
,, बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास
,, भारतीय प्राचीन लिपिमाला
,, उदयपुर राज्य का इतिहास भा० १–२
एक्सकवेशन एट बैराट
खरतरगच्छ पट्टावली
गहलोत, राजपूताने का इतिहास, भा० १–२
,, कोटा राज्य का इतिहास
गोपीनाथ शर्मा,-राजस्थान का इतिहास, भा० १
,, मेवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स
,, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान
,, राजस्थान स्टडीज़
,, ए बिबलियोग्राफी ऑफ मेडिवल राजस्थान
टॉड, एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान

नाहर, जैन शिलालेख संग्रह, भा० १–३
भावनगर इन्स्क्रिपशन्स
भंडारकर, इन्स्क्रिपशन्स
बिबलियोग्राफी ऑफ इण्डियन कोइन्स
मथुरालाल शर्मा (डा.) कोटा राज्य का इतिहास, भा० १–२
राइट, केटलॉग ऑफ कोइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम
राजस्थान थ्रू एजेज़
रेड एक्सकेवेशन, जयपुर
रेऊ, ग्लोरियस राठौड्ज
रेऊ, जोधपुर राज्य का इतिहास, भा० १–२
वीलर, इण्डियन सिविलिजेशन
वेब, करेन्सीज ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना
श्यामलदास—वीर विनोद भा० १–५
सोमानी—कुंभा
सोमानी—चित्तौड़
संकालिया, एक्सकेवेशन ऐट आहड, १९६९
स्मिथ, केटलॉग ऑफ कोइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम
हन्नारेड, रंगमहल-दि स्वीडिश आर्कियालोजिकल एक्सपीडीशन, १९५२–५४।

(स) (प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ एवं रिपोर्टस्)

इण्डियन एन्टीक्वेरी
एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, १९३४
एन्युअल रिपोर्ट राजपूताना म्यूजियम, अजमेर
एपिग्राफिया इन्डिका
कोर्प्स इन्सक्रिपशन, इन्डिया
जरनल ऑफ न्यूमिसमेटिक, भा० ८
जरनल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल
जरनल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, बंबई
जरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी
टाइम्स ऑफ इण्डिया, १४–१०–७२।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
प्रोग्रेस रिपोर्ट आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्कल,
प्रोसीडिंग्ज ऑफ इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
प्रताप शोध प्रतिष्ठान पत्रिका
फ्लीट, गुप्ता कोइन्स

बंबई गज़ेटियर
भारतीय पुरातत्व
मरु भारती
राजस्थान भारती, वर्ष ६, अंक २
रायल एशियाटिक सोसाइटी रिपोर्ट्स
रिसर्चर, समर अङ्क
,, (फारसी लेख)
वरदा वर्ष १, अंक ४
वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के
वियानी ओरियन्टल जरनल
सरस्वती, भाग १८
शोध पत्रिका

——

अनुक्रमणिका

अ

आ

औ

अं

क

ख

ग

घ

च

छ

ज

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

स

श

ष

ह

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
प्रवेशक (i)	१७	सम्वन्वीत	सम्बन्धित
,, (ii)	१५	मुद्रणोत	मुहणोत
,, (iii)	१३	नक्षत्रकला	तक्षणकला
८	२४	श्रीमती	श्री
६	४	मृत	मृद्
२२	३१	निर्णीत	निर्णित
२७	२१	चित्रशूट	चित्रकूट
२६	१४	सीताभजू	सीतामऊ
३५	१५	तीन	तीर
४१	२१	समाघन	समावान
४३	२१	जिसमें	जो
,,	,,	का	सूचक है
,,	३२	गाजामनेन	गाजायनेन
४४	३	वाटेका	वाटिका
४४	२०	ईयोपर्प	द्वर्योवर्पशत
४४	२७	प्रण्ण	पुण्य
४५	६	ग् व	गव
४७	६	शव्दों	शव्द
,,	२८	सत्याश्रम	सत्याश्रय
४८	१	अभिलेख	शव्द यहां अनावश्यक
४८	२	सांभोली	सांमोली
५३		घुलेप	घुलेव
५४	२	अर्तृ भट्ट	भर्तृ भट्ट
५५	२२	२२	२०
५७	२५	अवेणी	त्रिवेणी
५७	३२	गुर्जरचा	गुर्जरत्रा
५८	१	रोहिन्सकप	रोहिन्सकूप
५६	२५	अचावधि	अद्यावधि
६१	२०	चानुयन्ताः	चानुमन्तः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	२६	द्रमा	द्रम
६३	३०	भगवत्सुति	भगवत्स्तुति
६६	६	वागड (बार्गट)	वागड (वार्गट)
६६	१७	कारादेश्मनि	कारावेश्मनि
६६	१७	भूरपश्च	भूरयश्च
६७	१२	देवकलिका	देवकुलिका—
६९	४	विदाध	विदग्ध
६९	१७	मंभटेन	मंमटेन
६९	२३	देयाति	देयानि
७३	३०	अथूगा	अथूंणा
७४	१८	पट्टिकिल	पट्टकिल
७४	१९	शेभो:	शंभो
७४	२२	लोजिग	लोलिग
७४	२३	सुल	सुत
७४	३२	रेत्र	रेऊ
७५	२	चन्दोमा	चन्दोभा
७५	१३	डवकुंड	डूवकुंड
७५	२०	कूटरत्तीलु	कूटस्तील
७७	१	उघलराक	उप्पलरा
७८	२६	सभीपाट्यां	समीपाट्
७९	१२	दशिति:	दर्शित:
७९	१३	मेलरे	मेलर
७९	१९	धाणक	घाणक
७९	२६	सिज	सिउ
८०	१७	ताभ्या	ताभ्यां
८०	२५	विरुद्ध	विरुद
८२	३	राज	राउ
८२	२१	आसदेज	आसदेऊ
८३	१५	कार्यटिक	कार्पटिक
८४	१३	वासव्य	वास्तव्य
८४	२८	पर्ल	पल
८५	२०	वदर्म्या	वदर्य्या
८५	२१	किराडजआ	किराडउआ
८७	१२	पूतिज्ञ	पूतिग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१३	निरगलि	निरर्गल
८८	१६	शेरदर	शेखर
८८	१६	तांटे:	तांहे:
८८	१९	प्रदर्द्ध	प्रवर्द्ध-
८९	२४	राजभत्र	राजमल्ल
९२	१२	भण्डारक	भण्डारकर
९३	५	द्रभा	द्रमा
९७	३४	रेज्ह	रेऊ
९८	२	किरोट	किराट
१०१	२६	वेल्हणक	वेल्हणके
१०१	२६	रजणीका	रउणीजा
१०२	११	लूणवसदी	लूणवसही
१०६	३२	की	को
११०	४	अचेह	अद्येह
११२	९	सेलकुवर	सेतकुवर
११३	२५	सौंदर्य	सौदर्य
११४	१५	भर्तृप्ररीय	भर्तृपुरीय
११८	८	द्वादप्श	द्वादश
१२२	३१	वर्वरवाल	वघेरवाल
१२५	३०	रूत्राथ	सत्राथ
१२६	१०	न्याय	त्याय
१२६	२२	अर्वद	अर्बुद
१२७	८	निहुण	तिहुण
१३४	८	मिल्लान्	भिल्लात्
१३४	२९	सेलहुय	सेलहथ
१४०	१६	शीशोदे	सीसोदे
१४०	१५	मुम्माण	खुम्माण
१४१	३	भंडोर	मंडोर
१४१	४	लीलामरत्र	लीलामात्र
१४५	२०	राम	राज
१५६	२६	क्षेय	क्षेत्र
१५८	२८	घोनुन्दी	घोसुन्डी
१७३	१७	अगरसिहजी	अमरसिंहजी
१७३	१९	भाई	माई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७५	४	मेद्यपाने	मद्यपाने
१७५	२८	मांडलगढ़	मांडल
१८२	२२	मथुरानामे	मथुरानाथे
१९२	२	हृयं	ह्वयं
१९२	२०	सुधार	सूथार
१९२	३१	भया	मया
२१०	६	छन्यानी	छन्याती
२२२	२५	ताग	ताक
२२७	६	मुर्जाअली	मिर्जाअली
२३५	४	झाका	झाऊ
२३५	५	आपिभ	आलिम
२३८	३०	प्रस्तादेन	प्रसादेन